शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 61/3 जनवरी-मार्च 2023 400.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम
प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार
09557746346
डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : एक हजार रुपए
यह प्रति : चार सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰ विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰) 462038
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फेज-1, दिल्ली 110052
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
श्री अनिल शर्मा जोशी, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ पूरनचंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ एस॰के॰ पवार, प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ 580003 (कर्नाटक)
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
प्रो॰ बाबूराम, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, चौ॰ बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भौसले, अध्यक्ष हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी
प्रो॰ मंजुला राणा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शहाबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ प्रणव शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत 262001 उ॰प्र॰
डॉ॰ राखी उपाध्याय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, देहरादून 248001 (उत्तराखंड)

महात्मा कबीर

कबीर नाम है—प्रेम का।

कबीर दर्शन है—एकत्व का, सद्भाव का।

कबीर विशेषण है—मस्त, फक्कड़ और निडर व्यक्ति का।

कबीर संगम है—दो संस्कृतियों का।

कबीर का संगम प्रयाग के संगम से ज़्यादा गहरा है। वहाँ कुरान और वेद ऐसे खो गए हैं कि रेखा भी नहीं छूटी।

कबीर एक मार्ग है—सहजता का। ऐसा मार्ग जो सीधा और साफ़ है।

टेढ़ी-मेढ़ी बात कबीर को पसंद नहीं। इसलिए उनके रास्ते का नाम है—सहज योग।

पंडित नहीं चल पाएगा इस मार्ग पर। निर्दोष चित्त, कोरा काग़ज़ जैसा मन ही चल पाएगा उस पर।

कबीर क्रांतिकारी हैं—क्रांति की जगमगाती प्रतिमा। जाति-पाँति के भेद-भावों से मुक्त एक सच्चा इंसान, मानवता के संकल्प से ओतप्रोत, ज्ञान की गंगा। ऐसी गंगा, जो अपनी संपूर्ण पावनता के साथ एक-एक मन को शीतल करती हुई निरंतर प्रवाहित रहती है।

कबीर का जन्म कहाँ हुआ? उनके जन्मदाता कौन थे? उनके गुरु का नाम क्या था? इस संबंध में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों में एकरूपता नहीं है।

इतिहासकार, साहित्यिक विद्वान और कबीरपंथी भी एकमत नहीं।

कबीर के संबंध में निश्चित नहीं कि वह हिंदू थे या मुसलमान। हिंदुओं को विश्वास है : हिंदू थे, मुसलमानों का दावा है : मुसलमान थे।

जन्म की किंवदंतियाँ

कबीर के जन्म के संबंध में कई प्रकार की किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं :

लगभग छह सौ वर्ष पूर्व की घटना है। नीरू अपनी पत्नी नीमा के साथ काशी की तरफ़ आ रहा था। उसी दिन उनका गौना हुआ था। नीरू काशी का जुलाहा था। रास्ते में लहरतारा तालाब पड़ता था। नीरू ने सोचा कि हाथ-पैर धो लिए जाएँ। तभी उसने किसी बालक के रोने की आवाज़ सुनी। आस-पास उसकी पत्नी के अतिरिक्त कोई भी न था। फिर आवाज़ कहाँ से आई! जिज्ञासा हुई। चारों तरफ़ देखा। आवाज़ एक झाड़ी की तरफ़ से आ रही थी। वह उसी ओर भागा। वहाँ जाकर देखा कि एक प्यारा-सा बच्चा वहाँ पड़ा था। बच्चा इतना छोटा, जैसे कुछ देर पहले ही उसका जन्म हुआ हो।

इतना प्यारा बच्चा नीरू जुलाहे ने कभी देखा नहीं था। उसकी आँखें ऐसी थीं जैसे मणियाँ हों। उसकी आँखों में ऐसी रोशनी थी कि नीरू की आँखें चौंध से भर उठीं। नीमा डरी कि कुछ झंझट होगा। लोग क्या कहेंगे। बदनामी भी होगी। किंतु जैसे ही उसने बच्चे को देखा, उसका दिल भी डोल गया।

अंत में उन लोगों ने लोक-लाज की परवाह नहीं की और वे बच्चे को अपने साथ ले आए। काशी में जो मुहल्ला कबीर चौरा के रूप में आज प्रसिद्ध है, उसी में संभवत: नीरू का घर था।

वे घर पहुँचे। अपने रिवाज के अनुसार, बच्चे का नामकरण करने के लिए उन्होंने काज़ी को बुलाया। उसने क़ुरान खोला। कहते हैं कि उसमें हर जगह कबीर-कुब्रा, अकबर आदि शब्द मिले।

अरबी में ये शब्द महान् परमात्मा के लिए आते हैं। काज़ी हैरान था। साधारण जुलाहे के बच्चे को किस तरह परमात्मा का नाम दिया जाए? अपना शक मिटाने के लिए उसने कई बार क़ुरान देखा। उसे हर बार वही शब्द मिले। यह समाचार पाकर कई काज़ी इकट्ठे हो गए। आख़िर उन्होंने नीरू को सलाह दी–'इस बच्चे का क़त्ल कर दे, नहीं तो इसके कारण कोई बड़ी आफ़त आने वाली है।'

नीरू-नीमा इतना क्रूरकर्म न कर सके और इस प्रकार बच्चे का नाम कबीर पड़ गया।

यही बच्चा, जिसके असली माँ-बाप का पता दुनिया को आज तक नहीं हुआ, आगे चलकर भारत का महान् संत कबीर हुआ।

कबीर के जन्म को लेकर एक किंवदंती हिंदू-समाज में भी प्रचलित है। एक दिन एक ब्राह्मण अपनी विधवा कन्या के साथ स्वामी रामानंद के दर्शन के लिए गया। पिता के साथ ही कन्या ने भी रामानंद के चरण-स्पर्श किए।

रामानंद अपनी मस्ती में थे। उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि चरण कौन छू रहा है? अचानक उनके मुँह से निकला–'पुत्रवती भव!'

आशीर्वाद दे दिया कि 'पुत्रवती होओ।'

महात्मा जी का आशीर्वाद असत्य नहीं हो सकता था। कुछ समय बाद उसके गर्भ से एक पुत्र ने जन्म लिया। लोकलाज स्वाभाविक थी। ब्राह्मणी ने मन को कड़ा किया और बच्चे को लहरतारा तालाब के किनारे छोड़ दिया। संभवत: इस बालक को ही नीरू और नीमा ने लहरतारा के किनारे से पाया था।

ऐसा लगता है कि कबीर हिंदू-घर में पैदा हुए और मुसलमान घर में पले। इसमें एक अपूर्व संगम हुआ, एक अपूर्व समन्वय हुआ।

कबीर में हिंदू और मुसलमान संस्कृतियाँ जिस प्रकार मेल खा गईं, इतना तालमेल तो गंगा और यमुना में भी प्रयाग में नहीं मिलेगा, दोनों का जल अलग-अलग मालूम होता है। कबीर में जल तनिक भी अलग-अलग मालूम नहीं होता।

तीसरी कहानी और अधिक रोचक है, एक पुराणपंथी कहानी की तरह। इसके अनुसार, कबीर साहब शुकदेव जी के अवतार थे।

कहा जाता है कि महादेव की आज्ञा से शुकदेव जी लोककल्याण के लिए पृथ्वी पर आए।

पूर्वजन्म में वे बारह वर्ष तक गर्भवास का दुख भोग चुके थे। इसलिए इस बार गर्भवास से बचने के लिए उन्होंने अपने को एक सीपी में बंद कर लिया और उसे गंगा के किनारे बहाव में छोड़ दिया। यही सीपी बहते-बहते लहरतारा तालाब में पहुँच गई और दैवयोग से वहीं एक कमल के पत्ते पर खुल गई। इसमें से एक सुंदर बालक प्रकट हुआ। यही बालक आगे चलकर कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कबीर के जन्म के संबंध में जितनी कथाएँ ज्ञात हैं, उन सबको मिलाकर यही कहा जा सकता है कि इन महात्मा को जन्म देने वालों का पता किसी को नहीं है।

कबीर का जन्म किस सन् में, किस तिथि को हुआ, इसे भी ठीक- ठीक बता पाना बहुत कठिन है।

उनकी जन्मतिथि के संबंध में एक छंद बहुत समय से प्रचलित है :

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार इक ठाठ ठए
जेठी सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रकट भए।

अर्थात् विक्रम के 1455 साल व्यतीत होने पर, सोमवार को जेठ की पूनो, वटसावित्री के पर्व पर कबीर साहब प्रकट हुए थे। वटसावित्री या बरसायत के दिन कबीरपंथी अब भी कबीर साहब का जन्मदिन मनाया करते हैं।

कुछ विद्वानों ने गणना करके पता लगाया कि सोमवार को जेठ पूनो संवत् 1455 में नहीं बल्कि 1456 में पड़नी चाहिए। इसलिए 1455 साल गए का अर्थ यह भी हो सकता है कि 1455 वाँ संवत् बीत जाने पर अर्थात सं॰ 1456 में कबीर का जन्म हुआ होगा।

कबीर के जन्मस्थान के संबंध में भी तीन मत हैं : मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव।

मगहर के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि कबीर ने अपनी रचना में वहाँ का उल्लेख किया है : पहिले दरसन मगहर पाई, पुनि कासी बसे आई अर्थात् काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर आजकल की वाराणसी के निकट ही है और वहाँ कबीर का मकबरा भी है।

कबीर का अधिकांश जीवन काशी में व्यतीत हुआ। वे काशी के जुलाहे के रूप में ही जाने जाते हैं। कई कबीरपंथियों का भी यही विश्वास है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ, किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चयात्मकता अवश्य भंग होती है।

बहुत से लोग आज़मगढ़ ज़िले के बेलहरा गाँव को कबीर साहब का जन्मस्थान मानते हैं। वे कहते हैं कि बेलहरा ही बदलते-बदलते लहरतारा हो गया।

फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहारा गाँव का ठीक पता चल पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि बेलहरा का लहरतारा कैसे बन गया और यह आज़मगढ़ ज़िले से काशी के पास कैसे आ गया। आज़मगढ़ ज़िले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

मसि कागद छूयो नहीं

कबीर बड़े होने लगे। वे अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न थे। उन्हें खेल में कोई रुचि नहीं थी। मदरसे भेजने लायक साधन माता-पिता के पास नहीं थे। जिसे हर दिन भोजन के लिए ही चिंता रहती हो, उस पिता के मन में कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा होगा।

यही कारण है कि वे किताबी-विद्या प्राप्त न कर सके। उन्होंने स्वीकार किया : 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

किंतु किताबी विद्या ही सब-कुछ नहीं होती। जिसमें आभा नहीं, भावुकता नहीं, कार्य करने की शक्ति नहीं, वह तो पुस्तक पढ़कर भी मूर्ख बना रहेगा।

सब जानते हैं कबीर ज्ञान के भंडार थे, प्रतिभा के सागर थे, भावुकता के स्रोत थे। वे बचपन से ही रामभक्ति का अमृतरस छककर पी रहे थे।

जुलाहा परिवार में पलने वाले बालक पर मुसलमानी रहन-सहन, आचार-व्यवहार का प्रभाव पड़ना चाहिए था। किंतु वे हिंदुओं की भाँति कंठी-माला धारण करते, तिलक लगाते और राम-नाम का जाप करते।

स्वामी रामानंद का शिष्यत्व

कबीर ने अनुभव किया कि ज्ञान की परिपक्वता के लिए गुरु आवश्यक है, परंतु गुरु का महान् पद किसे दिया जाए? कौन गुरुमंत्र देगा!

काशी में उन दिनों सबसे प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य स्वामी रामानंद थे। कबीर के मन में उन्हीं से दीक्षा लेने की इच्छा जाग्रत हुई।

लेकिन इसमें एक भारी बाधा थी। वैष्णव आचार्य एक जुलाहे को दीक्षा किस प्रकार दे सकता था? उस बाधा को दूर करने के लिए कबीर ने एक उपाय सोचा।

स्वामीजी प्रतिदिन धुँधलके में ही अपने सेवकों के साथ गंगास्नान के लिए जाया करते थे। कबीर प्रात:काल चार बजे से पहले ही गंगाजी की सीढ़ियों पर जाकर लेट गए। स्वामी रामानंद गंगा में स्नान करके सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। तभी उनका पैर किसी से टकराया। वे क्षण-भर ठिठके और 'राम-राम' कहकर अपना पैर हटा लिया।

कबीर ने इसी राम-नाम को गुरुमंत्र स्वीकार किया। अब वे गुरुहीन नहीं थे। उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध आचार्य को अपना गुरु बनाया था। वे महान् गुरु के महान् शिष्य थे।

लोगों ने सुना कि स्वामीजी ने एक जुलाहे कबीर को अपना शिष्य बना लिया है। वे ईर्ष्या से जल उठे।

लोगों ने जाकर रामानंद जी से पूछा, 'महाराज, आपने जुलाहे को भी अपना शिष्य बनाया है।'

स्वामीजी ने उत्तर दिया, 'भाई, हमने तो उसे शिष्य बनाया नहीं है।'

उपस्थित व्यक्तियों ने कहा, 'महाराज, वह तो शहर-भर में यही कहता फिरता है कि मैं स्वामी रामानंद जी का शिष्य हूँ।'

स्वामीजी आश्चर्यचकित थे, 'यह कैसे हो सकता है? मैंने तो किसी जुलाहे कबीर को दीक्षा नहीं दी।'

दूसरे दिन स्वामीजी ने कबीर साहब को बुलाया और पूछा, 'क्यों भाई! मैंने तुम्हें शिष्य कब बनाया? कब मंत्रोपदेश दिया?'

कबीर ने विनम्रता के साथ उत्तर दिया, 'गुरुदेव, अन्य लोगों को तो आप कान में ही मंत्रोपदेश देते होंगे। मुझे तो आपने मस्तक पर पैर रखकर मंत्रोपदेश दिया था।'

इतना कहकर कबीर ने गंगाघाट का सारा वृतांत कह सुनाया।

शिष्य की अगाध निष्ठा और अविरल भक्ति देखकर गुरु गद्गद् हो उठे।

शिष्य ने अपना शिष्यत्व प्रकट कर दिया था।

गुरु का स्नेह छलक उठा। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य को हृदय से लगा लिया।

कबीर के काल में भारत पर मुसलमानों का राज्य था। हिंदुओं के ऊपर तरह-तरह के अत्याचार होते थे। ऐसी दशा में दोनों जातियों में पारस्परिक प्रेम के स्थान पर घृणा ही अधिक फैली हुई थी।

स्वाभाविक था कि मुसलमान परिवार के बालक को राम-राम कहते देखकर बिरादरी वाले

उलझन में पड़ते। मुसलमान उनकी हरकतों को देखकर खीज से भर उठते। वे कहते : यह लड़का बड़ा काफ़िर होगा।'

कबीर इसका जवाब इस तरह देते : काफ़िर वह है, जो पराया धन लूटता है, धोखे से दुनिया को ठगता है, बेकसूर जीवों का वध करता है।

एक पद में उन्होंने काज़ी से कहा है : तुम क़ुरान का बाहरी ढकोसला छोड़कर राम का भजन करो, नहीं तो भारी जुल्म करोगे। मैंने तो राम का ही आसरा पकड़ा है, भले ही लोग मुझे समझाते-समझाते हार जाएँ।

कबीर के व्यवहार से नीरू-नीमा भी परेशान थे। यह कहाँ का घर- घालन पैदा हुआ है? अपनी बिरादरी के रीति-रिवाज छोड़कर हिंदुओं की तरह आचरण करता है। किंतु कबीर थे कि उनकी मस्ती बढ़ती ही जाती थी। इस मस्ती में वे कभी-कभी अपना कताई-बुनाई का धंधा भी भूल जाते थे। नीमा के लिए यह उलझन भरी बात थी, 'या खुदा! यह लड़का कैसे जिएगा।'
कबीर माता को समझाते थे, 'माँ, जब मैं नली के छेद में तागा डालने लगता हूँ तो मेरा प्यारा नाम मुझे भूल जाता है।

क्या करूँ मैं! पर तू चिंता न कर। वह राम ही तीनों लोकों को सँभालता है। वही हमारी ज़रूरतें भी पूरी करेगा।

कबीर परम वैरागी थे। सांसारिक माया-मोह से उन्हें कोई वास्ता न था। धन-संपत्ति उनके लिए व्यर्थ थे। फिर भी वे गृहस्थ-संन्यासी के रूप में जीवन-निर्वाह करते रहे। व्यवसाय व कार्य से जुलाहे का जीवन। यही उनकी जीविका का साधन था। वे कपड़ा बुनकर उसे बाज़ार में बेचने जाते और उसमें जो भी लाभ होता, उससे अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह किया करते थे। उसी से भक्तों की भी सेवा करते।

एक दिन एक नई घटना घटी।

एक ग़रीब ब्राह्मण बाज़ार में ही कबीर के पास पहुँचा। उसकी स्थिति उसकी दरिद्रता को बताने के लिए पर्याप्त थी। अपना तन ढकने के लिए उनसे दीनतापूर्वक कपड़ा माँगा। कबीर ने उसकी वाणी में छिपी दीनता को समझा। वे बोले : मैं तुम्हें आधा थान दे सकता हूँ। आज आधे से ही परिवार का ख़र्चा चला लूँगा।

किंतु आधे थान से ब्राह्मण को संतोष नहीं हुआ। उसने पूरा थान दे देने की विनती की। कबीर को दया आ गई। उस दिन बनाया गया सारा कपड़ा उन्होंने दान कर दिया। किंतु उन्हें चिंता हुई कि घरवालों को क्या खिलाएँगे? शर्म के कारण उन्हें घर जाने का साहस न हुआ। वे आस-पास ही कहीं छिपे बैठे रहे। सारा दिन बीत गया। घर के लोग भूख के कारण व्याकुल होने लगे। उसी समय एक अचंभा हुआ।

एक आदमी बैल पर खाने-पीने की चीज़ें लादकर लाया और ज़बरदस्ती कबीर के घर रख गया।

नीमा आश्चर्यचकित थी।

उसे अपने बेटे के स्वभाव का पता था। कोई लाख रुपए भी दे, लेकिन वह अपने परिश्रम के अलावा एक पैसा नहीं लेता था।

नीमा ने पूछा, 'ये सामान कहाँ से लाए?'

उस आदमी ने बताया, 'विश्वनाथ जी का दर्शन करने एक राजा आया हुआ है। तुम्हारे बेटे

पर प्रसन्न होकर उसने बहुत-सा धन दिया। तुम्हारे बेटे ने तो एकदम इंकार ही कर दिया।

तब राजा ने बड़ी विनती करके खाने-पीने का यह सामान भिजवाया है। आप इसे स्वीकार कीजिए। कुछ देर बाद आपका बेटा भी आता होगा।'

इतना कहकर वह आदमी अपना भेद बताए बिना चला गया। नीमा को उसकी बात पर विश्वास हो गया। उसने सोचा–संभव है, यही बात सच हो। लोग कबीर को खोजने निकले और उन्हें यह ख़बर दी। वे तो आज सारा कपड़ा दान में दे चुके थे। घरवालों को खिलाने के लिए उनके पास कुछ न था। वे घर पहुँचे। नीमा ने सारा हाल कह सुनाया।

कबीर को मन-ही-मन विश्वास हो गया कि दयालु परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कौन ऐसा कर सकता है?

इस घटना से उनके आत्मबल में और अधिक वृद्धि हुई। अब तो वे ताना-बाना पूरी तरह भूल गए। हरिभक्ति ही उनका एकमात्र आधार बन गई।

ब्राह्मणों को भोज

कबीर की यशगाथा अपने पंख फैला रही थी। जनसामान्य में उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव बढ़ रहा था। जनता उनके दर्शनों के लिए उत्सुक रहती थी।

पूरी काशी कबीरमय हो रही थी। कबीर राममय हो रहे थे।

एक जुलाहे का इतना आदर और सम्मान हो, यह बात न तो ब्राह्मणों को अच्छी लगी और न शहर के काज़ी को।

वे ईर्ष्या से जलने लगे। सभी के मन में एक ही बात थी। कबीर को किस प्रकार नीचा दिखाया जाए? ब्राह्मणों की एक सभा हुई। सभा में निर्णय लिया गया कि कबीर को काशी से बाहर निकाल दिया जाए। इसके बाद निर्णय की घोषणा कर दी गई। इस निर्णय से भक्तजन दुखी थे, किंतु उनकी बात कौन सुनता! तमाशा देखने के लिए नगरी की भीड़ उमड़ पड़ी। कुछ ब्राह्मण कबीर के पास पहुँचे और क्रोध प्रकट करने लगे। कबीर ने सबको आदर से बैठाया। विनम्रता के साथ पूछा, 'पधारने की कृपा किसलिए की?

ब्राह्मण बोले, 'तुम्हें आज ही काशी नगरी को छोड़ना होगा।'

'मेरा क्या अपराध है? आपके क्रोध का कारण क्या है?' कबीर ने पूछा।

'हम सबका यही निर्णय है।' ब्राह्मण-समुदाय ने कहा।

कबीर बोले, 'न तो मैंने किसी का कुछ चुराया है और न किसी की बेइज़्ज़ती की है। राम का नाम जपता हूँ। मेरा अपराध बताएँ।'

ब्राह्मण क्रोधपूर्वक कहने लगे, 'तुमने भोज दिया। शूद्रों को भोजन कराया। हम लोगों को पूछा तक नहीं। इसका प्रायश्चित यही है कि या तो हमारे भोज का प्रबंध करो अथवा इस नगरी को छोड़कर चले जाओ।'

यह तो घोर अन्याय था। कबीर के घर तो अन्न का दाना भी नहीं था। उन्होंने तो सब-कुछ ग़रीबों में बाँट दिया था। अब वे इतने लोगों के लिए अन्न की व्यवस्था कहाँ से करें? ब्राह्मणों को भूखा भेजना भी अधर्म था।

उन्होंने व्यवस्था करने का आश्वासन दिया और वहाँ से चले आए। ब्राह्मण कबीर के घर के बाहर एकत्र थे।

'देखा जाएगा, कभी तो लौटकर आएगा ही। बहुत बड़ा भक्त बनता है। आज असलियत का पता चलेगा।' ब्राह्मणों ने विचार किया।

तभी किसी ने देखा, 'एक व्यक्ति कई मज़दूरों के साथ उसी ओर आ रहा था। सबके सिर पर सामान लदा था।

मैदा, चावल, शक्कर की बोरियाँ घर के आगे उतारकर रख दी गईं। ब्राह्मणों में खलबली मच गई। सबको ढाई-ढाई सेर सामग्री देकर विदा कर दिया गया। प्रत्येक के मुँह से एक ही स्वर फूट रहा था, 'धन्य-धन्य।'

तभी एक ब्राह्मण कबीर को खोजता हुआ उनके पास पहुँचा। कबीर तो अपना मुँह छिपाए हुए बैठे थे।

ब्राह्मण बोला, 'तुम यहाँ बैठे हो। वहाँ सभी ब्राह्मणों और संन्यासियों को भोजन-सामग्री बाँटी जा रही है।'

'कहाँ भाई! कुछ तो बताओ।' कबीर ने आश्चर्य के साथ पूछा।

'अब बात न बनाओ, कबीर साहब। सामान तो घर भिजवा दिया और खुद यहाँ बैठे हो।' ब्राह्मण ने उत्तर दिया, 'देखते नहीं, मैं स्वयं आपके घर से यह गठरी बाँधकर ला रहा हूँ।'

कबीर चुपचाप सुनते रहे। वह राम का चमत्कार प्रत्यक्ष देख रहे थे। वह मन-ही-मन बोले, 'मेरा कर्त्ता महान् है। उसके बिना यह आदर कौन दे सकता है?' सभी ब्राह्मण कबीर के सम्मुख नतमस्तक हो गए थे।

सिकंदर से शिकायत

काज़ी था कि ईर्ष्या से जला जा रहा था। वह ऐसे अवसर की खोज में था कि कब कबीर से बदला लिया जाए! आख़िर वह दिन भी आ पहुँचा।

उन्हीं दिनों काशी में सिकंदर लोदी का आगमन हुआ।

लोदी वंश का यह सुलतान दिल्ली की गद्दी पर विराजमान था।

सिकंदर लोदी अत्याचारी तो था, किंतु खुदा और धर्म से डरने वाला शासक था। बनारस का काज़ी और वहाँ के मुल्ला उसके कान भरने लगे। उन्होंने सुलतान को समझाया–'कबीर किसी को कुछ नहीं समझता। सभी को गालियाँ देता है। बड़ा ही घमंडी है। इस जुलाहे ने बड़ा ही तूफ़ान खड़ा कर रखा है। उसने मुसलमानों के रीति-रिवाज छोड़ दिए हैं। वह तो खुद खुदा बनने का दावा करता है।'

ब्राह्मणों ने भी इसे उचित अवसर समझा। वे भी शिकायत लेकर पहुँच गए। उन्होंने कहा, 'वह तीर्थ और वेद की निंदा करता है। व्रत-उपवास को बेकार की बातें बताता है। हिंदू और तुर्क दोनों से अलग अपनी रीति चलाता है। आप ही हमारे माता-पिता हैं। आप ही हमारी रक्षा करें।'

सिकंदर लोदी ने सोचा–यह अजीब फ़कीर है, जो न तो किसी मस्जिद में जाता है और न किसी मंदिर में जाने को अच्छा समझता है।

बादशाह ने तुरंत दो सिपाहियों को भेजा और कबीर को दरबार में हाज़िर होने का हुक्म दिया।

कबीर आए। वह आराम से बादशाह के सामने खड़े हो गए। उनके चेहरे पर किसी प्रकार का डर नहीं था। उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि क्या बात है? बस खड़े रहे।

काज़ी ने कहा, 'बादशाह को सलाम कीजिए।' किंतु कबीर ने ऐसा भी नहीं किया। इस पर बादशाह गुस्से से भर उठा।

सुलतान के गुस्से को भाँपकर काज़ी ने कहा–'तू काफ़िर है। तू हमारे धर्म के ख़िलाफ़ प्रचार करता है। तू मुसलमान और हिंदू दोनों को गालियाँ देता है। तेरे चेले भी यही सब करते हैं। इन शिकायतों की सफ़ाई में तुझे कुछ कहना है।'

कबीर ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया–'नहीं।'

दरबार में सन्नाटा छा गया। सभी की आँखें सुलतान की ओर थीं। कबीर के विरोधी मन-ही-मन ख़ुश थे कि अब तो इसे मौत की सजा मिलेगी। सिकंदर लोदी को भी कम आश्चर्य नहीं था। उसने ऐसे फ़क़ीर को कभी न देखा था। उसने पूछा, 'तुम अपना जुर्म मानते हो?'

'अगर किसी के दुर्गुण को दुर्गुण कहना बुराई है तो मैं ऐसा जुर्म करता हूँ और बार-बार करता रहूँगा। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों को मानने वालों में ऐसी बहुत-सी बुराइयाँ हैं, जिन्हें दूर करना ज़रूरी है। मैं यदि उनकी चर्चा करता हूँ तो मुझ पर दोष लगाया जाता है।' कबीर ने निर्भीकता के साथ कहा।

अपनी बात को साफ़ तौर पर बताओ। बादशाह ने हुक्म-भरे लहज़े में कहा। इस पर कबीर ने कहा–

यह सब झूठी बंदगी, बिरथा पंच निबाज।
साँचै मारै झूठि पढ़ि, काजी करै अकाज।

कबीर ने केवल काज़ी को ही नहीं, मुल्ला को भी खरी-खरी सुनाते हुए कहा–

काजी मुल्ला भरमिया, चल्या दुनी के साथ।
दिल थै दीन बिसारिया, करद लई जब हाथ।

कबीर की वाणी में स्पष्टता थी। जो कुछ भी मन में था, वह सब- कुछ प्रकट था। कुछ भी तो नहीं छिपाया गया था। अब इसे स्पष्टवादिता कहें अथवा दोष। कबीर पर किसी प्रकार का बोझ नहीं था। उन्होंने बताया, 'मुझे हिंदुओं और तुर्कों से कुछ लेना-देना नहीं है। गुरु के प्रताप से राम की भक्ति करता हूँ और उसी के गुण गाता हूँ। राम के भरोसे रहकर मैं राजा या रंक सबको एक बराबर मानता हूँ।'

काज़ी ने कबीर की बात सुनी और फ़ैसला दिया, 'कबीर ने इस्लाम की निंदा की है। वह काफ़िर है। उसकी माला छीन लो, तिलक मिटा दो। इसकी सजा है कि इसे पत्थरों से पीट-पीटकर मार दिया जाए।'

कबीर ने कहा, 'काफ़िर मैं नहीं, तुम हो। कौनसी पुस्तक में गोकशी करने, मुर्ग़ा और बकरा काटने की आज्ञा दी गई है?'

यह सुनते ही बादशाह क्रोध से पागल हो उठा। उसने आज्ञा दी, 'इस फ़क़ीर के हाथ-पैर बाँधकर इसे गंगा में फेंक दिया जाए।'

जल्लादों ने बादशाह के हुक्म का पालन किया, किंतु पानी में डालते ही कबीर की ज़ंजीरें टूट गईं। वे जल के ऊपर तैरने लगे। लोगों ने कहा, 'लगता है, यह कोई जादू-टोना जानता है।'

दूसरी बार उनके हाथ-पैर बाँधकर एक घर के अंदर डाल दिया गया। घर के चारों ओर आग लगा दी गई। मकान जलकर राख हो गया। राख तक हवा में उड़ गई। किंतु कबीर का बाल भी बाँका न हुआ।

सिकंदर लोदी का क्रोध भी अब तक शांत नहीं हुआ था। कबीर की मौत अहंकार को शांत करने के लिए आवश्यक थी।

उसने आज्ञा दी कि 'कबीर के हाथ-पैर बाँधकर उसे मदमस्त हाथी के सामने डाल दिया जाए।'

आज्ञा का पालन किया गया।

हाथी भी ऐसा कि अपनी छाया को भी जीव समझकर कुचलता रहता था। ऐसा बिगड़ैल हाथी कबीर के सामने छोड़ दिया गया। लेकिन लोग अचंभे से भरे रह गए।

हाथी ने कबीर की ओर देखा और देर तक उन्हें निहारता रहा। ऐसा लग रहा था, जैसे उसके सामने कोई शेर खड़ा हो।

आख़िर वह चिंघाड़ता हुआ वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

कबीर के पद इस बात का प्रमाण हैं कि उन पर इस प्रकार के अत्याचार अवश्य किए गए होंगे और ईश्वर की कृपा ने उनकी रक्षा की होगी।

गंगा में फेंके जाने के प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित पद प्रस्तुत किया जाता है—

मन न डिगै तनु काहे को डराइ, चरन-कमल चितु रह्यौ समाई
गंग गुसाइनि गरि गंभीर, जंजीर बाँधि करि खरे कबीर
गंगा की लहर मेरी टुटि ज़ंजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर
कहै कबीर कोई संग न साथ, जल-थल में राखै रघुनाथ।

हाथी के सामने फेंके जाने की घटना के संबंध में कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्वयं प्रमाण हैं—

आहि मेरे ठाकुर तुम्हरा जोर, काजी बाकिबो हस्ती तोर
भुजा बाँधि मिला करि डार्‌यौ, हस्ती कोपि मूँड महि मार्‌यौ
भाग्यौ हस्ती चीसा मारी, या मूरति की हौं बलिहारी।

समाज-सुधार

दूसरे फ़क़ीरों और संन्यासियों की तुलना में कबीर का रास्ता बिलकुल अलग था। वे केवल अध्यात्म और मोक्ष की साधना में नहीं लगे रहे, समाज में फैली बुराइयों और विडंबनाओं को दूर करने का संकल्प भी उन्होंने लिया। ऐसा करने में कबीर अनेक स्थानों पर कठोर भी हो गए हैं।

उनका विचार था कि समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सुधारना होगा।

कबीर का युग पराधीनता का युग था। वर्ग-विद्वेष समाज के रक्त में मिल चुका था। अवर्ण-सवर्ण की खाई बढ़ती जा रही थी। मंदिरों में पूजा, भक्ति, अर्चन और ज्ञानोपार्जन शूद्रों के लिए वर्जित कर दिया गया था।

कबीर की आत्मा इस पारस्परिक दुर्व्यवहार से आहत हो गई। अस्पृश्यता के इस कलंक को मिटाने के लिए उन्होंने घोर संघर्ष किया।

उन्होंने घोषणा की कि जन्म से ही कोई शूद्र अथवा श्रेष्ठ नहीं हो सकता। यह सब तो मनुष्य के स्वार्थ की करामात है—

हम तुम्ह माँहि एके लौहू, एक पाँनि जीवन है मौहू

एकहि जननी जन्याँ संसारा, कौन ग्यान से भये निनारा।

सबके अंदर एक ही रंग का रक्त प्रवाहित है। सबमें समान प्राण व्याप्त हैं। सबको एक प्रकृति ने पैदा किया है। फिर कोई अलग-अलग, ऊँचा-नीचा कैसे हो सकता है?

इसीलिए कबीर ने कहा है कि हमें पारस्परिक भेदभाव का त्याग करना होगा। सबका कर्त्तव्य है कि वे मिल-जुलकर रहें। इसी में सबका कल्याण है—

सर्वभूत एके करि जान्याँ, चूक वाद-विवारा
कहि कबीर में पूरा पाया, भये राम परसारा

कबीर का मन ऊँच-नीच की भावना से दुखी था। इसके अतिरिक्त कबीर के हृदय में एक पीड़ा और भी थी।

सांप्रदायिक वैमनस्य ने समाज को क्षत-विक्षत कर दिया था।

हिंदू और मुसलमान दो ऐसे संप्रदाय थे, जिनमें हमेशा तनाव बना रहता था। कबीर ने सांप्रदायिक एकता स्थापित करने का अथक् प्रयास किया।

उन्होंने समझाया : मंदिर, मूर्ति और मस्ज़िद को लेकर झगड़ा करना व्यर्थ है। ईश्वर तो एक ही है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए। उसे किसी एक स्थान में खोजना मोटी बुद्धि का काम है :

जौर खुदाय मसीति बसत है और मुलिक किस केरा
तीरथ मूरति राम निवासा दुहु मैं हिनहूँ न हेरा।

तुम परमात्मा के हो सकते हो, यह बात तो समझ में आती है, लेकिन तुम उल्टा काम करते हो, तुम परमात्मा को अपना बना लेते हो। परमात्मा के हो जाओ, क्योंकि तुम बूँद हो, वह सागर है। समर्पण कर दो अपना। लीन हो जाओ विराट् में। यह बात समझ में आती है। लेकिन लीन तो कोई नहीं होता। लोग उलटे परमात्मा पर ही क़ब्ज़ा कर लेते हैं। बूँद सागर पर क़ब्ज़ा कर रही है। परिणामत: 'हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।'

परमात्मा तो तुम्हारा रक्षक है, किंतु तुम हो कि परमात्मा की रक्षा की दावेदारी कर रहे हो, कहीं मुसलमान आकर मंदिर की मूर्ति न तोड़ दे, कहीं मस्ज़िद में कोई हिंदू आग न लगा दे, कहीं क़ुरान का कोई अपमान न कर दे, कहीं गीता का कोई विरोध न कर दे।

तुम परमात्मा की रक्षा में जुट जाते हो। इस प्रकार जैसे तुम्हारा परमात्मा बड़ा असहाय है। जगह-जगह कुटेगा, पिटेगा, लोग आएँगे, मारेंगे, काटेंगे, तोड़ेंगे। तुम ही उसे बचा सकते हो।

हिंदुओं और मुसलमानों की इस अज्ञानता पर कबीर ने ढार-ढार आँसू बहाए हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि न तो हिंदू के हृदय में दया है और न मुसलमान के मन में मेहर है। दोनों की करुणा समाप्त हो गई है। दोनों का प्रेम चुक गया है, किंतु खेद तो यह है कि दोनों ही खुद को समझदार और सयाना समझते हैं—

साधो देखो जग बौराना।
साँची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।
बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।

आतम छाड़ि पखाने पूजैं तिनका थोथा ग्याना।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजै लागे, तीरथ बर्त भुलाना।
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै आतम खबर न जाना।
घर-घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछताना।
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ैं किताब कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुँ खुदा न जाना।
हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वाँ झटका मारै, आग दोउ घर लागी।
या विधि हँसी चलत है हमको, आप कहावै सयाना।
कहै कबीर सुनो भई साधो, इनमें कौन दिवाना।

कबीर ने साफ़-साफ़ कहा– सांप्रदायिक व्यक्ति धर्म को नहीं जानता। वह कभी जान ही नहीं सकता। उस परमात्मा की खोज कहीं और करने की आवश्यकता नहीं। वह तो तुम्हारे अंदर विद्यमान है। मृग की नाभि में कस्तूरी की तरह–

कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूँढे वन माँहिं,
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं।

कबीर को ऐसे कृत्यों को देखकर आश्चर्य होता है, जो जीव-हिंसा तक को धर्म कहते हैं। यदि हिंसा ही धर्म है तो अधर्म क्या है? कबीर का कथन है–

जीव बधत अरु धर्म कहत हो, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तो मुनि जन हैं बैठे कासन कहौं कसाई।

कबीर का धर्म प्रेम का धर्म है। कबीर का दर्शन मानवता का दर्शन है। कबीर की विचारधारा ममत्व से परिपूर्ण है। वहाँ पोथी-ज्ञान व्यर्थ है। प्रेम का झर-झर झरता झरना उनके विचारों के बीच प्रवाहित है। वे तो प्रेम के आखर को ही सब-कुछ मानते हैं। इसलिए तो कबीर ने कहा–

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।

जो साधक संपूर्ण जीवों के प्रति आत्मीय एकता स्थापित कर लेता है, वही सब प्रकार के आनंद पाता है। मुक्तानंद अवस्था का आनंद उसे ही प्राप्त होता है। उस अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। कबीर की वाणी में–

अकथ कहांणी प्रेम की, कछू कही न जाई,
गूँगे केरी सर करा, बैठे ही मुसकाई।

ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया

कबीर ने स्वीकार किया है : जो पहिरा सो फाकिसी, नाम धरा सो जाइ।' इसी प्रकार आत्मा भी शरीर रूपी जो चोला पहनती है, वह भी समय आने पर पंचतत्त्व में विलीन हो जाता है।

कबीर ने अनुमान किया कि उनका अवसान-काल समीप है। अब इस शरीर को त्यागना

होगा। आत्मा को परमात्मा में लीन करने का समय आ गया था।

वे काशी में थे। काशी मोक्ष की नगरी है। मृत्यु के समय हर व्यक्ति काशीवास की कामना करता है, किंतु कबीर तो क्रांतिकारी थे। उन्होंने घोषणा की, 'वे अब मगहर में जाकर रहेंगे।'

मगहर के विषय में यह अंधविश्वास प्रचलित था कि वहाँ पर मरने पर मुक्ति नहीं मिलती। कबीर तो जीवन-भर अंधविश्वास के विरुद्ध संघर्ष करते रहे थे। मगहर के इस कलंक को धोना आवश्यक था। अंधविश्वास का विरोध आवश्यक था।

इस घोषणा से कबीर के शिष्यों को बड़ा कष्ट हुआ। कबीर ने उन्हें समझाया–

लोगा तुम हौ मति के भोरा।
जउ कासी तनु तजहि कबीरा तौ रामहि कौन निहोरा।
जो जन भाउ भगति कदु जानैं ताकौ अचरजु काहो,
जैसें जल जलहीं ढुरि मिलियौ त्यौं ढुरि मिल्यौ जुलाहो।
कहे कबीर सुनहु रे लोगों मरमि न भूलौ कोई,
क्या कासी क्या मगहर ऊखर हृदै राम जो होई।

कबीर को विश्वास था कि मोक्ष के लिए स्थान नहीं, कर्म ही प्रधान होते हैं। भावभक्ति के भरोसे वे मगहर में प्राण छोड़ने पर भी अपने राम में इस प्रकार घुल-मिल गए जैसे पानी में पानी मिल जाता है।

जिसके हृदय में राम का वास है, उसके लिए काशी और मगहर में कोई भी तो अंतर नहीं। अगर काशी में मृत्यु होने पर ही मोक्ष मिलता है तो फिर राम की कौनसी बढ़ाई समझी जाए।

आख़िर कबीर मगहर पहुँच गए। वहाँ पहुँचने पर उनके भक्तों का एक मेला-सा लग गया। हर कोई उनके दर्शन की साध लेकर आता था। अंतिम दिवस उन्होंने सबको एकत्र किया। कबीर ने सबकी ओर देखा। सबने कबीर की आँखों में झलकते प्रकाश का अनुभव किया। तभी उनका एक भक्त गा उठा–

झीनी झीनी बीनी चदरिया
काहै के ताना, काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया
साँई को सियत मास दस लागे, ठोक-ठोक के बीनी चदरिया
सो चादर सुर-नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

लोगों ने देखा कि एक ज्योति कबीर के शरीर से बाहर आई और आसमान की ओर चली गई। उपस्थित जनसमुदाय को विश्वास हो गया कि कबीर का महाप्रयाण हो गया है।

कबीर ने जीवन-भर अंधविश्वासों का विरोध किया। उन्होंने एकता, मित्रता, सहिष्णुता, आत्मीयता का उपदेश दिया, किंतु उनकी मृत्यु का समाचार मिलते ही एक विवाद छिड़ गया।

काशीनरेश वीरसिंह और उनके हिंदूभक्त चाहते थे कि कबीर का अंतिम संस्कार अग्नि में जलाकर हिंदू-पद्धति से किया जाए। दूसरी ओर मुस्लिम अनुयायियों की कामना थी कि उनका संस्कार मुस्लिम मजहब के अनुसार दफ़नाकर होना चाहिए।

बात इतनी बढ़ी कि दोनों ओर से तलवारें खिंच गईं।

तभी एक आकाशवाणी हुई : 'व्यर्थ में एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हो। जाओ, कुटी का दरवाज़ा खोलकर देखो।'

लोगों ने जब कुटिया का द्वार खोला तो वे आश्चर्यचकित रह गए। वहाँ कबीर का शव नहीं था। उसके स्थान पर फूलों का एक छोटा-सा ढेर पड़ा था।

दोनों संप्रदायों के भक्तों ने अपनी-अपनी आस्था के अनुसार कबीर का अंतिम संस्कार किया।

कबीर समर्पण की सही पहचान हैं।

अहंकार से लाखों कोस दूर।

समर्पण की भावदशा यह है कि जो भी दुर्गुण हैं वे मेरे हैं, जो भी सद्‌गुण हैं, वे तेरे हैं।

अब तो सब छोड़ रहा हूँ। दुर्गुण, सद्‌गुण सब तेरे चरणों में अर्पित कर रहा हूँ। यही जीवन का रहस्य है।

जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा में इस प्रकार समर्पित हो जाता है तो वह कबीर बन जाता है। एक ऐसा कबीर, जो कहता है :

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर,
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰

प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰)

प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)

प्रो॰ नंदकुमार पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)

डॉ॰ संजीवकुमार, लेखक एवं साहित्यकार, नोएडा (उ॰प्र॰)

डॉ॰ शशिप्रभा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰

प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰)

प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)

प्रो॰ नंदकुमार पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)

डॉ॰ संजीवकुमार, लेखक एवं साहित्यकार, नोएडा (उ॰प्र॰)

डॉ॰ शशिप्रभा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)

अनुक्रम

आदिवासी बलिका शिक्षा में आने वाली चुनौतियाँ/ **अनुज कुमार पांडेय, डॉ॰ देवीप्रसाद सिंह** 21

कानपुर की राजनीतिक हलचल में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की गतिविधियों का समीक्षात्मक अध्ययन/ **अभिषेक सचान, डॉ॰ आर॰ के॰ बिजेता** 27

याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित आर्थिक सिद्धांत/ **अंजली गुप्ता** 31

सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव/ **दीपक कुमार कन्नौजिया, डॉ॰ पारिजात प्रधान** 37

जी-20 समूह और भारत की अध्यक्षता/ **डॉ॰ गीता दुबे** 43

आदिवासी जीवन संघर्ष का कड़वा सच : बस्तर-बस्तर/ **डॉ॰ कुलदीपसिंह मीना** 47

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन/ **सौम्या परौहा एवं स्वाति जैन** 52

कोरोनाकाल में ऑनलाइन शिक्षण के प्रति बी॰एड्॰ में अध्ययनरत छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन/ **डॉ॰ अंकुर शर्मा** 55

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता/ **डॉ॰ भावना यादव** 59

हस्तिनापुर पुरातात्त्विक स्थल का प्रबंधन एवं चुनौतियाँ/ **प्रो॰ देवेन्द्रकुमार गुप्ता, दीपककुमार** 64

भारत में पंचायतीराज व्यवस्था की यात्रा : एक ऐतिहासिक अवलोकन 71
डॉ॰ धीरजसिंह खाती 71

भारत श्रीलंका संबंधों में आर्थिक सहयोग/ **दिलीपकुमार, डॉ॰ स्वाती ठाकुर** 78

किशोरों के आत्मविश्वास पर लिंग एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन/ **दिनेशचंद्र पांडे, प्रो॰ दीपा वर्मा** 84

21वीं शताब्दी में जलवायु परिवर्तन के कारण बलदता कृषि प्रतिरूप (राजस्थान के संदर्भ में)/ **गजेन्द्र सिंह राठौड़, डॉ॰ सुनील कुमार** 90

1857 के संग्राम के में फर्रुखाबाद जिले की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन/ **गौरव सक्सेना, डॉ॰ चित्रा आम्रवंशी** 96

विद्यार्थियों के अवधान में योगाभ्यास की उपादेयता/ **डॉ॰ वंदना सिंह, मीना पांडेय** 102

भारतीय दर्शन में ज्ञान-मीमांसा : एक विमर्श/ **डॉ॰ मृगांक मलासी** 107

नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव एवं भारतीय हितों को चुनौती/
डॉ॰ शिखा श्रीवास्तव, मुकेशकुमार प्रजापति 114
मान्यवर काशीराम जी के आर्थिक विचार/ **पुष्पेन्द्रकुमार, प्रो॰ एन्वी॰ कौर** 123
दलित-विमर्श की अवधारणा/ **राजमणि सरोज** 130
भारतीय पुरातत्त्व और संस्कृति का समन्वय/ **राजसिंह, प्रो॰ अजय विजय कौर** 134
संविधान संशोधन की प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन (भारत, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, ब्रिटेन के विशेष संदर्भ में)/
डॉ॰ राजेशकुमार साहू, डॉ॰ रामनिवास पटेल 139
स्त्री-शिक्षा के संबंध में डॉ॰ भीमराव अंबेडकर के योगदान का संक्षिप्त अध्ययन/
डॉ॰ रामचंद्र सिंह 148
उत्तरकाशी जनपद के सीमांत क्षेत्र 'बंगाण' के मुख्य लोकदेवता 'पबासिक' (पवासी) महासू/ **प्रो॰ प्रभातकुमार, रणवीर सिंह** 152
ललितकला में संगीत का स्थान एवं मानव-जीवन के साथ संगीत का संबंध/
डॉ॰ रविन्द्र कुमार 158
जलवायु परिवर्तन एवं बदलती कृषि की चुनौतियाँ : पूर्वी उत्तर-प्रदेश का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन/ **ऋतु रानी, डॉ॰ पारिजात प्रधान** 166
शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन/ **डॉ॰ रेणु सिंह** 171
तिलक का राष्ट्रीय योगदान/ **डॉ॰ विकासरंजन कुमार** 175
शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता का समीक्षात्मक अध्ययन/ **अनिता पांडेय, डॉ॰ वंदना सिंह** 179
अफगानिस्तान में सत्ता-परिवर्तन : भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव/ **डॉ॰ दीपक** 185
उत्तराखंड में पलायन, ग्रामीण विकास और महिला उद्यमिता: एक विवरणात्मक अध्ययन/ **डॉ॰ ललितमोहन पंत, विकास जोशी, डॉ॰ आशीष टम्टा** 192
महर्षि अरविंद घोष के शिक्षादर्शन एवं समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन/
मोनिका, डॉ॰ यशवंती गौड़ 200
गांधी जी का 'स्वदेशी' प्रतिमान एवं आर्थिक विकास/ **डॉ॰ मनोज सिंह यादव** 205
महर्षि पतंजलि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व/
मनोज कुमार सकलानी, डॉ॰ हलधर यादव 209
लोकतंत्र में जनता की भागीदारी/ **डॉ॰ संगीता कुमारी** 214
ऑनलाइन कक्षाओं का छात्रों के जीवन पर प्रभाव/ **डॉ॰ राजू सीताराम पवार** 219
भारतीय स्वाधीनता संग्राम में छत्तीसगढ़ की भूमिका/
मिथिलेश साहू, डॉ॰ योगेंद्रकुमार धुर्वे 222
भारत में नगरीय ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति : एक समीक्षा 228
डॉ॰ हरीशचंद्र जोशी, डॉ॰ शालिनी चौधरी, डॉ॰ कृष्णकमार टम्टा
डॉ॰ बीना तिवारी 'फुलारा' 228

कोइलवर स्थित बालू उत्खनन में अप्रवासित मजदूरों की सामाजिक आर्थिक स्थिति: एक भौगोलिक अध्ययन/ **डॉ॰ सद्दाम हुसैन** 235
जीवन-शैली की समस्या में आयुर्वेद और योग का महत्त्व/ **मोनिका आनंद डॉ॰ राकेश गिरी, डॉ॰ उधम सिंह** 240
संगीत व योग में संबंध/ **डॉ॰ अंजना बंसल** 242
वाल्मीकि रामायण में कृषि व्यवस्था/ **डॉ॰ गौरव कुमार** 247
औरैया जनपद के अजीतमल के कार्तिक मेले का अध्ययन/ **पदमनारायण पांडेय** 253
योग और स्वास्थ्य/ **डॉ॰ दीपा गुप्ता** 258
मुगल राजपूत संबंध : मारवाड़ शासक मोटाराजा उदयसिंह (1583-1595) के संदर्भ में/ **ममतेश अग्रवाल, डॉ॰ शरद राठौड़** 264
पीलीभीत जनपद में कृषि-विपणन की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन/ **सचिन यादव** 269
राजस्थान के पाली जिले की कृषि पर सिंचाई साधनों का पर्यावरणीय प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन/ **डॉ॰ ललित सिंह झाला, सुखदेव मेघवाल** 277
शिक्षण और अधिगम में सूचना संप्रेषण प्रौद्योगिकी का अभिनव उपयोग/ **डॉ॰ आदित्य प्रकाश, डॉ॰ सुमन** 284
वैश्वीकरण के युग में भारतीय संघवाद/ **मनदीप** 289
अजमेर जिले में वर्षा की परिवर्तनशीलता और गिरता भू-जल स्तर/ **रेनू गौड़, डॉ॰ मिलन कुमार यादव** 294
स्वातंत्र्योत्तर काल में रचित संगीत के प्रमुख ग्रंथ/ **डॉ॰ राधा रानी** 301
शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन/ **ज्योति यादव, प्रज्ञा शर्मा एवं जगतराज पाठक** 305
झारखंड के खुँटी जिले में मुंडा जनजाति की आर्थिक पृष्ठभूमि/ **पाटला कुमारी** 308
सल्तनतकालीन युद्धों में हस्तिसेना की भूमिका/ **डॉ॰ प्रभाकर सिंह** 312
खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के चर का प्रभाव : जोधपुर जिले का एक अध्ययन/ **प्रेमाराम सांखला, डॉ॰ अजय कुमार** 318
परंपरागत जल-संरक्षण पद्धतियाँ एवं महिलाएं : उतराखंड के विशेष संदर्भ में/ **शैलजा, प्रो॰ हिमांशु बौड़ाई** 323
कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का अध्ययन (जबलपुर जिले के संदर्भ में)/ **शुभांगी मेहता, पूजा सिंह परिहार एवं जगतराज पाठक** 330
राजस्थान में जनजातीय कला विकास एवं व्यावसायिकता का भौगोलिक अध्ययन/ **डॉ॰ गौरवकुमार जैन, डॉ॰ चंदनमल शर्मा** 333
आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन/ **ओमप्रकाश यादव, वर्षा शर्मा एवं जगतराज पाठक** 339

गढ़वाल हिमालय में विवाह संस्कार के वैदिक सूत्र/ **डॉ० डी०एस० भंडारी** 344
भारतीय समाज में स्त्रियों की परिवर्तित स्थिति का विवेचनात्मक अध्ययन/
अविनाश वानखेड़े एवं अनिल मेश्राम 349
भोपाल जिले के प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में पढ़ रहे विद्यार्थियों की कला रुचि का अध्ययन/
डॉ० मीनाक्षी चतुर्वेदी, पुष्पा मिश्रा 353
कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न : एक विश्लेषण/ **डॉ० अनामिका चौहान** 361
महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका/
डॉ० नीरजा सिंह, डॉ० वीरेंद्र कुमार 365
सशक्तिकरण एवं परिवार का बदलता स्वरूप : मुस्लिम महिलाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन/ **नाजमी प्रवीण** 373
उज्ज्वला योजना से लाभान्वित ग्रामीण महिलाओं का सशक्तीकरण : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण/ **डॉ० हरिओम त्रिपाठी, कादम्बिनी** 380
यूनेस्को तथा यूनिसेफ के शैक्षिक एवं अन्य कार्यों का अध्ययन/
प्रो० कल्पना सैंगर, लक्ष्मी छीपा 385
लैंगिक विभेदिता के आधार पर जिला बड़वानी में निवासित अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का तुलनात्मक अध्ययन/
कुन्दन गाठे एवं अनिल मेश्राम 390
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त अधिगम सामग्री के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन/
आवेश श्रीवास्तव, सब्बल पटेल एवं प्रियंका पाठक 395
समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन/ **रतनलाल सिंह, सब्बल पटेल एवं प्रियंका पाठक** 400
ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्मसंकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन/ **ओमप्रकाश यादव, वर्षा शर्मा एवं जगतराज पाठक** 404
घटते जलस्रोत (तालाब) एवं गिरते भूजल स्तर पर प्रदूषण का प्रभाव रायपुर नगर (छ०ग०) के संदर्भ में/ **डॉ० कल्पना लाम्बे** 408

आदिवासी बलिका शिक्षा में आने वाली चुनौतियाँ

अनुज कुमार पांडेय, शोधार्थी, शिक्षा विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म॰प्र॰)
डॉ॰ देवीप्रसाद सिंह, सहा॰ प्राध्यापक, शिक्षा विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म॰प्र॰)

देश के प्रभावी विकास और विकास को बढ़ावा देने के लिए आदिवासी छात्रों के बीच बुनियादी साक्षरता कौशल प्रदान करने पर जोर देना आवश्यक है। परंपरागत रूप से आदिवासी समुदायों को आदिवासी कहा जाता है। वे भारत की आबादी का लगभग नौ प्रतिशत हैं। अपनी सामुदायिक संस्कृति, इतिहास, मानदंडों, मूल्यों और प्रथाओं और आदिवासी दुनिया के साथ गैर-आदिवासी संबंधों में विविधता के बावजूद, लगभग 87 मिलियन भारतीय आदिवासी आबादी के अंतर्गत आते हैं। भारत में आदिवासी समुदाय ज्यादातर मिजोरम, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान और पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं। आदिवासी समुदायों के बीच शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन आया है। उपायों, कार्यक्रमों और रणनीतियों के निर्माण के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा पर प्रमुख जोर दिया गया है। इसके अलावा, शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए गए हैं, क्योंकि वे ऐसे हैं, जो व्यक्तियों के बीच शैक्षिक कौशल प्रदान करने में प्रभावी योगदान देते हैं। (बगई, और नंदी, 2009)

शिक्षा ग्रहण करने में जनजातीय छात्रों द्वारा अनुभव की जाने वाली चुनौतियाँ

आदिवासी छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने में जिन प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, उन्हें इस प्रकार बताया गया है–

वित्तीय समस्याएँ–विभिन्न कार्यों और गतिविधियों के कार्यान्वयन के दौरान वित्त को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। शिक्षा के अधिग्रहण के दौरान वित्तीय समस्याओं को प्रमुख बाधाओं के रूप में माना जाता है। आदिवासी समुदायों को गरीबी से त्रस्त और सबसे अधिक शोषित माना जाता है। (मुखर्जी, 2009)

शिक्षा के अधिग्रहण में, व्यक्तियों को कई खर्चों को पूरा करने की आवश्यकता होती है। ये पाठ्यपुस्तकें, स्थिर वस्तुएँ, वर्दी, बैग, परिवहन लागत और शिक्षण सामग्री प्राप्त करने से संबंधित हैं। आदिवासी व्यक्ति आमतौर पर गरीबी और पिछड़ेपन की स्थिति में रह रहे हैं। कृषि, शिकार और मछली पकड़ना उनके प्राथमिक व्यवसाय हैं।

शैक्षणिक अधिगम में माता-पिता का कम समर्थन–अकादमिक शिक्षा के दौरान, छात्रों को न केवल स्कूलों के भीतर व्यक्तियों, जैसे शिक्षकों और साथी छात्रों, बल्कि माता-पिता से भी समर्थन और सहायता की आवश्यकता होती है। गृहकार्य को पूरा करने और छात्रों को परीक्षा या परीक्षा के लिए तैयार करने में माता-पिता का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। यह सुनिश्चित करना माता-पिता की जिम्मेदारी है कि उनके बच्चों को शैक्षणिक लक्ष्यों की प्राप्ति के दौरान किसी भी समस्या या चुनौतियों का अनुभव न हो। आदिवासी समुदायों में, माता-पिता का समर्थन नगण्य है।

अनुसंधान ने संकेत दिया है कि वे आमतौर पर शिक्षा के महत्त्व को पहचानते हैं और अपने बच्चों को स्कूलों में नामांकित करने की इच्छा रखते हैं। लेकिन साक्षरता कौशल की कमी के कारण, वे अपने बच्चों को शैक्षणिक सीखने में सहायता करने में असमर्थ हैं। आदिवासी बच्चे शैक्षणिक कार्यों के कार्यान्वयन में अपने माता-पिता से सहायता प्राप्त करने में असमर्थ हैं। इसे शिक्षा के अधिग्रहण के दौरान प्रमुख चुनौतियों में से एक माना जाता है।

आदिवासी समुदाय में प्रेरणा की कमी होना–विशेष रूप से शैक्षणिक लक्ष्यों की प्राप्ति के दौरान छात्रों में रुचि, उत्साह और उच्च स्तर की प्रेरणा का होना आवश्यक है। जनजातीय छात्रों में आमतौर पर निम्न स्तर की प्रेरणा होती है। (रानी, 2007)

प्राथमिक कारण हैं–अकादमिक अवधारणाओं की कुशल समझ की कमी, सीखने की अक्षमता, सीखने की सामग्री की अनुपलब्धता, बुनियादी ढाँचे और अन्य सुविधाओं की कमी और माता-पिता से विशेष रूप से अकादमिक सीखने में समर्थन की कमी। दूसरे शब्दों में, उनके पास उन स्रोतों का अभाव है जो शैक्षणिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं। जब वे अकादमिक अवधारणाओं को समझने में असमर्थ होते हैं, तो यह स्पष्ट है कि वे सत्रीय कार्यों या परीक्षणों में अच्छे परिणाम उत्पन्न करने में असमर्थ हैं।

भाषा और संस्कृति की विभिन्नता–भाषा और संस्कृति को महत्त्वपूर्ण बाधाओं के रूप में माना जाता है जो आदिवासी छात्र शिक्षा प्राप्त करने के दौरान अनुभव करते हैं। (रानी, 2007)

उनकी अपनी संस्कृतियाँ, परंपराएँ, मानदंड, मूल्य और सिद्धांत हैं, जिन पर उनकी आजीविका के अवसर आधारित हैं। इसके अलावा, वे विभिन्न भाषाएँ भी बोलते हैं। अनुसंधान ने संकेत दिया है कि भाषा में अंतर के कारण, वे शिक्षकों के साथ-साथ साथी छात्रों के साथ प्रभावी संचार शर्तों को स्थापित करने में समस्याओं का अनुभव करते हैं। ये अंतर भी अकादमिक अवधारणाओं को समझने और लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के दौरान बड़ी बाधा बन जाते हैं। यह स्पष्ट है कि जब छात्र अन्य व्यक्तियों के साथ संवाद करने में समस्याओं और चुनौतियों का अनुभव करेंगे, तो निश्चित रूप से वे अवधारणाओं को समझने में असमर्थ होंगे। दूसरी ओर, संस्कृतियों में अंतर के कारण, वे अन्य संस्कृतियों, मानदंडों और सिद्धांतों के अनुकूल नहीं हो पाते हैं। अत: ये कारक शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में प्रमुख बाधक सिद्ध होते हैं।

सुविधाओं का अभाव–आदिवासी स्कूलों में सुविधाओं का अभाव है। शिक्षा प्रणाली को बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रमुख सुविधाएँ हैं, उपयुक्त शिक्षण-अधिगम सामग्री, प्रौद्योगिकियाँ, फर्नीचर, मौसम की स्थिति के अनुसार हीटिंग और कूलिंग उपकरण, स्वच्छ पेयजल, विश्राम कक्ष, पुस्तकालय सुविधाएँ, प्रयोगशाला सुविधाएँ, खेल के मैदान, अतिरिक्त पाठ्यचर्या और रचनात्मक गतिविधियाँ और अन्य सामग्री जो नौकरी के कर्त्तव्यों को उचित तरीके से पूरा करने के लिए आवश्यक हैं। आदिवासी स्कूलों में ये सुविधाएँ और सुविधाएँ सुविकसित अवस्था में नहीं हैं। इसलिए, यह शिक्षा के अधिग्रहण के दौरान एक बड़ी चुनौती साबित हुई है। अनुसंधान ने संकेत दिया है कि सुविधाओं और सुविधाओं की कमी के कारण, स्कूल के सभी सदस्यों, शिक्षकों, कर्मचारियों के सदस्यों और छात्रों को नौकरी कर्त्तव्यों के कार्यान्वयन के दौरान समस्याओं का सामना करना पड़ता है। छात्र अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करने और असंतोषजनक शैक्षणिक परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। नतीजतन, छात्रों के ड्रॉप-आउट दर में भी वृद्धि हुई है।

आय-सृजन गतिविधियों में भागीदारी–जनजातीय समुदाय सामान्य रूप से गरीबी और

 ISSN 0975-735X

पिछड़ेपन की स्थिति में रह रहे हैं। उनके पास उचित तरीके से अपने रहने की स्थिति को बनाए रखने के लिए आय उत्पन्न करने का प्रमुख उद्देश्य है। आदिवासी समुदाय जिन प्राथमिक आय-सृजन गतिविधियों में लगे हुए हैं, वे हैं, कृषि और खेती के तरीके और खाद्य पदार्थों का उत्पादन, हस्तशिल्प, कलाकृतियाँ आदि। व्यक्ति आमतौर पर अपने बच्चों को आय-सृजन गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। बच्चों, विशेष रूप से लड़कियों को कृषि क्षेत्र, कृषि पद्धतियों और उत्पादन प्रक्रियाओं में अपने माता-पिता की सहायता करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। उत्पादन प्रक्रियाओं के पूरा होने के बाद, व्यक्तियों को अपने उत्पादों का विपणन करना होता है।

स्वास्थ्य समस्याएँ–जैसा कि कहा गया है कि आदिवासी समुदाय अपने अस्तित्व के लिए प्राकृतिक पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर हैं। किसी भी तरह की स्वास्थ्य समस्या या बीमारी होने पर वे जंगलों से औषधीय जड़ी-बूटियाँ और पौधे प्राप्त करते हैं। आदिवासी समुदाय पारंपरिक तरीकों को अपनाते हैं और आधुनिक और उन्नत चिकित्सा और स्वास्थ्य देखभाल उपचार से अनजान हैं। उनकी पर्यावरणीय परिस्थितियों में, उनके पास चिकित्सा या स्वास्थ्य देखभाल केंद्रों तक पहुँच नहीं है। जनजातीय बच्चों द्वारा अनुभव की जाने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में प्रमुख बाधाओं के रूप में माना जाता है। स्वास्थ्य समस्याओं के होने के प्राथमिक कारणों में उनका हाथ से काम करना, विशेष रूप से जंगलों से जलाऊ लकड़ी और अन्य सामान इकट्ठा करना, पौष्टिक आहार की कमी और अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं।

जनजातीय शिक्षा को बढ़ाने के उपाय

अनुसूचित जनजाति भौगोलिक रूप से अलग-थलग और आर्थिक रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदाय हैं। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में, आदिवासी समुदायों की स्थिति को उन्नत करने के प्रयास किए गएँ किए गए प्रयासों के बावजूद, अनुसूचित जातियों की तुलना में शिक्षा प्रणाली में अनुसूचित जनजातियों की भागीदारी बहुत कम है। शिक्षा व्यक्तियों की भलाई को बढ़ावा देने और समग्र रूप से समुदायों और देश की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक आवश्यकताओं में से एक है। भारत में कई ऐसे व्यक्ति और समुदाय हैं, जो अभी भी शैक्षिक योग्यता से वंचित हैं। इसके कारण, वे अपने जीवन की समग्र गुणवत्ता को समृद्ध करने में असफलताओं का अनुभव करते हैं। ये आदिवासी समुदाय हैं। आदिवासी शिक्षा की प्रणाली को बढ़ाने के लिए उपाय तैयार करना आवश्यक है। (ब्रह्मानंदम और बाबू, 2016)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) 1986 के अनुसार, अनुसूचित जनजाति समुदायों से संबंधित छात्रों के नामांकन का अनुपात उनकी जनसंख्या के अनुपात की तुलना में बहुत कम पाया गया। शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों की ड्रॉप-आउट दर अधिक थी (अध्याय I. परिचयात्मक,) स्कूलों से छात्रों के ड्रॉप-आउट में वृद्धि के प्रमुख कारक हैं, वित्तीय समस्याएँ, सीखने की अक्षमता, पढ़ाई में रुचि की कमी, स्कूल में पाठ्येतर और रचनात्मक गतिविधियों की कमी, शिक्षकों की कमी, अनुचित शिक्षण-शिक्षण विधियाँ, विद्यालयों के भीतर अनुपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियाँ, आधारभूत संरचना और सुविधाओं की कमी, शिक्षण संसाधनों की कमी और शिक्षा की समग्र प्रणाली उचित प्रक्रियाओं, उपायों, नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण में कमी थी। लड़कों की तुलना में लड़कियों में ड्रॉप-आउट दर अधिक थी।

आदिवासी समुदायों के बीच शिक्षा प्रणाली को बढ़ाने के लिए जिन विभिन्न क्षेत्रों पर ध्यान देने की आवश्यकता है, वे इस प्रकार हैं–

वित्तीय सहायता का प्रावधान करना–वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण आदिवासी छात्रों में स्कूल छोड़ने की दर में वृद्धि हुई है। शिक्षा के अधिग्रहण में वित्तीय संसाधनों का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है। सरकारी स्कूलों में, भले ही शिक्षा मुफ्त प्रदान की जाती है, लेकिन व्यक्तियों को अन्य मदों, जैसे किताबें, स्टेशनरी, वर्दी, स्कूल बैग, सीखने की सामग्री, परिवहन आदि पर वित्तीय संसाधन खर्च करने की आवश्यकता होती है। वित्तीय संसाधनों की कमी को शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में बड़ी बाधा माना जाता है। इस समस्या को खत्म करने के लिए स्कूलों को छात्रों को वित्तीय सहायता का प्रावधान करना आवश्यक है।

आधारभूत संरचना एवं सुविधाओं का प्रावधान–विद्यालयों में आधारभूत संरचना एवं सुविधाओं की ओर ध्यान देना अनिवार्य है। इन पहलुओं में किए गए सुधार एक अनुकूल और सुखद पर्यावरणीय परिस्थितियों को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। बुनियादी ढाँचे को मुख्य रूप से फर्नीचर, सामग्री, उपकरण, उपकरण और संसाधनों के लिए संदर्भित किया जाता है जो प्रभावी पर्यावरणीय परिस्थितियों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए, कक्षाओं के भीतर, छात्रों की सीखने की ओर एकाग्रता बढ़ाने के लिए मौसम की स्थिति के अनुसार उचित फर्नीचर, हीटिंग और कूलिंग उपकरण और उचित निर्देशात्मक सामग्री प्रदान करना आवश्यक है। जबकि, बिजली, प्रकाश व्यवस्था, स्वच्छ पेयजल, शौचालय आदि सुविधाओं को संदर्भित किया जाता है। छात्र और स्कूलों के अन्य सदस्य आमतौर पर स्कूलों में छह से सात घंटे बिताते हैं। इसलिए, अवसंरचनात्मक सुविधाओं के विकास को बढ़ावा देना अपरिहार्य माना जाता है। छात्रों की ड्रॉप-आउट दर में वृद्धि हुई है और अन्य व्यक्तियों ने भी बुनियादी ढाँचे और सुविधाओं की कमी के कारण आदिवासी स्कूलों में रोजगार के अवसर प्राप्त करने में अनिच्छा व्यक्त की है। इन पहलुओं के विकास पर पर्याप्त मात्रा में वित्तीय संसाधनों को खर्च करने की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि स्कूलों में, जब पर्याप्त बुनियादी ढाँचे और सुविधाओं का प्रावधान होगा, शिक्षक, स्टाफ सदस्य और छात्र अपने नौकरी कर्त्तव्यों के कार्यान्वयन के प्रति संतुष्ट, आनंददायक और प्रेरित महसूस करेंगे।

आयोजनों और प्रतियोगिताओं का आयोजन–स्कूलों में, आयोजनों और प्रतियोगिताओं का आयोजन छात्रों के बीच भागीदारी के अवसरों को बढ़ावा देने में सहायता करता है। प्रतियोगिताएँ छात्रों के कौशल और क्षमताओं का विश्लेषण करने के लिए होती हैं। ये विभिन्न विषयों के साथ-साथ पाठ्येतर और रचनात्मक गतिविधियों के संबंध में आयोजित किए जाते हैं। जब प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है, तो छात्रों को पर्याप्त जानकारी प्रदान की जाती है और कौशल वृद्धि के संबंध में उनके शिक्षकों द्वारा उनकी सहायता की जाती है। प्रतियोगिताओं से पहले, छात्रों को खुद को अच्छी तरह से तैयार करने की आवश्यकता होती है। आदिवासी स्कूलों में, छात्रों को कार्यक्रमों और प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। इसलिए आदिवासी शिक्षा की व्यवस्था को बढ़ाने के लिए आयोजनों और प्रतियोगिताओं का आयोजन करना आवश्यक है। जब छात्र घटनाओं और प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं, तो उन्हें आमतौर पर उनके प्रदर्शन के आधार पर पुरस्कृत किया जाता है। जब उन्हें पुरस्कृत किया जाता है, तो वे संतुष्ट और आनंददायक महसूस करते हैं और अपने कौशल और क्षमताओं को बढ़ाने में सक्षम होते हैं। कुछ मामलों में, प्रतियोगिताओं में भाग लेने से छात्र असुरक्षित और आशंकित महसूस कर सकते हैं। लेकिन जब वे नियमित रूप से भाग लेते हैं, तो वे भेद्यता और आशंका को दूर करने और

 ISSN 0975-735X

आत्मविश्वास विकसित करने में सक्षम होते हैं।

परिवहन के साधनों को बढ़ावा देना : जनजातीय छात्र सामान्य रूप से अपनी पढ़ाई बंद कर देते हैं और पर्याप्त परिवहन की कमी के कारण शिक्षा प्राप्त करने के प्रति हतोत्साहित महसूस करते हैं। आदिवासी समुदाय पहाड़ी, पहाड़ी क्षेत्रों और जंगलों में बिखरे हुए हैं। ज्यादातर मामलों में, स्कूल दूरी पर स्थित होते हैं। अत: परिवहन के साधनों का विकास अनिवार्य है। नियमित रूप से स्कूलों में जाने और उपस्थिति दर को बनाए रखने के लिए, परिवहन के साधनों में विकास करना महत्त्वपूर्ण है। जब छात्र छोटे होते हैं, तो माता-पिता की जिम्मेदारी होती है कि वे उन्हें स्कूलों में ले जाएँ और घर वापस लाएँ। आम तौर पर आदिवासी समुदायों में, व्यक्ति कृषि और कृषि पद्धतियों में लगे होते हैं और उन्हें घरेलू जिम्मेदारियों का प्रबंधन करने और परिवार के बुजुर्ग सदस्यों की जरूरतों और आवश्यकताओं का ध्यान रखने की भी आवश्यकता होती है। इसलिए, इन कारकों के कारण, वे अपने बच्चों को स्कूलों में ले जाने के लिए समय नहीं निकाल पा रहे हैं। जबकि, पुराने छात्र आमतौर पर अपने परिवहन का प्रबंधन स्वयं करते हैं। लेकिन छात्रों के बीच नामांकन और प्रतिधारण दर बढ़ाने के लिए, स्कूलों के लिए परिवहन के साधनों का प्रावधान करना महत्त्वपूर्ण है। बसों को परिवहन का पर्याप्त साधन माना जाता है, जो छात्रों को स्कूलों और घर वापस ले जाती है।

निष्कर्ष :

शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में माना जाता है जिसे विभिन्न समुदायों, श्रेणियों और पृष्ठभूमि से संबंधित सभी व्यक्तियों द्वारा प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। आदिवासी समुदाय वे समुदाय हैं जो पहाड़ी और पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। वे अपनी आजीविका के निर्वाह के लिए कृषि, शिकार और मछली पकड़ने में लगे हुए हैं। आदिवासी समुदायों में शिक्षा की व्यवस्था सुविकसित अवस्था में नहीं है। स्कूलों के सदस्यों को अपने नौकरी कर्त्तव्यों के कार्यान्वयन के दौरान कई समस्याओं और चुनौतियों का अनुभव करना आवश्यक है। शिक्षा प्राप्त करने में आदिवासी छात्रों द्वारा अनुभव की जाने वाली प्रमुख चुनौतियाँ हैं, वित्तीय समस्याएँ, घरेलू जिम्मेदारियों का प्रबंधन, शैक्षणिक शिक्षा में माता-पिता का कम समर्थन, प्रेरणा का निम्न स्तर, भाषा और संस्कृति के अंतर, असंतोषजनक शिक्षण-अधिगम तरीके, सुविधाओं की कमी और सुविधाओं, सीखने की सामग्री की कमी, आय-सृजन गतिविधियों में भागीदारी, और स्वास्थ्य समस्याएँ। जनजातीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन और विकास लाने के लिए भारत सरकार द्वारा कार्यक्रम और नीतियां शुरू की गई हैं।

2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम जैसे कार्यक्रमों और योजनाओं की शुरूआत के अलावा, आदिवासी शिक्षा की प्रणाली को बढ़ाने के लिए अन्य उपाय भी तैयार किए गए हैं। ये हैं, वित्तीय सहायता का प्रावधान करना, उचित शिक्षण-अधिगम विधियों का उपयोग करना, उपयुक्त शिक्षण-अधिगम सामग्री का उपयोग करना, बुनियादी ढांचे और सुविधाओं का प्रावधान, शिक्षकों की कमी को दूर करना, पाठ्येतर और रचनात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देना, कार्यशालाओं का संगठन, आयोजनों का आयोजन और प्रतियोगिताएँ, परिवहन के साधनों को बढ़ावा देना और अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों का निर्माण। इन पहलुओं को आदिवासी शिक्षा की समग्र प्रणाली को समृद्ध बनाने और स्कूलों के सभी सदस्यों के लिए पेशेवर और व्यक्तिगत लक्ष्यों की उपलब्धि को सुविधाजनक बनाने के लिए अपरिहार्य माना जाता है। स्कूलों के प्रधानाचार्यों, शिक्षकों और

अन्य स्टाफ सदस्यों और समुदाय के नेताओं के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्र की भलाई को बढ़ावा देने के लिए जनजातीय शिक्षा प्रणाली के विकास पर पर्याप्त ध्यान दें।

संदर्भ

1· BrahmananoaQm, T., & Babu, T.B. (2016). Educational Status among the Scheduled Tribes: Issues and Challenges. The NEHU Journal, 14(2), 69-85. Retrieved July 16, 2019 from https://nehu.ac.in/public/downloads/Journals/NEHU-Journal-July-Dec-2016A5.pdf
2. Chapter - I. (n.d.). Introduction. Retrieved July 16, 2019 from http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/183777/8/08%20chapter%201.pdf
3. Chatterjee, P. (2014). Social and Economic status of tribalwomen in India- The challenges and the Rod Ahead. International Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Studies , vol. 2, 55-60.
4. Akula, S. (2013). Education for Children of Tribal Community –A Study of Adilabad District. American International Journal of Research in Humanities, Arts and Social Sciences, 4(2), 192-196. Retrieved July 15, 2019 from http://iasir.net/AIJRHASSpapers/AIJRHASS13-377.pdf
5. Oraw, D. and Toppo, D. (2012). Socio-Cultural Traditions and Women Education in Tribal Society: A Study on Tribal Population. International Journal of Current Research, 4(12), 307- 312.
6. Bagai, S., & Nundy, N. (2009). Tribal Education. A Fine Balance. Retrieved July 15, 2019 from https://educationinnovations.org/sites/default/files/oaQsrareports-tribal-education_OAQSRA.pdf
7. Mukherjee, A. (2009). Tribal Education in India: An Examination of Cultural Imposition and Inequality. Kansas State University. Retrieved July 15, 2019 from http://krex.kstate.edu/dspace/bitstream/handle/2097/1520/AnirbanMukherjee2009.pdf;sequence=1
8. Rani, B.S. (2007). Problems Faced by Tribal Children in Education. Acharya N.G. Ranga Agricultural University. Retrieved July 16, 2019 from
9. http://krishikosh.egranth.ac.in/bitstream/1/71001/1/D8277.pdf

Anuj Kumar Pandey
H.No. 325 BHITI, MAU 275101 U.P.
Mob. 9415821205
anuj227740@gmail.com

कानपुर की राजनीतिक हलचल में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की गतिविधियों का समीक्षात्मक अध्ययन

अभिषेक सचान, शोधार्थी, इतिहास विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म॰प्र॰)
डॉ॰ आर॰ के॰ बिजेता, सहा॰ प्राध्यापक, इतिहास विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म॰प्र॰)

प्रस्तावना—भारतीय राजनीति में कानपुर का एक अपना स्थान रहा है। ब्रिटिशकाल में यह शहर अपनी राजनीतिक उपलब्धियों के लिए जाना जाता है। उग्रवादी और उदारवादी राजनीति का केंद्र, अपने सामाजिक उत्थान से लेकर राजनीति के मुकाम पर इतिहास को अपने में समेटे कानपुर ब्रिटिश शासन का प्रत्यक्ष उदाहरण है तथा भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के प्रत्येक आंदोलनों का भागीदार रहा है। स्थानीय जनता और ब्रिटिश नेतृत्व के टकराव का उदाहरण व राष्ट्रीय नेताओं का यहाँ निरंतर आगमन कानपुर की महत्ता को स्पष्ट यहाँ की राजनीति में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता की लड़ाई में आम जनता, श्रमिकों, मजदूरों, पत्रकारों व छात्रों ने अपना अमूल्य योगदान दिया। इस स्वतंत्रता संग्राम में काँग्रेस के नेताओं ने आंदोलनों को अपनी सूझ-बूझ एवं धैर्य से आगे बढ़ाया।

समाज सुधार और जनचेतना—कानपुर में समाजसुधार की दिशा में सन् 1879 में पं॰ प्रतापनारायण मिश्र, पं॰ नारायण मिश्र, पं॰ रामदीन और कुछ उत्साही नवयुवकों ने यहाँ आर्यसमाज की स्थापना की। 'पं॰ प्रतापनारायण मिश्र हिंदी के साहित्यकार भी थे'। वे हिंदू समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरोधी थे किंतु उन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए ईसाई मिशनरियों को मुँहतोड़ जवाब दिया। एक वाद विवाद के क्रम में ईसाई मिशनरी पर प्रश्न उठाते हुए पं॰ प्रतापनारायण मिश्र ने कहा, 'जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प्प अर्थात् शैतान को क्यों बनाता? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराध का भागी है क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता?'[1] 19वीं शताब्दी में कानपुर में सबसे महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ स्वामी दयानंद सरस्वती और यहाँ के हिंदू पुजारियों के मध्य हुआ। इसका आयोजन भैरौघाट में हुआ। इसमें लगभग 25000 लोगों की विशाल जन समुदाय एकत्रित हुआ। हिंदू पुजारियों की ओर से शास्त्रार्थ में पं॰ हलधर ओझा ने भाग लिया। इसकी अध्यक्षता कानपुर के कलेक्टर मि॰ थेन ने किया। इसमें स्वामी दयानंद सरस्वती के विजयी होने का निर्णय उन्हीं ने दिया था।

कानपुर के सामाजिक एवं साहित्यिक जीवन में महावीरप्रसाद द्विवेदी का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने राजनीतिक सक्रियता नहीं दिखाई परंतु उनकी कविताएँ राष्ट्रवाद की भावनाओं से संलिप्त होती थीं। 'जनभावनाओं का उभार' महावीरप्रसाद द्विवेदी के लेखनी में दिखाई देता है। राष्ट्रवाद से ओतप्रोत उनकी लेखनी ने समाज में उसी भाँति कार्य किया जैसे मध्य रात्रि में प्रकाश करता है। उनकी ममस्पर्शी और हृदय को छू लेने वाली कविताएँ इतिहास में एक अलग स्थान रखती हैं।

19वीं शताब्दी में कानपुर में कई प्रकार की राजनीतिक सरगर्मियाँ हुईं, जिन्होंने यहाँ के जन

जीवन में एक नए युग का शंखनाद किया। रेल और सड़क निर्माण कार्य से यातायात सुगम हुआ। ब्रिटिश हुकूमत ने उद्योग धंधों का विकास किया। 'विक्टोरिया मिल, कानपुर काटन मिल आदि की स्थापना में मेसर्स बैजनाथ रामनाथ ने सहायता प्रदान की।'[2] आर्थिक गतिविधियों के कारण गाँव से लोगों का निरंतर आगमन और प्रस्थान कानपुर से होने लगा। यह एक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक केंद्र के रूप में उभरने लगा।

काँग्रेस का विस्तार–1885 में काँग्रेस की स्थापना हुई। 1888 में ही काँग्रेस का अधिवेशन इलाहाबाद में होने को था। इसी वर्ष इसकी नगर शाखा कानपुर की स्थापना हुई। इसके संस्थापक पं॰ पृथ्वीनाथ चक थे, जो पेशे से वकील थे। 1888 के अधिवेशन को अँग्रेज ध्वस्त करना चाहते थे। कानपुर के कलेक्टर (मि॰ मोल) ने यह घोषणा की यदि कोई कानपुर से काँग्रेस का डेलीगेट चुना जाएगा। वह गिरफ्तार कर लिया जाएगा। 'प्रथम विश्वयुद्ध के छिड़ने तक भारतीय आंदोलन की दो धाराएँ बन गई थीं, एक पूरी तरह अनुभवी विधानवादी और दूसरी, तीव्र आतंकवादी।'[3] प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात काँग्रेस का पुनः विस्तार प्रारंभ हुआ। सदस्यता शुल्क मात्र चार आने थी जिससे साधारण से साधारण व्यक्ति भी काँग्रेस पार्टी से जुडने में सफल हुआ।

काँग्रेस के राजनीतिक आंदोलन और कानपुर–कानपुर में गणेशशंकर विद्यार्थी का व्यक्तित्व लोगों के मध्य उभर चुका था। उनके समाचारपत्र 'प्रताप' के लेखन से उनका प्रचार-प्रसार हो रहा था। वे काँग्रेस के साथ-साथ मजदूरों के भी नेता थे। 1922 में खादी के प्रचार हेतु गांधी जी कानपुर पधारे। उनके साथ मौलाना शौकत अली और मिस्टर स्टोक्स भी थे। फूलबाग में महात्मा गांधी का भाषण हुआ। इस भाषण को सुनने के लिए विशाल संख्या में लोगों का यहाँ जमावड़ा हुआ। 1925 में हिंदू सभा का अधिवेशन आर्यसमाज भवन में हुआ। इसके मंत्री रघुवरदयाल भट्ट थे। इसमें लाला लाजपत राय, रमाकांत मालवीय भी सम्मिलित हुए।

1925 का काँग्रेस अधिवेशन गणेशशंकर विद्यार्थी जी की इच्छानुसार तिलकनगर में होना निश्चित हुआ, 'किंतु यह बाबू विक्रमाजीत सिंह के परोक्ष सहयोग के बिना संभव नहीं था। उनके परिवार के ही बाबू द्वारिकाप्रसाद सिंह प्रकाश समिति के मंत्री बने।'[4] इस अधिवेशन की अध्यक्षता सरोजनी नायडू ने की। शहर में पधारे आगंतुकों ने इस कार्यक्रम के आयोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस आयोजन से जुड़ी सभी इकाइयों ने अपने कार्यों के दायित्वों उचित प्रकार से निर्वहन किया। कुछ शरारती व असामाजिक तत्त्वों ने इसमें व्यवधान उत्पन्न करने हेतु एक अफवाह फैला दी कि सामूहिक भोज में निम्नजाति लोगों के साथ-साथ मुस्लिम और ईसाई भी सम्मिलित हैं। अतः भोजन के उपरांत साफ सफाई के लिए समस्या पैदा हो गई किंतु ला॰ फूलचंद्र जैन ने बिना किसी के कहे सफाई का कार्य प्रारंभ कर दिया। क्या छोटा क्या बड़ा देखते ही देखते सभी इस कार्य में जुट गए। फलतः यह कार्य सिद्ध हो गया। ला॰ फूलचंद्र जैन न सिर्फ एक काँग्रेस कार्यकर्ता थे अपितु एक बड़े व्यवसायी भी थे। उन्होंने इस अधिवेशन को सफल बनने हेतु दान भी दिया था।

सरोजनी नायडू जी को इस अधिवेशन में सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुना गया था। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण की शुरुआत 'मित्रो' शब्द से की। 'काँग्रेस के आयोजन' से कुछ समय पूर्व ही चितरंजनदास की मृत्यु हुई थी। उन्हें याद करते हुए उन्होंने बेहद मार्मिक और हृदयस्पर्शी भाषण दिया। उन्होंने कहा कि गाँवों के निर्माण का जो स्वप्न देशबंधु ने देखा था; उसे साकार किया जाएँ 'हम चाहते हैं कि रहन-सहन की दशा सुधारें और राष्ट्रीय प्रगति के लिए पूँजी और श्रम में न्यायपूर्ण और मैत्रीपूर्ण सहयोग स्थापित किया जाए।'[5] श्रीमती नायडू ने ब्रिटिश शासन द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में

किए जा रहे अन्यायपूर्ण कृत्यों का भी उल्लेख किया था। उसकी आलोचना करते हुए कहा की विदेशी प्रभुत्व की बुराईयों ने न सिर्फ हमारी कल्पनाशीलता को समाप्त कर दिया है अपितु हमें बौद्धिक रूप से गुलाम बना लिया है। नई पीढ़ी के प्रति हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि हम अपने शिक्षा-संबंधी आदर्शों को एक नया आयाम दें ताकि हमारी संस्कृति का पश्चिम के विज्ञान एवं नागरिक संगठन से समावेश हो और हम सभी उसके गुणों से लाभान्वित हों। अपने अध्यक्षीय उद्घोषण में वे राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए नवयुवकों को सैन्य प्रशिक्षण की भी वकालत की। कानपुर काँग्रेस अधिवेशन में श्यामलाल गुप्त द्वारा रचित झंडा गीत 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा' भी वंदे मातरम के साथ गया। कानपुर में इस आयोजन की समाप्ति के पश्चात इसकी गूँज यहाँ की आबोहवा में कई वर्षों तक विद्यमान रही।

कानपुर में निरंतर श्रमिक, मजदूरों की संख्या में वृद्धि हो रही थी; इनसे जुड़ी समस्याएँ भी निरंतर बढ़ रहीं थी। कानपुर के मजदूरों के विषय में कहा जाता था कि 'कानपुर के मजदूरों की दशा बड़ी दयनीय है बेचारों से दिनभर काम लिया जाता है, फिर भी इतनी मजदूरी नहीं मिलती कि वे अपना और अपने बाल बच्चों का पेट भर सकें। रहने के लिए पशुओं के रहने की कोठरी से बदतर एक कोठरी में पाँच-पाँच, सात-सात व्यक्ति मजबूरन रहते हैं। उन्हें न अच्छी हवा मिलती है और न साफ रोशनी। उनके मोहल्लों और सड़कों की सफाई का कुछ ख्याल नहीं किया जाता। वे मनुष्य होकर भी पशु की तरह अपना जीवन बिताते हैं।'[6] कानपुर में श्रमिकों को लेकर राजनीति भी अब पैर पसार रही थी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का अधिवेशन इसी की एक कड़ी थी।' 1924 में भारत में, कानपुर षड्यंत्र के मुकदमे का अंत होते ही, सत्यभक्त ने यह घोषणा कर दी कि उसने भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना कर दी है।'[7]

मांटेग्यु चेम्सफोर्ड सुधारों की समीक्षा हेतु साइमन कमीशन 3 फरवरी 1928 को भारत (बॉम्बे) आया। इसमें सभी सदस्य अँग्रेज थे। जिसके चलते पूरे देश में विरोध प्रदर्शन हुए। साइमन कमीशन के विरोध में कानपुर भी पीछे नहीं था। 'नगर में काफी संख्या में विरोध सभाएँ हुईं।'[8] श्रद्धानंद पार्क में एक विरोध सभा का आयोजन हुआ। इस सभा में यथेष्ठ संख्या में मुसलमान भी उपस्थित थे। इनमें बेगम हसरत मोहानी भी थीं। इस सभा के प्रमुख वक्ताओं में डी०ए०वी० कॉलेज के संस्थापक आनंदस्वरूप तथा एस०डी० कॉलेज के संस्थापक रायबहादुर विक्रमाजीत सिंह थे। साइमन कमीशन के विरोध में लाला लाजपत राय जी की मृत्यु से पूरा देश उबल पड़ा। कानपुर में भी एक शोकसभा का आयोजन श्रद्धानंद पार्क में मुंशी ज्वालाप्रसाद की अध्यक्षता में आयोजित की गई। 3 दिसंबर 1928 को साइमन कमीशन कानपुर पहुँचा। फूलबाग में इसके विरुद्ध एक विशाल विरोध प्रदर्शन किया गया। 1931 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान कानपुर भीषण सांप्रदायिक दंगे की आग में झुलस गया। हिंदू-मुस्लिमों की इस दंगे को शांत करने के प्रयत्न में काँग्रेस के नेता व पत्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी जी की मौत हो गई।

जुलाई 1939 में काँग्रेस अपनी सफलता वाले प्रांतों में सरकार बनाने के निर्णय लिया। यह काँग्रेस की एक गलत नीति थी क्योंकि सरकार बनाने की सहमति का अभिप्राय 1935 के एक्ट की और इस एक्ट में निहित सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की स्वीकृति देना था। वास्तव में यह ब्रिटिश शासन और सांप्रदायिकता के समक्ष घुटने टेकने के समान था। प्रांतीय सरकारों के गठन में मुस्लिम लीग भी सम्मिलित होना चाहती थी किंतु पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसे अस्वीकार कर दिया। किंतु मौलाना अबुल कलाम आजाद इसे नेहरू की भूल मानते थे। उनका कथन है कि 'यदि मुस्लिम लीग

को मंत्रिमंडल में सम्मिलित कर लिया जाता तो वह काँग्रेस में विलीन हो गई होती। ऐसा न होने से मुस्लिम लीग को नया जीवन मिला।'[9]

1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान की प्रत्यक्ष तौर पर माँग की गई। देश विभाजन की यह माँग द्विराष्ट्र सिद्धांत पर आधारित थी; मुस्लिमों के लिए पाकिस्तान तथा हिंदुओं के लिए हिंदुस्तान। मुस्लिम लीग ने मुस्लिमों के मध्य यह प्रचारित किया की मुस्लिमों के अधिकार तभी सुरक्षित हो सकते है जब उनका अपना देश होगा और यह तभी संभव है जब पाकिस्तान का निर्माण हो। लीग ने काँग्रेस पार्टी को हिंदुओं की पार्टी के रूप में प्रचारित प्रसारित किया। 1940 से ही दोनों पार्टियाँ अपने स्तर पर प्रचार-प्रसार कर रही थीं। कानपुर शहर काँग्रेस कमेटी के महामंत्री हमीद खान ने 9 जून 1940 को तिलक हाल में 'अखंड चरखायज्ञ' का आयोजन किया।

9 अगस्त 1942 को 'भारत छोड़ो आंदोलन' प्रारंभ हुआ। कानपुर काँग्रेस के प्रमुख नेता छैलबिहारी कंटक, कृष्णचंद्र बेरी, रामदुलारे मिश्र, केशवदेव मालवीय आदि को गिरफ्तार कर लिया गया किंतु इस समय तक कानपुर के विभिन्न स्थानों पर जनता का प्रदर्शन उग्र हो गया। एल्गिन मिल में आगजनी की गई। 15 अगस्त 1942 को नगर की टेलीफोन व्यवस्था को लगभग नष्टप्राय: कर की गई। 1947 तक मुस्लिम लीग की राजनीति पूर्णत: अलग-थलग रही। 1942 से लेकर 1947 तक कई बार कानपुर में हिंदू मुस्लिम दंगे हुए। काँग्रेस ने इन्हें रोकने का हरसंभव प्रयत्न किया किंतु ब्रिटिश षड्यंत्रों ने इन्हें पूर्णत: सफल नहीं होने दिया।

निष्कर्ष : उपर्युक्त संदर्भों से यह प्रतीत हो है कि भारतीय राजनीति में कानपुर का एक विशिष्ट स्थान है। कानपुर में समाज सुधार की दिशा में कानपुर अमूल्य योगदान है। सामाजिक कुरीतियों, जातिवाद, भेदभाव व ईसाई मतवाद के विरुद्ध आर्यसमाज ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की कानपुर इकाई ने 1888 से लेकर 1947 तक निरंतर ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा। राष्ट्रीय नेतृत्व के प्रत्येक आंदोलनों में कंधे से कंधा मिलाकर कार्यों को अंजाम दिया। स्थानीय आम जनमानस ने भी स्वतंत्रता संग्राम में अपना अमूल्य योगदान दिया।

संदर्भ

1. महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश 83वाँ संस्करण, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ॰ 382
2. लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, नारायणप्रसाद अरोड़ा, कानपुर का इतिहास भाग-2, कानपुर इतिहास समिति कानपुर, पृ॰ 35
3. राममनोहर लोहिया, भारत विभाजन के गुनहगार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015, पृ॰ 83
4. नारायणप्रसाद अरोड़ा, कानपुर के विगत 50 वर्षों का इतिहास, कानपुर इतिहास समिति कानपुर, पृ॰ 30
5. डॉ॰ बलदेवराज गुप्त, काँग्रेस का इतिहास, प्रचारक संस्थान, वाराणसी 1988, पृ॰ 94
6. देवव्रत शास्त्री, गणेश शंकर विद्यार्थी, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली 1988, पृ॰ 64
7. बी॰एल॰ ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, एस॰ चंद एंड कंपनी लि॰, नई दिल्ली 2010, पृ॰ 341
8. होम पालिटिकल फाइल संख्या 32/1927 माह दिसंबर 1927, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
9. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम, ओरिएंट लॉग मैन, हैदराबाद, पृ॰ 161

Abhishek Sachan
R.No -26 , Sone Research Hostel ,
Indira Gandhi National Tribal University , Amarkantak 484887 M.P.
Mob. 7905371043
abhi.sachan78@gmail.com

याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित आर्थिक सिद्धांत

अंजली गुप्ता, असिस्टेंट प्रोफेसर
रघुनाथ गर्ल्स पी०जी० कालेज, मेरठ (उ०प्र०)

स्मृति साहित्य में याज्ञवल्क्य स्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें न केवल तत्कालीन समाज के आचार-व्यवहार का गंभीर चिंतन है अपितु जीवन के लिए उनकी अपरिहार्यता सिद्ध करने वाली व्याख्याएँ भी हैं। आर्थिक सिद्धांतों का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना की अन्य सिद्धांत। आधुनिक युग के अर्थशास्त्री प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों के आर्थिक विचारों से सर्वथा अपरिचित प्रतीत होते हैं क्योंकि जिस श्रम सिद्धांत के कारण एडम स्मिथ को 'अर्थशास्त्र का पिता' कहा जाता है वह श्रम विभाजन भारतीय विचारकों के लिए कोई नवीन विचार नहीं है। प्राचीनकाल से ही स्मृतिकारों ने अर्थ चिंतन के साथ-साथ धन की महत्ता पर भी बल दिया। उनका मानना था कि धन के बिना कोई भी क्रिया सफल नहीं हो सकती। धन का उपार्जन करना प्रत्येक वर्ग का कर्त्तव्य है और किसी को भी अपने इस कर्त्तव्य से नहीं चूकना चाहिए। प्राचीन आर्थिक विचारकों ने यह भी अनुभव किया कि केवल एक व्यक्ति सभी आर्थिक क्रियाओं को करने में समर्थ नहीं हो सकता। मनुष्यों में आर्थिक क्रियाओं को लेकर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न न हो इसलिए प्राचीन विद्वानों ने वर्ण व्यवस्था का विधान कर सभी वर्णो के कर्म निर्धारित कर दिए तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मनोवृत्ति, योग्यता और क्षमता के अनुसार काम करने की अनुमति प्रदान की ताकि समाज की व्यवस्था निर्बाध रूप से चल सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी अपने कर्मों के आधार पर जीवनयापन करते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में ब्याज लेना, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य आदि को वैश्य वर्ण का कर्त्तव्य बताया गया है।[1] इसमें यह भी कहा गया है कि वैश्य को खेती में बोने वाले बीजों के गुण-दोषों को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। उसे अच्छे बीजों की पहचान होनी चाहिए, किस समय तथा किस मात्रा में बीज बोना है, इसकी जानकारी होना भी आवश्यक है।[2] इन नीतियों का आचरण करने से वैश्य को व्यापार, कृषि तथा पशुपालन द्वारा अधिक धनोपार्जन करने में सहायता मिलेगी। आपत्तिकाल में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय भी वैश्य के कर्मों द्वारा अपना जीवनयापन कर सकते हैं किंतु आपत्ति काल समाप्त हो जाने पर प्रायश्चित द्वारा स्वयं को पवित्र करके पुन: अपनी वृत्ति अपनानी चाहिए।[3]

मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक श्रम द्वारा अपने जीवन के सभी क्रियाकलापों को संचालित करता है। मानसिक श्रम द्वारा वह चिंतन का कार्य करता है। वह भूतकालीन विचारों की आलोचना करता है तथा अर्वाचीन विचारों का विश्लेषण करके भविष्य के हित के लिए नवीन विचारों का प्रतिपादन करता है। शारीरिक श्रम द्वारा वह नवीन वस्तुओं का उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण करता है। समाज में अनेक प्रकार से उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं के उपभोग का विचार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों पर आधारित रहा है। भारतीय समाज का आर्थिक विकास पुरुषार्थ के माध्यम से हुआ जिसमें 'अर्थ' को एक प्रधान तत्व के रूप में स्वीकार किया गया। अर्थ से तात्पर्य धन के उत्पादन, उसके वितरण और उसके उपभोग से संबंधित विधि विधानों से है।

वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत रहकर व्यक्ति पुरुषार्थ के माध्यम से दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति तो करता ही है साथ ही भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष भी करता है।

किसी भी समाज की प्रगति उसकी आर्थिक संपन्नता पर निर्भर करती है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार लोगों को सतत प्रयत्नशील रहकर धनोपार्जन करना चाहिए तथा संचित धनराशि को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति में जीवन निर्वाह हेतु धन उत्पादन के विभिन्न मार्ग बताए गए हैं तथा धन के शुद्ध उपार्जन पर बल दिया गया है। उनके अनुसार जैसा धन होता है उसके उपभोग पर वैसा ही फल प्राप्त होता है। स्मृतिकाल में धन का उपभोग करने वाले लोगों की दो श्रेणियाँ बन गई। एक श्रेणी में वे लोग थे जो परिश्रम करके धन कमाते थे और उस धन का उपयोग अपने जीवनयापन में करते थे। दूसरी श्रेणी में वे लोग थे जो इन वर्गों का शोषण करके अतुल संपत्ति एकत्र कर लेते थे और उसका उपयोग अपनी विलासिता के लिए करते थे। समय-समय पर मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ उनकी आवश्यकतानुसार परिवर्तित होती रही है तथा उनका विकास होता रहा है। वर्तमानयुग के समान स्मृति युग में भी कृषि, पशुपालन, विभिन्न उद्योग धंधे एवं व्यापार अर्थोपार्जन के साधन थे। इनसे संबंधित दिशा निर्देश याज्ञवल्क्य स्मृति में उपलब्ध है।

प्राचीनकाल से ही भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है कृषि न केवल जन सामान्य के जीवनयापन का आधारभूत साधन थी अपितु राजकीय आय के स्रोत के रूप में भी काफी महत्त्वपूर्ण थी। संपूर्ण समाज अपनी समृद्धि के लिए कृषि पर ही निर्भर था। तत्कालीन उद्योग धंधों का आधार भी कृषि ही था। कृषि तथा उद्योग का कार्य सुव्यवस्थित चलता रहे, राजा तथा कर देने वाली प्रजा में किसी भी प्रकार का कोई विद्वेष न हो, कृषि तथा उद्योगों का विकास निरंतर होता रहे इसलिए स्मृतिकार ने यह मत व्यक्त किया कि कृषि तथा उसकी सभी अंगों के विकास हेतु लोगों को प्रयत्नशील रहना चाहिए। उन्होंने भूमि को उसकी उत्पादकता के आधार पर कई भागों में विभक्त किया—कृषियोग्य भूमि, गोचर भूमि, उसर भूमि आदि।[4] स्मृतियों में कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए सिंचाई की व्यवस्था का वर्णन है यद्यपि अधिकांश सिंचाई वर्षा पर निर्भर करती थी फिर भी उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई हेतु कुएँ, तालाब आदि की व्यवस्था की गई तथा सिंचाई के साधनों को नष्ट करने वालों के लिए कठोर नियमों का प्रावधान किया गया।

अर्थव्यवस्था का मूल आधार होने के कारण भूमि के अधिकार, हस्तांतरण एवं सीमा विवाद इत्यादि की समस्याएँ बनी रही है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ भूमि विवाद संबंधित समस्याएँ और जटिल होती गई। याज्ञवल्क्य स्मृति में इन विवादों से संबंधित विधानों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें भूमि के विभाजन-संबंधी अनेक नियमों का भी वर्णन किया गया है।[5] याज्ञवल्क्य का कथन है कि मात्र किसी भूमि पर आधिपत्य ही स्वत्व निर्धारण का आधार न होगा बल्कि विशुद्ध स्वत्व संलेख या आगम के आधार पर ही निर्धारित होगा।[6] आज भी स्वत्वाधिकार के निर्णय में अधिकार अभिलेख, भूसर्वेक्षण के प्रमाण, लगान-रसीद क्रय-विक्रय के दस्तावेज, निबंधन के कागजात अनिवार्य हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार 20 वर्ष तक भूमि के स्वत्व से वंचित रहने पर भूमि की अधिकारिता खो जाती है।[7] किंतु इस स्मृति में इसका अपवाद भी प्रस्तुत किया गया है यथा आधिउपनिक्षेप (धरोहर के रूप में किसी को देना) उपनिधि (समीप रखना) सीमा, जड़ (मूर्ख), बालक, स्त्री, राजा तथा वेदपाठी की भूमि या धन की 20 वर्ष के अनंतर भी हानि नहीं होती।[8] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि सारी भूमि पर राज्य की प्रभुसत्ता होती थी और बीच में बड़े भूस्वामी होते थे, जो स्वयं अपने या काश्तकारों के द्वारा

कृषि कराते थे। ये वास्तविक कृषक, कृषक मजदूर या उपज के हिस्सेदार होते थे। भूमि पर उनका स्वामित्व नहीं होता था। अन्न के अत्यधिक संग्रह और कालाबाजारी को रोकने के उद्देश्य से प्राचीन स्मृतिकार ने यह भी विधान किया कि एक व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिए कितने प्रकार का अन्न संग्रह करना चाहिए, किस प्रकार से उसका उपयोग करना चाहिए आदि। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि सभी आश्रमों के लिए धन का उपयोग करने के अलग-अलग नियम बताए गए हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति में भूमि से संबंधित सीमा-विवाद पर भी पर्याप्त चर्चा की गई है। याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख है कि दो गाँवों के मध्य या एक गाँव में ही खेत, तालाब, बगीचा तथा घर की सीमा को लेकर विवाद हो सकता है।[9] सीमा-निर्धारण में व्यक्तिगत और वस्तुगत साक्ष्य का महत्त्व है। याज्ञवल्क्य ने दो गाँवों के सीमा-विवाद में आसपास की वृद्ध, गोप, सीमा कृषक के साक्ष्य से सीमा विवाद हल करने का प्रावधान दिया है। सीमा निर्धारण में खाल, वृक्ष, सेतु, वापी, अस्थि इत्यादि के प्रयोग का निर्देश निहित है। पूर्व में इन सब चीजों के द्वारा चिह्नित सीमा के आधार पर सीमा का निर्णय किया जा सकता है।[10] यदि कोई व्यक्ति बिना स्वामी की अनुमति लिए किसी के क्षेत्र में सेतु, बाँध आदि बनाता है तो उसमें जो फसल तैयार होगी वह क्षेत्र स्वामी की समझी जाएगी। उसके अभाव में राजा उक्त फसल का स्वामी होगा।[11] याज्ञवल्क्य स्मृति के कुछ वर्णनों से कृषि का महत्त्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जैसे यदि फलदार वृक्ष मनुष्य की जीविका का साधन हो तो उस वृक्ष ही शाखा या संपूर्ण वृक्ष कोई काट दे, तो उससे दंड लेना चाहिए।[12] इसमें यह भी कहा गया है कि यदि कोई मनुष्य दूसरे के खेत की पकी फसल, घर और वन, गाँव, बाड़ा और खलिहान को जलाता है तो उसे सरहरी में लपेटवाकर जला देना चाहिए।[13]

कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी लोगों की जीविका का प्रमुख साधन था। स्मृतियों में पशुपालन-संबंधी अनेक नियम बताए गए हैं। गाय पालन धार्मिक तथा आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण कार्य समझा जाता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में पाप से मुक्ति पाने के लिए गाय दान देने का उल्लेख किया गया है।[14] मनु आदि ने चरागाह के लिए पर्याप्त भू-भाग सुनिश्चित किया है। गोचर भूमि को पशु वृद्धिकारी माना गया है। याज्ञवल्क्य ने 100 धनुष गाँव में गोचर भूमि एवं 400 धनुष नगर के चारों तरफ सीमांकन के रूप में गोचर भूमि को बिना जुता छोड़ने का निर्देश दिया है।[15] चरागाह गाँव के निकट होते थे। राजा के पशुओं एवं जन सामान्य के पशुओं के लिए अलग-अलग चारागाह होते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में पशुपालकों या चरवाहों के वेतन का विवरण स्वामि-पाल व्यवहार पद के अंतर्गत किया गया है उसके अनुसार स्वामी प्रातःकाल चरवाहे को पशु सौंप दे और चरवाहा सायंकाल उन्हें वैसा ही लौटा दे। यदि पशु उसकी असावधानी से मर जाए या खो जाए तो स्वामी उसका वेतन रोक कर पशु का मूल्य ले ले।[16] पशुओं की रक्षा का उत्तरदायित्व पशुपालकों का होता था। पशुपालक पशुओं को कीड़ों और मच्छरों से बचाने के लिए आग जलाकर धुआँ करता था।

जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा भूमि से अधिकाधिक उत्पादन करने की ओर लोग उन्मुख हुए, साधनों का विकास अपने आप होता गया। पूँजी का अधिकाधिक विनियोजन कृषि कार्य में होने लगा और इसी पृष्ठभूमि में व्यापार, वाणिज्य एवं व्यवसाय में वृद्धि हुई। कृषि और पशुपालन के साथ-साथ अनेक प्रकार के उद्योग धंधे एवं व्यापार भी अर्थोपार्जन के साधन बन गए। याज्ञवल्क्य स्मृति में विदेशी व्यापार के प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं होते किंतु प्रकीर्ण प्रसंगों में इसकी जानकारी प्राप्त होती है। याज्ञवल्क्य स्मृति में विदेशी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण का भी निर्देश दिया

गया है। देशांतर से आने एवं भेजे जाने वाले सामान्य मूल्य का निर्धारण राज्य करता था। विदेशी वस्तुओं में उनके यातायात का व्यय और मूल्य मिलाकर राजा उक्त वस्तुओं की कीमत इस प्रकार निर्धारित करें कि जिसमें बेचने वाले व खरीदने वाले को अधिक से अधिक लाभ हो सके। 100 पण की लागत में 10 पण का लाभ याज्ञवल्क्य द्वारा अनुशंसित था।[17] स्वदेशी पण्य(माल) पर वणिक को 5% तथा पारदेशी पण्य पर वणिक को 10% लाभ प्राप्त होता था। लेकिन लंबी अवधि तक बिक्री के लिए रखी जाने वाली सामग्री पर अधिक लाभ निर्धारित किया जा सकता था।[18] उत्पादन लागत के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए मनु ने कहा कि राजा व्यापारी के माल की खरीद व बिक्री तथा उसके खाने-पीने का पूरा खर्च, माल की हिफाजत का खर्च, इन सब बातों पर विचार कर ले उसके बाद वस्तु का मूल्य निर्धारित करें, जिससे राजा, व्यापारी, कृषक आदि को लाभ हो।[19] उचित मूल्य से अधिक पर बेचना दंडनीय था। राज्य की आय का प्रमुख साधन विभिन्न प्रकार के कर थे। स्मृति कारों के अनुसार राजा को प्रजा का शोषण नहीं करना चाहिए। उसे प्रजा का दोहन मृदु रीति से करना चाहिए जैसे कि भ्रमर फूलों का करता है। लालची और अति संग्रही राजा मृत्यु के उपरांत नर्कगामी होता है। वर्तमान अर्थशास्त्रियों के समान प्राचीन स्मृतिकारों ने भी उत्पादन लागत के महत्त्व को समझा और इस बात पर बल दिया कि जनता पर उतना ही कर लागू होना चाहिए, जितना उसकी आय को दृष्टिगत रखते हुए उचित हो। क्योंकि कर संग्रह का उद्देश्य उसे प्रजा के कल्याण कार्यों पर खर्च करना था।

स्मृतियों में विनिमय, साझेदारी तथा संविदा-संबंधी सिद्धांत, चल अचल संपत्ति के संग्रह तथा हस्तांतरण की निश्चित नियम थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में ऋण लेने के संबंध में अनेक नियमों का वर्णन है व्यक्ति किस परिस्थिति में ऋण ले सकता है और किससे कितनी ब्याज लेनी चाहिए इसका भी वर्णन किया गया है।[20] याज्ञवल्क्य स्मृति में गहन वन एवं सामुद्रिक व्यापार के लिए ऋण का उल्लेख किया गया है। गहन वन व्यापार में चोरों एवं लुटेरों द्वारा लुटने का खतरा था। एवं सामुद्रिक व्यापार में डूबने का खतरा था अत: याज्ञवल्क्य स्मृति में गहन वन व्यापार पर 10% एवं सामुद्रिक व्यापार पर 20%प्रतिमाह ब्याज लेने की अनुशंसा की गई है।[21] व्यापार की प्रगति ने वाणिज्यिक संगठनों को जन्म दिया यह मूलत: समान व्यवसाय वाले लोगों का संगठन था। प्राचीन भारतीय आर्थिक व्यवस्था में सामूहिक संगठनों का अत्यधिक महत्त्व था। वृत्ति संघ, आर्थिक विकास की उन्नत अवस्था के परिचायक है। वे अपने नियम कानून स्वयं बनाते थे। और उनकी अपनी नियमावली होती थी। याज्ञवल्क्य ने वृत्ति संघ के नियमों को उसी तरह मान्यता दी है जिस तरह पूर्वकालीन धर्मसूत्रों में कानून की भाँति प्रचलित जातिगत एवं कुलगत रूढ़ियों को मान्यता प्रदान की गई है। आवश्यकता पड़ने पर संघ अपने सदस्यों के हित रक्षा के लिए खड़ा होता था। वृत्ति संघों की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि उनके सदस्यों के लिए विशेषाधिकारों का प्रावधान किया गया। याज्ञवल्क्य स्मृति में व्यापार संबंधित अधिनियम के अनेक प्रसंग आए हैं। इससे प्राचीन भारत के समुन्नत व्यवसाय का बोध होता है बड़े पैमाने पर भारत की वस्तुएँ विदेशों को निर्यात की जाती है तथा विदेशों से भारत में सामान आयात होते थे।

मिताक्षरा के मत से वृत्ति संघ ऐसे व्यक्तियों का समवाय है जो किसी खास प्रकार की वस्तु बेचकर या जो किसी विशेष प्रकार के शिल्प कर्म करके अपनी जीविका चलाते हों। वृत्ति संघ स्वतंत्र होते थे। याज्ञवल्क्य के अनुसार वृत्ति संघ अपराध कर्मों के अतिरिक्त सब मामलों पर निर्णय करते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि राजा को वृत्ति संघ के नियमों का आदर और पालन

करना चाहिए तथा उनकी संपत्ति की रक्षा करनी चाहिए।[22] समय के साथ-साथ इनका महत्त्व और बढ़ता गया। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार जो कोई संघ की संपत्ति चुराए या किए गए करार को भंग करें तो उसे देश से निकाल दिया जाए और उसकी सभी संपत्ति जब्त कर ली जाए।[23] स्मृतिकार द्वारा बनाए गए नियम का पालन करना ईमानदार एवं कुशल राज्य कर्मचारियों से ही संभव था। स्मृतिकार इस बात से अवगत थे कि राजकीय पदाधिकारी गड़बड़ी पैदा कर सकते हैं। अत: उन्होंने उन पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षक का प्रावधान किया। राजा प्रत्येक नगर में आतंक उत्पन्न करने वाले उच्च पदाधिकारी को नियुक्त करें जो शुक्र के समान तेजस्वी और सभी विषयों का ज्ञाता हो।[24]

आर्थिक व्यवस्था समाज संचालन की मूलभूत आवश्यकता है आज जिस रूप में देश का आर्थिक जीवन देखने को मिलता है वस्तुत: वह आर्थिक इतिहास की एक लंबी शृंखला की देन है। याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित आर्थिक सिद्धांत औचित्य पूर्ण एवं न्यायसंगत है। सिद्धांत निरूपण में स्मृतिकार का लक्ष्य एक आदर्श आचरण संहिता प्रस्तुत करना था, जिसके अनुपालन से व्यक्ति का कल्याण हो। देश, काल और परिस्थिति सम्मत व्याख्या होने के कारण इस स्मृति में निरूपित सिद्धांतों को हिंदू जनमानस धर्म मानता रहा है। याज्ञवल्क्य स्मृतिकार द्वारा निरूपित विधान हिंदू समाज में आज तक व्यक्तिगत कानून के रूप में चले आ रहे हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुशीलन से एक सुगठित अर्थव्यवस्था का बोध होता है। यह स्मृति आधुनिक विधि ग्रंथों की उपजीव्य और भारतीय जनजीवन की आधारशिला रही हैं तथा प्राचीन भारतीय अर्थनीति की मेरुदंड सिद्ध हुई है। वर्तमान संदर्भ में अनेक आर्थिक प्रसंगों में यह हमारी मार्गदर्शिका सिद्ध हो सकती है। प्राचीन स्मृतिकारों द्वारा दिए गए आर्थिक विचार वर्तमान अर्थशास्त्रियों के लिए अनुपम निधि है। इन विचारों का सूक्ष्म अध्ययन करके वर्तमान अर्थशास्त्रियों को विभिन्न आर्थिक सिद्धांतों एवं नीतियों के प्रतिपादन एवं निर्धारण में अत्यधिक सहायता प्राप्त हो सकती है।[25]

संदर्भ

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-1, श्लोक सं॰ 119
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 177
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-3, श्लोक सं॰ 42
4. डॉ॰ रामनरेश त्रिपाठी, प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार, पृ॰ 187
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोकसं॰ 149, 150, 153
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 27
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 24
8. याज्ञवल्क्यस्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 24
9. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 154
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 150
11. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2,श्लोक सं॰ 157
12. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 227
13. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 228
14. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-3, श्लोक सं॰ 304
15. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 166-67
16. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 165

17. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2 श्लोक सं॰ 253
18. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2 श्लोक सं॰ 252
19. मनुस्मृति, अध्याय-7, श्लोक सं॰ 127-29
20. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2 ऋण दान प्रकरणम, श्लोक सं॰ 37
21. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 38
22. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 192
23. याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं॰ 186-192
24. मनुस्मृति, अध्याय-7, श्लोक सं॰ 121
25. एम॰सी॰ वैश्य, आर्थिक विचारों का इतिहास, पृ॰ 7

M0b. 9368173842
guptaanjali18874@gmail.com

सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव

दीपक कुमार कन्नौजिया, शोधछात्र,
समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय
डॉ॰ पारिजात प्रधान, सहायक आचार्य
समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय

सोशल मीडिया एक ऑनलाइन स्टेटमेंट सिंबल है, जो एक समूह/समुदाय को दूसरे समूह या समुदाय से जोड़ने में योगदान देता है, जो नेटवर्क और सूचनाओं को साझा करते हैं। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, व्हाटसएप जैसे कई प्रसिद्ध सोशल मीडिया हैं। वे सभी सोशल मीडिया मंच हैं जहाँ उपयोगकर्ता अपनी सूचना जनता से साझा कर सकते हैं। यहाँ उत्पादन कर्ता भी सोशल मीडिया के माध्यम से अपने उत्पादों का प्रचार कर रहा है और क्राउड फंडिंग प्राप्त कर रहा है। सोशल मीडिया एनालिटिक्स ब्लॉग और सोशल मीडिया मंच से तथ्य एकत्र करता है और उसका विश्लेषण करता है जो व्यवसायियों को एक बुद्धिमान निर्णय लेने में मदद करता है। सोशल मीडिया छात्रों के मानवीय व्यवहारों को समझने के लिए सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और नकारात्मक रूप से स्वार्थी भी बनाता है। इस प्रकार सोशल मीडिया का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के लिए निर्माण और विनाश दोनों उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव पर केंद्रित है। सोशल मीडिया आज हमारे जीवन में एक बड़ी भूमिका निभा रहा है। एक बटन दबाने पर ही हमारे पास अत्यंत विस्तृत संबंधित सकारात्मक और नकारात्मक किसी भी प्रकार की जानकारी पहुँच रही है। सोशल मीडिया एक बहुत ही सशक्त माध्यम है और इसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है। सोशल मीडिया के बिना हमारे जीवन की कल्पना करना मुश्किल है, परंतु इसके अत्यधिक उपयोग से हमें इसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है। समाज पर मीडिया के प्रभावों के बारे में बहुत सारे तर्क-वितर्क प्रस्तुत किए गए हैं, सोशल मीडिया युवाओं को ज्यादा प्रभावित कर रहा है जिसका युवाओं पर सकारात्मक तथा नकरात्मक प्रभाव दिख रहा है वही कुछ लोगों का मानना है की सोशल मीडिया एक वरदान है। जबकि अन्य महसूस करते हैं कि यह एक अभिशाप है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मैन्युअल कैसेल्स के अनुसार, 'सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों फेसबुक, ट्वीटर आदि के जरिए जो संवाद करते हैं वह मास कम्युनिकेशन न होकर मास सेल्फ कम्युनिकेशन है।' मतलब हमें पता नहीं होता की हम किससे संचार कर रहे हैं, या फिर हम जो बात लिख रहे हैं, उसे कोई पढ़ रहा व कोई देख भी रहा होता है। आज सोशल मीडिया ने युवाओं के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है, युवावस्था एक ऐसा पड़ाव है जिसमें सभी चीजें जरूरी और आकर्षक लगती हैं और युवाओं के लिए अंतर करना कठिन हो जाता है कि उनके लिए क्या सही है और क्या गलत। जो चीज उन्हें बार-बार परोसी जाती है वे उसी ओर आकर्षित होते हैं।

साहित्य की समीक्षा

सिद्दीकी और सिंह (2016) ने 'सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव' पर अध्ययन किया। यह निष्कर्ष में बताते हैं कि छात्र सहयोग की गुणवत्ता दर में वृद्धि किया जा सकता है, साथ ही ज्ञान में भी वृद्धि कि जा सकती है अथवा यह छात्रों का ध्यान भी बाँटती है। सोशल मीडिया पर व्यापर के लिए खर्च किया जा सकता है परंतु सोशल मीडिया पर उपभोक्ताओं द्वारा लेखों के बारे में नकारात्मक टिप्पणियों का एक सामानांतर भय है। सोशल मीडिया लोगों को दीवाना बना सकता है, युवा एक क्लिक से पूरी दुनिया के संपर्क में रह सकते हैं लेकिन उनके युवा मन में नकारात्मक विचार आ सकते हैं और युवाओं में अपराधिक गतिविधियों में भी वृद्धि हो सकती है।

निया क्रॉफर्ड, लोएबिग (2015) ने अपने शोध 'सोशल मीडिया युवाओं को कैसे प्रभावित करता है?' में कहा कि एक सिक्के के दो पहलू की तरह सोशल मीडिया का युवाओं पर मूल्यवान और हानिकारक प्रभाव दोनों पड़ता है। यह युवाओं को फलने-फूलने और नीचे की ओर खींचने में मदद करता है, इसलिए युवाओं को सावधान रहना होगा। युवा कई लोगों से जुड़ते हैं और अपने कैरियर में खुद को आगे बढ़ाते हैं। सोशल मीडिया युवाओं को अपनी राय दूसरों के साथ साझा करने में मदद करता है।

फिल्ड (2013) ने युवाओं पर सामाजिक मीडिया के प्रभावों का विश्लेषण किया और पाया की हमारी दुनिया पर विशेषकर युवाओं पर इसका अधिक प्रभाव पड़ रहा है और किशोरावस्था की पहली पीढ़ी अपने जीवन के अभिन्न अंग के रूप में सोशल मीडिया के साथ ही बड़ी हुई है। इन्होंने सुझाव दिया है कि समुचित मार्गदर्शन के आधार पर युवाओं की सोशल मीडिया आदतों को सुधारना चाहिए।

अध्ययन का उद्देश्य

* सोशल मीडिया का उपयोग करने के उदेश्य को समझना।
* सोशल मीडिया के सकारात्मक उपयोग के लिए सुझाव देना।
* युवाओं में सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन करना।

कार्यप्रणाली

सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग 20-25 वर्ष के आयु वर्ग के उत्तरदाताओं से तथ्य एकत्रित करने के लिए किया गया है। 150 उत्तरदाताओं को ध्यान में रखकर प्रश्नावली का निर्माण और वितरण किया गया। उत्तरदाताओं का चयन करते समय सरल दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया गया है। एकत्रित किए गए तथ्यों का विश्लेषण करने के लिए उपयोग किए जाने वाले रिग्रेशन टूल आँकड़े, प्रश्नावली, पत्रिकाओं, पुस्तकों और वेबसाइटों से एकत्रित माध्यमिक तथ्यों के द्वारा किया गया है।

सोशल मीडिया का उपयोग करने का उद्देश्य

अधिकांश युवा टेलीविजन मीडिया से सोशल मीडिया की ओर अग्रसर हो रहे हैं क्योंकि इसने उन्हें प्रभावित किया है। सोशल मीडिया युवाओं की जीवन शैली को प्रभावित करता है और यह उन्हें दुनियाभर में एक नेटवर्क बनाने में मदद कर रहा है। सोशल मीडिया किसी की भी पसंद-नापसंद को प्रकट करके उसके साथ संबंध बनाना आसान बना देता है, जिसे सरलतापूर्वक किया जा सकता है। युवा अपने दोस्तों को संदेश, चलचित्र साझा करने के माध्यम से अपने समूह,

समुदाय, दोस्तों, रिश्तेदारों से जुड़ने में सक्षम हैं और किसी भी प्रकार की जानकारी को सस्ती कीमत पर तुरंत प्रसारित किया जा सकता है। सोशल नेटवर्किंग कुछ ज्वलंत समसामयिक मुद्दों पर चर्चा करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। सोशल मीडिया एक ऐसा ऑनलाइन माध्यम है जिसके मदद से वे अपने विचारों और भावनाओं को अपने साथियों के साथ साझा करने में सक्षम हैं। जैसे-जैसे युवा बड़े होते जाते हैं, वे द्वंद्व में रहते हैं कि क्या किया जाए, उन्हें अपने जीवन में आने वाली समस्याओं के लिए दिशा-निर्देश मिलते हैं, साथ ही प्रस्तुत किए जाने वाले असाइनमेंट के बारे में जानकारी साझा करने में युवाओं को जागरूक होना चाहिए। सोशल मीडिया ने विभिन्न संसाधनों को इतना आसान बना दिया है की मूवी शो, होटल, फ्लाइट, ट्रेन टिकट के लिए स्थानीय के साथ-साथ एक विदेशी यात्रा के लिए टिकट बुकिंग तुरंत की जा सकती है। सोशल मीडिया ने राजनीतिक परिवर्तन को सुगम बनाया है क्योंकि युवा राजनीति के प्रति अधिक जागरूक हैं।

युवाओं पर सोशल मीडिया का प्रभाव

सोशल मीडिया चलचित्र, आपसी बातचीत, छवियों के आदान प्रदान को प्रोत्साहित करता है जो उनके बीच मतभेद पैदा करते हैं। इस तरह की प्रविष्टि राष्ट्रों के बीच जुड़ाव को कमजोर कर रही है। युवा अपरिपक्व होने के कारण साइबर-धमकी के शिकार हो जाते हैं। यह युवाओं के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है और आत्महत्या की ओर ले जाता है। चूँकि सोशल मीडिया मंच पर गोपनीयता की कमी है, इसलिए किसी तीसरे पक्ष द्वारा निजी जानकारी का दुरुपयोग करने की संभावना है। सोशल नेटवर्किंग के इस्तेमाल से आमने-सामने की बातचीत कम होती जा रही है, और साथ ही सामाजिक संबंधों में दूरियाँ और उनके व्यवहारों में परिवर्तन हो रहा है। यह झूठी अफवाहें और अविश्वसनीय जानकारी भी फैलाता है। अपराधी सोशल मीडिया का उपयोग अपराध करने के लिए करते हैं। यह विशिष्ट उपचार के सलाह का समर्थन करता है जो महत्त्वपूर्ण और जीवन के लिए हानि है।

परिणाम विश्लेषण :

चार्ट संख्या- 01

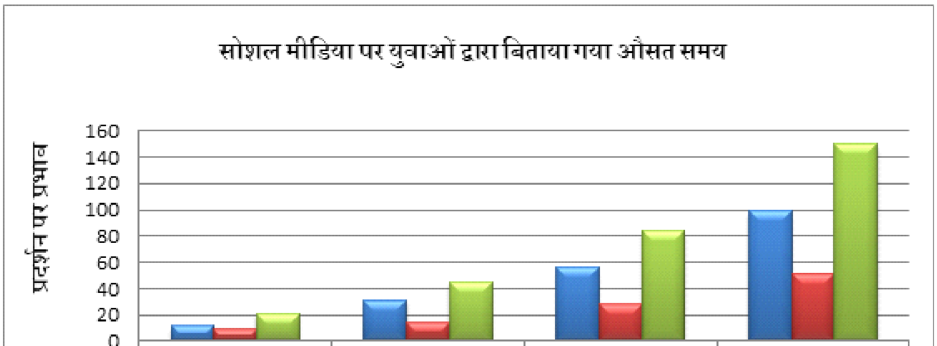

	1hr	3 Hours	More than 3 Hours	Total
Yes	12	31	56	99
No	9	14	28	51
Total	21	45	84	150

सकारात्मक–51, नकारात्मक–99

उपर्युक्त तालिका में सोशल मीडिया पर युवाओं द्वारा बिताए गए 24 घंटे में व्यतीत किए गए औसत समय को प्रदर्शित करता है, ऐसे उत्तरदाता जो 1 घंटा समय व्यतीत कर रहे हैं उनकी संख्या 12 तथा 1 घंटे से कम समय व्यतीत करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 9 जिनका कुल योग 21(14%) है, 3 घंटे समय व्यतीत करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 31 है तथा 3 घंटे से कम कम समय व्यतीत करने वालों की संख्या 14 है जिनकी कुल संख्या 45(30%)है, 3 घंटे से ज्यादा का समय बिताने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 56 है, शेष की 28 जिनका कुल योग 84(56%) है। यह दर्शाता है कि जो ग्रामीण युवा हैं उनमें से 99(66%) क्रमशः 1 घंटे से 3 घंटे से ज्यादा का समय सोशल मीडिया पर व्यतीत कर रहे हैं, जबकि 51 (34%) ऐसे युवा हैं जो दिए गए औसत समय से कम समय सोशल मीडिया पर व्यतीत करते हैं। कुल चयनित उत्तरदाताओं की संख्या 150 ली गई है। यह दर्शाता है कि सोशल मीडिया पर युवा ज्यादा समय व्यतीत कर रहे हैं।

चार्ट संख्या- 02

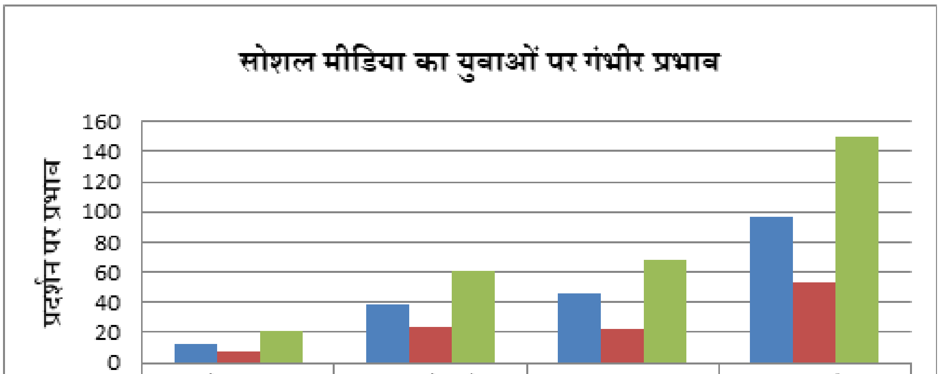

	WhatsApp	Facebook	Instagram	Total
Yes	13	38	46	97
No	8	23	22	53
Total	21	61	68	150

सकारात्मक–97 / नकारात्मक–53

उपर्युक्त दी गई तालिका में सोशल मीडिया का युवाओं पर पड़ रहे गंभीर प्रभाव को दर्शाया गया हैं जिसमें व्हाटसएप द्वारा 13 उत्तरदाता यह स्वीकार कर रहे हैं कि उन पर व्हाटसएप का प्रभाव पड़ रहा है परंतु 8 उत्तरदाताओं पर गंभीर प्रभाव नहीं पड़ रहा है, फेसबुक द्वारा 38 उत्तरदाता गंभीर रूप से प्रभावित हो रहे हैं तथा 23 उत्तरदाताओं पर फेसबुक का प्रभाव नहीं पड़ता है, इंस्टाग्राम के द्वारा 46 उत्तरदाताओं ने माना है कि इन पर सोशल मीडिया का गंभीर रूप से प्रभाव पड़ रहा है और 22 लोगों ने माना की इंस्टाग्राम का उन पर गंभीर प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे युवा जिन्हें दिए गए सोशल मीडिया मंच गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं उनका कुल योग 97(64.66%) है। वही प्रभावित नहीं करने वालों में व्हाटसएप से 8, इंस्टाग्राम से तथा 22 फेसबुक से 23, ऐसे उत्तरदाता जिनको सोशल मीडिया के ये मंच गंभीर रूप से प्रभावित नहीं कर रहे हैं। ऐसे उत्तरदाताओं का कुल योग

 ISSN 0975-735X

53(35.4%) है, तथा का कुल चयनित उत्तरदाताओं का योग 150 है।

परिणाम

युवा कुछ उत्पादक उद्देश्यों के बजाय अपना अधिकांश समय सोशल मीडिया में व्यतीत कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर बिताए गए समय और युवाओं के कार्य में संबंध है। वे अपने आजीविका और व्यक्तिगत विकास के साधन से दूर होते जा रहे हैं। तस्वीरें साझा कर बेवजह बातचीत कर रहे हैं जिससे युवा सोशल मीडिया के आदी होते जा रहे हैं। माता-पिता अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यों में व्यस्त होने के कारण अपने बच्चों के साथ समय नहीं निकाल पा रहे हैं। सोशल मीडिया वर्तमान युवाओं को उनकी उबाहट से छुटकारा दिलाने में मदद करता है। सोशल मीडिया पर गलत धार्मिक सूचनाएँ युवाओं को प्रभावित कर देश की अखंडता को खराब भी कर सकती हैं क्योंकि युवा हमारे राष्ट्र के भविष्य के स्तंभ हैं। वे राजनेताओं द्वारा ट्वीट किए गए शब्दों पर विश्वास करते हैं और प्रतिक्रियावादी होते जाते हैं। सोशल मीडिया में साझा की गई कुछ जानकारी युवाओं के ज्ञान को उन्नत करने में मदद करती है, सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं को अपनी आजीविका उठाने में भी सोशल मीडिया मदद करती है।

इंटरनेट युवाओं को जीवन में सामाजिक मूल्यों को सीखने में मदद करता है। सोशल मीडिया सामाजिक कौशल का विस्तार करने, बहुत सारे दोस्त हासिल करने में मदद करता है। युवा साइबर अपराध करते हैं जिससे प्रभावित पक्ष में अवसाद और आत्महत्या के विचार आते हैं।

सुझाव

* युवाओं को तथ्यों का विश्लेषण करना सिखाया जाना चाहिए और हमारे मूल्यों को दूषित करने वाली जानकारी का न्याय करने में सक्षम होना चाहिए जो निश्चित रूप से हमारे देश, उद्योगों को जीवन में महानता की भावना से लाभान्वित करेगा।
* युवाओं को अपनी व्यक्तिगत जानकारी सोशल मीडिया में नहीं देनी चाहिए क्योंकि इसका दुरुपयोग तीसरे पक्ष द्वारा किया जाएगा।
* भावी पीढ़ी को सुरक्षित रखने के लिए शिक्षकों और अभिभावकों को बच्चे पर नजर रखना चाहिए और साथ ही सोशल मीडिया के प्रति जागरूक करना और उचित शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

निष्कर्ष–यह अध्ययन मुख्य रूप से युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव की जाँच करने के लिए आयोजित किया गया था। यह समझा जाता है कि वे अपना कीमती समय सोशल मीडिया पर व्यतीत कर रहे हैं और रातों को न सोने के कारण स्वास्थ्य समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा हैं। सोशल मीडिया में जानकारी प्रेषित करते समय नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों को ध्यान में रखकर किसी जानकारी को साझा करना चाहिए जिससे किसी की भावनाओं को ठेस न पहुँचे।

संदर्भ

1. बी॰ लुस्क (2010), डिजिटल मूल निवासी और सोशल मीडिया व्यवहार: एक सिंहावलोकन, रोकथाम शोधकर्ता, 17(5), 3-6
2. एम॰ फिल्ड (2013), सोशल मीडिया इम्पैक्ट ऑन यूथ, यू॰एस॰ए॰ मीडिया ईस्ट स्टडी, 79
3. शबनूर सिद्दीकी और तजिंदर सिंह (2016), सोशल मीडिया इट्स इंपैक्ट विद पॉजिटिव एंड निगेटिव एस्पेक्ट्स, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटर एप्लिकेशन टेक्नोलॉजी एवं रिसर्च, वाल्यूम 5, अंक 2,

पृ॰ 71-75
4. डी॰ बेरेस, आपके दिमाग पर सोशल मीडिया के 5 अजीब नकारात्मक प्रभाव, रीडर्स डाइजेस्ट
5. एस॰ मित्तल, ए॰ गोयल, आर॰ जैन , ई-कॉमर्स और सोशल नेटवर्किंग साइट्स का सेंटीमेंट एनालिसिस, bu www.researchgate.net भारतीय युवाओं पर सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव।
6. वी॰एन॰ सिंह, जनमेजय सिंह (2020), नगरीय समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, सत्यम अपार्टमेंट, सेक्टर 3, जवाहर नगर, जयपुर, पृ॰ 430-442
7. अमित रंजन (2020) सोशल मीडिया : सार्वभौमिक तथा व्यापक रूप से प्रभावी, योजना पत्रिका, जून अंक, पृ॰ 16-20
8. कविता भाटिया (2021), सोशल मीडिया वर्चुअल से वास्तविकता, सेतु प्रकाशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

जी-20 समूह और भारत की अध्यक्षता

डॉ॰ गीता दुबे, सहा॰ प्राध्यापक राजनीति-विज्ञान
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर(म॰प्र॰)

जी-20 समूह विश्व की प्रमुख उभरती हुई एवं विकसित अर्थव्यवस्थाओं का समूह है, जिसका गठन 1999 में आर्थिक संकटों को दूर करने के लिए किया गया था। जी-20 समूह 19 देशों और यूरोपीय संघ से मिलकर बना एक मंच हैं। जी-20 विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों से बना समूह है। जी-20 समूह 2008 के वैश्विक आर्थिक संकट के दौरान प्रथम बार शिखर सम्मेलन के स्तर तक पहुँचा। इसका प्रथम सम्मेलन नवंबर 2008 में वाशिंगटन में एवं दूसरा अप्रैल 2009 में लंदन में हुआ था। जी-20 शिखर सम्मेलन 2010 तक का आयोजन वर्ष में दो-दो बार किया गया किंतु 2011 से शिखर सम्मेलन वर्ष में एक ही बार होने लगे। जी-20 की शक्ति का आकलन हम इस तथ्य से लगा सकते है कि विश्व की आबादी की, दो तिहाई जनसंख्या इसमें निवास करती है एवं वैश्विक सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 85 प्रतिशत भाग का उत्पादन जी-20 के देशों द्वारा किया जाता है और वैश्विक व्यापार का 75 प्रतिशत व्यापार भी इन देशों द्वारा ही किया जाता है।

जी-20 समूह का कोई स्थायी सचिवालय नहीं हैं। इसकें सदस्य देशों में इसका शिखर सम्मेलन आयोजित किया जाता है। जी-20 का 17वाँ शिखर सम्मेलन इंडोनेशिया के बाली में 15-16 नवंबर 2022 को हुआ था। यह शिखर सम्मेलन भारत के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इस सम्मेलन के समापन पर जी-20 समूह की अध्यक्षता भारत को सौंप दी गई। भारत ने 01 दिसंबर, 2022 से इसकी अध्यक्षता ग्रहण कर ली है और 30 नवंबर 2023 तक भारत इसका अध्यक्ष रहेगा।

जी-20 का 18वाँ शिखर सम्मेलन भारत में 09-10 सितंबर 2023 को नई दिल्ली में आयोजित किया जा रहा है, इसके साथ ही साथ जी-20 के 200 से ज्यादा सम्मेलनों का आयोजन भारत में लगभग 50 से अधिक शहरों में किया जाएगा। जी-20 शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों के अलावा कई अन्य देशों को आमंत्रित किया जाता है। भारत ने जी-20 की अध्यक्षता के दौरान बांग्लादेश, मॉरीशस, मिस्र, ओमान, नीदरलैंड, सिंगापुर, स्पेन, नाइजीरिया, और संयुक्त अरब अमीरात देशों को आमंत्रण दिया है। दिल्ली शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों और आमंत्रित देशों के राष्ट्राध्यक्ष एवं प्रमुख भाग लेंगे।

भारत की जी-20 की अध्यक्षता के दौरान सम्मेलन में ट्रोइका का आयोजन होगा। ट्रोइका जी-20 समूह के अंदर शीर्ष समूह को संदर्भित करता है। इस बार ट्रोइका में पहली बार तीन विकासशील देश और उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएँ शामिल होगी। ट्रोइका में इंडोनेशिया, भारत और ब्राजील शामिल होंगे। ट्रोइका में पिछले, वर्तमान और आगामी अध्यक्ष पद वाले देश शामिल होते हैं। जी-20 समूह में दो समानांतर ट्रेक होते हैं, वित्त ट्रेक और शेरपा ट्रेक। वित्त मंत्री और सेंट्रल बैंक के गवर्नर वित्त ट्रैक का नेतृत्व करते हैं। जबकि शेरपा ट्रैक का नेतृत्व शेरपा करते हैं। जी-20

प्रक्रिया का समन्वय सदस्य देशों में शेरपाओं द्वारा किया जाता है। प्रत्येक देश में एक शेरपा होता है।

भारत को जी-20 की अध्यक्षता ऐसे समय मिली जब आर्थिक मंदी, खाद्यान्न एवं ऊर्जा की बढ़ती हुई कीमतों तथा कोविड जैसी महामारी के दुष्प्रभावों के कारण विश्व के देश इससे जूझ रहे हैं। जी-20 को विश्व के देश आशा की दृष्टि से देख रहे हैं। ऐसे समय में भारत की जी-20 की अध्यक्षता बहुत महत्त्वपूर्ण और निर्णायक भी होगी। प्रत्येक भारतीय के लिए जी-20 की अध्यक्षता गर्व की बात है।

भारतीय प्रधानमंत्री जी ने कहा भारत दुनिया के जी-20 समूह की अध्यक्षता कर रहा है। भारत इस जिम्मेदारी को बड़े अवसर के रूप में देखता है। यह दुनिया को भारत के बारे में बताने का अवसर है। दुनिया के लिए भारत के अनुभवों से सीखने का, अनुभवों से टिकाऊ भविष्य की दिशा तय करने का अवसर है। जी-20 को हमें केवल एक राजनीतिक समारोह नहीं बल्कि जन-भागीदारी का ऐतिहासिक आयोजन बनाना है। निश्चित ही जी-20 समूह में भारत का नेतृत्व समावेशी, महत्त्वाकांक्षी, निर्णायक और कार्यवाही उन्मुख होगा।

जी-20 समूह के लोगो में केसरिया, हरा, सफेद और नीला रंग है जो हमारे राष्ट्रीय ध्वज के रंगों से प्रेरित है। जी-20 के लोगो में कमल के पुष्प के साथ पृथ्वी को जोड़ा गया है, जो यह दर्शाता है कि परिस्थितियाँ कितनी भी विपरीत क्यों न हो, कमल फिर भी खिलता है, चुनौतियों के बीच विकास को दर्शाता है। पृथ्वी प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य को दर्शाती है। भारत की जी-20 की थीम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। जिसका अर्थ है—धरती ही परिवार है। जी-20 की यह थीम एक अच्छे भविष्य के लिए संपूर्ण विश्व को एक साथ लाने पर तथा न्यायसंगत और समान विकास पर बल देती है, वह भी उन परिस्थितियों में जब विश्व के देश, कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जी-20 के लोगो का उद्देश्य, विविधता का सम्मान करते हुए विश्व को सद्भाव के अंतर्गत लाना है। जी-20 समूह में भारत की अध्यक्षता का विषय 'एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य है।' इस समूह की अध्यक्षता करना भारत के लिए एक सुअवसर है और हम सभी भारतीयों के लिए एक गौरव का विषय है।

आज समय के साथ-साथ उद्योगों की जरूरतें भी बदल गई हैं। भारत में भी यह बदलाव हर क्षेत्र में देखे गए हैं जैसे शिक्षा, रोजगार, तकनीक और कौशल विकास में। भारत आज निवेश करने के लिए एक उचित स्थान बना है। क्योंकि भारत में श्रम की उपलब्धता, बाजार और नीतिगत सुधारों के साथ-साथ अच्छे आर्थिक संकेत भी हैं। जी-20 शिखर सम्मेलन में भारत की अध्यक्षता बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रही है, विशेषकर निवेश के मामलों में।

यह शिखर सम्मेलन भारत को नए बाजारों में निवेश और महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं के साथ जुड़ने में मदद प्रदान करेगा। भारत को सिर्फ निवेश बाजार के रूप में ही नहीं, वरन् संसाधन के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भारत में बढ़ा है जिसका कारण है, भारत की व्यापार समर्थक नीतियाँ और अनुकूल निवेश का माहौल।

भारत ने कई बार वैश्विक दक्षिण के बारे में कहा है, भारत ने स्वयं को विकासशील दुनिया की आवाज के रूप में स्थापित किया है। भारत को जी-20 की अध्यक्षता निश्चित ही वैश्विक दक्षिण की ओर से शांति-स्थापित करने का अवसर प्रदान करेगी। भारत विकासशील देशों के समक्ष आने वाली चुनौतियों के प्रति भी संवेदनशील है। आर्थिक विकास, ऊर्जा सुरक्षा, पर्यावरण,

आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि विषयों के समाधान हेतु भारत जी-20 समूह के सदस्यों के साथ मिलकर कार्य करेगा।

कोविड महामारी के बाद आर्थिक चुनौतियों से निपटने के लिए जिम्मेदारी, रूस-यूक्रेन युद्ध, आर्थिक मंदी, ऊर्जा सुरक्षा एवं जलवायु परिवर्तन आदि संकटों से विश्व आज जूझ रहा है। खाद्य और तेल की कीमतों में लगातार बढ़ोत्तरी होने से इसका प्रभाव विकासशील देशों पर पड़ा है। इस असर को कम करने के लिए भारत विकासशील देशों की आवाज बनकर, इस समस्या का समाधान करने के लिए आगे-आएगा। जी-20 सम्मेलन भारत को वित्तीय नीति एवं वैश्विक आर्थिक विषयों पर बातचीत में भाग लेने और प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के साथ अपनी नीतियों का समन्वय करने की अनुमति भी प्रदान करेगा।

जी-20 देशों के समूह के बीच चुनौतियाँ भी कुछ कम नहीं हैं। कई सदस्य देशों के बीच चल रहे कुछ आपसी तनाव एवं विवाद को कम करना भी सरल नहीं है। जी-20 समूह देशों का लक्ष्य सभी का समान विकास करना, भारत की प्राथमिकता होगा। भारत को एक ऐसा एजेंडा निर्धारित करना होगा जिससे समूह के सभी सदस्य देशों को समान अवसर मिल सके। यूक्रेन-रूस युद्ध के कारण आर्थिक मंडी, खाद्यान्न संकट, ऊर्जा सुरक्षा, वैश्विक खाद्य सुरक्षा, महिला सशक्तीकरण, ग्लोबल वॉर्मिग, आतंकवाद आदि चुनौतियों का कैसे सामना किया जाए, इन सभी पर विचार करना होगा। भारत को इस समूह की एकता बनाए रखने को लेकर भी कड़ी मेहनत करनी होगी।

जी-20 सहित विश्व के देशों की निगाहें, आशा के साथ अब भारत की तरफ हैं। भारत को इन सभी चुनौतियों के साथ अपनी अध्यक्षता के अवसर का इस्तेमाल करते हुए पूरे विश्व में अपनी ताकत व सामर्थ्य को दिखाना होगा।

जी-20 की अध्यक्षता के कारण, भारत को विश्व के देशों के सामने अपनी छवि और मजबूत करने का अवसर मिला है। इसके माध्यम से पर्यटन के क्षेत्र को बढ़ावा मिलेगा। भारत के पर्यटन स्थलों की लोकप्रियता बढ़ेगी, जिससे भारत में आने वाले पर्यटकों की संख्या में भी बढ़ोतरी होगी। भारत में बने उत्पादों की पहुँच विश्व के देशों में बढ़ेगी, जिसका असर देश की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ेगा। इस सम्मेलन द्वारा भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था, देश की एकता, विविधता और भारत की सांस्कृतिक समृद्धि भी विश्व के देशों को देखने में मिलेगी। इस अवसर पर भारत योग और आयुष चिकित्सा पद्धति को भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करेगा।

जी-20 के सदस्य देश आधारिक संरचना निवेश का समर्थन करने के लिए भी प्रतिबद्ध है। जिसके कारण भारत को अपनी आधारिक संरचना परियोजनाओं में निवेश आकर्षित करने के अवसर भी मिलेंगे। बुनियादी सुविधाओं में निवेश के कारण स्वच्छ पानी, बिजली और परिवहन जैसी सेवाओं को प्राप्त करके, नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के साथ-साथ रोजगार के अवसरों को भी सृजित कर सकेंगे।

जी-20 में भारत की अध्यक्षता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भारत एकता की सार्वभौमिक भावना को बढ़ावा देने का कार्य करेगा, दक्षिण एशियाई देशों के हितों और चिंताओं को भी प्रमुखता देगा। भारत अपने अनुभव और ज्ञान का उपयोग विकासशील देशों के हितों के लिए भी करेगा। मध्यम आय वाले देशों की वैश्विक वित्तीय स्थिरता सुरक्षित करना भी, भारत का लक्ष्य होगा। भारत व्यापार संबंधी बाधाओं को दूर करने का प्रयास करके सदस्य देशों के बीच व्यापार को सुविधासंपन्न बनाने का भी प्रयास करेगा।

जी-20 समूह की अध्यक्षता भारत के लिए प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के साथ जुड़ने और आर्थिक विकास के अवसरों का पता लगाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण मंच और वातावरण बनाने में मदद कर सकता है। भारत सभी देशों के प्रयासों से जी-20 शिखर सम्मेलन को वैश्विक कल्याण का प्रमुख स्रोत बनाने का प्रयास करेगा। जी-20 समूह की अध्यक्षता भारत को विश्व में शांति और विकास के मार्ग को स्थापित करने का सुअवसर प्रदान कर रही है।

संदर्भ

1. परीक्षा मंथन, मंथन प्रकाशन, पृ० 213
2. पत्रिका, 10 जनवरी 2023, 13 जनवरी 2023
3. दैनिक भास्कर, 10 जनवरी, 2023
4. प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी, 2023
5. दैनिक जागरण, 14 नवंबर, 2022
6. aaj tak in https://www.aajtak.in
   drishtiias-com https://www/drishiias.com
7. https://www-amarujala.com

आदिवासी जीवन संघर्ष का कड़वा सच : बस्तर-बस्तर

डॉ॰ कुलदीप सिंह मीना, एसोसिएट प्रोफेसर
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज॰)

बस्तर-बस्तर उपन्यास का केंद्र छत्तीसगढ़ का बस्तर है। जो आदिवासी-बहुल क्षेत्र है। यहाँ निवासरत आदिवासी तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले शहरी जीवन से दूर अपने जीवनमूल्यों, संस्कृति, परंपरा और रीति-रिवाजों के साथ प्रकृति की गोद में अपना जीवन-यापन करते रहे हैं। ये लोग जल, जंगल, जमीन को अपना सर्वस्व समझते हैं और अपनी रोजमर्रा की जरूरत को इनसे पूरा कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इन्हीं बस्तर के आदिवासियों के जीवन और वर्तमान विकासवादी दौर में उत्पन्न विकट परिस्थितियों को केंद्र में रखकर लोक बाबू द्वारा 'बस्तर-बस्तर' उपन्यास वर्ष 2021 में साहित्य जगत में दस्तक देता है। यह उपन्यास बस्तर के आदिवासियों के जीवन के ताने बाने के साथ कथा बुनता है। जो कि आदिवासियों की संस्कृति, जीवन-दर्शन, प्रकृति-प्रेम, उनकी धार्मिक आस्था को तो अभिव्यक्त करता ही है साथ ही विकास के नाम पर इस आदिवासी क्षेत्र में गैर-आदिवासी लोगों के प्रवेश ने इनके निश्चल जीवन के साथ इनके जीवनमूल्य, संस्कृति परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं को तहस-नहस कर दिया। जिसकी यथार्थ अभिव्यक्ति इस उपन्यास में है। परिणामस्वरूप ये आदिवासी आज अपने अस्तित्व और अस्मिता को लेकर संघर्षरत है। यूँ कहें कि आज इनका समूचा जीवन विकास की पहेलियों में उलझकर संघर्ष की गाथा बन गया है।

आदिवासी समाज की अपनी संस्कृति और परंपरा रही है, जिसके आधार पर वह अपना जीवन जीता रहा है। बकौल स्नहेलता नेगी-'आदिवासी समाज संस्कृति सिर्फ इतना भर नहीं है। उनकी सामूहिकता, सहजीविता, रचाव और बचाव का जीवन दर्शन और स्त्री के प्रति सम्मान और बराबरी का दर्जा आदि समृद्ध सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्थाओं वाला समाज है। आदिवासी समाज अन्य समाजों की तुलना में अधिक समतामूलक और लोकतांत्रिक समाज रहा है। संसाधनों की लूट की बजाय अपने सीमित जरूरतों के अनुकूल समान वितरण की संस्कृति में विश्वास करता है।"[1] आज विकास के नाम पर तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले विकासवादी लोगों ने आदिवासियों की इन्हीं जड़ों पर सर्वप्रथम हमला किया है। जबसे गैर-आदिवासी लोगों की घुसपैठ इनके बीच हुई तबसे ही आदिवासी संस्कृति को विकृत करने की कोशिशें प्रारंभ हुई हैं। आदिवासी महिलाओं पर कुदृष्टि डाली गई। परिणामस्वरूप 'घोटुल' जैसी स्वस्थ संस्कृति को भी बंद करना पड़ा। 'बस्तर-बस्तर' उपन्यास में आदिवासी संस्कृति पर हुए हमले का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'हिड़मा जबसे वनरक्षक के चक्कर में आई थी। गोटुल में उसके चार प्रेमी थे, जिन्होंने उसे पड़िया भेंट कर प्रेम निवेदन किया था। मगर अब तक उसने किसी को डगरपोल या गीकी या तंबाकू देकर उनके निवेदन को स्वीकार नहीं किया था। अब लगा कि उसे इस दिशा में आगे बढ़ना होगा। दो-एक बार उसकी साइगुती घर पर उसे गोटुल ले चलने आई भी थी, मगर उसने मना कर दिया था। साइगुती और कुछ गाँव वालों को भी धीरे-धीरे हिड़मा के वनरक्षक से मेलजोल की खबरों का पता चल

गया था।'[2] इतना ही नहीं आदिवासी अब तक अपना स्वच्छंद जीवन जी रहे थे। इनके बीच ठेकेदारों और दलालों का प्रवेश हो चुका है। जो भयंकर रूप से इनके श्रम का शोषण कर रहे थे। इसके बाद विकास के नाम पर कॉरपोरेट घराने का प्रवेश हुआ। इनके प्रवेश तो पूरा का पूरा जंगल बाहरी लोगों की घुसपैठ से आबाद था। अब विकास के नाम पर नया खेल शुरू हो चुका था जो आदिवासियों के विनाश के लिए पर्याप्त था। 'विकास के नाम पर जंगल काटे गए, आदिवासियों को बेदखल और विस्थापित किया गया। बड़ी-बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियाँ स्थापित की गईं। औने-पौने में जंगल की जमीन बेची गई। जल-जंगल-जमीन बचाने के लिए आदिवासियों के हूल (क्रांतियाँ) हुईं। अपने हक-हकूक संघर्षरत आदिवासियों को जेल में डाल दिया गया। उनकी हत्याएँ की गई। वृद्ध-बच्चों तक को नहीं छोड़ा गया। औरतें-युवतियाँ बलात्कार का शिकार हुई।'[3] यहीं से शुरू होता है स्वच्छंद जीवन जीने वाले प्रकृति के पुजारी आदिवासियों के जीवन में अपने अस्तित्व और अस्मिता को लेकर संघर्ष। इस जीवन संघर्ष के दलदल में आदिवासी समुदाय फसते चले गए और आज उस चौराहे पर खड़े हुए हैं, जहाँ से उन्हें अपने जीने की राह दिखाई नहीं पड़ रही है। ऐसी विषम परिस्थितियों में अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए तथाकथित चालाक एवं षडयंत्रकारी लोग आदिवासियों के हितैषी बनकर इनके बीच आते हैं। आदिवासी हमेशा से ही प्रकृति पूजक रहे है, जो सरना धर्म को मानते है। जबसे गैर-आदिवासी (दिकू) इनके बीच पैठ कर गए तो अपने स्वार्थों के लिए कोई इन्हें हिंदू बनाना चाहता है, तो कोई ईसाई बनाना चाहता है, जिससे इनमें धार्मिक उन्माद पैदा कर बरगलाया जा सके। इनके बीच ये लोग आकर धर्मांतरण करने के लिए दबाव डालते हैं। उन्हें बताया जाता है कि इन सभी कष्टों को ईश्वर ही दूर कर सकता है। बस्तर-बस्तर उपन्यास के धर्मांतरण की इसी प्रक्रिया का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'हमारे गाँव में भी एक मास्टर हेमला जी आते रहते हैं। घर-घर में उन्होंने फोकट में कलेंडर भी बाँटे, जिसमें सलीब पर टँगे ईसा मसीह की फोटो है। वो कहते हैं, प्रभु ईसा मसीह की प्रार्थना ही सबको दुख से बचा सकती है। मतलब प्रभु ईसा मसीह ही सबसे बड़े हैं। हमारे गाँव में तो दो-तीन महारा आदिवासी भी हैं। वो तो हमारे देवताओं के साथ बुद्ध भगवान को भी मानते हैं, और उन्हीं को सबसे बड़ा भी!'[4] आदिवासी इन तथाकथित लोगों के षड्यंत्र को समझ नहीं पाते हैं। इससे पहले ही हिंदू धर्मावलंबी भी इनके बीच आकर अपने धर्म को श्रेष्ठ बताकर इन निरीह भोले-भाले लोगों को भ्रमजाल में लेकर अपनी और आकर्षित करते हैं। 'रग्घू, हम आदिवासियों को देवी माता तो दंतेश्वरी है, मावली माता है। इनके सामने ही हनुमानजी की मूर्ति को जो माता से सौ गुना बड़ी है, क्यों खड़ा किया गया है? इससे हमारी देवीमाता बहुत छोटी लगने लगी है? कौन करता होगा ये सब खेल? बस्तर में क्या जगह की कमी है, जो हमारे देवस्थानों में ही चुनौती की तरह हमारे देवों को छोटा दिखाया जा रहा है? लगता है, हमारे देवी-देवता भी हम आदिवासियों की तरह भोले, गरीब और असहाय रह गए हैं।'[5] इस भाँति गैर-आदिवासी लोगों के प्रवेश ने सबसे पहले इन आदिवासियों के ऊपर सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक हमला किया, जिससे इनकी आदिवासियत की विचारधारा को खत्म कर तथाकथित कुसंस्कृति की ओर आकर्षित कर इन्हें विखंडित कर कमजोर किया जा सके, जिसमें ये पूरी तरह सफल होकर इनके बीच घुसपैठ कर गए।

ऐसे सुनियोजित षड्यंत्र के साथ विकास का नारा देकर अब आदिवासी इलाकों पर कब्जे करना प्रारंभ कर दिया। आज तक आदिवासी जल, जंगल, जमीन निर्भर होकर इन्हें बिना नुकसान पहुँचाए अपने रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा कर आजीविका चला रहे थे। इन तथाकथित दिकू लोगों

ने दूसरा हमला विकास के नाम पर इनकी इसी आजीविका पर किया। अब जंगल की रक्षा के नाम पर जंगल के ठेकेदार इनके बीच पहुँच चुके थे। जो आदिवासी आज तक जंगल को बिना नुकसान पहुँचाए अपनी जरूरतों को पूरा कर रहे थे। उन्हें अब जंगल में सूखी लकड़ी बटोरने, खाने के फल बटोरने के लिए ही वन नियमों का हवाला देकर उन्हें परेशान किया जाने लगा था। इसी बीच जंगल के ठेकेदारों का प्रवेश हो चुका था। जिनकी निगाहें इनके सस्ते श्रम पर तो थी ही साथ ही उनकी औरतों और लड़कियों पर थी जो लगातार इनके साथ बदसलूकी करने लगे थे। 'वह वनरक्षक (जो मानवरक्षक नहीं था) नहीं माना। उसकी नजर हिड़मा की उघड़ी छातियों से होते हुई, समूचे तन पर तनी हुई थी। एक साँवली-सुडौल, जवान हिरनी उसके सामने कुलाँचे भरकर भागने को तैयार, मगर अभी मजबूर! उसे भारी पड़ रहा था अपने बुजुर्गों की चेत को बिसारना-हिरना, समझबूझि वन चरना। वनरक्षक ने एक हाथ से हिड़मा की कलाई पकड़ी और दूसरे हाथ से उसके बालों में खोंसे गए चार पड़ियाओं को निकाल फेंका। फिर वही किया जो उसकी मर्जी थी।'[6] इतना सब कुछ होने के बावजूद आदिवासी सहन करने के लिए विवश हो गया। इनके आजीविका के स्रोतों पर गैर-आदिवासी लोगों ने सरकार एवं प्रशासन की मिलीभगत से कब्जा कर लिया है। आखिर ऐसी स्थिति में थे ये भोले भाले आदिवासी जाए तो कहाँ जाए। यह सवाल आज तक भी अनुत्तरित है।

आदिवासी बहुल्य इलाकों में ऐसे अनगिनत सवाल सुलग रहे हैं, जिनको लेकर आदिवासी आज भी उलझन में हैं। ऐसे में आदिवासी जब अपने अधिकारों की बात करता है तो विकास के ये तथाकथित ठेकेदार सरकार और प्रशासन के साथ षड्यंत्र रचकर इन आदिवासियों को विकास विरोधी, देशविरोधी और यहाँ तक की आतंकवादी घोषित कर इन्हें समाप्त करने के लिए खड़े हो जाते हैं। एक तरफ अपनी आजीविका के लिए उपजे संकट से त्रस्त हैं, वहीं दूसरी तरफ अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को लेकर चिंतित है। ऐसे हालातों में नक्सलवादी भी इस षड्यंत्र में शामिल होकर आदिवासी हितैषी होने का दावा कर इनके बीच खड़े हो जाते हैं। अब यहीं से शुरू हो जाता है आदिवासी जीवन का संघर्ष। सरकारें और प्रशासन इन्हें आतंकवादी घोषित कर ऑपरेशन ग्रीन हंट और सलवा जुडूम जैसे जुमले खड़े करते हैं जो सही मायने में आदिवासियों को समाप्त करने की एक साजिश है। 'बस्तर-बस्तर' उपन्यास में ऐसे ही षड्यंत्र का पर्दाफाश किया जाता है। जब आदिवासी इलाकों में नक्सलवाद की गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं जो प्रशासन उन्हें समाप्त करने के लिए सुरक्षा बलों और पुलिस प्रशासन का पुख्ता इंतजाम करती है। 'बस्तर के जंगलों में आदिवासियों से ज्यादा तो पुलिस के फौजी जवान दिखाई देते हैं। इनको यहाँ रखने पर जितना खर्च होता होगा उतने से तो आदिवासियों का चार गुना विकास हो जाता है और होता ऐसा तो नक्सल समस्या खत्म हो जाती।'[7] सरकार ने अपने इस सरकारी तंत्र से नक्सलवाद की समस्या जब खत्म होती नजर नहीं आती है तो वे 'सलवा जुडूम' जैसे संगठन को खड़ा करती है। जिसमें नक्सलवादियों से लड़ने के लिए स्थानीय आदिवासी नौजवानों को भर्ती कर दिया जाता है। ये आदिवासी नौजवान अपने ही आदिवासी भाई-बहिनों को नक्सलवादियों की मदद करने के बहाने मारते हैं। ये सरकार का दूसरा षड्यंत्र है जो नक्सलवाद की समस्या को कितना हल कर पाएगा ये तो नहीं कहा जी सकता। हाँ, ये जरूर है कि आदिवासियों को जरूर आमने-सामने कर मरने को छोड़ दिया गया। 'जब पुलिस फेल हो जाती है और नक्सलवादियों का विद्रोह रोका ना जा सका, तो सरकार और प्रशासन ने आदिवासियों को ही अंतत: एक-दूसरे के खिलाफ 'सलवा जुडूम' के माध्यम से खड़ा कर दिया।'[8] ये सरकार और नक्सलवादियों की लड़ाई के बीच में अंतत: मरना आदिवासी को ही पड़ता है।

नक्सलवाद के नाम पर सरकार और प्रशासन से आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल कर कैंपों मे ले जाना चाहती है। वहीं नक्सली सरकारी ठिकानों को निशाना बनाते हैं। नक्सलवाद 'सलवा जुडूम' को सरकारी दलाल मानते है, सरकार नक्सलियों को आतंकवादी, राष्ट्रविरोधी करार देती है। परंतु इन दोनों के बीच में पिस तो आदिवासी ही रहे हैं। आलोच्य उपन्यास में ऐसे ही कड़वे सच का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'इसे (सलवा जुडूम) को स्वस्फूर्त अभियान कहा जा रहा है, मगर यह सरकार द्वारा प्रायोजित है। 'सलवा जुडूम' के बहाने सरकार उद्योगपति और व्यापारी आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन पर कब्जा जमाना चाहते हैं। लोगों को गाँव घरों से निकालकर सड़क के किनारे कैंपों में मवेशियों की तरह भर रखा है।...सत्ता पूँजीपतियों की दलाल हो गई है।'[9] दूसरी तरफ सरकार नक्सवादियों से रक्षा के लिए पुलिस और सलवा जुडूम के माध्यम से आदिवासी इलाकों को खाली करवाने का ऐलान किया जाता है। ऐसा नहीं करने वालों को सजा मिलेगी, वही नक्लवादियों का आदेश है कोई गाँव नहीं छोड़ेगा। परिणामस्वरूप दोनों तरफ से तानाशाही फरमान जारी कर दिए जाते हैं। जबरदस्ती दोनों तरफ से होती है। नक्सली सलवा जुडूम के अध्यक्ष मासा कोर्राम और सलवा जुडूम के लोग दूसरे लोगों के घरों में आग लगा देते हैं। जान बचाने के लिए घर से बाहर निकलने पर गोली मार दी जाती है। ऐसी स्थिति में गाँव वालों के साथ कई लोग जलकर भस्म हो जाते हैं। उपन्यास के पुरुष पात्र हूंगा को गोली मार दी जाती है। नक्सली लिबास पहनाकर उसके पास बंदूक रखकर नक्सलियों का एरिया कमांडर घोषित किया जाता है। पुलिस के अनुसार अशिक्षित आदिवासी हूंगा के पास प्रचुर मात्रा में नक्सली साहित्य मिलता है। उसके छोटे से बालक के पास खिलौने वाली बंदूक को असली बताकर उसे भी गोली मार दी जाती है। उधर हूंगा के बेटी इरमा के साथ बलात्कार किया जाता है। 'सुरक्षाबल के जवानों ने इरमा के शरीर को खूब नोच-कचोट डाला था। उसके साथ बहुत से जवानों ने दुष्कर्म किया था, कि वह लगभग मर चुकी थी। अब दुष्कर्म में उसके छोटे भाई को अवरोधक समझ, उसे गोली से उड़ा दिया था।'[10] शोषण की ऐसी मार झेलने के बाद अंतत: इरमा नक्सली बन जाती है। अब इरमा से कामरेड सीता होकर अपने साथ हुए अन्याय से बदला लेने के लिए आतुर हो जाती है। 'अब तो वह सलवा जुडूम और इसको चलाने वाले, संरक्षण देने वाले सभी के प्रति रणचंडी बनी फिरती है।'[11] ऐसी अकेली इरमा ही नहीं न जाने कितनी आदिवासी युवक युवतियाँ हैं। जिनकी जिंदगी, सरकार व नक्सलियों के इस लुका छिपी के खेल में नारकीय बन जाती है।

उपन्यासकार ऐसे सच को अभिव्यक्त करता है। जिसका किसी से कोई लेना-देना नहीं है। सिर्फ आदिवासी ही इनके बीच में पिसता है। आदिवासी एक तरफ सरकार, प्रशासन व ठेकेदार के गठजोड़ से परेशान है, वही दूसरी तरफ नक्सलीवाद की समस्या से त्रस्त है। इनकी स्थिति इधर गिरे को कुआँ उधर गिरे तो खाई जैसी हो गई है। इन सबके बीच भोले-भाले निरीह आदिवासी-जन पिसते जा रहे हैं। वे विस्थापित होने के लिए अभिशिप्त है साथ ही मरने के लिए विवश भी। 'दंडकारण्य छत्तीसगढ़ किसी का घर स्थायी नहीं होता। लोग यहाँ बसते है उजड़ने के लिए।'[12] दूसरी तरफ 'इन दो पाटन के बीच में पिसता बस्तरिया मानुष उलझन में किधर जाए।'[13] आज कमोवेश पूरे छत्तीसगढ़ के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र बस्तर की यही स्थिति है।

अंतत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आदिवासी बाहुल्य इलाकों में प्रशासन और सरकार के सहयोग से गैर-आदिवासी (दिकू) लोगों के प्रवेश से इनके स्वच्छंद जीवन और संस्कृति एवं परंपराओं पर हमला हुआ है, परिणामस्वरूप आदिवासियों का मजबूत पक्ष अब

चरमराने लगा है। वहीं दूसरी ओर प्रशासन एवं सरकार तथा ठेकेदारों के गठजोड़ ने विकास के नाम पर इनके जीवन का आधार जल, जंगल, जमीन पर अधिकार कर मूलनिवासी बाशिंदों को विस्थापित होने को मजबूर कर दिया है। शेष काम सत्ता और प्रशासन के भ्रष्टाचारी दृष्टिकोण व पुनर्वास-संबंधी नीतियों को लागू करने में पूरा कर दिया है, जिससे इनका जीवन समाप्त होने के कगार पर है। ऐसी विषम परिस्थितियों में नक्सली इनके हितैषी होने का दावा कर इनके बीच घुसपैठ कर गए तथा इन भोले-भाले लोगों को बरगलाकर सत्ता, प्रशासन और वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के खिलाफ खड़ा कर देते हैं। यदि इनके आदेश को नहीं माना जाता है तो आदिवासियों के साथ अत्याचार करते हैं। यदि साथ दिया तो प्रशासन के लोग नक्सलियों का साथ देने के आरोप में मारते हैं। दोनों ही स्थितियों में मरना आदिवासियों को ही पड़ता है। 'बस्तर-बस्तर' उपन्यास में आदिवासी जीवन के ऐसे ही कटु यथार्थ को अभिव्यक्त किया गया है जिससे आज आदिवासियों का इन परिस्थितियों में जीना दुष्कर हो गया है।

संदर्भ

1. सं० स्नेहलता नेगी, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, वर्ष-2021, पृ० 98
2. लोकबाबू, बस्तर-बस्तर (उपन्यास), राज्यपाल एंड सन्स, दिल्ली, वर्ष 2021, पृ० 15
3. छत्तीस का खेल और बस्तर के आदिवासी (आलेख), डॉ० शिवचंद प्रसाद, वाङ्मय अंक पृ० 17
4. लोकबाबू, बस्तर-बस्तर (उपन्यास), राज्यपाल एंड सन्स, दिल्ली, वर्ष 2021, पृ० 147
5. वही, पृ० 146
6. वही, पृ० 11
7. वही, पृ० 211
8. वही, पृ० 163
9. वही, पृ० 284
10. वही, पृ० 280
11. वही, पृ० 280
12. वही, पृ० 100
13. वही, पृ० 263

H-444, Vivek Vihar Yojana,
Near Kudi Dashara Maidan,
Jodhpur - 342005
Mob. 9414991400
kuldeepjnvu@gmail.com

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन

सौम्या परौहा एवं स्वाति जैन
आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़

प्रस्तावना–उपभोक्ता किसी भी व्यवसाय के लिए बहुत ही महत्त्वूपर्ण व्यक्ति होता है। उपभोक्ता व्यापारियों से उनके जरूरत के अनुसार सामान खरीदते हैं। उपभोक्ता अपनी आवश्यकता के अनुसार सामान के एवज में विक्रेता को मूल्य अदा करते हैं। किसी भी व्यापारिक संस्था में उपभोक्ता को सर्वोपरि माना जाता है तथा व्यापारिक क्रियाओं के नियोजन में उपभोक्ता की माँग एवं आवश्यकताएँ मुख्य केंद्रबिंदु होते हैं। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग करता है, यह क्रिया उपभोग कहलाती है तथा वस्तु का प्रयोग करने वाला उपभोक्ता कहलाता है। यह घरेलू, व्यापारिक, वर्तमान, भावी, ग्रामीण, शहरी, धनी, निर्धन, मध्यवर्गीय, बाल, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, पुरुष, स्त्री आदि कोई भी हो सकते हैं।

साधारण शब्दों में उपभोक्ता द्वारा प्रयोग की जाने वाली उत्पाद क्रय प्रक्रिया को उपभोक्ता व्यवहार कहा जाता है। विपणन की संपूर्ण प्रक्रिया उपभोक्ता के ही चारों ओर घूमती है। उपभोक्ता जानता कि वे क्या खरीद रहा है? और क्यों खरीद रहा है? कहा जा सकता है कि आज का उपभोक्ता अधिक जागरूक है, परंतु भोगवादी प्रवृत्ति तथा नित्य प्रति बढ़ रही आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण उपभोक्ता का शोषण भी हो रहा है।

शिफमैन एवं कनुक के अनुसार, 'उपभोक्ता व्यवहार वह अनुभाग है जो प्रबंधकों को यह बताता है कि उपभोग की वस्तुओं पर व्यय करने के निर्णय के पीछे क्या मंशा है। ये केवल यह सिद्ध नहीं करता कि विनिमय किया गया है बल्कि यह भी दर्शाता है कि कहाँ, कब, क्यों और कितनी बार विनिमय किया गया है।'

उपभोक्ता अपने निवासित क्षेत्र के अनुसार शहरी एवं ग्रामीण उपभोक्ता के रूप में विभाजित किया जाता है। अपनी आय, आर्थिक स्थिति, मनोस्थिति, परम्परा तथा व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर शहरी और ग्रामीण उपभोक्ताओं के व्यवहार में स्पष्टत: अंतर देखा जा सकता है। उपभोक्ता व्यवहार की विशेषताओं को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

1. **विपणन अवधारणा का मूलाधार**–यह उपभोक्ता व्यवहार की पहली विशेषता है। सम्पूर्ण विपणन प्रक्रिया उपभोक्ता के व्यवहार के इर्द-गिर्द ही घूमती है।

2. **मानव व्यवहार का अंग**–उपभोक्ता व्यवहार मानव व्यवहार का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है जिसका सीधा संबंध वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय से है।

3. **मानसिक चिंतन**–उपभोक्ता व्यवहार की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता में मानसिक चिन्तन को शामिल किया जाता है, जिसके अंतर्गत उपभोक्ता के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले

विचारों, उद्वेगों, तरंगों एवं अवधारणाओं का अध्ययन किया जाता है।

4. **व्यापक प्रक्रिया**–उपभोक्ता व्यवहार एक अधिक व्यापक प्रक्रिया है जिसके भीतर अनेक प्रश्नों का हल खोजा जाता है, जैसे उपभोक्ता क्या खरीदता है? उपभोक्ता कब खरीदता है? उपभोक्ता कौन है? आदि।

5. **गत्यात्मक क्रिया**–उपभोक्ता व्यवहार की यह क्रिया स्थायी न होकर निरंतर बदलती रहती है। उदाहरण के लिए आज जो वस्तु उपभोक्ता खरीदता है, यह निश्चित नहीं कि वह आगे चलकर भी वहीं वस्तु या वस्तुओं को खरीदेगा। जब उपभोक्ता बाजार में बहुत प्रकार के उत्पादों को देखता है तो उसका मन चलायमान होने लगता है।

6. **अनिश्चितता का तत्त्व**–उपभोक्ता व्यवहार में अनिश्चितता का गुण निहित रहता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि उपभोक्ता किसी निश्चित समय पर अमुक व्यवहार करेगा।

समस्या शीर्षक–शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य–(1) जिला सतना के शहरी क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन करना। (2) जिला सतना के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना–जिला सतना के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध परिसीमा–प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश के जिला सतना की तहसील मैहर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार से परिसीमित किया गया है।

शोध अभिकल्प–शोध प्रारूप शोध की संपूर्ण रूपरेखा तैयार करने की एक विधि है, जिसमें शोध उद्देश्यों, प्रविधियों, प्रदत्त संकलन की विधियों, उनके विश्लेषण तथा सांख्यिकीय गणना की विधियों का प्रारूप तैयार किया जाता है।

न्यादर्श–प्रस्तुत अध्ययन हेतु जिला सतना की तहसील मैहर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्र में रहने वाले 30-30 उपभोक्ताओं को न्यादर्श रूप में चयनित किया गया है। न्यादर्श के चयन हेतु यादृच्छिक चयन-प्रणाली का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण–प्रस्तुत अध्ययन के लिए न्यादर्शों से प्रदत्तों के संकलन हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया है।

सांख्यिकीय विधि–प्रस्तुत शोध में सांख्यिकीय परीक्षण में मध्यमान, सह-संबंध, केन्द्रीय प्रवत्तियों एवं टी-परीक्षण को शामिल किया गया है।

सारणी क्रमांक 1

जिला सतना के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का सांख्यिकीय विश्लेषण

विवरण	N	M	Sd	SEM	SED	t-value
शहरी उपभोक्ता	30	16.83	1.80	0.33	0.489	14.9429
ग्रामीण उपभोक्ता	30	9.53	1.98	0.36		

Df = N1+N2-2=58

p<.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

प्रदत्तों का विश्लेषण–सारणी क्रमांक-1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि जिला सतना के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का सांख्यिकीय विश्लेषण के अंतर्गत जिला सतना के शहरी क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 16.83, माध्य विचलन 1.80 तथा माध्य मानक त्रुटि 0.33 है जबकि जिला सतना के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार से संबंधित प्राप्तांकों में मध्यमान 9.53, माध्य विचलन 1.98 तथा माध्य मानक त्रुटि 0.36 है। विश्लेषण से प्राप्त होता है कि जिला सतना के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का सांख्यिकीय विश्लेषण में माध्य मानक विचलन 0.489 तथा टी-मूल्य 14.9429 पाया गया है जो $p < .05$ सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–सारणी क्रमांक-1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि जिला सतना के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का सांख्यिकीय विश्लेषण के अंतर्गत जिला सतना के शहरी क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार, आमद एवं व्यय के अनुसार उच्च पाए गए हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार निम्न पाए गए है। इस प्रकार शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार में अंतर पाया जाता है अतएव पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना 'जिला सतना के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार में कोई सार्थक अंतर नहीं है' को अस्वीकार किया जाता है।

संदर्भ

1. भारत सरकार कार्यनीति योजना 2011-2015, उपभोक्ता मामले विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली
2. एच॰एन॰ गिरी, कंज्यूमर्स क्राइम्स एंड द लॉ, आशीष पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, 1987, पृ॰ 76
3. डी॰एन॰ गुर्टू, माइक्रोइकोनोमिक्स, कालेज बुक डिपो, जयपुर 2004
4. ललितमोहन जोशी, नवीनकुमार सिन्हा, वीरेंद्रनाथ मिश्र, उपभोक्ता के अधिकार : एक विवेचन, उपभोक्ता अध्ययन केंद्र, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली
5. एस॰के॰ए॰ जैन, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम एवं नियम, वाधवा लॉ हाउस, ग्वालियर 2009

Mob. 7000294169
iesphd22@gmail.com

कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण के प्रति बी॰एड्॰ में अध्ययनरत छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ॰ अंकुर शर्मा
सहायक प्राध्यापक बी॰एड्॰

शिक्षा मानव-विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मनुष्य के जन्म से प्रारंभ हो जाता है। बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद ही उसके माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य उसे सुनना और बोलना सिखाने लगते हैं। जब कुछ बड़ा हो जाता है तो उसको उठने-बैठने, चलने-फिरने, खाने-पीने तथा सामाजिक आचरण की विधियाँ सिखाई जाने लगती हैं। जब वह तीन-चार वर्ष का होता है तो उसे पढ़ना-लिखना सिखाने लगते हैं। इसी आयु में उसे विद्यालय के साथ-साथ परिवार एवं समुदाय में भी कुछ-न-कुछ सिखाया जाता है और सीखने-सिखाने का यह क्रम विद्यालय छोड़ने के बाद भी चलता रहता है और विस्तृत रूप में देखें तो किसी समाज में शिक्षा की यह प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने-सिखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है।

कोरोना शब्द का अर्थ और इस वायरस की शुरुआत—लैटिन भाषा में कोरोना का अर्थ मुकुट होता है और इस वायरस के कणों के चारों तरफ उभरे हुए काँटे जैसा ढाँचा होता है जो इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में मुकुट जैसा दिखाई देता है, जिसके आधार पर इसका नाम रखा गया था।

कोरोना वायरस महामारी की शुरुआत मध्य चीन के वुहान शहर में हुई। बहुत से लोगों को बिना किसी कारण निमोनिया होने लगा और यह देखा गया की पीड़ित लोगों में से अधिकतर लोग वुहान सी फूड मार्केट में मछलियाँ बेचते थे तथा जीवित पशुओं का भी व्यापार करते थे चीनी वैज्ञानिकों ने बाद में कोरोना वायरस की एक नई नस्ल की पहचान की जिसे 2019-एनकोव नाम दिया गया। इस नए वायरस में वही जिनोम अनुक्रम पाए गए जो सार्स-कोरोना वायरस में पाए गए थे। संक्रमण का पता लगाने के लिए एक विशिष्ट नैदानिक पीसीआर परीक्षण का विकास किया गया जिसमे कई मामलों की पुष्टि उन लोगों में हुई, जो सीधे बाजार से जुड़े हुए थे। 20 जनवरी 2020 को चीनी प्रीमियर ली केकियांग ने नावेल कोरोना वायरस के कारण फैलने वाली निमोनिया महामारी को रोकने और नियंत्रित करने के लिए निर्णायक और प्रभावी प्रयास करने का आग्रह किया।

2019-20 कोरोना वायरस महामारी चीन से 30 जनवरी 2020 को भारत में फैलने की पुष्टि हुई थी इस स्थिति को देखते हुए भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा 24 मार्च 2020 में लॉकडाउन की घोषणा की गई, जिसकी वजह से स्कूल एवं कॉलेजों में भौतिक रूप से शिक्षण कार्य प्रतिबंधित हो गया। सभी शिक्षण-संस्थाएँ बंद हो गईं तथा सत्र की सभी परीक्षाओं को स्थगित कर दिया गया, जिसके कारण शिक्षण कार्य बुरी तरह से प्रभावित हुआ। शिक्षणकार्य को यथावत्

बनाये रखने के लिए ऑनलाइन कक्षाओं का संचालन कराया गया।

इसमें एनजीओ, फाउंडेशन और निजी क्षेत्र की तकनीकी शिक्षा कंपनियों को भी भागीदार बनाया गया। इन सबने मिलकर शिक्षा प्रदान करने के लिए संवाद के सभी उपलब्ध माध्यमों का इस्तेमाल शुरू किया। इसमें टीवी, डीटीएच चैनल, रेडियो प्रसारण, व्हाट्सऐप और एसएमएस ग्रुप और प्रिंट मीडिया का भी सहारा लिया गया। कई संगठनों ने तो नए अकादमिक वर्ष के लिए किताबें भी वितरित कर दीं। स्कूली शिक्षा की तुलना में देखें तो उच्च शिक्षा का क्षेत्र इस नई चुनौती से निपटने के लिए बहुत ही कम तैयार था।

ऑनलाइन एजुकेशन–आज ऑनलाइन शिक्षा, शिक्षा का एक ऐसा माध्यम बन गया है, जिसके माध्यम से बच्चे घर बैठे ही अपने अध्यापक से इंटरनेट से जुड़कर देश के किसी भी कोने या प्रांत में रहकर पढ़ सकते हैं शिक्षक और विद्यार्थी अपने सुविधानुसार चुनाव करके ऑनलाइन जुड़ जाते हैं तथा शिक्षक स्काइप, व्हाट्सएप, गूगल मीट और जूम वीडियो कॉल आदि के माध्यम से बच्चों को आसानी से पढ़ा सकते हैं।

समायोजन–समायोजन दो शब्दों से मिलकर बना है सम तथा आयोजन, सम का अर्थ है भली-भाँति, अच्छी तरह या समान रूप से तथा आयोजन का अर्थ है व्यवस्था करना अत: समायोजन का अर्थ हुआ सुव्यवस्थित ढंग से परिस्थियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया जिससे व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो सके।

समस्या का परिचय–कोरोनाकाल के दौरान शिक्षक-शिक्षा (बी॰एड॰) पाठ्यक्रम के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं को ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन करने में समस्याओं का सामना करना पड़ा है क्योंकि बी॰एड्॰ पाठ्यक्रम एक प्रैक्टिकल पाठ्यक्रम है इसलिए ऑनलाइन रूप से शिक्षण प्राप्त करने में छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं को पर्याप्त समस्याओं का सामना करना पड़ा।

इस समस्या को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध किया गया है-कोरोनाकाल में ऑनलाइन शिक्षण के प्रति बी॰एड्॰ में अध्ययनरत छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अध्ययन की आवश्यकता व महत्त्व

1. बी॰एड्॰ के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं में तकनीकी प्रयोग के प्रति जागरूकता के स्तर को जानना।
2. बी॰एड्॰ स्तर पर उपलब्ध ई कंटेंट की गुणवत्ता की जाँच करना।
3. ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं में उपलब्ध ज्ञान के स्तर की जाँच करना।
4. कोविड-19 के दौरान बी॰एड्॰ में अध्ययनरत छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के ऑनलाइन अध्ययन के अनुभव की जाँच करना।
5. कोविड-19 के दौरान छात्र-अध्यापकों और छात्र-अध्यापिकाओं के ऑनलाइन अध्ययन पर विश्वास की जाँच करना।

प्रस्तुत शोधकार्य का उद्देश्य निम्न प्रकार है–

1. बी॰एड्॰ के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन की वर्तमान स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. ग्रामीण क्षेत्र के बी॰एड्॰ स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षा से समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

3. शहरी क्षेत्र के बी॰एड्॰ स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

4. कला वर्ग के बी॰एड्॰ स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5 विज्ञान वर्ग के बी॰एड्॰ स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन प्रशिक्षण से समायोजन की वर्तमान स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. शहरी क्षेत्र के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

3. ग्रामीण क्षेत्र के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

4. कला वर्ग के बी॰एड्॰ स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

5. विज्ञान वर्ग के बी॰एड्॰ स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध कार्य में परिसीमाएँ

1. यह शोधकार्य चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त बी॰एड्॰ के महाविद्यालयों के छात्र-छात्राओं पर किया गया है।

2. यह शोधकार्य केवल मेरठ जिले के छात्र-अध्यापकों और छात्र-अध्यापिकाओं पर किया गया है।

3. यह शोधकार्य केवल ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन को लेकर किया गया है।

अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया–प्रस्तुत शोध हेतु सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

अनुसंधान के संदर्भ में समष्टि–प्रस्तुत शोधकार्य में समग्र से आशय मेरठ शहर के बी॰एड्॰ कॉलेज के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं से है।

प्रतिदर्श–प्रस्तुत शोधकार्य के लिए न्यादर्श का चुनाव मेरठ शहर के कुछ बी॰एड्॰ कॉलिज के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं को लिया गया है। इसमें छात्र-छात्राएँ समष्टि है तथा अध्ययन के लिए चयनित छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं न्यादर्श है।

प्रतिचयन विधि–प्रथम स्तर पर मेरठ जिले के समस्त विद्यालयों की सूची में से यादृच्छिक न्यादर्श व लॉटरी विधि के द्वारा विद्यालयों का चयन किया गया।

द्वितीय स्तर पर Online.google.form के माध्यम से प्रश्नावली तैयार की गई तथा प्राप्त प्रतिक्रिया के आधार पर छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं में से प्रारंभ के 100 छात्र-अध्यापक व 100 छात्र-अध्यापिकाओं का चयन किया गया है।

समायोजन-मापनी का प्रशासन–शोधकर्ता ने मेरठ जनपद के बी॰एड्॰ कॉलेजों के छात्र-

छात्राओं को ध्यान में रखकर 200 छात्रों (100 छात्र व 100 छात्राओं) का न्यादर्श हेतु चयन किया।

इन सभी 200 छात्राओं से गूगल के माध्यम से समायोजन मापनी को भरवाया जिसमें ऑनलाइन समायोजन से संबंधित 40 प्रश्न दिए गए।

आँकड़ों का संग्रह एवं गणना–विद्यार्थियों से समायोजन प्रश्न के द्वारा दिए गए उत्तर के आधार पर ऑनलाइन शिक्षण समायोजन से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त की गई तथा इन प्रतिक्रियाओं के आधार पर अंकों का चार्ट बना लिया गया। इन प्राप्तांकों का विश्लेषण काई वर्ग परीक्षण के आधार पर किया गया।

शोधकार्य के संपादन के पश्चात् प्रमुख निष्कर्ष

1. बी०एड्० छात्र-छात्राओं के ऑनलाइन शिक्षण समायोजन में सार्थक अंतर नहीं है।

2. शहरीक्षेत्र के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

3. ग्रामीण क्षेत्र के छात्र-अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

4. कलावर्ग के बी०एड्० स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

5. विज्ञानवर्ग के बी०एड्० स्तर के छात्र-अध्यापकों व छात्र-अध्यापिकाओं द्वारा कोरोना काल में ऑनलाइन शिक्षण से समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सुझाव : अनुसंधान कार्य चाहे किसी में हो कुछ न कुछ कमियाँ रह जाना स्वाभाविक है। कोई भी अनुसंधानकर्ता अपने में पूर्ण नहीं होता कभी-कभी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि अनुसंधानकर्ता चाहते हुए भी अनुसंधानकार्य नहीं कर पाता, इस अनुसंधान में भी कुछ कमियाँ रह गई हैं जिसके कारण कुछ सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

1. प्रस्तुत शोध के अंतर्गत शोधकर्ता ने केवल मेरठ जनपद से ही न्यादर्श का चयन किया है। इसी विषय पर अन्य जनपदों के बी०एड्० विद्यालयों का चयन प्रतिदर्श के लिए किया जा सकता है।

2. प्रस्तुत शोधकार्य का संपादन 200 छात्रों (100 छात्र व 100 छात्राओं) के प्रतिदर्श पर किया गया है, जबकि अग्रिम अनुसंधानकर्ता विस्तार रूप से अधिक लोगों को अपने अध्ययन का न्यादर्श बना सकता है।

3. प्रस्तुत शोध में मेरठ के सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी व स्व:वित्तपोषित बी०एड्० कालेजों का तुलनात्क अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ

1. ए०बी० भटनागर, मीनाक्षी भटनागर और अनुराग भटनागर, शैक्षिक एवं मानसिक मापन
2. आर०ए० शर्मा, शिक्षा मापन के मूल तत्त्व
3. एस०पी० सिंह और एस० चंद, सांख्यिकी सिद्धांत एवं व्यवहार
4. आर०ए० शर्मा, शिक्षा के तकनीकी आधार
5. ए०के० सिंह, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ
6. कपिल एच०के०, अनुसंधान विधियाँ

शोधपत्र

1. कारसेन केरिला और मरिया असुनकाओं क्लोरेस, 2. सुमित्रा पोखरेल और रोशन घेती

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ॰ भावना यादव
विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी, उच्च शिक्षा
सागर संभाग सागर (म॰प्र॰)

राजनीति विज्ञान में राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में भारतीय विचारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जहाँ प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतकों द्वारा राजनीतिक अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया वहीं आधुनिक युग में सामाजिक-राजनीतिक चिंतन की विभिन्न विचारधाराओं ने राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया। जिसमें राज्य और समाज व्यवस्था के संबद्ध में मौलिक चिंतन का सृजन तो हुआ ही साथ ही भारतीय और पश्चिमी विचारधारा के सम्मिश्रण से भी नवसृजन हुआ। राजनीतिक चिंतन की वर्तमान तक की विचार यात्रा में विकसित चिंतन विषय में सैद्धांतिक पक्ष के साथ-साथ समाज को प्रभावित करने वाले कारकों और लक्ष्यों को अपने में समहित किए हुए है। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय राजनीतिक चिंतन के विकास के कई महत्त्वपूर्ण कारणों में भारत की परतंत्रता, स्वधीनता का संघर्ष, अतीत का गौरव, पश्चिम की विचारधारा, सामाजिक विषमता और जटिलताएँ, भारतीय परंपराएँ आदि रहे हैं। इसी विकास क्रम में काँग्रेस की स्थापना और उसमें भी उदारवाद, उग्रवादी चिंतन विकसित हुआ। जिसमें लाल, बाल, पाल, बोस, गांधी, नेहरू, अंबेडकर आदि ने अपने राजनीतिक चिंतन को विकसित कर व्याहारिक रूप प्रदान किया।

बाल गंगाधार तिलक उन भारतीय विद्वानों में से एक हैं जो केवल अपने राजनीतिक विचारों के लिए नहीं वरन् सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राष्ट्रवादी विचारों के लिए जाने जाते हैं। तिलक का जन्म 23 जुलाई 1856 को महाराष्ट्र के रत्नागिरी गाँव में हुआ था। विद्वान पिता और धार्मिक विचारों वाली माँ की प्रतिभा को तिलक ने विरासत में पाया था। तिलक का नाम था गंगाधर परंतु बचपन में स्नेह से उन्हें 'बाल' कहा जाता था। वे आरंभ से ही अद्‌भुत प्रतिभाशाली थे संस्कृत के सैकड़ों श्लोक उन्हें याद थे। 15 वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ। उन्होंने बी॰ए॰ 20 वर्ष की आयु में 1876 में और कानून की परीक्षा 23 वर्ष में आयु में 1879 में पास कर ली।

जब तिलक से किसी मित्र ने यह पूछा कि तुम्हें गणित में अपनी सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करनी चाहिए थी तब उन्होंने सरल सा उत्तर दिया–'देश की सेवा के लिए गणित की नहीं वकालत से ज्ञान की आवश्यकता है।'[1]

'छात्रजीवन में तिलक पर अपने दो अँग्रेज शिक्षकों प्रोफेसर वर्ड सवर्थ तथा शूट का प्रभाव पड़ा। उन्होंने शूट से इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़ा। इसके साथ ही उन्हें पश्चिमी दार्शनिकों के तत्वज्ञान में भी अभिरुचि थी। अत: हेगल, कांट, ग्रीन, स्पेंसर, मिल, बेंथम, वाल्टेयर और रूसों के ग्रंथों का इन्होंने बड़े शौक से अध्ययन किया। पश्चिमी दर्शनिकों में संभवत: थामस हिल ग्रीन का प्रभाव उन पर सबसे अधिक पड़ा। अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'गीता रहस्य' में उन्होंने लिखा है कि मेरी युक्तियाँ ग्रीन द्वारा उनकी कृति 'इथिक्स' में प्रतिपादित युक्तियों से सादृश्यता रखती है।'[2]

उन्होंने वकालत को पेशे की तरह नहीं अपनाया वरन् सदैव राष्ट्रवाद के मार्ग पर चलते हुए

देश की सेवा में अपने जीवन को समर्पित करते हुए मात्र चौबीस वर्ष की आयु में 1880 में पूना से अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' पत्रों को प्रारंभ कर इनके माध्यम से आम जनमानस को जागरूक करते हुए उनमें राष्ट्रभक्ति की भावना पैदा कर जनता को अपने अधिकार और प्राचीन वैदिक इतिहास से अवगत कराया।

तिलक के विचारों में व्यावहारिक यर्थावाद था उन्होंने अपने जीवनकाल में विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न क्षेत्रों में अपने विचार व्यक्त किए। '1896 के सूखा में लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने की दिशा में आर्थिक मामलों से संबंधित अपने महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव रखे, जैसे स्थाई बंदोबस्त, वित्तीय विकेंद्रीकरण आदि।[3] वर्तमान में देश के आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण आधार पंचायतीराज है, जिसके माध्यम से वित्तीय विकेंद्रीकरण को संवैधानिक रूप से स्वीकार किया गया है।

तिलक ने बिखरे हुए हिंदू समाज को एकत्रित करने हेतु 'गणपति उत्सव' और 'शिवाजी उत्सव' को सार्वजनिक रूप से मानना प्रारंभ किया। उनके अनुसार धार्मिक उत्सव धार्मिक संस्कारों को तो जीवंत रखते ही हैं साथ ही नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक शिक्षण के प्रेरणास्रोत भी होते हैं। इन सार्वजनिक उत्सवों के माध्यम से उन्होंने भारतीय परंपराओं, मान्यताओं, और राष्ट्रवादी विचारों के प्रति आम जनमानस को जागरूक किया। आज भी भारत में कई सार्वजनिक उत्सव जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र के भेद को हटाकर संपूर्ण देश में मनाए जा रहे हैं, जो आम जनता में अपनी परंपराओं के प्रति श्रद्धा और देश के गौरवशाली अतीत के प्रति आस्था और समर्पण के भाव को पैदा करते हैं। तिलक ने केसरी और मराठा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। स्वतंत्र भारत में मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना गया है। आज भी मीडिया के माध्यम से आम जनता तक सूचनाओं, समाचारों, विचारों को पहुँचाया जा रहा है।

तिलक द्वारा दिया 'स्वराज्य' का विचार आज भी महत्त्वपूर्ण है। 'तिलक का स्वराज्य का विचार गीता के स्वधर्म के विचार पर आधारित था। स्वतंत्रता मनुष्यों का स्वभाविक जन्मसिद्ध अधिकार है और मनुष्य को उसे प्राप्त करने का हमेशा प्रयत्न करना चाहिए यदि कोई व्यक्ति स्वराज्य के लिए प्रयास नहीं करता तो वह अपने धर्म का पालन नहीं करता है।'[4] संक्षेप में स्वराज्य का आशय केवल इतना ही है कि भारत के शासन की समूची व्यवस्था भारतीयों द्वारा भारत के हितों का ध्यान रखते हुए की जाना चाहिए। तिलक ने 1916 में लखनऊ काँग्रेस अधिवेशन में 'स्वराज्य भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार है' मंत्र दिया। तिलक के लिए स्वराज्य का अर्थ केवल सत्ता का हस्तांतरण नहीं था अपितु जनता की भागीदारी था। तिलक 'लोकतांत्रिक स्वराज्य' के प्रतिपादक थे। 'तिलक ने स्वराज्य की माँग की उनके लिए स्वराज्य राजनीतिक, नैतिक और आध्यत्मिक तीनों ही क्षेत्रों में आवश्यक हैं। राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज्य का अभिप्राय स्व-शासन से है, नैतिक क्षेत्र में स्वराज्य का अर्थ आत्म निग्रह की पूर्णता प्राप्त करना है जो स्वधर्म के पालन के लिए आवश्यक है तथा आध्यात्मिक दृष्टि से स्वराज्य ध्यान द्वारा प्राप्त आनंद की प्राप्ति है। तिलक के शब्दों में अपने में केंद्रित और अपने पर निर्भर जीवन ही स्वराज्य है।[5] तिलक के अनुसार देश में किसी भी प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, और आध्यात्मिक प्रगति की पहली शर्त स्वराज्य है। साथ ही वे स्वराज्य को राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की नीब मानते थे। तिलक ने स्वराज्य को नैतिक कर्त्तव्य मानते हुए कहा था कि 'स्वराज्य एक अधिकार ही नहीं वरन् एक धर्म भी है।' तिलक द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के जो साधन उस वक्त बताए गए थे उनमें से

राष्ट्रीय शिक्षा और स्वदेशी का विचार आज भी प्रासंगिक है।

तिलक का विचार था कि 'पढ़ना लिखना सीख लेना ही शिक्षा नहीं है शिक्षा वही है जो हमें जीविकोपार्जन के योग्य बनाए, देश का सच्चा नागरिक बनाए, हमें हमारे पूर्वजों का ज्ञान और अनुभव दे।[6] तिलक पश्चिमी शिक्षा को भारतीयों के लिय अनुकूल नहीं मानते थे। उनके अनुसार पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बडा दोष था कि इसमें धार्मिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी न ही इसमें वैदिक और उपनिषद्कालीन शिक्षा के गौरवपूर्ण आदर्शों को स्थान दिया गया था। साथ ही पाश्चात्य शिक्षा भारतीयों को सिर्फ क्लर्क बना रही थी। उन्होंने उक्त दोषों को दूर करने हेतु अपने शिक्षा संबंधित विचारों में राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की आवश्यकता पर बल दिया जो भारतीय जनता को सस्ती, स्वस्थ, मातृभाषा में धार्मिक नैतिक, प्राचीन भारतीय गौरवाशाली इतिहास का समावेश करते हुए स्वावलंबन की भावना जगाने और प्राविधिक शिक्षा के माध्यम से आजीविका उपार्जन की क्षमता में वृद्धि करने पर आधारित हो। तिलक पहले ऐसे राष्ट्रीय नेता थे, जिन्होंने राष्ट्रभाषा के महत्त्व को समझा और देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारने का सुझाव दिया। वे राजनीतिक शिक्षा धार्मिक शिक्षा, एक भाषा एक लिपि के पक्षधर थे। तिलक शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण के विरोधी थे और भारतीय शिक्षा भारतीयों के अनुरूप हो इस हेतु प्रयासरत थे।

तिलक ने केसरी में लिखा कि 'हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल तना स्वराज्य है तथा स्वदेशी और बहिष्कार उसकी शाखाएँ हैं।' स्वदेशी ने ही स्वराज्य का मार्ग बनाया। तिलक का स्वदेशी आंदोलन जहाँ एक ओर आर्थिक आंदोलन था वहीं दूसरी ओर स्वेदशी देश प्रेम का प्रतीक बन गया और आम जनता ने भारतीय सामग्री का प्रयोग कर भारतीय उद्योगों में नए प्राण फूँक दिए। डॉ॰ गुप्ता के अनुसार, 'स्वदेशी एक युक्तियुक्त उपाय था, जिसके द्वारा उस नवीन भावना का प्रभावूर्ण प्रदर्शन हो सकता था, जिसकी शिक्षा तिलक तथा अन्य राष्ट्रवादी लोगों को देते थे।[7] आगे चलकर स्वदेशी का यह आंदोलन ही राष्ट्रीय पुनरूद्धार के आंदोलन में परिवर्तित हो गया। तिलक ने स्वदेशी की अवधारणा का उपयोग राजनीतिक अस्त्र के रूप में करते हुए इसे आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का प्रतीक बना दिया। उनके स्वदेशी आंदोलन के कारण ही मध्यम और साधारण वर्ग काँग्रेस से जुड़ता गया और राष्ट्रीय आंदोलन का क्षेत्र निरंतर व्यापक होता गया। स्वदेशी विचारधारा के परिणाम स्वरूप स्थानीय औघोगिक उत्पादन में वृद्धि हुई। स्वदेशी को उन्होंने आत्मनिर्भरता माना जिसके द्वारा न केवल देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी वरन् साथ ही देश के लोगों को रोजगार भी मिलेगा। तिलक ने स्वराज्य प्राप्ति हेतु स्वदेशी, बहिष्कार, निष्क्रिय प्रतिरोध, माँगने के स्थान पर संघर्ष और जनशक्ति को साधनों के रूप में बताया।

तिलक के अनुसार जनता में बड़ी शक्ति होती है, इसी जनशक्ति से शासक भयग्रस्त होते हैं। तिलक का मत था यदि जनता संगठित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो तो शासन जनता को संतुष्ट करने हतु प्रयास करेगा अन्यथा नहीं। तिलक के सभी विचार राष्ट्रवाद पर केंद्रित थे। वह सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों को परस्पर मिला देने के विरोधी थे। उनका मंतव्य था कि राजनीतिक प्रगति सामाजिक परिवर्तन के पहले होनी चाहिए। उनका यह भी कहना था कि सामाजिक परिवर्तन धीमी गति से होता है। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि सांस्कृतिक स्वायत्तता की रक्षा हम राजनीतिक अधिकारों के अभाव में नहीं कर सकते। उन्होंने यह भी कहा कि राजनीतिक सुधार के बिना सामाजिक सुधार संभव नहीं और न ही राष्ट्रीय सरकार के बिना राष्ट्रीय शिक्षा संभव

है और इस प्रकार हिंदु दर्शन के शाश्वत् मूल्यों का यह अधिवक्ता भारतीय राष्ट्रवाद का भी अग्रणी बना।[8]

समाज सुधार के विषय में 1890 में पुणे में उन्होंने कहा था कि 'आज समाज सुधार की बड़ी चर्चा है परंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमें जनता को सुधारना है अत: हमें जनसमूह से मिलकर रहना चाहिए। समाज में कुछ ऐसा सुधार नहीं करना है जिसे समाज के लोग स्वीकार करने को तैयार नहीं है। अत: सबसे पहले अपने को सुधारकर ही दूसरों को सुधार की प्रेरणा दें।' तिलक ने केसरी के माध्यम से पुराने सड़े-गले अव्यावहारिक रीति-रिवाजों को जनता स्वयं छोड़े इस हेतु प्रेरित किया। वे जन जागृति और जन सहयोग के माध्यम से समाजिक सुधारों को व्यावहारिक रूप देने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि बिना स्वीकृति के थोपे गए सुधारों को जनता स्वीकार नहीं करती परंतु यदि जनता को जागरूक कर दिया जाए तो वह स्वयं सुधार हेतु प्रयास करेगी। उन्होंने जन जागरूकता को समाज सुधार का आधार माना। तिलक ने बालविवाह, दहेजप्रथा, स्त्रियों को विरूप करने का विरोध किया तो विधवा-विवाह का प्रबल समर्थन किया। शराब पीने और बेचने के वे विरोधी थे। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया और भारतीय समाजसुधार भारतीयों द्वारा हो इसका प्रबल समर्थन किया। तिलक ने भारत के सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में नौकरशाही के दखल का विरोध किया। वास्तव में तिलक भारतीय स्वत्रंतता-आंदोलन के उन प्रभावशाली व्यक्तित्व में से एक थे जिन्होंने अपने यथार्थवादी, ओजस्वी, व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा विभिन्न आंदोलनों और समाज सुधार के माध्यम से भारत को स्वतंत्रता दिलाने हेतु एक दिशा प्रदान की। उनका संपूर्ण जीवन देशभक्ति हेतु समर्पित रहा। उन्होंने जन जागरूकता पर बल दिया। वर्तमान भारतीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में आज भी जन जागरूकता का महत्त्व बना हुआ है। तिलक द्वारा किए गए सामाजिक सुधार भारतीय समाज को उनके द्वारा दी गई दिशा थी जिन पर स्वतंत्रता उपरांत संवैधानिक प्रयास किए गए यथा अश्दृश्यता, दहेजप्रथा, बालविवाह आदि।

वास्तव में वर्तमान समय में राष्ट्रवाद की उभरती नई प्रवृत्तियों के सम्यक परिदृश्य में तिलक के विचारों की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है भारत में बढ़ता विदेशी आयत और स्वेदशी उद्योगों की बिगड़ती स्थिति के चलते तिलक के विचारों की प्रासंगिकता अत्यंत सुदृढ़शील हो जाती है। 2020 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मातृभाषा और भारतीय मूलबद्ध शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया है जो तिलक द्वारा उस समय दिया गया था। साथ ही तिलक रोजगारपरक, चरित्र निर्माण करने वाली धार्मिक, नैतिक, राष्ट्रवाद से ओतप्रोत शिक्षा के समर्थक थे जो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। वास्तव में मानववादी चिंतक के रूप में तिलक के विचार सामाजिक मूल्यों को प्रगतिशीतला प्रदान करने वाले रहे हैं।

तिलक के विचार भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर आधारित राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त करते हैं तिलक स्वराज्य राष्ट्रीय आंदोलन के ऐसे निर्भीक और तेजस्वी नेता रहे हैं जिनके विचार लोकतंत्रवादी और दृष्टि यथार्थवादी थी। वे जननेता और स्वराज्य के उद्घोषक थे। धनंजय कीर के अनुसार, 'तिलक भारत के सर्वप्रथम जननायक हैं' तिलक ने 'अपने तथ्यपरक, यथार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर अपना यह मत स्थिर किया कि राजनीतिक सुधार सामाजिक सुधारों से पूर्व हो, तथा राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के पश्चात स्वत: आ जाएगी।' डॉ॰ वर्मा ने उनकी राजनीतिक विचारण की उचित परिभाषा इन शब्दों में की है, 'उनका राष्ट्रवाद प्रजातांत्रिक यथार्थवाद

पर आधारित राष्ट्रवाद है'[9] तिलक सृजनात्मक अर्थ में 'भारत में असंतोष के जनक थे।' उन्होंने देश को नया जीवन, नई प्रेरणाएँ तथा नई दिशाई दी थीं ...वस्तुत: तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन को भावी दिशा, उपकरण, साध्य और कार्यक्रम विरासत में दिए हैं। वे एक राजनेता-मात्र न होकर स्वयं एक आंदोलन थे'[10] यही कारण है कि नेहरू ने उन्हें 'भारतीय राष्ट्रवाद का पिता' कहा। तो गांधी ने 'आधुनिक भारत का निर्माता कहा'। वास्तव में तिलक भारतीय राजनीति में गांधी के पूर्ववर्ती थे। गांधीजी ने तिलक के कहे विचारों को आगे बढ़ाया, यथा—शराबबंदी, बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा, अस्पृश्यता का विरोध आदि। वास्तव में तिलक अपने-आपमें एक विचारधारा थे, जिसका प्रवाह आज भी देश की विभिन्न नीतियों में देखने को मिलता है। उन्होंने एकता, अखंडता, राष्ट्रवाद और गौरवपूर्ण इतिहास, परंपराओं के पक्ष में जो विचार दिए, वे आज भी महत्त्वपूर्ण हैं और भविष्य के भारत-निर्माण में आवश्यक होंगे।

संदर्भ

1. डॉ॰ ए॰पी॰ अवस्थी, भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ॰ 156
2. डॉ॰ बी॰ चंद्र, आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, अनामिका पब्लि॰, नई दिल्ली, पृ॰ 196
3. डॉ॰ जी॰पी॰ नेमा, भारतीय राजनीतिक विचारक, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ॰ 26
4. डॉ॰ ए॰पी॰ अवस्थी, भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा पृ॰ 157
5. गोविंदप्रसाद शर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, म॰प्र॰ हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ॰ 59
6. बी॰एम॰ शर्मा, रामकृष्ण, सरिता, भारतीय राजनीतिक विचारक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ॰ 262
7. पवनकुमार, भारतीय राजनीतिक विचारक, ओमेगो पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ॰ 171-172
8. वही, पृ॰ 167
9. वही, पृ॰ 182
10. बी॰एम॰ शर्मा, रामकृष्ण, सरिता, भारतीय राजनीतिक विचारक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ॰ 267

Dr. Bhawana Yadav (OSD A.D. Office)
Government Arts And Commerce College,
Sagar 470001 M. P.
Mob. 740436000
pardeepsigroha100@gmail.com

हस्तिनापुर पुरातात्त्विक स्थल का प्रबंधन एवं चुनौतियाँ

प्रो० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
दीपक कुमार (शोध छात्र)
प्रा०भा० इति०, सं० एवं पुरातत्त्व विभाग,
गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखंड

परिचय—भारत प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के विषय में बहुत धनी और समृद्ध देश है। जिसके पास मनुष्य के उद्‌भव से लेकर विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय गतिविधियों वाले जमाव प्राप्त होते हैं, इसीलिए इनके संरक्षण, स्थान प्रबंधन और विकास की आवश्यकता पर समय-समय पर बल दिया गया है। इसमें मुख्य रूप से ऐतिहासिक परिदृश्य वाले पुरातात्त्विक स्थल और प्राकृतिक उद्यान प्रमुख हैं, जिन्हें प्राकृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक महत्त्व के रूप में भी देखा जाता है। इन स्थानों में हस्तिनापुर एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल हैं जो विभिन्न कालखंडों के इतिहास को अपने में समेटे हुए हैं।

हस्तिनापुर (29^0 09' 30'' उत्तर, 78^0 00' 23'' पूर्व) उत्तर प्रदेश में गंगा नदी के तट पर मेरठ से 36. 5 किमी की दूरी पर उत्तर पूर्व में स्थित है। यह नगर प्रारंभ में गंगा नदी के किनारे बसा था, लेकिन वर्तमान में यह नदी हस्तिनापुर से आठ किमी दूर प्रवाहित है। गंगा की पुरानी धारा, जिसे बूढ़ी गंगा के नाम से जाना जाता है, यहाँ के प्राचीन टीलों के समीप बहती है। इस स्थल के विषय में हमें सबसे प्रामाणिक जानकारी महाभारत से प्राप्त होती है। जिसके अनुसार हस्तिनापुर राज्य की उत्तरी सीमा शुक्रताल (जिला मुजफ्फरनगर), दक्षिणी सीमा पुष्पावती (पूठ, जिला बुलंदशहर), पश्चिमी सीमा वर्णावत (बरनावा, जिला बागपत) और इसकी पूर्वी सीमा गंगा नदी थी। मेरठ से 26. 5 किमी उत्तरपूर्व में स्थित मवाना (मुहाना) नामक गाँव को हस्तिनापुर शहर का प्रवेश द्वार कहा जाता था। वर्तमान समय में यह नगर एक मध्यम आकार का नगर है, जो नगर पंचायत हस्तिनापुर के नाम से जाना जाता है। यह नगर जैन संप्रदाय से जुड़े अनेक आधुनिक मंदिरों एवं संरचनाओं के कारण पर्यटन का आकर्षक केंद्र है। इसके साथ ही हस्तिनापुर के इतिहास से संबंधित पुरातात्त्विक अवशेष भी सभी का ध्यानाकर्षण करते हैं। हस्तिनापुर का साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक विवरण निम्न प्रकार है—

हस्तिनापुर की जानकारी का हमारे पास सबसे प्रामाणिक साधन महाभारत है। इसके साथ-साथ पुराणों एवं संस्कृत साहित्य से भी इस नगर के विषय में विशद जानकारी प्राप्त होती है। महाभारत के अनुसार हस्तिनापुर कुरु राज्य की राजधानी थी। जिसकी स्थापना राजा हस्तिन के द्वारा की गई थी, जो राजा दुष्यंत के वंश में उत्पन्न हुए थे। महाभारत के आदि पर्व में हस्तिनापुर को सभी नगरों में श्रेष्ठ बताया गया है—'वीरप्रसूता काशी, देशानाम् कुरुजांगलम्। सर्वधर्मविदा भीष्मः पुराणां गजसाह्वयम्।।' (महाभारत, आदिपर्व, 108/22)

अर्थात् वीर माताओं में काशी की कन्या, देशों में कुरुजांगल, धर्म के जानकारों में भीष्म

 ISSN 0975-735X

तथा नगरों में हस्तिनापुर प्रसिद्ध हैं। पुन: आदिपर्व में हस्तिनापुर के वैभव का सुंदर वर्णन करते हुए कहा गया है–'नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा। पांडवानागतांञ्छ्रुत्वा त्वा नागरास्तु कुतूहालात्, मंडयांचकिरेतत्र नगरं नागसाह्वयम।। मुक्तपुष्पावकीर्ण तज्जलसिक्तं तु सर्वशरू, घूषितं दिव्यघूपेन मंडनैश्चापि संवृतम्। पताकोच्छ्रितमाल्यमं च पुरमप्रतिमंबभौ, शंबभेरीनिनादैश्चनागवादित्रनिरू स्वनैरू।।

(महाभारत, आदिपर्व, 206/14 -15)

अर्थात् पांडवों के आगमन की सूचना पाकर हस्तिनापुर नगर के निवासियों ने कौतूहलवश संपूर्ण नगर को अलंकृत किया था। नगर के मार्गों पर पुष्प बिखरे हुए थे, जल का छिड़काव किया गया था, संपूर्ण नगर सुगंधित दिव्य धूप से महक रहा था, पताकाएँ फहराई गई थीं और ऊँचे गृहों को पुष्पहार से सजाया गया था। शंख, भेरी तथा विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों की ध्वनि इस अनुपम नगर की बड़ी शोभा बढ़ा रही थी। विष्णु पुराण में हस्तिनापुर से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। जिसके अनुसार–गङ्गायाऽपहृते अपि अस्मिन्नगरे नागसाहये। त्यक्त्वा निचक्षु नगरं कौशाम्व्यां सन्निवत्स्यन्ति। (विष्णुपुराण, 21/7-78)

अर्थात् जब गंगा की भीषण बाढ़ के कारण हस्तिनापुर बह गया तो जनमेजय के प्रपौत्र निचक्षु ने अपनी राजधानी हस्तिनापुर से हटाकर कौशांबी को बनाया था। इस कथन की पुष्टि पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी होती है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् बी॰बी॰ लाल ने जब हस्तिनापुर का उत्खनन कराया तो उन्हें चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति के स्तर से बाढ़ के प्रमाण मिले थे। जिसके आधार पर ही उन्होंने हस्तिनापुर के कालक्रम को निर्धारित करने का प्रयास किया था। इसके साथ ही हस्तिनापुर का उल्लेख संस्कृत साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं सिखों से संबंधित धर्मग्रंथों में भी मिलता है, जो इसके महत्त्व को स्थापित करता है।

हस्तिनापुर का पुरातात्त्विक महत्त्व–साहित्य के अतिरिक्त पुरातत्त्व-संबंधी साक्ष्यों से भी हस्तिनापुर के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। हस्तिनापुर पुरास्थल हड़प्पा सभ्यता के उपरांत बसने वाले उन प्रमुख स्थलों में से एक हैं जहाँ पर लगातार मानवीय गतिविधियों के अवशेष प्राप्त होते है। विभिन्न सांस्कृतिक जमाव वाले इस पुरास्थल ने हमेशा से ही पुराविदों का ध्यान आकर्षित किया है। हस्तिनापुर के पुरातात्त्विक महत्त्व और इसकी ऐतिहासिकता को जानने के लिए ही प्रो॰ बी॰बी॰ लाल के निर्देशन में वर्ष (1950-1952 ई॰) में पहली बार उत्खनन किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप पाँच सांस्कृतिक स्तर प्रकाश में आए थे। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

कालावधि 1 इस स्तर से गेरुए रंग के मृदभांड (OCP) पाए गए हैं, लेकिन ये संख्या में बहुत कम हैं। इस प्रकार के मृदभांड उत्तर भारत के विभिन्न स्थलों से भी प्राप्त हुए हैं जिनको गेरुए मृदभांड एवं ताम्रनिधि संस्कृति के नाम से संबोधित किया जाता है। लेकिन इस स्तर से मृदभांडों के इतने छोटे टुकड़े प्राप्त हुए हैं कि उनसे इनके स्वरूप का निर्धारण करना अत्यंत कठिन है।

कालावधि 2 इस स्तर से चित्रित धूसर मृदभांड (PGW) प्राप्त हुए हैं। ये मृदभांड महाभारत में वर्णित स्थलों के साथ-साथ उत्तर भारत के प्राय: सभी पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं। यह कालावधि भारत में लौहकाल के प्रारंभ की अवधि मानी जाती है। इसके अतिरिक्त इस स्तर से प्राप्त अवशेषों में लौह एवं अस्थि उपकरण, मृण्मूर्तियाँ तथा लाल एवं धूसर मृदभांड प्रमुख हैं। हस्तिनापुर पुरास्थल से बाढ़ के प्रमाण इसी कालखंड से प्राप्त हुए हैं।

कालावधि 3 एक अंतराल के पश्चात यह स्थल फिर से बसाया गया। इस स्तर से प्राप्त मृदभांडों में उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभांड (NBPW) प्रमुख हैं। इसे महाजनपदकालीन सभ्यता का

काल माना जाता है। कुरु प्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर इनमे एक प्रमुख नगर था। इस स्तर से प्राप्त सामर्गियों में विभिन्न प्रकार के रेखीय चित्रण एवं अलंकरण युक्त लाल मृदभांड, प्रलेप युक्त मृदभांड, पकी ईंटों की संरचनाएँ आवास, मृण्मूर्तियाँ, खिलौने, आहत मुद्राएँ एवं मुहर आदि प्रमुख हैं।

कालावधि 4 लगभग एक सदी के अंतराल के बाद इस स्थल को फिर से बसाया गया। इस स्तर से प्राप्त मृदभांडों में लाल रंग (Red ware) के मृदभांड प्रमुख हैं। इन मृदभांडों में कटोरे, थाल, मटकी, संग्रह पात्र, लोटा आदि प्रमुख हैं। यह कालखंड शुंग, कुषाण, सातवाहन एवं गुप्त काल का प्रतिनिधित्व करता है। इस स्तर से आवासीय संरचनाओं के अतिरिक्त पर्याप्त मात्रा में मुहरें, ताम्र तथा लौह निर्मित उपकरण प्राप्त हुए हैं जो तत्कालीन समय की धातुकला, व्यापार, उद्योग आदि की विकसित दशा को प्रतिबिंबित करते हैं।

कालावधि 5 इस स्तर से लाल रंग के बर्तन, चीनी मिट्टी के बर्तन (Porcelain) और शीशे का आवरण वाले बर्तन (Glazed pots), जली हुई ईंटें, लोहे के बर्तन, मृण्मूर्तियाँ और बलबन (1266-87 CE) का एक सिक्का प्राप्त हुआ है। यह स्तर राजपूत एवं सल्तनत कालीन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार हस्तिनापुर के पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक महत्त्व को इस उत्खनन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। लेकिन इस उत्खनन ने हस्तिनापुर के सांस्कृतिक पहलू को उन आख्यानों तक सीमित रखा जो आम नागरिक की पहुँच से बाहर थे। इसलिए इसके सांस्कृतिक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इसें वर्ष 2020 ई० में भारत सरकार द्वारा इसें भारत के पांच प्रतिष्ठित पुरास्थलों में शामिल किया गया तथा वर्ष 2022 ई० में इसका पुन उत्खनन किया गया। ताकि हस्तिनापुर के गौरवशाली इतिहास को जनता के समक्ष रखा जा सके। यद्यपि हस्तिनापुर में दोनों पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राप्त जानकारी एक समान है। लेकिन वर्तमान खुदाई के कारण हस्तिनापुर स्थल पर आनेवाले पर्यटकों की संख्या बढ़ गई है। चूँकि हस्तिनापुर पुरास्थल के विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं पुरातात्त्विक प्रमाण इस स्थान को महत्त्वपूर्ण बना देते हैं, इसलिए इस पुरास्थल का प्रबंधन आवश्यक हो जाता है ताकि इसे भविष्य की पीढ़ी के लिए सुरक्षित किया जा सके। हस्तिनापुर पुरास्थल के प्रबंधन के संदर्भ में निम्न समस्याएँ एवं समाधान इस प्रकार से हैं–

हस्तिनापुर पुरास्थल प्रबंधन–पुरास्थल प्राचीन संस्कृति से जुड़ी हुई पुरावस्तुओं के बहुमूल्य भंडार होते हैं। उनसे प्राप्त पुरावस्तुओं के अध्ययन से किसी भी राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता के विविध पक्षों की समुचित जानकारी प्राप्त होती है। यही कारण है कि यह शिक्षा एवं मनोरंजन के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के ज्ञानवृद्धि हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं, इसीलिए पुरास्थलों का संरक्षण एवं प्रबंधन एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। प्रबंधन के अभाव में अमूल्य पुरास्थल सदैव के लिए नष्ट अथवा लुप्त हो सकते हैं इसीलिए पुरास्थल प्रबंधन कार्य में उपेक्षा अथवा उदासीनता बरतना सार्वजनिक कर्त्तव्य में एक गंभीर त्रुटि मानी जाती है। इक्कीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुरास्थलों को संरक्षित करने की भावना को समुचित गति प्रदान हुई हैं, जबकि इससे पूर्व इस संबंध में पुरास्थल प्रबंधन की आवश्यकता पर कभी भी गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया। यदि देखा जाए तो भारतीय भूभाग में हजारों की संख्या में पुरास्थल है जिनकी देखभाल एवं रखरखाव का उत्तरदायित्व भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग एवं राज्य पुरातत्त्व विभाग पर है। इन हजारों पुरास्थलों में से हस्तिनापुर भी एक महत्त्वपूर्ण पुरास्थल है, जो

 ISSN 0975-735X

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के अधीन संरक्षण में है। चूँकि यह पुरास्थल पाँच प्रतिष्ठित पुरास्थलों में से एक है, इसलिए इसके समग्र विकास एवं प्रबंधन पर ध्यान देना अति आवश्यक है। वर्तमान समय में हस्तिनापुर पुरास्थल के संरक्षण में अनेक बाधाएँ है जो इसके प्रबंधन की चुनौतियाँ प्रस्तुत करती है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

घटते संसाधन बढ़ती जनसंख्या–भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्य आवश्यकता एवं आपूर्ति की माँग निरंतर बढ़ती ही जा रही है। निवासस्थानों की कमी के कारण ऐसे स्थान को बहुत जल्दी से निशाना बनाया जाता है जहाँ पर किसी प्रकार के प्राचीन अवशेष तथा भग्नावशेष आदि पाए जाते हैं। सरकारी संस्थाओं की शिथिलता के कारण यह क्षेत्र शीघ्र ही नवीन आवासीय क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है जिसके कारण प्राचीन धरोहर के आसपास तथा उसके परिक्षेत्र में विभिन्न गतिविधियाँ होने लगती हैं। इसी कारण हस्तिनापुर पुरास्थल की पश्चिम-दक्षिण दिशा में मानवीय गतिविधियों के कारण यह पुरास्थल काफी स्थानों से नष्ट हो चुका है। यद्यपि इस पुरास्थल की सुरक्षा के लिए भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के द्वारा समय-समय पर आवश्यक कदम भी उठाए हैं, जैसे सुरक्षा प्राचीर, प्रवेश द्वार का निर्माण, तारबंदी तथा सुरक्षा कर्मी की तैनाती आदि। लेकिन ये प्रयास बहुत अधिक प्रभावकारी नहीं हो पाए हैं, इसलिए इसके प्रबंधन के लिए एक समग्र नीति का निर्धारण करना अत्यंत आवश्यक है।

जागरूकता का अभाव–भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं उसकी उपलब्धियों के कारण संपूर्ण विश्व में पहचाना जाता है। इसके महत्त्व और प्राचीनता के अनेकों उदहारण उपलब्ध है। लेकिन यह एक सामान्य तथ्य है कि भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग अभी भी शिक्षा जैसे मुलभुत सुविधाओं से दूर है, जिसके कारण उनकों अपनी प्राचीन विरासत के विषय में बहुत ही अल्प मात्रा में ज्ञान होता है तथा वे उसके सांस्कृतिक महत्त्व से अनभिज्ञ रहते हैं। जिसके कारण उनका जुड़ाव ऐसे स्थलों से कम ही रहता है और वे उनको सुरक्षित रखने के बजाए उनका उपयोग कृषि कार्यों, औद्योगिक गतिविधियों, आयोजनों, व्यसन स्थान के रूप में करने लगते हैं। हमारे पास ऐसे अनेक उदहारण हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि जागरूकता और जानकारी के अभाव में किस प्रकार महत्त्वपूर्ण पुरास्थल नष्ट एवं विलुप्त हो चुके हैं।

विधिक शिथिलता–भारत के संविधान के अनुच्छेद अनुच्छेद 51 ए, (मूल कर्त्तव्य/खंड, च) में स्पष्टतया उल्लेख किया गया है कि हमें किस प्रकार अपने प्राचीन धरोहर एवं सभ्यता को सुरक्षित करना है और उसके लिए हमारे क्या उत्तरदायित्व है? लेकिन भारतीय कानून संहिता की लंबी प्रक्रियाओं ने हमारे बहुत से पुरास्थलों नष्ट कर दिया गया है। जब तक कानूनी प्रक्रिया पूर्ण होती है तब तक बहुत से पुरास्थल अतिक्रमण के संपर्क में आ चुके होते हैं। हस्तिनापुर पुरास्थल परिक्षेत्र में भी बहुत से भवनों, धर्मशालाओं एवं मंदिरों का निर्माण हो चुका है जबकि प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 की धारा 24 व प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1959 की उपधारा 32 के अनुसार यह पूर्णत निषेध है। तात्कालिक कार्यवाही के अभाव में यह सब विनिर्माण किया जा चुका है। स्थानीय प्रशासनिक सहयोग का अभाव भी इसमें मुख्य भूमिका का निर्वहन करता है।

मानव संसाधन की कमी–जैसा कि ऊपर वर्णित है कि भारत में हजारों की संख्या में ऐसे पुरातात्त्विक स्थल हैं जिनका परिरक्षण अति आवश्यक है। इन पुरास्थलों के संरक्षण एवं प्रबंधन के लिए व्यापक स्तर पर ऐसे मानव संसाधन की आवश्यकता है जो प्रशिक्षित एवं कुशल हो। इस

संदर्भ में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के पास पूर्णरूप से प्रशिक्षित ऐसेमानव संसाधनों की कमी है, जो पुरातात्त्विक स्थलों के देखरेख, सुरक्षा एवं प्रबंधन का कार्यकुशलता के साथ कर सकें। अतः प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव में पुरास्थल प्रबंधन की समस्या उत्पन्न होती है, जिसके कारण अनेक ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उस पुरास्थल के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा कर देती हैं।

समुचित जलप्रबंधन का अभाव–प्राचीनकाल से ही यह स्थल गंगा नदी के तट पर स्थित होने के कारण बाढ़ से काफी प्रभावित रहा है, जिसका उल्लेख विष्णु पुराण में भी मिलता है। वर्तमान समय में भी यहस्थल गंगा के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में स्थित होने के साथ-साथ मानसूनी क्षेत्र में आता है। जिसके कारण इस स्थल का समुचित जल प्रबंधन होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि जब वर्षा काल आरंभ होता है तब जल का प्रवाह अनेक पुरातात्त्विक जमाव को नष्ट करते हुए बहता है। इस पुरास्थल पर भी वर्षा के जल के कारण अनेक स्थानों पर गहरी जल प्रवाहिका बन गई है जो पुरास्थल के जमाव को नष्ट करने का प्रमुख कारण बन गई है।

अनावश्यक मानवीय गतिविधियाँ–चूँकि यह पुरास्थल उत्तर प्रदेश के वन प्रभाग अंतर्गत आता है, जिसके कारण यह क्षेत्र अनावश्यक मानवीय गतिविधियों का केंद्र बन गया है। इन गतिविधियों में शराब का सेवन, धूम्रपान, अनैतिक पूजा-पाठ आदि क्रियाएँ सम्मिलित हैं। इन गतिविधियों के कारण इस पुरास्थल पर पर्याप्त मात्रा में प्लास्टिक, धातु एवं काँच की वस्तुएँ बिखरी हुई मिलती हैं जो सांस्कृतिक अनुक्रम एवं पुरास्थल के लिए बहुत ही हानिकारक तत्त्व हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित समस्याओं के कारण इस पुरास्थल के प्रबंधन में गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं, जिनका समाधान निम्न स्तर पर किया जा सकता है–

कानूनी रूप से कठोर कार्रवाई–भारतीय संविधान एवं विधि संहिता में प्राचीन धरोहर की सुरक्षा हेतु अनेक अधिनियमों का उल्लेख किया गया है। लेकिन इस स्थल की सुरक्षा हेतु उनका कठोरता से अनुपालन अति आवश्यक है ताकि इस क्षेत्र को अतिक्रमणों एवं अनावश्यक गतिविधियों से मुक्त कराया जा सके। इसके लिए भारतीय दंड संहिता में प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 1958 तथा प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 1959 (संशोधित) प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 2010 बनाए गए हैं जिनके आधार पर कठोर कार्यवाही की जा सकती है।

प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति–हस्तिनापुर पुरास्थल पर प्रशिक्षित कर्मचारी एवं अधिकाधिक सुरक्षाकर्मियों की नियुक्ति सुनिश्चित की जानी चाहिए, लेकिन यदि प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव है तब इस स्थिति में नियुक्त अप्रशिक्षित कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए समय-समय पर संरक्षण, सुरक्षा एवं प्रबंधन विषयों पर आधारित कार्यशाला तथा प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना चाहिएँ चूँकि प्रशिक्षित कर्मचारी पुरास्थल से जुड़ी हुई प्रबंधन समस्याओं को आसानी से समझ लेते हैं इसलिए पुरास्थल प्रबंधन में होने वाली समस्याओं का निदान वे आसानी से कर सकते हैं। इसी के साथ अधिकाधिक सुरक्षाकर्मियों की नियुक्ति से भी पुरास्थल पर होने वाली अनावश्यक गतिविधियों पर भी विराम लगेगा।

जनजागरूकता अभियान चलना–सरकारी एवं गैरसरकारी स्तर पर जन जागरूकता अभियान चलाकर स्थानीय नागरिकों, पर्यटकों एवं छात्र-छात्राओं को हस्तिनापुर के गौरवशाली इतिहास और पुरातत्त्व से अवगत कराना अत्यंत आवश्यक है ताकि जनसामान्य में अपनत्व की

 ISSN 0975-735X

भावना का विकास हो सके। इसके लिए समय-समय पर कार्यशालाएँ, प्रदर्शनियाँ, प्रतियोगताएँ एवं रैली आदि कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को जाग्रत किया जाना चाहिए। इसके साथ ही हस्तिनापुर में अनेक ऐसे आयोजन होते हैं, जिसमें आसपास के गाँव के लोग बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं। अत: ऐसे अवसरों पर हस्तिनापुर पुरास्थल के विषय में प्रचार-प्रसार कर उसके बचाव के विषय में जनजागरूकता फैलाई जा सकती है। विद्यालयस्तर पर भी छात्रों के मध्य जाकर उनको हस्तिनापुर के गौरवशाली इतिहास से अवगत कराना चाहिए, ताकि वे इस पुरास्थल के संरक्षण में अपना योगदान दे सके।

अन्य उपाय–इसके अतिरिक्त इस स्थल के समुचित रखरखाव हेतु नागरिक सुविधाओं यथा पेयजल, शौचालय, व्याख्यान केंद्र तथा आवश्यक दिशा-निर्देशों हेतु सूचनापट्ट की व्यवस्था करना भी अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ ही संरक्षित क्षेत्र का रेखांकन एवं इसकी सुरक्षा हेतु चारदीवारी अथवा तार-बाढ़ की व्यवस्था करना भी अति आवश्यक है ताकि इस क्षेत्र का मौलिक स्वरूप यथावत सुरक्षित रखा जा सके।

निष्कर्ष–इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि हस्तिनापुर हमारी प्राचीन विरासत का एक महत्त्वपूर्ण पुरास्थल है। जिससे हमारी सांस्कृतिक, पुरातात्त्विक, राजनीतिक तथा धार्मिक भावनाएँ जुड़ी हुई हैं। अत: उसके प्रबंधन में उत्पन्न उपर्युक्त चुनौतियों को दूर करके उसके बचाव हेतु प्रयास करना चाहिए, जिसका समाधान केवल राजकीय स्तर पर ही नहीं अपितु नागरिक स्तर पर भी करना अत्यंत आवश्यक है। आज हमारे बहुत से गाँव तो पुरास्थलों पर ही बस गए हैं। निरंतर नए-नए निर्माण हमारी धरोहर को समाप्त कर रहे हैं, हस्तिनापुर पुरास्थल तो इसका एक उदाहरण मात्र है। इस क्रम में ऐसे बहुत से पुरास्थल हैं जिनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है, उदाहरण के लिए हुलास, सिनौली का आवासीय क्षेत्र, चंदायन, तिलवाड़ा साकिन, आलमगीरपुर, बालैनी, पुरामहादेव, सैनी, मवाना, बरसूमा आदि पुरास्थल नाम मात्र के ही शेष बचे हैं। वास्तव में विभागीय शिथिलता और जागरूकता का अभाव ऐसी स्थिति को जन्म देता है। जबकि इसके विपरीत विश्व में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जहाँ लोगों ने अपनी विरासत के बचाने के लिए आंदोलन तक किए हैं। लेकिन भारत जैसे विशाल देश में जनसंख्या दबाव तथा संसाधनों का अभाव एक बड़ा कारण है जो इन समस्याओं को बढ़ावा देता है। यद्यपि वर्तमान समय में हस्तिनापुर पुरास्थल पर पर्यटन विकास की दृष्टि से कुछ कार्य किए गए हैं जिससे इस पुरास्थल की स्थिति में मामूली सुधार हुआ है परंतु अभी भी इनके प्रबंधन में बहुत से कार्य करने की आवश्यकता है जो अन्य पुरास्थलों के लिए मार्गदर्शक बन सके।

संदर्भ

1. महाभारत, (2010), गीता प्रेस, गोरखपुर
2. विष्णुपुराण, (2010), गीता प्रेस, गोरखपुर
3. ज्योतिप्रसाद जैन, (1956), उत्तर प्रदेश, शिक्षा विभाग, हस्तिनापुर
4. वीरेंद्रकुमार तिवारी, (2011), प्राचीन भारतीय स्मारकों का संरक्षण, तकनीकी एवं प्रविधियाँसविता शक्ति प्रकाशन, लखनऊ
5. पूनम देवी, (2016), युगयुगीन हस्तिनापुर (अप्रकाशित शोधग्रंथ), चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
6. नैना पांडेय, (2008), उत्तर भारत में द्वितीय नगरीकरण, कला प्रकाशन, वाराणसी

7. विजयेंद्र कुमार माथुर, (1968), ऐतिहासिक स्थानावली (वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
8. कृष्णकांत शर्मा, (2014), मेरठ जनपद के पर्यटन स्थल, मेरठ
9. दीपककुमार राय, (2008), मध्य गंगाघाटी में मृदभांड परंपराओं का अध्ययन, कला प्रकाशन, वाराणसी
10. बी॰बी॰ लाल, (2013), महाभारत की ऐतिहासिकता, साहित्य, कला और पुरातत्त्व के साक्ष्य, आर्यन बुक इंटरनेशनल, नई दिल्ली
11. हेनरी क्लेयर, (1984), एप्रोच टू द आर्कियोलॉजिकल हेरिटेजरू कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ वर्ल्ड कल्चरल रिसोर्स मैनेजमेंट सिस्टम, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
12. हेनरी क्लेयर, (1989), आर्कियोलॉजिकल हेरिटेज मैनेजमेंट इन मॉर्डन वर्ल्ड, अनविन हाइमन, लंदन
13. हेस्टर डेविस, (1993), पब्लिक आर्कियोलॉजी फोरम, जर्नल ऑफ फील्ड आर्कियोलॉजी, 499-505
14. जोंग एच॰ लिम, (2005), आर्कियोलॉजिकल साइट मैनेजमेंट प्लानिंग फोकस ऑन ए स्टडी ऑफ मैनेजमेंट गाइडलाइन्स फॉर ह्वार्गियोंग टेम्पल (अप्रकाशित शोध-प्रबंध), पेंसिलवेनिया, पेंसिलवेनिया यूनिवर्सिटी
15. विभा त्रिपाठी, (1976), द पेंटेड ग्रे वेयर, एन आयरन एज कल्चर ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली
16. विभा त्रिपाठी, (2012), द राइज ऑफ सिविलाइजेशन इन द गंगेटिक प्लेन, इन द कॉन्टेक्स्ट ऑफ पेंटेड ग्रे वेयर, आर्यन बुक इंटरनेशनल, नई दिल्ली

Devendra Gupta,
Dept. of Ancient Indian History,
Culture & Archaeology,
Gurukula Kangri (deemed to be) University,
Haridwar 249404 Uttarakhand
Mob. 8218857438
purattatva@gmail.com

भारत में पंचायतीराज व्यवस्था की यात्रा : एक ऐतिहासिक अवलोकन

डॉ॰ धीरज सिंह खाती
असि॰ प्रो॰ राजनीति विज्ञान
रा॰स्ना॰ महा॰ बेरीनाग, पिथौरागढ़

भारत में पंचायतीराज व्यवस्था का इतिहास काफी पुराना है। ऋग्वेद में 'ग्रामणी' नामक पद का उल्लेख मिलता है।[1] जिससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि वह तत्कालीन ग्राम का प्रमुख था। बौद्ध साहित्य में भी कहीं-कहीं ग्राम परिषद् का उल्लेख है, जिसका कार्यभूमि-संबंधी एवं न्यायिक व्यवस्था करना था। इसके अतिरिक्त मौर्यकाल, गुप्तकाल व मुगलकाल में किसी-न-किसी रूप में पंचायतों का उल्लेख मिलता है। उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र में भी चंद राजा सोमचंद के समय से ही पंचायतीराज व्यवस्था का उल्लेख मिलता है।[2] पंचायतीराज व्यवस्था को औपचारिक रूप से संगठित करने का कार्य ब्रिटिश शासन काल में ही किया गया। सर्वप्रथम 1864 में भारत सरकार के प्रस्ताव द्वारा स्थानीय स्वशासन को मान्यता प्रदान की गई। 1870 में लार्ड मेयो ने पंचायतों को कार्यात्मक एवं वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने की दिशा में अपनी परिषद् में प्रस्ताव पारित किया। 'इस प्रस्ताव के संबंध में वायसराय काउंसिल के वित्त सदस्य सैमुअल लैग ने कहा था कि 1857 के विद्रोह के कारण इंपीरियल वित्तीय व्यवस्था पर भरपूर दबाव पड़ा तथा यह जरूरी समझा गया कि स्थानीय कराधान से ही स्थानीय सेवाओं हेतु वित्त व्यवस्था की जाए। अत: मजबूरी के कारण स्थानीय सरकार-संबंधी लार्ड मेयो का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।'[3] यदि इसे ब्रिटिश सरकार की मजबूरी भी मान लिया जाए तो भी यह स्थानीय स्वाशासन के लिए एक निर्णयकारी कदम था। लार्ड मेयो के बाद लार्ड नार्थब्रुक और लार्ड लिटन वायसराय बने। 1880 में लार्ड रिपन भारत के वायसराय बने जो अपने स्वभाव से उदारवादी माने जाते थे। उनके कार्यकाल में ही 'स्थानीय स्वशासन की दिशा में सबसे सराहनीय कार्य हुआ। 18 मई 1882 को स्थानीय स्वशासन-संबंधी एक कानून बनाया गया जिसके आधार पर विभिन्न प्रांतों में 1883 से 1885 के मध्य स्वशासन-संबंधी कानून बनाए गए। लार्ड रिपन ने यह व्यवस्था की कि प्रत्येक स्थान पर स्थानीय शासन की इकाइयाँ स्थापित की जाए तथा सबसे छोटी इकाई एक ताल्लुका बोर्ड हो। सभी नगरों में म्यूनिसिपल बोर्ड की स्थापना की जाए और जिलों में जिला बोर्ड स्थापित किए जाए।'[4] 1907 में ब्रिटिश रॉयल कमीशन का गठन किया गया जिसने 1909 में दिए अपने प्रतिवेदन में विकेंद्रीकरण का समर्थन किया। 'इस आयोग में अँग्रेज सदस्य पाँच थे तथा भारतीय सदस्य केवल एकमात्र रमेशचंद्र दत्त थे फिर भी इस आयोग ने भारतीय संदर्भ में पंचायतों के महत्त्व को समझा।'[5] स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अखिल भारतीय काँग्रेस ने भी अपने 25वें अधिवेशन में पंचायतीराज व्यवस्था की आवश्यकता पर जोर दिया। ब्रिटिशकाल में हुए स्थानीय स्वशासन की स्थापना के लिए किए गए प्रयास उतने अधिक कारगर सिद्ध न हो सके। पंचायतों के पुनर्गठन के लिए

वास्तविक प्रयास स्वतंत्रता के बाद ही हो सके।

उत्तर प्रदेश भारत का वह प्रथम राज्य है, जिसने सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश पंचायतीराज अधिनियम 1947 पारित किया जो आंशिक संशोधनों के उपरांत आज भी लागू है। भारतीय संविधान के निर्माण के पश्चात पंचायतीराज व्यवस्था को संविधान के नीतिनिदेशक तत्त्वों में सम्मिलित किया गया। संविधान के अनुच्छेद 40 के अनुसार 'राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।'[6] संविधान में वर्णित नीतिनिदेशक तत्त्व बाध्यकारी तो नहीं हैं परंतु संविधान निर्माण के समय यह कहा गया कि इन्हें लागू करना राज्य का कर्त्तव्य है। 1952 में भारत में ग्रामीण विकास की संकल्पना को साकार करने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की गयी। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण जनसमुदाय का उत्थान करना, उन्हें वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करके जीवनस्तर को बेहतर बनाना था परंतु थोड़े समय बाद ही इसके क्रियान्वयन में दिक्कतें महसूस की जाने लगीं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने मूलभूत उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रहा था। 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम के समय ऐसा अनुभव किया गया कि लोगों की सहभागिता के बिना ग्रामीण समुदाय का पुनर्निर्माण संभव नहीं है और वह सहभागिता केवल पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।'[7]

सामुदायिक विकास कार्यक्रम में बहुत अधिक धन खर्च करने के बाद इसके मूल्यांकन के लिए एक अध्ययन दल 1957 में गठित किया गया। जिसके अध्यक्ष बलवंत राय मेहता थे। इस समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की विस्तृत जाँच करने के बाद यह पाया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सफल न होने के पीछे प्रमुख कारण इसमें जनता का अपेक्षित सहयोग नहीं होना है। उन्होंने सुझाव दिया कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण जनता से जुड़ा है अत: इसके कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में ग्रामीण जनता को भी भागीदार बनाना आवश्यक है। बलवंत राय मेहता समिति ने संविधान के नीति निदेशक तत्त्वों को संदर्भित करते हुए कहा कि इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पंचायतीराज संस्थाओं की तत्काल शुरुआत की जानी चाहिए। बलवंत राय मेहता समिति ने लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के लिए तीन स्तरीय पंचायत राज व्यवस्था की सिफारिश की जिसमें ग्राम स्तर पर ग्रामपंचायत, मध्य स्तर पर पंचायत समिति, जिलास्तर पर जिला पंचायत की स्थापना की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त इन सभी स्तरों पर शक्ति और उत्तरदायित्व का उचित हस्तांतरण, पंचायतों को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराना और पंचायतों को पर्याप्त अधिकार दिया जाना, इन तीनों स्तरों द्वारा अपने दायित्वों के निर्वाह हेतु उचित वित्तीय साधन प्रदान किए जाने चाहिए। मेहता समिति के प्रतिवेदन के बाद भारत के अधिकांश राज्यों में पंचायतीराज संस्थाओं के गठन के लिए अधिनियम पारित किए गए। राजस्थान भारत का पहला राज्य था जिसने अपने यहाँ पंचायतीराज व्यवस्था की स्थापना की इसका उद्‌घाटन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा गांधी जयंती के उपलक्ष्य में 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर में किया गया। 1959 में आंध्र प्रदेश ने भी पंचायतीराज व्यवस्था को लागू कर दिया। देश में लगभग 14 राज्य/ संघशासित प्रदेशों में त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था की शुरुआत की गई। इस दौरान पंचायतों द्वारा कार्यकाल पूर्ण करने के बाद कई राज्यों द्वारा पंचायतों के पुन: निर्वाचन ही नहीं कराए गए और ये संस्थाएँ पुन: निष्क्रिय अवस्था की ओर चली गईं। इस दौरान केंद्र में सत्ता-परिवर्तन हुआ और जनता पार्टी की सरकार का गठन हुआ। इनके द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं को एक नया रूप देने के लिए 1977 में

अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने पंचायतीराज व्यवस्था के लिए एक नया मॉडल प्रस्तुत किया। समिति ने पंचायतीराज व्यवस्था को संस्थात्मक रूप देने के लिए जो सिफारिशें की उनमें प्रथम, जिला परिषद् सशक्त बने एवं ग्राम पंचायत के स्थान पर मंडल पंचायत की स्थापना की जाए। इस प्रकार पंचायतीराज व्यवस्था दो स्तरों की हो। द्वितीय, ग्राम पंचायत के स्थान पर जिले को विकेंद्रीकरण की धुरी माना जाए, जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन का कार्य करे एवं निचले स्तर को मार्गनिर्देशन का कार्य करे। तीसरी, मंडल पंचायत का गठन गाँवों को मिलाकर होगा। उन्होंने इसे 15000 से 20000 की जनसंख्या पर गठित करने की सिफारिश की। चतुर्थ, पंचायतें, समिति प्रणाली के आधार पर कार्य करेंगी। पाँचवाँ, इनके निर्वाचनों में राजनीतिक दलों को चुनाव चिह्नों के आधार पर भाग लेने की स्वीकृति दी जानी चाहिए। अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को भी तत्काल लागू नहीं किया जा सका और केंद्र में जनता पार्टी की सरकार के स्थान पर पुनः इंदिरा गाँधी की सरकार आ गई, जिसने अशोक मेहता समिति की सिफारिशों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। तत्कालीन समय में यदि पंचायतीराज संस्थाओं की ओर दृष्टिपात किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि बहुत से प्रदेशों में वह कई कारणों से कमजोर और अप्रभावी हो गई थी, जिनमें प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. उनकी उपयोगिता के बारे में प्रशासकीय और राजनीतिक संस्थाओं की ओर से पूरे विश्वास की कमी।
2. उच्चस्तरीय राजनीतिक संस्थाओं की ओर से प्रतिस्पर्द्धा, दुश्मनी और द्वेष की भावना।
3. सरकार और राजनीतिक नेतागण जैसे विधायक, सांसद और राज्य व केंद्रीय सरकारों की ओर से प्रोत्साहन की कमी।
4. पंचायतीराज संस्थाओं की शक्तियाँ और जिम्मेदारियों की भागीदारी में प्रशासकवर्ग का विरोध।
5. वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों की कमी।
6. चुनाव करवाने में विलंब करना।
7. प्रादेशिक सरकारों द्वारा अपर्याप्त आधार पर इन निकायों को भंग करना।
8. जातीय आधार और पार्टी आधार पर गुटबंदी का लगातार विद्यमान रहना।
9. राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता में कमी तथा पंचायतीराज संस्थाओं के सदस्यों के मध्य उचित प्रशिक्षण और अपने अस्तित्व की सही स्थिति व ज्ञान की कमी।
10. महिलाओं और कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व में कमी।[8]

पंचायतीराज व्यवस्था के सुधारों के क्रम में 1985 में पी॰वी॰के॰ राव समिति का गठन किया गया यह समिति मुख्यतः भारत के ग्रामीण विकास और गरीबी–उन्मूलन के लिए गठित की गई थी। समिति का सुझाव था कि योजनाओं का विकेंद्रीकरण आवश्यक है इसने राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद्, जिला स्तर पर जिला परिषद, मंडल स्तर पर मंडल पंचायत और ग्राम स्तर पर ग्राम सभा के गठन की सिफारिश की। इस समिति की सिफारिशों को भी लागू नहीं किया जा सका। 1986 में डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता देने की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त समिति ने सिफारिश की कि स्थानीय स्वशासन के चुनाव निष्पक्ष और नियमित रूप से होना चाहिए, न्याय पंचायतों एवं ग्राम न्यायालयों की स्थापना होनी चाहिए, राष्ट्रीय स्थानीय स्वशासन संस्थान की

स्थापना होनी चाहिए। इसी क्रम में 1988 में गठित पी०के० थुंगन समिति ने भी पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिए जाने की सिफारिश की। उपर्युक्त सभी समितियों की सिफारिशों ने ही आगे चलकर 73वें संविधान संशोधन की बुनियाद रखी।

पंचायतीराज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा दिलाने के उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा 73वाँ संविधान संशोधन किया। पंचायतीराज से संबंधित 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया–

1. प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण को संवैधानिक मान्यता
2. स्वस्थ जनमत का निर्माण
3. ग्रामीण विकास हेतु वित्त की निश्चित व्यवस्था
4. स्वस्थ लोकतंत्र निर्माण हेतु नागरिक प्रशिक्षण
5. जनसहभागिता में वृद्धि करना
6. नेतृत्व विकास करना
7. ग्रामीण विकास ग्रामीणों के द्वारा।

उपर्युक्त लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए 1992 में 73वाँ संविधान संशोधन किया गया। इस संशोधन द्वारा भारत के संविधान में एक नया अध्याय 9 जोड़ा गया। अध्याय 9 द्वारा संविधान में अनुच्छेद 243 और ग्यारहवीं अनुसूची को जोड़ा गया। संविधान संशोधन होने के उपरांत भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। अत: यह संशोधन पंचायतीराज व्यवस्था की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। यह अधिनियम असम, त्रिपुरा, मेघालय और मिजोरम के अनुसूचित क्षेत्रों एवं नागालैंड, मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों, जिनके लिए परिषदें निर्मित हैं एवं पं० बंगाल के दार्जिलिंग क्षेत्र को छोड़कर, पूरे भारत में लागू हुआ। इस अधिनियम के द्वारा पंचायतों हेतु नियमित चुनाव, अनुसूचित जाति एवं जनजाति हेतु आरक्षण, महिलाओं हेतु आरक्षण की व्यवस्था की गई। पंचायतों हेतु पृथक से राज्य वित्त आयोग के गठन का प्राविधान किया गया जिससे की पंचायतों के सुदृढ़ीकरण हेतु वित्त की व्यवस्था हो सके। 73वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़े गए अनुच्छेद 243 में पंचायतीराज व्यवस्था से संबंधित निम्नलिखित व्याख्याएँ दी गईं–

अनुच्छेद 243 ए - ग्राम सभा का गठन
अनुच्छेद 243 बी - पंचायतों का गठन
अनुच्छेद 243 सी - पंचायतों की संरचना
अनुच्छेद 243 डी - पंचायतों में स्थानों का आरक्षण
अनुच्छेद 243 ई - पंचायतों की अवधि
अनुच्छेद 243 एफ - सदस्यता के लिए निरर्हताएँ
अनुच्छेद 243 जी - पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व
अनुच्छेद 243 एच - पंचायतों की करअधिरोपित करने की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व
अनुच्छेद 243 आई - वित्तीय स्थिति के पुनर्विलोकन के लिए वित्त आयोग का गठन
अनुच्छेद 243 जे - पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा
अनुच्छेद 243 के - पंचायतों के लिए निर्वाचन
अनुच्छेद 243 एल - संघराज्य क्षेत्रों में लागू होना
अनुच्छेद 243 एम - इस भाग का कतिपय क्षेत्रों में लागू न होना

अनुच्छेद 243 एन – विद्यमान विधियों और पंचायतों का बना रहना

अनुच्छेद 243 ओ – निर्वाचन-संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन[9]

73वें संशोधन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता कमजोर वर्गों को आरक्षण प्रदान कर उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना एवं पंचायतों के सुदृढ़ीकरण के लिए वित्त की व्यवस्था करना प्रमुख है।

73वाँ संविधान-संशोधन मील का पत्थर, भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के संदर्भ में रजनी कोठारी का मानना है कि 'पंचायतीराज व्यवस्था भारतीय नेतृत्व का एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य है इसमें भारतीय शासन व्यवस्था का विकेंद्रीकरण हो रहा है और देश एक समान स्थानीय संस्था के निर्माण से उसकी एकता भी बढ़ रही है।'[10] भारत में पंचायतीराज के इतिहास में 73वाँ संविधान संशोधन मील का पत्थर रहा है। इसने ने केवल पंचायतीराज व्यवस्था को मजबूत बनाया बल्कि अपने इतिहास से सबक लेकर उन कमियों को भी दूर करने का भी प्रयास किया जो पूर्व में मौजूद थी। 73वें संशोधन से पूर्व पंचायतीराज संस्थाएँ मात्र एक संगठन था इसको संवैधानिक आधार मिलने के बाद यह एक संस्था बन गई है। पूर्व में अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं के प्रतिनिधित्व की कोई व्यवस्था नहीं थी जबकि संशोधन के पश्चात कमजोर वर्गों के लिए स्थान सुरक्षित कर उनके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया गया है। पहले अलग-अलग राज्यों में पंचायतीराज व्यवस्था भिन्न-भिन्न थी परंतु वर्तमान में नियमानुसार सभी जगह त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था लागू है। पहले पंचायतें वित्त के लिए सरकार की मेहरबानी पर निर्भर थी परंतु वित्त आयोग के गठन का प्राविधान कर इन संस्थाओं के लिए वित्तीय प्रबंधन सुनिश्चित किया गया है। पूर्व में पंचायतों को दिए जानेवाले अधिकार भी सुनिश्चित नहीं थे जबकि संशोधन के पश्चात पंचायतों को 29 विषयों को सौंपने का प्राविधान किया गया है। वास्तव में 73वें संविधान संशोधन ने पंचायतीराज व्यवस्था के स्वरूप को परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पंचायतीराज व्यवस्था की वर्तमान स्थिति, 73वें संविधान संशोधन के पश्चात भारत के सभी राज्यों द्वारा इस व्यवस्था को अपनाया गया है। भारत के सभी राज्यों द्वारा अपने राज्य क्षेत्र में पंचायतीराज व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप विभिन्न अधिनियम पारित किए गए–

राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	**अधिनियम**
अंडमान निकोबार द्वीपसमूह	अंडमान निकोबार द्वीप (पंचायत) अधिनियम 1994
आंध्र प्रदेश	आंध्र प्रदेश पंचायतराज अधिनियम 1994
अरुणाचल प्रदेश	अरुणाचल प्रदेश पंचायतराज अधिनियम 1997
असम	असम पंचायतराज अधिनियम 1994
बिहार	बिहार पंचायतराज अधिनियम 2006
छत्तीसगढ़	मध्य प्रदेश पंचायतराज एवं ग्रामस्वराज अधिनियम 1993
दमन, द्वीव, दादर व नागरहवेली	दमन, द्वीव, दादर व नागर हवेली पंचायत अधिनियम 2012
गोवा	गोवा पंचायतराज अधिनियम 1994
गुजरात	गुजरात पंचायतराज अधिनियम 1993
हरियाणा	हरियाणा पंचायतराज अधिनियम 1994
हिमाचल प्रदेश	हिमाचल प्रदेश पंचायतराज अधिनियम 1994
जम्मू एवं कश्मीर	जम्मू कश्मीर पंचायतराज अधिनियम 1989

लद्दाख	जम्मू कश्मीर पंचायतराज अधिनियम 1989
झारखंड	झारखंड पंचायत राज अधिनियम 2001
कर्नाटक	कर्नाटक ग्रामस्वराज एवं पंचायतराज अधिनियम 1993
केरल	केरल पंचायत राज अधिनियम 1994
लक्षद्वीप	लक्षद्वीप पंचायत रेगुलेशन 1994
मध्य प्रदेश	म॰प्र॰ पंचायतराज एवं ग्रामस्वराज अधिनियम 1993
महाराष्ट्र	महाराष्ट्र ग्राम पंचायत अधिनियम 1959
	महाराष्ट्र जिला परिषद एवं पंचायत समिति अधिनियम1961
मणिपुर	मणिपुर पंचायत राज अधिनियम 1994
उड़ीसा	उड़ीसा ग्राम पंचायत अधिनियम 1964
	उड़ीसा पंचायत समिति अधिनियम 1959
	उड़ीसा जिला परिषद अधिनियम 1991
पुदुचेरी	पुदुचेरी ग्राम पंचायत एवं कम्यून पंचायत अधिनियम 1973
पंजाब	पंजाब पंचायतराज अधिनियम 1994
राजस्थान	राजस्थान पंचायतराज अधिनियम 1994
सिक्किम	सिक्किम पंचायतराज अधिनियम 1993
तमिलनाडु	तमिलनाडु पंचायतराज अधिनियम 1994
तेलंगाना	तेलंगाना पंचायतराज अधिनियम 2018
त्रिपुरा	त्रिपुरा पंचायतराज अधिनियम 1993
उत्तराखंड	उत्तराखंड पंचायतराज अधिनियम 2016
उत्तर प्रदेश	उत्तर प्रदेश पंचायतराज अधिनियम 1947
	उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत/ जिला पंचायत अधिनियम 1961
पश्चिम बंगाल	पश्चिम बंगाल पंचायत राज अधिनियम 1973[11]

इसके अतिरिक्त असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, झारखंड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखंड एवं पश्चिम बंगाल द्वारा पंचायतों में महिलाओं के आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत किया गया है। बिहार, गोवा, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश द्वारा ग्रामसभा में से ही ग्रामपंचायतों की निगरानी हेतु कई समितियों का गठन का प्राविधान किया गया है। कई राज्यों ने प्राविधान किया है कि ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अपने अविश्वास प्रस्ताव द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि को हटा सकती हैं। कई राज्यों द्वारा पंचायतों में दो से अधिक संतान वाले व्यक्ति को चुनाव लड़ने से भी प्रतिषेध किया गया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारत में पंचायतीराज व्यवस्था ने एक लंबा सफर तय करके वर्तमान मुकाम को हासिल किया है। वस्तुत: पंचायतीराज व्यवस्था ही भारत में प्रत्यक्ष लोकतंत्र की स्थापना का महत्त्वपूर्ण माध्यम है परंतु इसकी वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती है इसे भविष्य में और अधिक सशक्त बनाकर, इसकी स्थापना के मूल उद्देश्यों को हासिल किया जा सकता है। पंचायतीराज व्यवस्था ने न केवल राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि की है अपितु लोगों की लोकतंत्र के प्रति समझ को और अधिक विकसित किया है। अत: इन संस्थाओं

के सम्मुख आ रही बाधाओं को दूर करके और अधिक सशक्त बनाए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. प्राचीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, पृ॰ 81
2. अजयसिंह रावत, उत्तराखंड का राजनीतिक इतिहास (पाषाण युग से 1949 तक), अंकित प्रकाशन, 2020, हल्द्वानी, पृ॰ 97
3. जार्ज मैथ्यू, भारत में पंचायतीराज: परिप्रेक्ष्य और अनुभव, अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 13
4. एल॰पी॰ शर्मा, आधुनिक भारत, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ॰ 399
5. जार्ज मैथ्यू, भारत में पंचायतीराज: परिप्रेक्ष्य और अनुभव, अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 14
6. भारत का संविधान: अनुच्छेद 40, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, 2008, इलाहाबाद
7. एस॰एन॰ मिश्रा, पंचायतीराज : प्रशासन का विकेंद्रीकरण और 64वाँ संशोधन विधेयक, रोजगार समाचार, 26 जनवरी-1फरवरी, 1991, पृ॰ 3
8. डॉ॰ धनसिंह रावत, नवीन पंचायतीराज एवं सामाजिक परिवर्तन, अंकित प्रकाशन, 2006, हल्द्वानी, पृ॰ 27-28
9. भारत का संविधान: अनुच्छेद 243क से 243ण तक , सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, 2008, इलाहाबाद
10. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति, ओरिएंट लॉगमैन, 1972, नई दिल्ली, पृ॰ 95
11. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू डॉट पंचायत डॉट जीओवी डॉट इन (वेबसाइट, पंचायतीराज मंत्रालय, भारत सरकार)

Mob. 9411793081

dheerajsinghkhati82@gmail.com

भारत श्रीलंका संबंधों में आर्थिक सहयोग

दिलीप कुमार, शोधछात्र
डॉ॰ स्वाती ठाकुर, असि॰ प्रोफेसर
राजनीतिशास्त्र एवं लोकप्रशासन विभाग
डॉ॰ शकुंतला मिश्र राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत और श्रीलंका के बीच द्विपक्षीय आर्थिक एवं व्यापारिक संबंध स्वतंत्रता के पश्चात धीमी गति से परंपरागत रूप से आगे बढ़ती रही। 'स्वतंत्रता के लगभग तीन दशक बाद 1977 में श्रीलंका द्वारा अपने आर्थिक नीतियों का उदारीकरण कर विदेशी निवेश को आकर्षित करने का प्रयास किया गया जो कि दक्षिण एशियाई देशों में यह पहला प्रयास था।'[1]

1991 में भारत सरकार द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाने के साथ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए आयात निर्यात के नियमों में शिथिलता लाने का प्रयास किया गया। दोनों ही देशों की अर्थव्यवस्था समय के साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार और विनिवेश के लिए पहले से ज्यादा खुली और प्रतिस्पर्धी हो चुकी थी। '28 दिसंबर 1998 को नई दिल्ली में भारतीय प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेई एवं श्रीलंका के राष्ट्रपति चंद्रिका भंडारनायके कुमारतुंगा के बीच भारत श्रीलंका मुक्त व्यापार समझौता पर हस्ताक्षर हुआ। यह समझौता 1 मार्च 2002 से प्रभावी हुआ।'[2] समझौते का मुख्य उद्देश्य दोनों देशों के आर्थिक संबंधों को मजबूती प्रदान करने के साथ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं वस्तुओं के बाधारहित आवागमन एवं व्यापार को सुगम बनाना था।

'भारत श्रीलंका मुक्त व्यापार समझौता लागू होने के पश्चात भारत ने श्रीलंका द्वारा निर्यात किए जाने वाले 4150 वस्तुओं पर टैरिफ लाइन (आयात शुल्क) शून्य कर दिया। दूसरी तरफ श्रीलंका ने भारत के द्वारा निर्यात किए जाने वाले 1208 वस्तुओं पर टैरिफ लाइन (आयात शुल्क) शून्य कर दिया। इसके साथ ही भारत सरकार के द्वारा चाय, वस्त्र, परिधान के श्रीलंका के द्वारा भारत को निर्यात किए जाने वाले वस्तुओं पर प्रतिबंध हटाने के साथ आयात शुल्क को शून्य कर दिया गया।'[3] दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार समझौता लागू होने के बाद भारत द्वारा श्रीलंका को किया गया निर्यात श्रीलंकाई सीमा बोर्ड के आँकड़ों के अनुसार 1999 में 512 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 2020 में 3008 मिलियन अमरीकी डालर तक पहुँच गया। इसके साथ श्रीलंका द्वारा भारत को किया गया निर्यात 1999 में 49 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 2020 में 604 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक हो गया है।'[4] यह आँकड़े दर्शाते हैं कि मुक्त व्यापार समझौता लागू होने के पश्चात दोनों देशों के व्यापार में प्रगति हुई है।

भारत श्रीलंका मुक्त व्यापार समझौते के सकारात्मक एवं आशा अनुरूप परिणाम प्राप्त होने के पश्चात दोनों ही देशों ने इस समझौते को अगले चरण में ले जाने का प्रयास किया। 'जिसके क्रम में जून 2002 में श्रीलंका के प्रधानमंत्री के भारत यात्रा के दौरान व्यापक आर्थिक भागीदारी समझौता की संभावनाओं को पता लगाने के लिए एक संयुक्त अध्ययन समूह की स्थापना का निर्णय लिया गया। संयुक्त अध्ययन समूह की अनुशंसा पर फरवरी 2005 से 2008 के दौरान संयुक्त

आर्थिक अध्ययन समूह के द्वारा 13 चक्र की वार्ता संपन्न हुई। लेकिन सूक्ष्म लघु श्रीलंकाई उद्योगों के द्वारा किए जा रहे विरोध के परिणामस्वरूप सेवा, पर्यटन, शिक्षा, एवं तकनीकी विकास, निवेश की संभावनाओं को बढ़ाने वाले इस समझौते पर सहमति नहीं बन पाई।'[5]

'भारत और श्रीलंका के बीच व्यापार, निवेश, आर्थिक, प्रौद्योगिकी सहयोग को मजबूत करने को लेकर श्रीलंका में 2015 में सत्ता परिवर्तन के साथ आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग समझौता के लिए दोनों देशों के वार्ता चल रही है लेकिन इस समझौते को भी अभी तक अमलीजामा नहीं पहनाया जा सका है।'[6] जबकि इस समझौते पर हस्ताक्षर और लागू होने के पश्चात श्रीलंका के साथ बेहतर आर्थिक साझेदारी की दिशा में महत्त्वपूर्ण सुधार हो सकता है।

इसके अतिरिक्त भारत और श्रीलंका विभिन्न क्षेत्रीय एवं बहुपक्षीय संगठनों के सदस्य भी हैं जिनमें एशिया प्रशांत व्यापार समझौता (APTA), दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार समझौता (SAFTA), बहु क्षेत्रीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग के लिए बंगाल की खाड़ी की पहल (BIMSTEC) के भी सदस्य हैं। विभिन्न समझौते और साझा मंचों के द्वारा दोनों देशों के बीच आर्थिक और व्यापारिक संबंधों के आधार पर ही भारत श्रीलंका का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है।

'भारत द्वारा श्रीलंका को निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएँ क्रमशः दवाएँ, चीनी, खनिज तेल और पेट्रोलियम उत्पाद, लोहा व अन्य इस्पात, नमक, भवन निर्माण सामग्री, बुने हुए कपड़े खाद्य पदार्थ और रेलवे उपकरण हैं। दूसरी तरफ श्रीलंका द्वारा भारत को निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएँ खाद्य उद्योग के अवशेष से निर्मित वस्तुएँ, पेट्रोलियम पदार्थ, खाद्य फल, मानव निर्मित स्टेपल फाइबर, कॉफी, चाय, मसाले, वनस्पति एवं पशु वसा और उससे संबंधित उत्पाद, विद्युतीय मशीनरी और उससे संबंधित उपकरण एवं पुर्जे हैं।'[7] 'बैंक ऑफ इन्वेस्टमेंट के आँकड़े के अनुसार 2015-2019 के दौरान भारत द्वारा श्रीलंका में लगभग 1.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर का निवेश किया गया। यह निवेश भारत द्वारा मुख्यतया पेट्रोलियम खुदरा, पर्यटन, होटल, विनिर्माण, रियल एस्टेट, दूरसंचार एवं वित्तीय सेवाओं में है। इसके साथ ही श्रीलंका के अर्थव्यवस्था के मुख्य स्रोत पर्यटन में भारत का योगदान लगभग 18.2 प्रतिशत है।'[8]

आर्थिक अनुदान एवं ऋण आधारित परियोजनाएँ

श्रीलंका के आर्थिक विकास में योगदान देनेवाले संचार तकनीक, परिवहन, ऊर्जा, स्वास्थ्य, आवास आधारित अनेक परियोजनाएँ भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से संचालित किया जा रहा है। '17 जनवरी 2012 में भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण और श्रीलंका के दूरसंचार नियामक प्राधिकरण के बीच तकनीकी एवं संस्थागत सहयोग स्थापित करने के लिए एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया गया। विकास में सूचना प्रौद्योगिकी के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए भारत द्वारा दक्षिण एशिया उपग्रह 5 मई 2017 को लांच किया गया। उपग्रह द्वारा प्रदान किए जाने वाले तकनीकी सहयोग को प्राप्त करने के लिए श्रीलंका दक्षिण एशिया देशों में पहला देश था जो इसका लाभ उठाने के लिए भारत से समझौता संपन्न किया। जनवरी 2018 में भारतीय इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री रविशंकर की श्रीलंका यात्रा के दौरान विकास में सहभागी एम गवर्नेंस, ई गवर्नेंस के उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए दोनों देशों के बीच समझौता सम्पन्न हुआ।'[9]

राष्ट्र के विकास में परिवहन सेवाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। भारत द्वारा इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए श्रीलंका में रेलवे, वायु, जल परिवहन सेवाओं के विकास के लिए अनेक परियोजनाएँ भारत सरकार के सहयोग से संचालित किया जा चुका है एवं संचालित

किया जा रहा है। 'जिसके अंतर्गत भारत द्वारा 2012 में 167.40 मिलियन अमेरिकी डॉलर की ऋण सहायता से कालूतारा-मतारा रेलमार्ग के निर्माण के साथ कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया गया। कोलंबो-तूतीकोरिन एवं तलाईमन्नार-रामेश्वर फेरी सेवा को पुन: प्रारम्भ करने का प्रयास किया जा चुका है। आवागमन के क्षेत्र में व्यापक भूमिका वायु परिवहन सेवाओं की होती है जिसको ध्यान में रखते हुए श्रीलंका सरकार द्वारा चेन्नई-पलाई के बीच हवाई सेवा के संभावनाओं का पता लगाने के लिए भारत सरकार से अनुरोध किया गया। जिसके क्रम में भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण द्वारा पलाई हवाई अड्डे का निरीक्षण करने के पश्चात नवंबर 2019 से चेन्नई-पलाई के बीच हवाई यात्रा सेवाओं की शुरुआत की गई।'[10]

आर्थिक विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक ऊर्जा की उपलब्धता है। ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग के लिए 2015 में भारत और श्रीलंका के बीच असैन्य परमाणु समझौता सम्पन्न हुआ। साथ ही ऊर्जा क्षेत्र में विकास के लिए '2018 में श्रीलंका भारत की अगुवाई वाले अंतरराष्ट्रीय सौर संगठन में शामिल हुआ जिसके अंतर्गत सौर ऊर्जा के क्षेत्र में आवश्यक बुनियादी ढांचा के विकास हेतु भारत द्वारा 100 डॉलर अमेरिकी डॉलर की ऋण सहायता पर समझौता संपन्न हुआ।'[11]

आर्थिक विकास के लिए आवश्यक संचार तकनीक, परिवहन सेवाओं, ऊर्जा क्षेत्र में विकास के लिए भारत श्रीलंका के साथ निरंतर सहयोग स्थापित करते हुए विकास में योगदान देने का प्रयास करता रहा है। इसके साथ चिकित्सा एवं आवास के क्षेत्र में भारत द्वारा अभूतपूर्व मदद की जा रही है। 'चिकित्सा क्षेत्र में आपातकालीन एम्बुलेंस सेवा को सम्पूर्ण देश में विस्तारित करने के लिए मई 2017 में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की श्रीलंका यात्रा के दौरान 15.02 मिलियन अमेरिकी डॉलर का अनुदान प्रदान किया गया। साथ ही आतंरिक रूप से विस्थापित लोगों के लिए 5,50,000 से ज्यादा आवासों का निर्माण भारत के सहयोग से किया जा रहा है।'[12]

आर्थिक संबंध को प्रभावित करने वाले कारक

भारत और श्रीलंका के बीच आर्थिक संबंधों को प्रभावित करने वाले कारकों में तमिल समस्या, मछुआरों की समस्या ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंध में प्रतिद्वंद्विता और अविश्वास प्रारंभ से ही निर्यात किए जाने वाले वस्तुओं से प्रारंभ हुआ क्योंकि दोनों ही देश में वस्तुओं की समानता थी जैसे कि चाय, रबड़ इत्यादि। इसके साथ दूसरी समस्या यह रही कि व्यापार संतुलन श्रीलंका के निरंतर विरुद्ध रहा क्योंकि यदि 2020 के आँकड़े ही देखे जाएँ तो यह अंतर 2404 मिलियन अमेरिकी डॉलर का है। इन कारणों के अतिरिक्त चीन की श्रीलंका की राजनीति और अर्थव्यवस्था में भारी भरकम निवेश, ऋण, परियोजनाएँ भी भारत और श्रीलंका की व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। व्यापार अंसुतलन और श्रीलंका की घरेलू राजनीतिक परिस्थितियों ने दोनों देशों के व्यापार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया हैं। वर्तमान समय में भी दोनों देशों के बीच CEPA और ETCA जैसे समझौते श्रीलंका के अविश्वास एवं छोटे व्यापारियों के विरोध के कारण संपन्न नहीं हो पाए हैं।

दोनों देशों के बीच आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों को प्रभावित करने में यदि सबसे ज्यादा प्रतिकूल प्रभाव डाला तो वह श्रीलंका और चीन के बीच आर्थिक और व्यापारिक संबंध रहे हैं। क्योंकि एक मध्यम आय और परंपरागत वस्तुओं के निर्यातक के रूप में श्रीलंका को समय-समय पर आर्थिक चुनौतियाँ, भुगतान संतुलन के लिए चीन से ऋण, निवेश, व्यापार हेतु संबंधों को प्रगाढ़ किया गया। यहाँ तक कि 'चीन कुछ ही समय में श्रीलंका के लिए दूसरा सबसे बड़ा ऋणदाता बन

ISSN 0975-735X

गया। उसके द्वारा हंबनटोटा बंदरगाह, कोलंबो-कटुनायके एक्सप्रेस, मट्टाला हवाई अड्डा जैसी अनेक परियोजनाओं को चीनी ऋण द्वारा वित्तपोषित किया गया। विगत कुछ वर्षों में भारत की अपेक्षा चीन श्रीलंका वस्त्र उद्योग के लिए कच्चा माल निर्यातक बन गया जोकि कम कीमत के कारण हैं। यदि भारत की बात की जाए तो भारत श्रीलंका को चीन की मात्रा के बराबर मात्रा में ऋण नहीं उपलब्ध करा सकता क्योंकि भारत की भी अपनी सीमाएँ हैं।'[13]

वर्तमान समय में श्रीलंका की आर्थिक संकट

वर्तमान समय में श्रीलंका को गंभीर आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा है। 'जिसके प्रमुख कारणों में 2019 में ईस्टर के दिन चर्च और होटलों में आत्मघाती बम विस्फोट रहा क्योंकि इसके बाद आतंकवादी घटना के बाद श्रीलंका आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में कमी हुई जिसने श्रीलंका के प्रमुख आर्थिक स्रोत पर्यटन उद्योग को गम्भीर नुकसान पहुँचाया। दूसरा कदम राष्ट्रपति गोटबाया राजपक्षे द्वारा सबसे बड़ी कर कटौती की घोषणा की गई जिसके उपरांत वैश्विक संस्थाओं द्वारा श्रीलंका की रेटिंग कम कर दिया, जिससे की अब श्रीलंका को विदेशी ऋण लेने के लिए मुश्किलों का सामना करना पड़ने लगा। तीसरा कारण वैश्विक कोविड संकट रहा, जिसने श्रीलंका के पर्यटन उद्योग पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डाला। चौथा कारण राजपक्षे सरकार द्वारा अचानक बिना किसी ठोस योजना के जैविक खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से रासायनिक उर्वरकों के आयात पर प्रतिबंध लगाना रहा जिसके परिणामस्वरूप चावल की फसल नष्ट हुई और दैनिक जरूरतों की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि हो गई। पाँचवाँ कारण वैश्विक परिस्थितियाँ रही जिनमें प्रमुख रूप से यूक्रेन और रूस के बीच हो रहा युद्ध है जिसके परिणामस्वरूप खाद्य और तेल की कीमतों में वृद्धि के साथ श्रीलंका द्वारा इनका आयात करना और महँगा हो गया। इन सबके अतिरिक्त चीन के द्वारा उच्च ब्याज दरों से आर्थिक एवं आधारभूत संरचना के से निर्मित बंदरगाह, हवाई अड्डे इत्यादि से आशा अनुरूप व्यापारिक लाभ हासिल न होने के कारण चीन के द्वारा लिए गए ऋण को चुकाना मुश्किल हो गया।'[14] उपर्युक्त कारणों से श्रीलंका का विदेशी मुद्रा भंडार 50 मिलियन अमेरिकी डॉलर से भी कम रहा गया, जिस कारण श्रीलंका विदेशी ऋण चुकाने में असफल हो गया।

भारत के द्वारा किए जा रहे आर्थिक एवं मानवीय सहयोग

'आर्थिक संकट के दौरान भारत सरकार द्वारा भोजन, स्वास्थ्य और ऊर्जा सुरक्षा पैकेज के साथ 3.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर की सहायता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त तात्कालिक मदद के रूप में भारत सरकार द्वारा दवाइयों, मछुआरों की आवश्यकता के लिए केरोसिन तेल, सूखे खाद्य सामग्री के पैकेट भी उपलब्ध कराए जा रहे हैं। इसके साथ तमिलनाडु सरकार द्वारा 16 मिलियन अमेरिकी डॉलर की सहायता के साथ 40,000 मीट्रिक टन चावल, 500 मीट्रिक टन दूध पाउडर और दवाएँ प्रदान की गईं। इस दौरान बुरी तरह से प्रभावित ऊर्जा क्षेत्र को मजबूत करने के उद्देश्य से सीलोन इलेक्ट्रॉसिटी, एनटीपीसी (भारत) के बीच 100 मेगावाट सौर ऊर्जा संयंत्र लगाने को लेकर सहमति बनी।'[15] इसी क्रम में श्रीलंका के भारत में उच्चायुक्त मिलिंडा मोरागोडा ने भारतीय उर्वरक सचिव से मुलाकात में रासायनिक उर्वरक के संकट का मुद्दा उठाया जिसके प्रत्युत्तर में 'भारत सरकार द्वारा श्रीलंका को 65000 टन यूरिया उपलब्ध कराने का भरोसा दिलाया गया।'[16] एक प्रश्न के उत्तर में भारतीय विदेश मंत्री द्वारा संसद में श्रीलंका की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए बताया कि भारत पड़ोसी पहले की नीति के अंतर्गत 'जनवरी 2022 में सार्क फ्रेमवर्क के

अंतर्गत 400 मिलियन अमेरिकी डॉलर की मुद्रा की अदला-बदली की गई। ऊर्जा संकट को ध्यान में रखते हुए भारत से ईंधन आयात करने के लिए 500 मिलियन अमेरिकी डॉलर की ऋण सहायता श्रीलंका को प्रदान की गई।'[17]

निष्कर्ष–इस प्रकार विश्लेषण करने के बाद पता चलता है कि भारत का अपने पड़ोसी देश के साथ आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों का एक लंबे समय से द्विपक्षीय संबंध रहा है। समय के साथ दोनों ही देशों के द्वारा समय-समय पर व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए अनेक समझौते संपन हुए। लेकिन किसी भी दो देशों के बीच संबंध निर्धारण में संबंधित देश की भौगोलिक अवस्थिति, राष्ट्रीय हित, संबंधित देश की आंतरिक राजनीति स्थिति के साथ विभिन्न देशों के साथ प्रतिस्पर्धी एवं संवेदनशील समझौते महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। चूँकि आजादी के बाद से ही श्रीलंका का भारत के प्रति अविश्वास का दृष्टिकोण बना रहा। इसके साथ ही तमिल समस्या, कच्चातिवु द्वीप, मछुआरों की समस्या ने अविश्वास को जन्म देने का कार्य किया। इसी अविश्वास के कारण श्रीलंका और चीन के बीच संबंध प्रगाढ़ होते चले गए। श्रीलंका की भू राजनीतिक अवस्थिति को ध्यान में रखते हुए चीन द्वारा श्रीलंका को अत्यधिक ऋण उपलब्ध कराया गया जोकि आज श्रीलंका की आर्थिक स्थिति के जिम्मेदार कारणों में से एक है। भारत द्वारा श्रीलंका के संकट की प्रत्येक स्थिति में भारत सरकार द्वारा अत्यधिक सहायता प्रदान की जाती रही हैं। दोनों ही देशों द्वारा आपसी सहयोग और विश्वास के द्वारा आपसी द्विपक्षीय सहयोग को मजबूत करने की बहुत बड़ी संभावनाएँ विद्यमान हैं, जिससे कि व्यापार संतुलन को संतुलित करने के साथ दोनों ही देशों के प्रगति के लिए आत्याधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ

1. एस०एस० उपाध्याय, इंडिया एंड श्रीलंका इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल रिलेशंस, एबीडी पब्लिशर्स, जयपुर, 2007, पृ० 203
2. एस०एस० पीराएम, इंपैक्ट ऑफ इंडो श्रीलंका फ्री ट्रेड एग्रीमेंट ऑन द श्रीलंका इकोनॉमी, साउथ एशिया इकोनॉमिक जर्नल, 9(1), 2008, पृ० 9-10
3. आर०के० रेड्डी एंड टी० निर्मलादेवी, इमर्जिंग इश्यूज ऑन इंडिया श्रीलंका इकनॉमिक्स रिलेशन, सेंटर फॉर सार्क स्टडीज, आंध्रप्रदेश यूनिवर्सिटी, विशाखापत्तनम, ए पेपर प्रेजेंटेड एट 8जी इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन श्रीलंकन स्टडीज एट साउथ एशियन स्टडीज सेंटर यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान, जयपुर, 7-10 नवंबर, 2001
4. http://ww.hcicolombo.org.in
5. एस० पट्टनाइकस्मूर्ति, श्रीलंका चौलेंजेस एंड ऑपर्च्युनिटीज फॉर इंडिया एंड दहिया रूमेल एंड के बेहूरिया अशोक (सं०), इंडियाज नेबेरहुड चैलेंजेस इन नेक्सट टू डिकेड, पेंटागन प्रेस, न्यू दिल्ली, 2012, पृ० 197
6. निशा तनेजा एंड समृद्धि विमल, (2020, मार्च 3), इंडिया श्रीलंका ट्रेड रिलेशन
   Retrieved October 10 C.E.k. from Diplomatist
   website: https://diplomatist.com/2020/03/03/india-sri-lanka-trade-relation/
7. http://ww.hcicolombo.org.in
8. Welcome to High Commision fo India, Colombo, Sri Lanka.2021.Retrieved from hcicolombo.gov.in website: https:èkèkhcicolombo.gov.inèkEconomic Trade Engagement
9. वही

10. वही
11. वही
12. वही
13. उमेश मोरामुदली, (2021, मई), द इकोनॉमिकस ऑफ द चाइना इंडिया श्रीलंका ट्राइएंगल, द डिप्लोमैट
14. कृतिका पाठी एंड कृष्ण फ्रांसिस, (2022, मई 12), व्हाट कॉस्ड इकोनॉमिक कोलाप्स ऑफ श्रीलंका? द इकोनॉमिक टाइम्स
15. सुल्ताना गुलबिन, (2022, जुलाई 31), इंडिया एसिस्टेंस टू क्राइसिस राइडन इन श्रीलंका, फाइनेंशियल एक्सप्रेस
16. अमर उजाला, 2022,मई 15, पृ० 16
17. Question No-3379 Economic Crisis In Sri Lanka (2022, Aug 5) Retrieved October 17, 2022. from www.mea.gov.in website:https://www.mea.govin/loksabha.htm\dtl/35624/QUESTION_NO3379_ECONOMIC_CRISIS_IN_SRI_LANKA#:~:text¾A%20Line% 20of%20Credit% 20of

Dr. Swati Thakur, Assistant Professor
Room No. 206, Academic Bloc A2,
Dept. of Political Science and Public Administration
Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University,
Mohaan Road, Lucknow. 226017
Mob. 9452267932
swatithak@gmail.com

किशोरों के आत्मविश्वास पर लिंग एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन

दिनेश चंद्र पांडे, शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग
एम॰बी॰ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
प्रो॰ दीपा वर्मा, विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग
राज॰ स्नातक महाविद्यालय दोषापानी, कुमाऊँ वि॰वि॰ नैनीताल (उत्तराखंड)

प्रस्तावना—मनुष्य के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से एक प्रमुख अवस्था किशोरावस्था है। इस अवस्था को मनुष्य के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था माना जाता है क्योंकि जीवन की इसी अवस्था में किशोरों का शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं सामाजिक विकास तीव्रता से होता है। इस अवस्था में किशोरों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों एवं रुचियों में अत्यधिक परिवर्तन होने के कारण इस अवस्था को परिवर्तन की अवस्था भी कहा जाता है और इस अवस्था में किशोर अत्यधिक ऊर्जा, सर्जनात्मकता एवं उत्साह से भरपूर होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किशोरावस्था 10 वर्ष से 19 वर्ष की आयु तक बाल्यावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के मध्य जीवन का एक विशेष चरण होता है और अच्छे स्वास्थ्य एवं भविष्य में बेहतर सामाजिक जीवन की नींव रखने का एक सर्वोत्तम समय होता है। इस अवस्था में शारीरिक संज्ञानात्मक एवं मनोसामाजिक विकास अत्यंत तीव्रता से होने के कारण इसे विकास की सर्वोत्तम अवस्था माना जाता है।[1] किशोरावस्था में किशोर समाज की विभिन्न गतिविधियों में सक्रियता से सम्मिलित होने लगते हैं और समाज के विभिन्न क्रियाकलापों को सीखते हैं। ऐसे में किशोर की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति उसके विकास में सहायक हो सकती है।

एक सामाजिक व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार व्यवहार करता है और व्यक्तिगत एवं सामाजिक कार्यों के प्रति उसकी अभिवृत्ति धनात्मक होती है। आर्थिक स्थिति व्यक्ति की आय एवं आय के साधनों के अनुसार होती है। आय प्राय: व्यावसायिक क्रियाकलापों और संपत्तियों के स्वामित्व या दोनों से प्राप्त होती है। सामाजिक-आर्थिक स्तर से तात्पर्य व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के गठजोड़ से है। सामाजिक-आर्थिक स्तर किसी व्यक्ति की समाज में स्थिति को व्यक्त करता है। यह व्यक्ति की समाज में सम्मान, प्रभाव एवं धनात्मक विशिष्टता एवं प्रभावशीलता को दर्शाती है।

वर्तमान समय में औद्योगिक क्रांति एवं बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण किशोरों का जीवन अधिक जटिल एवं तनावपूर्ण होता जा रहा है। अत्यधिक दबाव एवं तनावपूर्ण जीवनशैली के चलते कई बार जब किशोर अपने समक्ष आने वाली चुनौतियों का सामना करने में असफलता का अनुभव करते हैं तो उनमें निराशा की भावना और आत्मविश्वास में कमी के साथ तनाव, चिंता, कुंठा, क्रोध, विषाद, जैसे अनेक मानसिक लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं इन्हीं कारणों के चलते किशोर स्वयं को असहाय एवं समाज में अकेला महसूस करने लगते हैं और आत्महत्या जैसे घातक

कदम तक उठा लेते हैं जो कि वर्तमान समय में एक गंभीर समस्या है।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। अपने विचारों एवं अभिव्यक्ति को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करना और स्वयं की पूर्ण क्षमता का उचित उपयोग करना ही आत्मविश्वास है। जरशील्ड(1997) के अनुसार, 'आत्मविश्वास व्यक्ति के अपने विचारों, भावनाओं, आशाओं, भय, कल्पनाओं तथा अपने मूल्यों के संबंध में उसकी अभिवृत्तियों की ही एक समष्टि है।'[2] बसवन्ना के अनुसार आत्मविश्वास से तात्पर्य व्यक्ति की किसी परिस्थिति विशेष में बाधाओं का सामना करने तथा सब कुछ ठीक करने की योग्यता से है।[3] आत्मविश्वास की कमी के कारण किशोर अपने जीवन में अन्य कार्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति में अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं, फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व एवं सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन होने लगता है जिससे उनकी उत्पादकता भी प्रभावित हाने लगती है।

साहित्य समीक्षा–मलिक, उमेंद्र एवं योगेश (2014) ने अपने अध्ययन, 'ए स्टडी ऑफ इफेक्ट ऑफ सेल्फ कॉन्फिडेंस ऑन अकेडमिक अचीवमेंट अमंग सीनियर सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट' के निष्कर्ष में पाया कि उच्च एवं निम्न आत्मविश्वास वाले 11वीं कक्षा में अध्ययनरत किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है। उच्च एवं निम्न अत्मविश्वास वाले किशोर बालक की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है, जबकि उच्च एवं निम्न आत्मविश्वास वाले किशोर बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है।[4]

सेलवराज एवं गणनादेवन (2014) ने अपने अध्ययन, 'ए स्टडी ऑन सेल्फ कॉन्फिडेंस एंड स्ट्रेस अमंग हायर सेकेंडरी स्टूडेंट ऑफ कुड्डलोर डिस्ट्रिक्ट ऑफ तमिलनाडु' के परिणाम में पाया कि तनाव की विमाएँ : अकादमिक तनाव, अंतर–वैयक्तिक तनाव, पर्यावरणीय तनाव एवं कुल तनाव का आत्मविश्वास के साथ सार्थक एवं नाकारात्मक संबंध है।[5]

मीना शर्मा (2015) ने अपने अध्ययन, 'ए स्टडी ऑफ सेल्फ कॉन्फिडेंस ऑफ सीनियर सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेंट इन रिलेशन टू सोशियो इकॉनोमिक स्टेटस' के परिणाम में पाया कि उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के किशोर बालक एवं बालिकाओं के आत्मविश्वास में सार्थक अंतर नहीं है एवं उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले किशोर बालक एवं बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं है। उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले किशोर बालकों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं देखा गया। उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं हैं।[6]

तृप्ति व्यास एवं रवि गुंठे (2017) ने अपने अध्ययन, 'इमोशनल मैच्योरिटी एंड सेल्फ कॉन्फिडेंस अमंग एडोलसेंट स्टूडेंट' के परिणाम में पाया कि किशोर बालक एवं बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं है परंतु शहरी एवं ग्रामीण किशोरों के आत्मविश्वास में सार्थक अंतर है।[7]

हरविंदर कौर (2018) ने अपने अध्ययन, 'सेल्फ कॉन्फिडेंस इन रिलेशन टू एडजस्टमेंट ऑफ एडोल्सेंट्स' के निष्कर्ष में पाया कि किशोरों के आत्मविश्वास एवं समायोजन में सार्थक सहसंबंध है। किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं है। कला एवं विज्ञान वर्ग के किशोरों के आत्मविश्वास में सार्थक अंतर पाया गया जिसमें विज्ञान वर्ग के किशोरों का आत्मविश्वास कलावर्ग के किशोरों से अधिक पाया गया।[8]

नजमुस सहर (2019) ने सी॰बी॰एस॰ई॰ बोर्ड तथा उत्तराखंड बोर्ड के छात्रों में आत्मविश्वास तथा परीक्षा चिंता के मध्य सहसंबंध का अध्ययन किया एवं परिणामों से ज्ञात हुआ कि सी॰बी॰एस॰ई॰ बोर्ड तथा उत्तराखंड बोर्ड के छात्रों के आत्मविश्वास में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है जबकि सी॰बी॰एस॰ई॰ बोर्ड के छात्रों में परीक्षा चिंता उत्तराखंड बोर्ड के छात्रों की अपेक्षा कम होती है। दोनों बोर्डों के छात्रों की परीक्षा चिंता तथा आत्मविश्वास में धनात्मक सहसंबंध होता है।[9]

अध्ययन की आवश्यकता–किशोरावस्था मनुष्य की जीवन की ऐसी अवस्था है जिसमें वह विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक और सामाजिक परिवर्तनों का अनुभव करता है। इस प्रकार किशोरावस्था व्यक्ति के जीवन की अतिसंवेदनशील एवं महत्त्वपूर्ण अवस्था है, चूँकि इस अवस्था में व्यक्ति द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव उसके संपूर्ण जीवन को सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। व्यक्ति के जीवन में आने वाली विभिन्न प्रकार की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए उनका सामना करने के लिए व्यक्ति का आत्मविश्वास एक अहम भूमिका का निर्वहन करता है। चूँकि वर्तमान समय अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक एवं चुनौतीपूर्ण है। अत: ऐसे में किशोर अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के दबाव एवं तनाव का सामना कर रहे हैं। आत्मविश्वास व्यक्तित्व का प्रमुख कारक होता है। आत्मविश्वास के कारण ही कोई व्यक्ति अपने जीवन की विभिन्न सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक कठिनाइयों का समाधान करने में सक्षम हो पाता है। किशोरों का आत्मविश्वास कई करकों से प्रभावित होता सकता है। अत: अध्ययनकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि किशोरों के आत्मविश्वास पर उनके लिंग एवं उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का क्या प्रभाव पड़ेगा।

अध्ययन के उद्देश्य

1. किशोरों के आत्मविश्वास पर उनके लिंग के प्रभावों का अध्ययन करना।
2. किशोरों के आत्मविश्वास पर उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति के प्रभावों का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1. किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
2. उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोरों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
3. उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले किशोर बालकों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
4. उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

शोध प्रविधि–प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन में स्वतंत्र चर के रूप में लिंग (किशोर बालक एवं किशोर बालिकाएँ) एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति स्तर (उच्च एवं निम्न) और आश्रित चर के रूप में आत्मविश्वास को लिया गया है।

प्रतिदर्श–प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रतिदर्श के रूप में उत्तराखंड राज्य के नैनीताल जनपद के 15-18 वर्ष की आयु के 120 किशोर विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। प्रतिदर्श में चयनित किशोरों में 60-किशोर बालक एवं 60-किशोर बालिकाओं को सम्मिलित

किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण–प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के संकलन हेतु आत्मविश्वास के मापन के लिए डॉ॰ रेखा गुप्ता द्वारा विकसित आत्मविश्वास मापनी 10 तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति के मापन के लिए आर॰एल॰ भारद्वाज द्वारा निर्मित सामाजिक-आर्थिक स्थिति मापनी का प्रयोग किया गया।[11]

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी–प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के संकलन के पश्चात् मूल्यांकन एवं विश्लेषण के लिए संख्यिकी विधि के रूप में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया।[12]

परिकलानाओं का विश्लेषण

परिकल्पना क्रमांक 1– किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका क्रमांक 1

लिंग	**संख्या** (D)	**मध्यमान** (N)	**मानक विचलन** (M)	**स्वतंत्रता स्तर** (df)	**टी-मूल्य** (t)	**सार्थकता स्तर**
किशोर बालक	60	22.13333	9.755427	118	0.352611	असार्थक
किशोर बालिकाएँ	60	23.85	10.38549			

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट है कि किशोर बालकों तथा किशोर बालिकाओं के समूहों के आत्मविश्वास का मध्यमान क्रमशः 22.13333 तथा 23.85 है एवं मानक विचलन क्रमशः 9. 755427 तथा 10.38549 है। अंतर की सार्थकता के लिए टी-मूल्य 0.352611 है जो कि 0.05 विश्वास के स्तर में कि 118 के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूहों के मध्यमानों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है। अत: शोधकर्ता द्वारा बनाई गई निराकरणीय परिकल्पना 'किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' को स्वीकार किया जाता है।

परिकल्पना क्रमांक 2–उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोरों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका क्रमांक 2

सामाजिक-आर्थिक स्थिति	**संख्या** (D)	**मध्यमान** (N)	**मानक विचलन** (M)	**स्वतंत्रता स्तर** (df)	**टी-मूल्य** (t)	**सार्थकता स्तर**
उच्च	60	22.6	11.02109	118	0.671901	असार्थक
निम्न	60	23.38333	9.096641			

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट है कि उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोरों के समूहों के आत्मविश्वास का मध्यमान क्रमशः 22.6 तथा 23.38333 है एवं मानक विचलन क्रमशः 11.02109 तथा 9.096641 है। अंतर की सार्थकता के लिए टी-मूल्य 0.671901 है जो कि 0.05 विश्वास के स्तर में कि 118 के लिए के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूहों के मध्यमानों में संख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है। अत: शोधकर्ता द्वारा बनाई गई निराकरणीय परिकल्पना 'उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोरों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' को स्वीकार किया

जाता है।

परिकल्पना क्रमांक 3–उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालकों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका क्रमांक 3

सामाजिक-आर्थिक स्थिति	**संख्या** (D)	**मध्यमान** (N)	**मानक विचलन** (M)	**स्वतंत्रता स्तर** (df)	**टी-मूल्य** (t)	**सार्थकता स्तर**
उच्च	30	20.23333	10.27445	58	0.132568	असार्थक
निम्न	30	24.03333	8.976918			

तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट है कि उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालकों के समूहों के आत्मविश्वास का मध्यमान क्रमश: 20.23333 तथा 24.03333 है एवं मानक विचलन क्रमश: 10.27445 तथा 8.976918 है। अंतर की सार्थकता के लिए टी-मूल्य 0. 132568 है जो कि 0.05 विश्वास के स्तर में कि 58 के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 2.00 से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूहों के मध्यमानों में संख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है। अत: शोधकर्ता द्वारा बनाई गई निराकरणीय परिकल्पना 'उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालकां के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' को स्वीकार किया जाता है।

परिकल्पना क्रमांक 4–उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका क्रमांक 4

सामाजिक-आर्थिक स्थिति	**संख्या** (D)	**मध्यमान** (N)	**मानक विचलन** (M)	**स्वतंत्रता स्तर** (df)	**टी-मूल्य** (t)	**सार्थकता स्तर**
उच्च	30	24.96667	11.40019	58	0.409567	असार्थक
निम्न	30	22.73333	9.321585			

तालिका क्रमांक 4 से स्पष्ट है कि उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालिकाओं के समूहों के आत्मविश्वास का मध्यमान क्रमश: 24.96667 तथा 22.73333 है एवं मानक विचलन क्रमश: 11.40019 तथा 9.321585 है। अंतर की सार्थकता के लिए टी-मूल्य 0. 409567 है जो कि 0.05 विश्वास के स्तर में कि 58 के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 2.00 से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूहों के मध्यमानों में संख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है। अत: शोधकर्ता द्वारा बनाई गई निराकरणीय परिकल्पना 'उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' को स्वीकार किया जाता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में संख्यिकीय गणना एवं विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट होता है कि

1. किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोरों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

 ISSN 0975-735X

3. उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले किशोर बालकों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
4. उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ

1. Adolescent mental health, https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/adolescent-mental-health, 2020, September 28
2. ए॰टी॰ जरशील्ड, (1997), किशोर मनोविज्ञान, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, पृ॰ 186
3. Gupta R. (1971) , Manual for the Self confidence Inventory, National Psychological Corporation,Agra, pp.3
4. Malik, Umender, Yougesh (2014), A Study of The Effect of Self-Confidence on Academic Achievement among Senior Secondary School Students, PARIPEX – Indian Journal of Research, 12(3), pp. 64-66.
5. Selvaraj,A., Gnanadevan, R. (2014), Self-confidence and stress among higher senior secondary students of Cuddalore District of Tamil Nadu, Journal of Community Guidance and Research, 31(1), pp.71-77.
6. Sharma, Meena (2015), A study of self-confidence of senior secondary school students in relation to socio-economic status, American International Journal of Research in Humanities, ArtsAnd Social Sciences, 13(1), pp. 78-80.
7. Vyas, Tripti Gunthey, Ravi (2017), Emotional Maturity and Self Confidence among Adolescent Students, The International Journal of Indian Psychology, 5(1), pp.71-77. http://www.ijip.in.
8. Kaur, Harvinder (2018), Self confidence in relation toAdjustment of Adolescents, International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 6(1), pp.1281-1285.
9. नजमुस सहर, (2019) ए सीबीएसई बोर्ड तथा उत्तराखंड बोर्ड के छात्रों में आत्मविश्वास तथा परीक्षा चिंता के मध्य सहसंबंध का अध्ययन, मदरहुड इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 4(1), पृ॰ 01-11
10. Gupta R (1971) Self Confidence Inventory, National Psychological Corporation, Agra.
11. Bharodwaj, R.L. (1971), 'Socio-Economic Status Scale SESS-BR', National Psychological Corporation, Agra.
12. एच॰के॰ कपिल, (1981), अनुसंधान विधियाँ, हरप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन आगरा, पृ॰ 181

दिनेशचन्द्र पांडे

सी-96 **जज फार्म, मुखानी, हल्द्वानी**

जिला नैनीताल 263139 **(उत्तराखंड)**

मो॰ 8006587483

Chandra.dines50@gmail.com

21वीं शताब्दी में जलवायु परिवर्तन के कारण बलदता कृषि प्रतिरूप (राजस्थान के संदर्भ में)

गजेन्द्र सिंह राठौड़, शोधार्थी भूगोल विभाग
गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर (राज॰)
डॉ॰ सुनील कुमार, सह आचार्य भूगोल विभाग
मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान, मानित विश्वविद्यालय,
गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर (राज॰)

राजस्थान का परिचय—राजस्थान भारत गणराज्य का क्षेत्रफल के आधार पर सबसे बड़ा राज्य है। इस राज्य की एक अंतरराष्ट्रीय सीमा पाकिस्तान के साथ 1070 किमी॰ लगती है। जिसे 'रेड क्लिप रेखा' के नाम से जानते हैं। इसके अतिरिक्त यह देश के अन्य पाँच राज्यों से भी जुड़ा है। इसके दक्षिण-पश्चिम में गुजरात, दक्षिण-पूर्व में मध्यप्रदेश, उत्तर में पंजाब (भारत), उत्तर-पूर्व में उत्तर प्रदेश और हरियाणा हैं। राज्य का क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किमी॰ (132140 वर्ग मील) है। 2011 गणना के अनुसार राजस्थान की साक्षरता दर 70 प्रतिशत है। राजस्थान का पुराना नाम राजपुताना था।

जयपुर राज्य की राजधानी है। भौगोलिक विशेषताओं में पश्चिम में थार मरुस्थल और घग्गर नदी का अंतिम छोर है। विश्व की पुरातन श्रेणियों में प्रमुख अरावली श्रेणी राजस्थान की एक मात्र पर्वत श्रेणी है, जो कि पर्यटन का केंद्र है, माउंट आबू और विश्वविख्यात देलवाड़ा मंदिर सम्मिलित करती है। राजस्थान में तीन (रामगढ़ विषधारी के जुड़ने के बाद चार) बाघ अभ्यारण्य, मुकंदरा हिल्स रणथंभौर एवं सरिस्का हैं और भरतपुर के समीप केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान है, जो सुदूर साइबेरिया से आने वाले सारसों और बड़ी संख्या में स्थानीय प्रजाति के अनेकानेक पक्षियों के संरक्षित-आवास के रूप में विकसित किया गया है। राजस्थान का सबसे नया संभाग भरतपुर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का सबसे छोटा जिला धौलपुर है, और सबसे बड़ा जिला जैसलमेर है। प्राचीन समय में राजस्थान में आदिवासी कबीलों का शासन था। 2500 ईसा पूर्व से पहले राजस्थान बसा हुआ था और उत्तरी राजस्थान में सिंधु घाटी सभ्यता की नींव रखी थी। भील और मीना जनजाति इस क्षेत्र में रहने के लिए सबसे पहले आए थे। संसार के प्राचीनतम साहित्य में अपना स्थान रखने वाले आर्यों के धर्मग्रंथ ऋग्वेद में मत्स्य जनपद का उल्लेख आया है, जो कि वर्तमान राजस्थान के स्थान पर अवस्थित था। महाभारत कथा में भी मत्स्य नरेश विराट का उल्लेख आता है, जहाँ पांडवों ने अज्ञातवास बिताया था। करीब 13वीं शताब्दी के पूर्व तक पूर्वी राजस्थान और हाड़ौती पर मीणा तथा दक्षिण राजस्थान पर भील राजाओं का शासन था उसके बाद मध्यकाल में राजपूत जाति के विभिन्न वंशों ने इस राज्य के विविध भागों पर अपना कब्जा जमा लिया, तो

 ISSN 0975-735X

उन भागों का नामकरण अपने-अपने वंश, क्षेत्र की प्रमुख बोली अथवा स्थान के अनुरूप कर दिया। ये राज्य थे–चित्तौड़गढ़, उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, (जालोर) सिरोही, कोटा, बूँदी, जयपुर, अलवर, करौली, झालावाड़ , मेरवाड़ा और टोंक (मुस्लिम पिंडारी)। ब्रिटिशकाल में राजस्थान राजपूताना नाम से जाना जाता था राजा महाराणा प्रताप और महाराणा सांगा, महाराजा सूरजमल, महाराजा जवाहरसिंह, वीर तेजाजी अपनी असाधारण राज्यभक्ति और शौर्य के लिए जाने जाते थे। पन्ना धाय जैसी बलिदानी माता, मीरां जैसी जोगिन यहाँ की एक बड़ी शान है। कर्माबाई जैसी भक्तणी जिसने भगवान जगन्नाथ जी को हाथों से खीचड़ा (खिचड़ी) खिलाया था। इन राज्यों के नामों के साथ-साथ इनके कुछ भू-भागों को स्थानीय एवं भौगोलिक विशेषताओं के परिचायक नामों से भी पुकारा जाता रहा है। पर तथ्य यह है कि राजस्थान के अधिकांश तत्कालीन क्षेत्रों के नाम वहाँ बोली जाने वाली प्रमुखतम बोलियों पर ही रखे गए थे। उदाहरणार्थ ढूंढ़ाडी-बोली के इलाकों को ढूंढ़ाड़ (जयपुर) कहते हैं। मेवाती बोली वाले निकटवर्ती भू-भाग अलवर को मेवात, उदयपुर क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली मेवाड़ी के कारण उदयपुर को मेवाड़, ब्रजभाषा-बाहुल्य क्षेत्र को ब्रज, मारवाड़ी बोली के कारण बीकानेर-जोधपुर इलाके को मारवाड़ और वागड़ी बोली पर ही डूँगरपुर-बाँसवाड़ा आदि को वागड़ कहा जाता रहा है।

कृषि एक आजीविका है, एक व्यवसाय है, एक क्रिया उद्यम है, एक व्यवस्था है। कृषि एक परंपरा है, जीवन प्रद्धति है, एक समाज, सभ्यता एवं एक संस्कृति है, यह बहु-आयामी रूप लिए वह क्रिया है जो पृथ्वी पर वृहत्त रूप से की जाती है। दूसरे अर्थों में यह एक वृहत्त अवधारणा है जो विभिन्न रूपों में प्रचलित है जिसका सीधा संबंध भौगोलिक संदर्भों से है। इस प्रकार भारत में कृषि एक व्यवसाय ही नहीं वरन् एक जीवन-पद्धति है। यह एक सांस्कृतिक विरासत है, जो भारत को सदियों से जीवंत रखे हुए है। इस संदर्भ में यह एक मानव जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास के इतिहास का वह तथ्य है जो मानव सभ्यताओं के विकास क्रम के साथ-साथ धरोहर के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमें प्राप्त हुआ है। आधुनिकता ने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, जैव तकनीकी एवं वैज्ञानिक अन्वेषणों ने कृषि के प्रारूप, उत्पाद क्षमता, वितरण व्यवस्था आदि को एक और नवीन रूप दिए है वहीं इनमें जैविकीय तत्त्वों को बदलकर फसलों की पारिस्थितिकी को ही बदल डाला है। एक और बढ़ती जनसंख्या के कारण खाधान्नों की बढ़ती माँग, तो दूसरी तरफ मिट्टियों की घटती क्षमता हम सभी के लिए चिंता का विषय है।

कृषि की विचारधारा (Concept of Agriculture)–समस्त जगत की उत्पति का आधार अन्न ही है, क्योंकि अध्यात्म में अन्न को देव माना गया है, जो कर्म के द्वारा पैदा किया जाता है, जिससे समस्त प्राणी (जगत) जीवित रहते हैं। यही भारतीय संस्कृति है। अत: अन्न उत्पादन का कर्म ही कृषि है।

कृषि की मूल विचारधारा इस कथन में ही निहित है कि कृषि आजीविका का प्रमुख आधार है यह एक जीवन पद्धति है। यह हमारी सभ्यता एवं सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक है तथा यह एक सामाजिक व्यवस्था है, परंपरा है। कृषि केवल एक कार्य ही नहीं वरन् एक जीवन शैली है।

'It is a Livelihood, an Occupation, an activity, a System; It is a Tradition, a Society, a Civilsation and a Culture. It is a multifacet activity Widely Carried on land and above all a way of life of the People.'

जिम्मरमैन (Zmmerman) के अनुसार, 'कृषि के अंतर्गत वे उत्पादक प्रयास सम्मिलित हैं

जो भूमि पर बसे हुए मानव द्वारा उपयोग किए जाते हैं और यदि संभव हो तो मानव पौधे एवं पशु जीवन या प्राकृतिक विकास की प्रणाली को अधिक उन्नत या प्रगतिशील बनाता है और यह लक्ष्य रखता है कि इन पद्धतियों के द्वारा अपनी वनस्पति या पशु-संबंधी आवश्यकता पूरी हो।'

किंतु कृषि का अर्थ इतना संकुचित व सीमित नहीं है, अपितु इसमें खेत की जुताई, फसल उगाना, पशुचारण, वृक्षों की खेती, वन-संबंधी कार्य, सिंचाई, मत्स्य पालन, रेशों का उत्पादन भी सम्मिलित है। भोजन की प्राप्ति कृषि की प्रधान क्रिया है। किंतु भोजन कृषि के अतिरिक्त आखेट तथा फल एकत्रण से भी प्राप्त होता है, जो कृषि की प्रक्रिया नहीं है। कुछ विद्वानों ने कृषि को वृक्षों तथा पशुओं के शोषण की संज्ञा दी है किंतु वास्तव में कृषि न होकर इनके विकास की पद्धति है।

कृषि का इतिहास–भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी दो-तिहाई जनसंख्या पूर्णतया कृषि पर निर्भर है। भारतीय कृषि में अधिकतर खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। भारतीय किसान व्यावसायिक कृषि बहुत कम या निम्न स्तर पर करते है। क्योंकि यहाँ जनसंख्या अधिक एवं कृषि योग्य भूमि कम है जिसके कारण अपने जीविकोपार्जन हेतु खाधान्न फसलों का उत्पादन करना अति आवश्यक हो जाता है। भारतीय उपमहाद्वीप का भौगोलिक स्वरूप लंबे समय से बदलता रहा है आज भी संपूर्ण भारत की जलवायु में विभिन्नता है जिसके कारण आर्थिक-सांस्कृतिक भूदृश्य भी भिन्न है। कृषि का स्वरूप प्रारंभ में वन्य संसाधनों के संग्रहण एवं पशु पक्षियों के शिकार के रूप में था आदिम मानव ये कार्य जीविकोपार्जन हेतु करता था इस प्रकार कृषि एक प्राथमिक कार्य है जिसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक, संसाधनों के उपयोग द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। परंतु प्रो॰ लेजली सायमन्स (Leslie Symons 1970) ने आखेट एवं संग्रहण को कृषि से अलग मान्यता प्रदान की है। इनके अनुसार कोई कार्य जब कृषि को ध्यान में रखते हुए किया जाता है तो उसे भी कृषि के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार आज से करीब 10,000 ईसवी पूर्व (B.C.) प्रागैतिहासिक मानव (Prehistoric Man) ने प्रथम बार कुछ-पौधों व पशुओं को अपनाया और उन्हें अपने जीवन रक्षक के रूप में स्वीकार किया। यह काल नवकल्प (Neo Lithic Period) का था इस प्रकार प्रारंभिक कृषि से आधुनिक कृषि व्यवस्था कई सामाजिक संस्कृतियों से गुजर कर वर्तमान स्वरूप में आई है। वर्तमान में मानव इन्हीं पूर्व अर्जित अभिजात गुणों एवं अनुभवों के आधार पर जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी से विरासत में अर्जित हुए हैं, कृषि कार्यों को अपने-अपने समाजों में करता आ रहा है। जिन मानव समाजों की संस्कृति में साम्यताएँ पाई जाती है उनके कृषि कार्यों व पद्धतियों में भी समानताएँ मिलती है। जैसे–चीन व भारत में कृषि व्यवस्थाएँ (Systems) करीब-करीब एक जैसी ही पाई जाती है। प्रारंभिक काल में मिस्त्र व मोहन जोदाड़ो सभ्यता काल की कृषि व्यवस्थाओं में भी काफी समानताएँ देखी जाती हैं। इसलिए कृषि व्यवस्थाएँ भी एक-दूसरे से काफी मिलती-जुलती है। विश्व के विभिन्न भागों में भौगोलिक-प्राकृतिक, जलवायु, मिट्टियाँ आदि की भिन्नता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक विषमताओं के कारण कृषि अनेक रूपों में की जाने लगी हैं।

जलवायु परिवर्तन और कृषि–सामान्य तौर पर यह आम धारणा है कि जलवायु परिवर्तन अचानक एवं त्वरित होता है परंतु यह सदा सत्य नहीं होता है क्योंकि जलवायु परिवर्तन त्वरित हो सकता है, क्रमशः हो सकता है (धीरे-धीरे) आंशिक रूप में या पूर्णरूप में हो सकता है, अल्पकालिक या दीर्घकालिक हो सकता है। जुरैसिक युग में जलवायु में त्वरित एवं तात्कालिक परिवर्तन हुआ था जिस कारण जलवायु के अचानक सर्द हो जाने के फलस्वरूप डायनासोर की

 ISSN 0975-735X

सामूहिक मृत्यु होने से उनका विलोपन (Extinction) हो गया था। वर्तमान समय में मानव समाज मौसम-संबंधी दशाओं में प्रतिवर्ष होने वाले परिवर्तनों एवं उतार चढ़ाव को लेकर निकट भविष्य में संभावित जलवायु परिवर्तनों की समस्या को लेकर चिंतित है। पिछली सदी (20वीं सदी) का अंतिम दशक (1991-2000) विश्व के रिकॉर्डेड तापमान के इतिहास का सर्वाधिक गर्म दशक रहा है तथा वर्ष 2005 सर्वाधिक गर्म वर्ष रहा है। भूमंडलीय पर्यावरणीय परिवर्तन (GEC) वर्तमान समय में विश्व समुदाय के सामने सबसे बड़ी पर्यावरणीय समस्या है। वास्तव में कई मानव जनित कारकों यथा: वन विनाश, ग्रीन हाउस गैसों में त्वरित गति से वृद्धि, ओजोन क्षरण आदि के फलस्वरूप भूमंडलीय ऊष्मन (Globle Warming) होने से भविष्य में होनेवाले संभावित जलवायु परिवर्तन की समस्या चिंता का विषय बनी हुई है क्योंकि यह विश्वास किया जा रहा है कि भूमंडलीय ऊष्मन का सकल परिणाम यह होगा कि जलवायु में स्थानीय, प्रादेशिक एवं भूमंडलीय स्तरों पर जलवायु में भारी परिवर्तन हो सकता है। इस तरह की संभावित जलवायु परिवर्तन की समस्या को लेकर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय चिंतित है। क्योंकि यदि जलवायु में भारी परिवर्तन होता है तो उसका मनुष्य एवं प्रकृति पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्राय: विकसित और विकासशील देशों के बीच वाद-विवाद का विषय बनकर रह गई 'जलवायु परिवर्तन' की चुनौती भले ही रोजमर्रा की आजीविका के संधर्ष एवं व्यस्त दिनचर्या में लीन लोगों के लिए महज खबर या अकादमिक विषय सामग्री हो। लेकिन सच्चाई तो यह है कि हवा, पानी, खेती, भोजन, स्वास्थ्य, आजीविका एवं आवास आदि सभी पर प्रतिकूल असर डालने वाली इस समस्या से देर-सबेर, कम-ज्यादा हम सभी का जीवन प्रभावित होता है चाहे वह समुद्री जल-स्तर बढ़ने से प्रभावित होते तटीय या द्वीपीय क्षेत्रों के लोग हो या असामान्य मानसून अथवा जल संकट से त्रस्त किसान। विनाशकारी समुद्री तूफान का कहर झेलते तटवासी हो अथवा सूखे एवं बाढ़ की विकट स्थितियों से त्रस्त लोग। असामान्य मौसम-जनित अजीबो-गरीब बीमारियों से जूझते लोग हों या विनाशकारी बाढ़ में अपना आवास एवं सब कुछ गँवा बैठे तथा दूसरे क्षेत्रों को पलायन करते लोग। दरअसल, में तमाम लोग जलवायु परिवर्तन की मार झेल रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कृषि पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभावों के अध्ययन की जरूरत है। इस क्षेत्र में तत्काल दो काम करने चाहिए—एक यह कि है जलवायु परिवर्तन से कृषि चक्र पर क्या फर्क पड़ रहा है तथा दूसरा क्या इस परिवर्तन की भरपाई कुछ वैकल्पिक फसलें उगाकर पूरी की जा सकती हैं?

फसलों पर प्रभाव—कृषि फसलों में जलवायु परिवर्तन के जो संभावित प्रभाव दिखने वाले है वे मुख्य रूप से दो प्रकार के हो सकते हैं। पहला क्षेत्र आधारित तथा दूसरा फसल आधारित। अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग-अलग प्रभाव पड़ सकता है। गेहूँ और धान (चावल) हमारे देश की प्रमुख खाद्य फसलें हैं। इनके उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पड़ रहा है। कृषि फसलों पर जलवायु परिवर्तन के संभावित परिणाम निम्नलिखित है।

* सन् 2100 तक फसलों की उत्पादकता में 10-40 प्रतिशत की कमी आएगी।
* रबी की फसलों को ज्यादा नुकसान होगा। प्रत्येक 1 सैंग्रे० तापमान बढने पर 4-5 करोड़ टन उत्पादन में कमी आएगी।
* पाले के कारण होने वाले नुकसान में कमी आएगी जिससे आलू, मटर और सरसों का कम नुकसान होगा।

* सूखा और बाढ़ में बढ़ोतरी होने की वजह से फसलों के उत्पादन में अनिश्चितता की स्थिति होगी।
* फसलों के बोए जाने का क्षेत्र भी बदलेगा, कुछ नए स्थानों पर उत्पादन किया जाएगा।
* खाद्यान्न व्यापार में पूरे विश्व में असंतुलन बना रहेगा।
* पशुओं के लिए पानी, पशुशाला और ऊर्जा-संबंधी जरूरतें बढ़ेंगी विशेषकर दुग्ध उत्पादन हेतु।
* समुद्रों व नदियों के पानी का तापमान बढ़ने के कारण मछलियों व जलीय जंतुओं की प्रजनन क्षमता व उपलब्धता में कमी आएगी।
* सूक्ष्म जीवाणुओं और कीटों पर प्रभाव पड़ेगा। कीटों की संख्या में वृद्धि होगी तो सूक्ष्म जीवाणु नष्ट होंगे।
* वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसलों को अधिक नुकसान होगा, क्योंकि सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता भी कम होती जाएगी।
* 1991 की जनगणना के अनुसार 65 प्रतिशत लोग रोजगार के लिए खेती पर निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में कृषि एक महत्त्वपूर्ण घटक है। जिसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन या गिरावट देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित कर सकती है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसा ही कारक है। जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है तथा इस पर निर्भर लोगों की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।
* देश में जलवायु-स्मार्ट कृषि (Climate Smart Agriculture - CSA) विकसित करने की ठोस पहल की गई है और इसके लिए राष्ट्रीय स्तर की परियोजना भी लागू की गई है। यह एक एकीकृत दृष्टिकोण है, जिसमें फसली भूमि, पशुधन, वन और मत्स्य पालन के प्रबंधन का प्रावधान होता है। यह परियोजना खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन की परस्पर चुनौतियों का सामना करने के लिए बनाई गई है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव राजस्थान के संदर्भ में

जलवायु परिवर्तन की समस्या से राजस्थान भी अछूता नहीं है। जलवायु परिवर्तन से होने वाले पर्यावरण में परिवर्तन जैसे–

* तापमान में वृद्धि होना।
* पवनों की दिशा में परिवर्तन होना।
* वर्षा का कम या ज्यादा होना।
* अधिक लू और सूखा पड़ने के आसार बनना जिसके फलस्वरूप कृषि पर विपरीत प्रभाव पड़ा है, जलवायु परिवर्तन का कारण ग्लोबल वॉर्मिंग है।
* जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से भारत विश्व का 13 सबसे संवेदनशील देश है। यहाँ की 60 प्रतिशत कृषि वर्षा पर आधारित है और दुनिया के गरीबों में से 33 प्रतिशत यहाँ निवास करते हैं।
* जलवायु परिवर्तन से देश के भोजन और पोषण सुरक्षा पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा।
* अधिक और लगातार तीव्र सूखा गिरना।
* समुद्रों का बढ़ता जलस्तर।
* समुद्री जीव-जंतुओं पर संकट।

 ISSN 0975-735X

* जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन बिगड़ता जा रहा है खतरनाक मौसम की घटनाएँ लगातार गंभीर होती जा रही हैं।
* आर्कटिक में ध्रुवीय भालू से लेकर अफ्रीका के तट पर समुद्री कछुओं तक बदलती जलवायु परिवर्तन से हमारे ग्रह तक के जीवन की विविधता खतरे में है।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में कतिपय उपाय

* कार्बन उत्सर्जन की मात्रा को कम किया जाना चाहिए।
* जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए अग्रिम नीतियों को बनाना और क्रियान्वित करना।
* लोगों और प्रकृति को बदलती जलवायु के लिए अनुकूल बनाने में मदद करना।
* महत्त्वाकांक्षाओं और वादों को कार्रवाई में बदलने की जरूरत पर बल दिया जाना चाहिए।
* खेतों और किसानों पर हो रहे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के संदर्भ में देश के 8 राज्यों के कृषि वैज्ञानिक जयपुर के दुर्गापुरा स्थित कृषि अनुसंधान केंद्र में 4 से 21 जनवरी 2020 तक जुटे और उन्होंने इस क्षेत्र में दूरगामी परिणामों के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किए।

संदर्भ

1. शर्मा एवं भारद्वाज, कृषि भूगोल रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड़, मेरठ
2. एस०डी० कौशिक एवं अलका गौतम, संसाधन भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ
3. आर०के० गुर्जर एवं बी०सी० जाट, भारत का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
4. बी०सी० जाट, विश्व का प्रादेशिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
5. माजिद हुसैन एवं राकेश सिंह MC Grwa Hill Education (India) Pvt. Ltd., New Delhi
6. सविंद्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
7. योजना पत्रिका संस्करण जून 2009 से
8. इंडिया स्टेट फॉरेस्ट रिपॉर्ट-2017 दिनांक 04.03.2018 को प्रकाशित समाचार के पत्र के अनुसार।
9, R. K. Gurjar And B.C. Jat, Resource and Environment, Panchasheel Prakashan, Jaipur
10. Hemant Kumar And Gaurav and Anuradha, Environmental Education, Vinod Publications, Ludhiana
11. According to the India State of Forest Report - 2017 dated 04.03.2018, published newspaper (Rajasthan-Magazine).
12. Primary Source: Through Internet
13. Sustainable development as meeting the needs of present without compromising the ability of future generations to meet their needs. Chris Park, The Envirnonment- Principles and applications 1997, P.23 - 24

Gajendra Singh Rathore
LAD -Bhanwar Niwas , Swaroop Villa
Bahadur Singh Colony,
SARDARSHAHAR (CHURU) 331403 Raj.
Mob. 9079264454
rathoregajendra806@gmail.com

1857 के संग्राम के में फर्रुखाबाद जिले की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

गौरव सक्सेना, शोध छात्र, इतिहास विभाग
शास॰ हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰)
डॉ॰ चित्रा आम्रवंशी, प्रोफेसर इतिहास विभाग
सरोजनी नायडू शास॰ कन्या पी॰जी॰ कॉलेज (नूतन कॉलेज) भोपाल (म॰प्र॰)

प्राचीनकाल से ही फर्रुखाबाद जनपद इतिहास के केंद्र में रहा है। चाहे वह कांस्य युगीन सभ्यता के ऐतिहासिक हथियार और उपकरण मिलने की बात हो या फिर संकिषा और कांपिल्य से मिली बड़ी संख्या में प्राप्त हुई पत्थर की मूर्तियों का उल्लेख हो। यह जनपद मूर्तिकला के क्षेत्र में तो, अपनी महान पुरातनता के हस्ताक्षर करता प्रतीत होता है। यही वह क्षेत्र है जहाँ आर्यजाति का निवास हुआ करता था साथ ही इसकी प्राचीनता का उल्लेख हमें महाभारत और प्राचीन ऐतिहासिक पुराणों के माध्यम से भी होता है।

कहा जाता है कि सर्वप्रथम इस क्षेत्र में अमावासु नामक एक राजा ने अपनी सत्ता स्थापित की थी जिसने अपना केंद्र कान्यकुब्ज (वर्तमान कन्नौज) को बनाकर शासन करना प्रारंभ किया था। कालांतर में साल 1714 ई॰ में, मुगल बादशाह फरुखशियर के नाम पर फर्रुखाबाद शहर की स्थापना की गई जिसके निर्माण का श्रेय मोहम्मद खान को जाता है। इससे पूर्व यह समस्त क्षेत्र पांचाल प्रदेश के अधीन आता था। यह वही पांचाल है जिसकी राजधानी कांपिल्य में महाभारत कालीन द्रौपदी का स्वयंवर हुआ था।

इसी काम्पिल्य का हिंदुओं और जैन मतावलंबियों की लिए खास महत्त्व भी है। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने इसी स्थान पर अपना पहला उपदेश दिया था। इसके अतिरिक्त, विदेशी यात्री यथा ह्वेनसांग, फाह्यान, इब्नबतूता और अलबरूनी का भी इस क्षेत्र में आगमन हुआ था।

फर्रुखाबाद की भौगोलिक स्थिति—सत्रहवीं शताब्दी के दौरान यह पूरा जनपद दो संभागों में विभाजित था। पहला भाग, काली नदी के उत्तरी क्षेत्र में अवस्थित था जो रूहेलखंड नवाब के आधीन हुआ करता था। वहीं जनपद के दक्षिणी भाग में, अवध के नवाब की सत्ता हुआ करती थी। रूहेलखंड के अंतर्गत शामिल क्षेत्रों में प्रमुखतः कायमगंज (मुख्यालय), शमसाबाद, रुदायन, अलीगंज, पटियाली और कासगंज क्षेत्र थे। वहीं अवध के नवाब के आधीन कन्नौज से कानपुर तक का भाग था जिसमें तिर्वा, ठठिया, इंदरगढ़ आदि क्षेत्र शामिल था और इस भाग का शासन कन्नौज से शासित होता था।

ब्रिटिश कालीन फर्रुखाबाद जिले में तब 6 तहसील और 10 पुलिस थाने सम्मिलित थे। वर्ष 1774 में ब्रिटिश गवर्नर वारेन हेस्टिंग की मदद से अवध के नवाब ने इस पूरे क्षेत्र को विजित कर एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया और इस विभक्त क्षेत्र को संयुक्त रूप से अवध रियासत के एक जनपद फर्रुखाबाद जनपद के नाम जाना गया, जिसमें गंगा से रामगंगा तक का क्षेत्र शामिल था। अब

 ISSN 0975-735X

इस क्षेत्र में राजस्व वसूलने का कार्य अवध नवाब के कर्मचारी करने लगे, केवल आतंरिक नागरीय भाग के रूप में ही फर्रुखाबाद में रूहेलखंड के नवाब की आधिकारिता शेष रह गई थी।

फर्रुखाबाद में ब्रिटिश शासन–प्राचीनकाल में पश्चिमी उत्तर प्रदेश विशेषकर फर्रुखाबाद जनपद नील की खेती और शोरे के व्यापार के लिए जाना जाता था। एक अध्ययन के अनुसार, फर्रुखाबाद जनपद में उस समय लगभग 5000 मन पक्की नील होती थी, जिसका बाजार भाव लगभग 200 रुपया प्रति मन हुआ करता था जिसका निर्यात यूरोपीय बाजारों में किया जाता था।

1856 में लगभग फर्रुखाबाद जनपद से 60 हजार मन शुद्ध शोरे को यूरोपीय बाजारों में बिक्री हेतु भेजा गया और संभवत: यही से अँग्रेजों ने फर्रुखाबाद के महत्त्व को समझकर अवध नवाब के माध्यम से फर्रुखाबाद नवाब से मित्रता बढ़ानी शुरू की। परिणामस्वरूप तत्कालीन मैनपुरी, इटावा, हरदोई और बिलग्राम में कर्नल थॉमस गोडार्ड के नेतृत्व में ब्रिटिश सैन्य छावनियों का भी निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ जो कालांतर में मजबूत होता चला गया। अगस्त 1777 में गवर्नर जनरल की परिषद् द्वारा पारित प्रस्ताव ने अवध को अँग्रेजी सेना को आधीन लेने का मार्ग प्रसस्थ किया। 1801 की संधि के उपरांत मैनपुरी, इटावा, फर्रुखाबाद आदि जिलों में अँग्रेजों की सत्ता स्थापित कर ब्रिटिश सेना में भी विस्तार कर लिया गया। 04 जून 1802 से फर्रुखाबाद जनपद का प्रबंध ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन आ गया और पहली बार किसी अँग्रेज अधिकारी को यहाँ जिलाधिकारी नियुक्त कर भेजा गया।

जहाँ 1857 तक पूरे देश भर में अँग्रेजी सरकार के कृत्यों के विरोध स्वरूप एक रोष की भावना भारतीय जनमानस के बीच आकार लेने लगी तो वहीं फर्रुखाबाद में भी इस विचार का प्रचार और प्रसार होने लगा। 1857 में फर्रुखाबाद में प्रस्फुटित यह क्रांति आकस्मिक नहीं थी वरन् इसके लिए पहले से ही पूरे देश भर में धीरे-धीरे ही सही माहौल तैयार किया जाने लगा था।

तत्कालीन फर्रुखाबाद क्षेत्र के अंतर्गत एटा, मैनपुरी, इटावा आदि के साथ-साथ कांपिल्य से सोरों तक का पूरा जंगल क्षेत्र भी सम्मिलित हुआ करता था जिस कारण इस इलाके को अरण्य क्षेत्र भी कहा जाता था। इसी दुर्दुष वन क्षेत्र में साल 1854 में स्वामी विरजानंद सरस्वती महाराज ने समस्त उत्तर भारत के राजा महाराजाओं, नवाबों को निमंत्रण भेज एक सभा का आयोजन करवाया था। जिसमें उन्होंने समस्त भारत को संबोधित करते हुए कहा कि 'इस पावन धरा से इन अधर्मी विदेशियों को सदा के लिए बहार भगा देना है।'

इस सभा से प्राप्त सभी संसाधनों को भी स्वतंत्रता आंदोलन हेतु उत्सर्ग कर दिया साथ ही अपने प्रिय शिष्य स्वामी दयानंद सरस्वती को भी निर्देश दिया की कुछ समय के लिए अध्ययन को छोड़ स्वतंत्रता हेतु एक स्वस्थ्य वातावरण का निर्माण करने के लये प्रयासों को बढ़ाया जाए। इसके बाद स्वामी दयानंद ने गंगा किनारे से प्रयागराज तक देशवासियों के बीच घूम-घूमकर प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगर, केंद्र तथा छावनियों में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रप्रेम की भावना को जाग्रत करने हेतु अथक परिश्रम किया।

तत्कालीन फर्रुखाबाद क्षेत्र तो स्वामी दयानंद सरस्वती जी का घर ही बन गया था जहाँ से उन्होंने धार्मिक सतसंग, प्रवचन आदि की आड़ में भारतीय सैनिकों के मध्य स्वतंत्रता का संदेश व क्रांति की अलख को अनवरत फैलाने का कार्य किया, सही मायनों में अगर कहा जाए तो उस समय वे इस क्षेत्र में स्वयं क्रांति के सूत्रधार या पर्याय बन चुके थे।

इन्हीं सब घटनाओं के मध्य पूरे फर्रुखाबाद क्षेत्र के साथ साथ लगभग पूरे उत्तर भारत में

क्रांति की सुगबुगाहट तेज होने लगी थी, और स्थानीय जनता का उत्साह राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र चेतना देखने लायक थी। गंगा के किनारे से सटे क्षेत्रों में स्थानीय ब्राह्मणों ने राष्ट्रचेतना जाग्रत करवाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

उन्होंने जन-जन तक यह बात फैलाई की ये विदेशी शासक हमारे देश में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार कर हमें धर्मभ्रष्ट करना चाहते हैं साथ ही इनका इरादा पूरे भारत वर्ष को एक ईसाई राज्य में तब्दील कर देने का है। वहीं अधिकांश मुस्लिम जनता भी इस विदेशी शासन से खिन्न हो चुकी थी उनके अनुसार इन अँग्रेजों ने ही देश से मुस्लिम हुकूमत को समाप्त करने का काम किया था। वहीं अँग्रेजी सरकार ने कुप्रशासन के नाम पर अवध की रियासत को स्वयं में मिलाने से नवाब तथा उसके रिश्तेदारों के साथ ही जमींदार वर्ग भी अब अँग्रेजी शासन के खिलाफ हो गया था।

अवध का विलय होते ही इस क्षेत्र के धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में योगदान करने वाले विशिष्ट व्यक्ति जैसे मौलवी, पंडित, संगीतज्ञ, बढ़ई आदि लोग भी बेरोजगारी के जद में आ गए चूँकि इन सबकी आय का स्रोत नवाब से ही था और नवाब के न रहने के कारण यह पूरा वर्ग भी अँग्रेजों के विरोधी खेमे में चला गया। फलस्वरूप, क्षेत्र के सभी वर्ग के लोग सैनिकों को अँग्रेजों के खिलाफ क्रांति के लिए पूर्ण मनोयोग से प्रोत्साहित करने लगे।

क्रांति का मंगलाचरण और प्रचार–1857 की क्रांति प्रारंभ होने से कुछ समय पूर्व ही फर्रुखाबाद के पूरे क्षेत्र में क्रांति की भूमिका बन चुकी थी जहाँ एक ओर नाना साहब की सेना ने अपना रकबा बिठूर से लेकर फर्रुखाबाद तक फैला लिया था वहीं कैप्टन गंगासिंह, सूबेदार शिवगुलाम दीक्षित, गंगाभक्त सिंह जैसे क्रांतिकारियों ने पहले से ही कुछ विशेष स्थान चिह्नित कर उन स्थानों पर चौकियाँ स्थापित कर ली थीं जहाँ से इस पूरे जनपद में क्रांति का फैलाव होना संभावित था। ब्रिटिश सेना से सेवानिवृत्त गंगाभक्त सिंह, जो अपनी वीरता के लिए मशहूर थे, सीतापुर स्थित क्रांतिकारियों की एक सैन्य टुकड़ी के सूबेदार नियुक्त किया गया हुए और वहीं शिवगुलाम दीक्षित जो कि मेरठ क्रांति के जननायक मंगल पांडे के मित्र तथा प्रसिद्ध ज्योतिष थे जिनका परिवार कई पीढ़ियों से ज्योतिष विद्या से संबंधित काम कर रहा था। संभवत: शिवगुलाम दीक्षित को 1857 की क्रांति का शुभमुहूर्त (09 मई 1857 को 06 बजकर 53 मिनट 03 सेकंड और 09 घड़ी) निर्धारित करने का श्रेय दिया जाता है। फतेहगढ़ के भूसामंडी और ग्वालटोली में हथियार बनाने की कला का विकास आरंभ हुआ जो शीघ्र ही कायमगंज, पटियाली और फर्रुखाबाद के अन्य क्षेत्रों में फैलने लगा जहाँ से निर्मित सामानों को सैनिकों को मुफ्त में उपलब्ध करवाया जाने लगा। सभी क्रांतिकारियों को उनके धार्मिक ग्रंथों की कसम दिलवाई जाने लगी की वे हर हाल में अपने शीर्ष अधिकारियों की आज्ञा का पालन करेंगे साथ ही अपनी आखिरी साँस तक राष्ट्र के लिए समर्पित होकर आजादी पाने का प्रयास करेंगे।

मेरठ से शुरू हुई क्रांति की सूचना 12 मई 1857 को फर्रुखाबाद तक पहुँची और पहले से ही क्रांति के लिए आमदा सैनिक सूचना का इशारा पाकर पूरे क्षेत्र में सक्रिय हो गए। क्रांति की सूचना मात्र से ही भारतीय सैनिकों के साथ-साथ आम जनता के मन में भी रक्त का संचार होने लगा।

विद्रोह के समय नवाब के आधीन एक बड़ा तोपखाना, घुड़सवार रेजीमेंट, और पैदल सेना सक्रिय थी। नवाब के तोपखाने में लगभग 200 सैनिक कार्यरत थे जिसमें दो पल्ले से लेकर चार पल्ले तक की तोपें सक्रिय थी जिसके लिए बारूद और गोला उत्पादन यहीं की फैक्ट्रियों में निर्मित किया जाता था। इसके अलावा भी घुड़सवारों की पाँच सेनाएँ तथा एक पैदल सेना भी थी। इन सारी

सेनाओं के कमांडर सैयद असगर हुसैन थे। इन सम्मिलित क्रांतिकारियों की शक्तियों से भयभीत अँग्रेजी हुक्मरानों ने फर्रुखाबाद संभाग को क्रांति की लपटों से बचाव की तैयारियों के साथ ही खुद भी संकट के समय सभी यूरोपीय लोगों को एक ही स्थान पर एकत्रित होने का निर्देश जारी कर दिया था और इस कार्य के निमित्त इस संभाग के ब्रिटिश अधिकारी कर्नल स्मिथ ने कुछ भारतीय सैनिकों का चुनाव किया था जो रंग रूप से तो भारतीय ही थे परंतु उनकी पूर्ण निष्ठा इन ब्रिटिश अधिकारियों को ही समर्पित थी। इन सैनिकों को फतेहगढ़ को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी प्रदान की गई थी हालाँकि इसके साथ ही 10 एन०आई० को भी छिबरामऊ और गुरसहायगंज के मध्य मुस्तैदी से तैनात किया गया था। इस तैनाती का पहला कारण तो यह था कि घबराए अँग्रेज अधिकारियों ने अपनी स्त्रियाँ और बच्चों को इसी किले में सुरक्षित कर सरंक्षण प्रदान किया था, और दूसरा विशेष महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि इस किले में गन केरज फैक्ट्री थी, जिससे उत्पादित गोला बारूद न केवल भारत में बल्कि यूरोपीय बाजारों में भी बहुतायत रूप में बिकता था।

जिले के कलेक्टर प्रोवेन ने खुद जाकर खाटमऊ परगने का निरीक्षण किया क्योंकि वह भली-भाँति जानता था इस क्षेत्र के जनता और यहाँ के प्रभावशाली व्यक्ति कंपनी के विरुद्ध विद्रोह में शामिल हैं और वे ब्रिटिश सत्ता के आधार यानी राजस्व वसूली के काम में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। ऐसा ही कुछ मोह्मदाबाद परगने में भी हो रहा था जहाँ अनेक स्थानों पर अँग्रेज छावनियाँ स्थापित की जाना शुरू हो चुकी थीं क्योंकि यह पूरा क्षेत्र हथियारों का उत्पादन कर रहा था। अँग्रेजों के मन में बैठ चुके क्रांति के डर का आलम यह था कि फतेहगढ़ से कन्नौज तक गंगा किनारे घाटों के सुरक्षा की जिम्मेदारी अँग्रेज अधिकारीयों ने स्वयं ले ली थी। एक सैन्य टुकड़ा मैकमिलन के नेतृत्व में घटियाघाट पर और दूसरी टुकड़ी मिस्टर जेम्स के नेतृत्व में रामगंगा के पुल पर मुस्तैद कर दी गई थी ताकि कोई भी विद्रोही क्रांतिकारी शाहजहाँपुर और बरेली के रास्ते फर्रुखाबाद में प्रवेश न कर सके।

अँग्रेजों का जनपद से पलायन—क्रांति की शुरुआत होते ही कुछ समय बाद बख्त खां की सेना मैनपुरी पहुँच गई और फर्रुखाबाद में हुसैन शाह के मकबरे के पास घमासान युद्ध हुआ जिसमें 700 अँग्रेज सैनिक मारे गए और कई अँग्रेज अफसर मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। क्रांतिकारियों ने फतेहगढ़ को जीतने की ठान ली थी उन्होंने अँग्रेजी सेना का गोला बारूद छीना और ठाकुर गंगासिंह के नेतृत्व में 8 गाँवों के क्रांतिकारियों ने मिलकर फतेहगढ़ कचहरी पर आक्रमण कर दिया। इधर कुछ अन्य क्रांतिकारियों ने नानामऊ के घाट को अपने अधिकार साथ में लेने के साथ ही डर्बी की कोठी को लूट लिया और गुरसहायगंज के डाक बंगले में आग लगा दी। क्रांतिकारियों का उद्देश्य जिला कारागार पर अधिकार कर वहाँ के सभी केदियों को मुक्त करवाकर क्रांति में शामिल करवाना था।

क्रांतिकारियों के दबाव के चलते तत्कालीन ब्रिटिश कलेक्टर प्रोवेन भी भयभीत हो चुके थे और उन्होंने निर्णय लिया कि यहाँ बसे अँग्रेजों उनकी स्त्रियों तथा बच्चों को सुरक्षित जलमार्ग से (कानपुर से इलाहाबाद) जनपद से बाहर निकाल लिया जाए। आनन-फानन में 13 नावों की व्यवस्था की गई और अँग्रेजों ने पलायन कर दिया। 15 जून 1857 के रात को ही क्रांतिकारियों ने नावों पर आक्रमण किया जिसमें 42 अँग्रेज मारे गए। इसके बाद निरंतर नावों पर आक्रमण होते रहे। हालाँकि कलेक्टर प्रोवेन जैसे-तैसे 26 मई को कन्नौज पहुँचने में कामयाब रहे। सितंबर 1857 तक पूरे जनपद में लगातार संघर्ष होता रहा और क्रांति की भावना इस संभाग के प्रत्येक तहसील तथा

गाँवों तक पहुँच गई थी।

इसी बीच 01 सितंबर 1857 को फर्रुखाबाद नवाब की सेना ने इटावा पर धावा बोल दिया। अचानक हुए हमले से ब्रिटिश सेना में भगदड़ मच गई और हर कोई अपने प्राणों की रक्षा में लग गया। इटावा के कलेक्टर ए॰ओ॰ ह्यूम खुद बमुश्किल अपने प्राणों की रक्षा कर सके और उन्होंने स्त्री का वेश रख अपने प्राणों की रक्षा की। ए॰ओ॰ ह्यूम के भाग जाने की सूचना आग की तरह फैली और इटावा की जनता ने ढोल-नगाड़े पीटकर आजादी का जश्न मनाया और अपना झंडा फहराया। यहाँ जीतने के बाद नवाब की सेना दिल्ली के क्रांतिकारियों की मदद के लिए कूच कर गई। दिल्ली पहुँचने से पहले नवाब की सेना बेवर पहुँची उस समय यहाँ नील का व्यापार हुआ करता था साथ ही अँग्रेजों ने अपनी कोठियाँ बनाकर रखी थीं। यहाँ नवाब और अँग्रेज सेना का मुकाबला चल ही रहा था की बख्त खां भी अपनी सेना लेकर युद्ध में शामिल हो गए। घमासान युद्ध हुआ और अँग्रेजों को यहाँ से भी भागना पड़ा।

अँग्रेजी दमनचक्र–क्रांति का असर बहुत अधिक समय तक संगठित ब्रिटिश सैन्य शक्ति के सामने न टिक सका और बहुत जल्द ही ब्रिटिश सेना ने वापस बगावत को समाप्त कर इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। शहर में घुसकर ब्रिटिश सेना ने मौत का भयानक तांडव मचाया कई निर्दोष व्यक्तियों जिनमें महिलाए, बच्चे, बूढ़े सभी शामिल थे को भयानक मृत्यु दी गई। इसे नरसंहार कहना भी अतिशयोक्ति न होगी। मृतकों की लाशों को बैल गाड़ियों में ठूँसकर पूरे फर्रुखाबाद शहर की सड़कों में प्रदर्शनी की भाँति घुमाया गया और उनके शवों को गंगाजी में फेंक दिया गया। उस समय की पुलिस रिपोर्ट बताती है कि क्रांति के बाद अकेले फतेहगढ़ और फर्रुखाबाद से 4432 व्यक्तियों को मौत के घात उतार दिया गया था। इसके बाद भी प्रत्येक घर की सघन तलाशी अभियान चलाकर क्रांति में भाग लेने वाले व्यक्तियों की शिनाख्त की गई और उनके घरों को बर्बाद कर सारा सामान लूट लिया गया तथा अधिकांशत: को दंडित भी किया गया। यह कठोर और दमन करने की नीति इसलिए भी अपनाई गई ताकि भविष्य में भारतीय जनता ऐसी कोई भूल न दोहरा सके।

निष्कर्ष–1857 की क्रांति के पश्चात ईस्ट इंडिया कंपनी में भी बदलाव देखने को मिलते हैं। इस क्रांति के पश्चात कंपनी के शासन को ब्रिटिश संप्रभुता (महारानी) को हस्तांतरित कर दिया गया। और यह सूचना पूरे भारत में विभिन्न दरबारों के माध्यम से प्रेषित की गई। ऐसे ही दरबार फर्रुखाबाद में भी 26 दिसंबर 1859 (प्रथम दरबार), 16 नवंबर 1861 (द्वितीय दरबार) और 16 नवंबर 1861 (त्रितीय दरबार) को आयोजित किए गए थे। इन दरबारों में उन व्यक्तियों को जिन्होंने पूर्ण निष्ठा से ब्रिटिश सेना का साथ दिया था को पदवी, धन, संपती और जायदाद आदि से नवाजा गया।

क्रांति के दौरान घाटी घटनाओं की प्रतिपुष्टि तत्कालीन सरकारी रिपोर्टों से भी होती है जिनमें कहा गया है कि क्रांति के दौरान इस पूरे क्षेत्र से लगभग कंपनी का नियंत्रण पूर्णत: मृतप्राय हो गया था। फर्रुखाबाद जिले के कलेक्टर ने अपनी रिपोर्ट में स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि 'भारत के किसी भी हिस्से में क्रांति का विस्तार इतनी शीघ्रता से नहीं हुआ था और न ही यह इससे अधिक कहीं सफल हुई।' इस प्रकार इस जनपद के निवासियों ने अपने पूर्ण मनोयोग से क्रांति को सफल बनाने की कोशिश की थी; और जनांदोलन के माध्यम से ही सही कुछ समय के लिए तो इस पूरे क्षेत्र को स्वतंत्र करवा ही लिया था। इस पूरे घटनाकाल से यह सिद्ध भी होता है कि यहाँ के निवासियों ने आजादी के महान आदर्श को प्राप्त करने के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए थे। इस क्रांति की घटनाओं का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह

कोई सैनिक विद्रोह न होकर भारत की पहली स्वतंत्र क्रांति थी और इसका महत्त्व विद्रोह से कहीं अधिक है। यह संघर्ष ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ देश के नागरिकों में उपजे असंतोष की अभिव्यक्ति थी और यह बात इसके भारत की प्रथम स्वतंत्र क्रांति होने को और अधिक बल भी देती है। इस क्रांति ने पूरे देश में जो छाप छोड़ी है उसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं जा सकता साथ ही इसकी अमिट छवि भारत के नागरिकों के हृदय में चिरकाल तक सँजोई जाती रहेगी। इस क्रांति ने भारतीय जनमानस के हृदय में स्वतंत्रता का जो बीजारोपण किया था उसकी परिणति 15 अगस्त 1947 को भारत की आजादी के रूप में हुई।

संदर्भ

1. एटकिंसन, नार्थ वेस्ट प्रोविंसेज गजेटियर, पृ॰ 181
2. वही, नं॰1, पृ॰ 237
3. थॉमस इवनिंग, ट्रेवेल्स इन इंडिया, पृ॰ 285
4. वही नं॰ 1, पृ॰ 170
5. कुमार संजीव (2021) शोध ग्रंथ 'फर्रुखाबाद जनपद में स्वाधीनता संग्राम 1857-1947' इतिहास विभाग, छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर http://hdl.handle.net/10603/311382
6. कोल और डिस्टले, आउट लाइन आफ ब्रिटिश मिलेट्री हिस्ट्री, द्वितीय संस्करण, पृ॰ 221
7. एस ओवेन, वेलेजली, पृ॰ 273
8. डॉ॰ शांता मल्होत्रा, स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार, 1999, पृ॰ 69
9. डॉ॰ जीवन शुक्ल, श्री कालीचरन अभिनंदन ग्रंथ, 1995 में प्रकाशित, पृ॰ 56
10. वैलेस सी॰एल॰ (आई॰सी॰एस॰), फतेहगढ़ एंड द म्यूटनी, 1932 में प्रकाशित, पृ॰ 187
11. एच॰जे॰ हूरे (आई॰सी॰एस॰), फाइनल सेटलमेंट रिपोर्ट आफ द फर्रुखाबाद डिस्ट्रिक, 1903 में प्रकाशित, पृ॰ 94
12. जे॰एन॰ सिंह हाटा व डॉ॰ एम॰एल॰ सोनी, फतेहगढ़ कैंप (हिंदी अनुवाद) 1906 में प्रकाशित, पृ॰ 149
13. वही, नं॰ 9, पृ॰ 163
14. वही, नं॰ 9, पृ॰ 165
15. वही नं॰ 9, पृ॰ 166
16. वही नं॰ 9, पृ॰ 191
17. वही नं॰ 9, पृ॰ 194
18. मुफ्ती बली उल्लाह, तवारीख-ए-फर्रुखाबाद, सन् 1830 में प्रकाशित, पृ॰ 79
19. ग्वालियरी सैयद हिसामुद्दीन, खुलासा ए बंगस, पृ॰ 57
20. वही नं॰ 10, पृ॰ 37
21. https://www.amarujala.com/uttar-pradesh/farrukhabad/the-plight-of-the-300-year-heritage-in-the-establishment-of-farrukhabad-hindi-news
22. https://safarjankari.com/sankisa-farrukhabad-ki-jankari

गौरव सक्सेना, पुत्र श्री पुरुषोत्तम सक्सेना
गाँव घसिया चिलोली, पोस्ट/तहसील कायमगंज
जिला फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश 209502
मो॰ 8010030841
gourav.saxena20112gmail.com

विद्यार्थियों के अवधान में योगाभ्यास की उपादेयता

डॉ॰ वंदना सिंह, (शोध निर्देशक) सहायक प्राध्यापक,
शिक्षा विभाग श्रीशंकराचार्य महाविद्यालय
मीना पांडेय, (शोधार्थी), शिक्षा विभाग, सांदीपनी एकेडमी, दुर्ग

धर्य यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गोहिनी
सत्यं सुनुरयं दया च भगिनी म्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिषोऽपि वसनं ज्ञनामृंत भोजनं
एते यस्य कुटिम्बिनः वद सखे कस्माद् भयं योगिनः।।

–संस्कृत कवि भर्तृहरि

अर्थात् योग करने से साहस पैदा होता है जो सदा ही पिता की तरह हमारी रक्षा करता है। क्षमा का भाव उत्पन्न होता है जैसा माँ का अपने बच्चों के लिए होता है और मानसिक शांति हमारी स्थाई मित्र बन जाती है। सत्य हमारी संतान, दया हमारी बहन, आत्मसंयम हमारा भाई, स्वयं धरती हमारा बिस्तर और ज्ञान हमारी भूख मिटाने वाला बन जाता है। जब इतने सारे गुण किसी के साथी बन जाए तो योगी सभी प्रकार के भय पर विजय प्राप्त कर लेता है।

दरअसल, मुफ्त में कहीं भी स्वास्थ्य बीमा नहीं होता है, लेकिन योग स्वास्थ्य ही एकमात्र गारंटी है जो जीरो बजट में स्वास्थ्य का भरोसा देती है। कोविड-19 महामारी ने योग की महत्ता और आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट किया है। योग सद्भाव और एकीकरण के समग्र सिद्धांतों पर काम करती है। योगासनों से हम स्थूल शरीर की विकृतियों को दूर करते हैं और प्राणायाम का सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर दोनों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बच्चों में लगातार वीडियो गेम खेलने की आदत हिंसात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही, शारीरिक और मानसिक क्षमता का नाश कर रही है। योग इन सारे व्यसनों से बचाव का कारगर साधन है जो विशेष रूप से स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन के उन्नयन और रखरखाव में योगदान करता है।

योग का अर्थ–योग शब्द संस्कृत की मूलक्रिया (युज्) से बना है, युज् का अर्थ है जोड़ना (युज्यते अनेन इति योगः)। योग जोड़ने संबद्ध करने का कार्य करता है वे कौन से तत्त्व हैं जो संबद्ध होते हैं? पारंपरिक अर्थ में कहा जा सकता है कि इसमें व्यष्टि स्वत्व का समष्टि स्वत्व के साथ मेल है, अर्थात् यह एक अहंकार पूर्ण व्यक्तित्व का एक सर्वव्यापक, शाश्वत और यथार्थ की आनंदमय अवस्था के रूप में विस्तार है।

'योग वाशिष्ठ' जो योग पर सर्वोत्तम ग्रंथ है में कहा गया है–'मनः प्रशमनोपायः योगः इत्यभिधीयते' अर्थात् योग मन को शांत करने का कुशल उपाय है। यह मन में उठने वाले विचारों, भावनाओं को रोकने की एक कठोर, यांत्रिक या स्थूल प्रक्रिया नहीं, बल्कि कुशल व सूक्ष्म प्रक्रिया है।

योगः कर्मसु कौशलम् (गीता 2.50) अर्थात् योग कर्म में दक्षता है।

 ISSN 0975-735X

महर्षि अरविंद में योग को आत्मपूर्णता की दिशा में सुव्यवस्थित ढंग से किया जाने वाला एक ऐसा प्रयास माना है जिससे कमियाँ और अपूर्णताएँ दूर हो जाती हैं और व्यक्ति एक महामानव के रूप में रूपांतरित हो जाता है। इस प्रकार योग किसी व्यक्ति के विकास को पूर्णता तक पहुँचाने की क्रमबद्ध प्रक्रिया है।

इस प्रकार दी हुई परिभाषा के आधार पर स्पष्ट होता है कि योग विद्यार्थियों को शारीरिक रूप से स्वस्थ, मानसिक रूप से चुस्त और भावनात्मक रूप से स्थिरता प्रदान करते हैं। योग उच्चतम स्तर पर 'व्यक्तित्व के एकीकरण' को दर्शाता है। योग केवल योगियों के लिए नहीं अपितु संपूर्ण मानव जाति के कल्याणार्थ है। सामान्यजन के लिए योग में यम, निय आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि की महत्त्वपूर्ण भूमिका है जो विद्यार्थी जीवन में अत्यंत उपयोगी है।

अवधान–'अवधान मानव चेतना की एक वरण प्रक्रिया है अथवा किसी विचार को मस्तिष्क रूप से अंकित करने की प्रक्रिया है। यह एक सतत् क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जो मस्तिष्क में स्थित नाना प्रकार की विभिन्न वस्तुओं में से कभी एक को और कभी दूसरी को चेतना के ध्यान केंद्र में लाकर उपस्थित करता है।'

मस्तिष्क की चुनाव-प्रक्रिया ही अवधान कहलाती है। अवधान के लिए मन शांत और ग्रहणशील होना चाहिए। योग की भिन्न-भिन्न क्रियाएँ शरीर और दिमाग को अधिक चौकस होने के लिए तैयार करते हैं एवं अवधान को बढ़ाते हैं। यदि हम अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर पाते हैं तो हमारे लिए मन को अनुशासित करना और बेहतर अवधान प्राप्त करना आसन हो जाता है। इस संदर्भ में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और ध्यान के योगभ्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यम–वे सिद्धांत हैं जो हमें मार्ग दर्शन देते हैं कि समाज में किस प्रकार व्यवहार करें–1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय, 4. ब्रह्मचर्य, 5. अपरिग्रह।

नियम–नियम में पाँच अनुपालन सम्मिलित हैं–1. शौच (स्वच्छता) 2. संतोष, 3. तप, 4. स्वाध्याय 5. ईश्वर प्राणिधान (ईश्वर के प्रति समर्पण और श्रद्धा)।

यम और नियम हमारे मन मस्तिष्क पर नियंत्रण विकसित करते हैं, जिससे ध्यान बेहतर तरीके से केंद्रित होता है।

आसन–शरीर की विशिष्ट स्थितियाँ हैं, जिन्हें शरीर और श्वसन के संचलन के समन्वयन द्वारा किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप एकाग्रता बढ़ती है।

प्राणायाम–अर्थात् प्राण का विस्तार या फैलाव है। यह मस्तिष्क में आक्सीजन की आपूर्ति में वृद्धि करता है। इससे मस्तिष्क बेहतर कार्य करता है और एकाग्रता में वृद्धि होती है।

प्रत्याहार–प्रत्याहार में हम सुनने, देखने, सूँघने, स्वाद और स्पर्श की अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करते हैं। हमें इन इंद्रिय अंगों से निरंतर उद्दीपन प्राप्त होते रहते हैं। इनमें से कुछ हमें भावनात्मक रूप से विचलित कर देते हैं। परिणामस्वरूप हम किसी चीज पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सकते। अत: ये आवश्यक है कि हम सही चीजों का चुनाव करें, इससे हमारी समय और ऊर्जा बचेगी और एकाग्रता भी बढ़ेगी।

ध्यान–हमारे शरीर और मन को आराम पहुँचाता है। ध्यान में हम किसी वस्तु या बिंदु पर कुछ समय लगातार एकाग्रता केंद्रित करते हैं। यह एकाग्र करने की क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है।

साहित्य समीक्षा–अवधान से संबंधित साहित्य समीक्षा साधना धुनिरिआ, चित्रा सुब्रह्मण्यम

(2019) ने प्राथमिक विद्यालय के छात्रों में ध्यान और एकाग्रता पर योग का प्रभाव विषय पर शोध किया। निष्कर्ष रूप में यह पाया गया कि प्रायोगिक समूह के प्राथमिक विद्यालय के छात्रों में ध्यान और एकाग्रता पर योग का महत्त्वपूर्ण प्रभाव मौजूद था। यह भी पाया गया कि योग शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार करता है।

तिवारी (2015) ने हाई स्कूल छात्रों की एकाग्रता और स्मृति पर योग के लाभों की जाँच की। परिणामों से पता चला कि प्रायोगिक समूह ने ध्यान और स्मृति के उच्च एकाग्रता का प्रदर्शन किया। बनर्जी (2014) ने योग का विद्यार्थियों के अवधान और स्मृति पर प्रभाव का अध्ययन किया। प्रायोगिक की तुलना नियंत्रित से करने के लिए योग अभ्यास (सूर्य नमस्कार, ओंकार जाप, प्राणायाम) कराया गया। इससे स्मृति, अवधान स्तर वृद्धि में मदद मिली।

प्रधान और नागेंद्र (2010) ने अपने शोध अध्ययन में बच्चों की एकाग्रता पर दो योग प्रतिपादित शवासन की विधियों का तात्कालिक प्रभाव बच्चों की एकाग्रता पर किया। परिणाम में चक्रीय ध्यान चित्तविश्राम विधि के बाद बच्चों में तात्कालिक प्रभाव अत्यधिक सकारात्मक था।

अवधान के लिए योगाभ्यास–एकाग्रता को शरीर और मन के बीच सामंजस्य स्थापित करके सुधारा जा सकता है। बिना स्वस्थ शरीर के हमारा मस्तिष्क दक्षतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना स्वस्थ मस्तिष्क के हमारा शरीर दक्षतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। अत: आवश्यक है कि हम सामंजस्य विकसित करे। योगाभ्यास हमें शरीर और मन में सामंजस्य बनाने में मदद करता है, जिससे अवधान को बेहतर किया जा सकता है। इसमें लिए निम्नालिखित योगाभ्यास किए जा सकते हैं।

सूर्य नमस्कार–सूर्य नमस्कार का शाब्दिक अर्थ है सूर्य को नमस्कार। सूर्य नमस्कार तीन तत्त्वों से संयुक्त है रूप, ऊर्जा तथा लयबद्धता। सूर्यनमस्कार 12 शारीरिक स्थितियों से मिलकर बना है। बारी-बारी से आगे तथा पीछे मुड़ने वाले आसनों के माध्यम से शारीरिक अंगों तथा मेरूदंड के काफी खिंचाव उत्पन्न होता है तथा वे लचीले बनते हैं। अत: अन्य अभ्यासों की अपेक्षा सूर्य नमस्कार कहीं अधिक प्रभावशाली है। यह मन की शांति, एकाग्रता लाकर, बुद्धि स्थिर कर उसे बढ़ाने में सहायक होता है।

वृक्षासन–वृक्षासन के अभ्यास से एकाग्रता की शक्ति बढ़ती है, इसका प्रभाव स्नायु संस्थान पर भी अच्छा पड़ता है। इस आसान में दृष्टि की एकाग्रता महत्त्वपूर्ण है, अभ्यास करते समय दृष्टि को दीवार पर बने किसी काले बिंदु पर केंद्रित किया जाए तो एकाग्रता में वृद्धि होती है।

सर्वांगासन–सर्वागासन एक प्रभावी आसन है यह स्मृतिशक्ति को बढ़ाने में सहयोग देता है। इस आसन द्वारा मस्तिष्क में रक्त और आक्सीजन का प्रवाह बेहतरीन तरीके से होता है। जो मानसिक तनाव को काफी हद तक कम करता है। यह छात्रों में बुद्धि शक्ति बढ़ाने की गारंटी है।

नाड़ी-शोधन प्राणायाम–नाड़ी-शोधन प्राणायाम वास्तव में एक संतुलनकारी प्राणायाम है, इसमें दैनिक अभ्यास का उपयोग प्राण ऊर्जा को जीवंत बनाने प्राणिक अवरोधों को दूर करने और अनुकंपी तथा परानुकंपी स्नायुतंत्र के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए किया जा सकता है, इसके द्वारा सकारात्मक मानसिक परिवर्तन होते हैं।

भ्रामरी प्राणायाम–भ्रामरी प्राणायम करते समय भ्रमर अर्थात् भँवरे जैसी गुंजन होती है इसी कारण इसे भ्रामरी प्राणायाम कहा जाता है। मानसिक तनाव और विचारों को काबू में करने के लिए भ्रामरी प्राणायाम किया जाता है। भ्रामरी प्राणायाम से ध्वनि में एक प्रकार से प्रकंपन पैदा हो

जाता है। इस ध्वनि के कारण मन इस ध्वनि के साथ बँध जाता है, जिससे मन की चंचलता समाप्त होकर एकाग्रता बढ़ने लगती है।

त्राटक–त्राटक योग ध्यान का एक रूप है, इसे मोमबत्ती देखने वाले योग के रूप में जाना जाता है। इससे आँखें स्वच्छ हो जाती हैं। इस क्रिया से मन शांत, एकाग्र हो जाता है और इच्छाशक्ति एवं एकाग्रता में वृद्धि होती है।

विद्यार्थी जीवन में योगाभ्यास की उपादेयता–हर आयुवर्ग के लिए योग की महत्ता से इंकार नहीं किया जा सकता किंतु छात्र जीवन के लिए योग संजीवनी के समान है। योग अधिगम का एकमात्र क्षेत्र है जिसमें मानव के व्यक्तित्व के समग्र विकास को संपन्न करने की क्षमता है। योग की जड़ें भारतीय संस्कृति और परंपराओं में स्थापित हैं और यह किसी अन्य शैक्षिक अनुशासन की भाँति ही वैज्ञानिक विधि और विषयवस्तु पर आधारित है। योग का प्रभाव विद्यार्थी जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी पक्षों पर पड़ता है। कोरोना महामारी ने विद्यार्थियों के पठन और लेखन क्षमता को प्रभावित किया है। ऑनलाइन पढ़ाई और मोबाइल, कंप्यूटर इत्यादि के निरंतर प्रयोग ने विद्यार्थियों के मानसिक शारीरिक क्षमता को क्षति पहुँचाई है। बच्चों की असीमित ऊर्जा को इन भौतिक साधनों ने सीमित कर दिया, ऊर्जा का उचित दिशा में प्रयोग न होना ही समस्त शारीरिक मानसिक समस्याओं की जड़ है। योग ऊर्जा के अवरुद्ध चैनलों को खोलने का एक शक्तिशाली तरीका है। एक बार जैसे ही चैनल खुल जाते हैं वैसे ही बीमारी होने के कारण समाप्त हो जाते हैं और हम स्वस्थ हो जाते हैं। कहा गया है कि 'रोकथाम इलाज से बेहतर है। बच्चों में आज सबसे बड़ी समस्या अध्ययन करते समय ध्यान का भटकना, बुद्धि का एकाग्र न होना है। जो उनकी उपलब्धि को प्रभावित करती है। एकाग्रचित जीवन में कुछ भी प्राप्त करने हेतु एक आधरभूत आवश्यकता है। स्कूल के पाठों, गृहकार्य, अवकाश के समय की गतिविधियाँ यहाँ तक कि खेल के मैदान में एकाग्रता की आवश्यकता है। योगाभ्यास हमें शरीर और मन में सामंजस्य बनाने में मदद करते हैं, जिससे अवधान और मानसिक कार्य के निष्पादन में सुधार होता है।'

विद्यार्थी भिन्न गैजेट्स आदि के सिवाय कहीं अपना ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते, जिससे उनमें शिक्षा में प्रति भी उदासीनता देखी जाने लगी है, जिसका मूल कारण तन-मन का अस्वस्थ होना है। योग का नियमित अभ्यास रोगों से मुक्ति देकर मन को शक्तिशाली बनाता है। जो विद्यार्थियों को कार्य के प्रति जागरूक बनाता है और विद्यार्थी हार खाने पर भी विद्यार्थी निराश न हो, आशा से आगे बढ़ते हैं और मानसिक संतुलन बनाए रखते हैं। छात्र जीवन के लिए योग संजीवनी के समान है। योग शिक्षा जितनी कम उम्र से ली जाए उतना ही लाभ पहुँचाती है।

निष्कर्ष–आधुनिक शिक्षा प्रणाली शरीर और आत्मा के एकीकृत विकास में विफल प्रतीत होती है। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में नैतिक मूल्यों की अवहेलना की जाती है। प्रतियोगिता की दौड़ ने बच्चों को व्यसन, तनाव, चिंता इत्यादि से ग्रसित कर दिया है ऐसे में योग को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाकर विद्यार्थियों को शारीरिक, सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है। माता-पिता की भी जिम्मेदारी है कि वह बच्चों को योगाभ्यास हेतु प्रेरित करें, जिससे उनकी स्मरण शक्ति, तर्कशक्ति का विकास हो और उनका शैक्षिक प्रदर्शन बेहतर हो। अच्छा स्वास्थ्य प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है। इसके लिए योग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि इसमें विशाल क्षमता है। अनेक शोधों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि योग विद्यार्थियों के

रोग प्रतिरोधक तंत्र को बेहतर बनाकर शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य प्रदान कर अवधान में वृद्धि करता है।

संदर्भ

1. बलराम प्रधान, एच॰आर॰ नागेंद्र (2010), इमीडिएट इफेक्ट आफ टु योग बेसड रिलेक्सेशन टैक्नीक आन अटैनशन इन चिल्डरन, इंटरनेशनल जनरल योग, जुलाई-दिसंबर, 3(2), 67-69
2. शिखा बनर्जी, (2014), इफेक्ट ऑफ योग आन द मेमोरी आफ मिडिल स्कूल लेवल स्टूडेंट्स, जनरल आफ रिसर्च एंड मैथड इन एजुकेशन, वॉल्यूम 4, इश्यु 1, पृ॰ 49-52
3. रामकल्प तिवारी, (2015), बेनिफिट आफ योग प्रैक्टिस आन हाई स्कूल स्टूडेंट्स मेमोरी एंड कन्सन्ट्रेशन इन रिलेशन टु एक्जामिनेशन स्ट्रेस, इंटरनेशनल जनरल आफ योग और एप्लाइड साइंस, 2015: वॉल्यूम 4(2) 77-81
4. साधना धनुरिआ और चित्रा सुब्रह्मण्यम, (2019), इफेक्ट आफ योग आन अटैंशन एंड कन्संट्रेशन इन प्राइमरी स्कूल स्टूडेंट, इंटरनेशल जनरल आफ योग एंड अलाइड साइंस, वाल्यूम 8 इश्यु 1 जनवरी-जून 2019
5. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, (2016), योग स्वस्थ जीवन जीने का तरीका (उच्च प्राथमिक स्तर), पृ॰ 70-96
6. शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशिखा उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, 2015 http://www.uou.ac.in>p.7
7. डॉ॰ एस॰एस॰ माथुर, (2015), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ॰ 371
8. भारत का ज्ञान योगमयी हुई दुनिया, न्यू इंडिया समाचार, नई दिल्ली, वर्ष: 01,अंक 24/16-30 जून 2021

Meena pandey
Shop No. 27 Maroda Market BSP
CIVIC CENTRE, BHILAI (DURG)
Mob. 7898174333
meenapandey0106@gmail.com

ISSN 0975-735X

भारतीय दर्शन में ज्ञान-मीमांसा : एक विमर्श

डॉ॰ मृगांक मलासी, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग (चमोली) उत्तराखंड

पाश्चात्य वाङ्मय के 'फिलॉसॉफी' एवं भारतीय वाङ्मय के दर्शन शब्दों में पर्याप्त भेद है। 'फिलॉसॉफी' शब्द दो ग्रीक शब्दों के योग से बना है। Philos अर्थात् अनुराग और Sophia अर्थात् ज्ञान। इससे प्रतीत होता है कि पाश्चात्य जगत् के लिए 'फिलॉसॉफी' बौद्धिक व्यायाम की वस्तु है जिसका जीवन से कोई घनिष्ठ संबंध नहीं। यद्यपि प्लेटो, कांट, शोपेनहॉर आदि पाश्चात्य दार्शनिकों ने इसे व्यावहारिक जीवन से जोड़ने का प्रयास किया परंतु अन्य अधिकांश दार्शनिकों के लिए यह बौद्धिक विलास तक ही सीमित रहा। भारतीय दृष्टिकोण से हम देखते हैं कि दर्शन शब्द दृश् धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द का प्रयोग तत्त्वदृष्टि अथवा तत्त्वसाक्षात्कार एवं तत्त्वसाक्षात्कार जिन साधनों से प्राप्त किया जा सकता है उनके लिए भी किया गया है।

प्राय: समाज में हम देखते हैं कि हर व्यक्ति को कुछ-न-कुछ ज्ञान अवश्य होता है। भामती में ज्ञान का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि जिससे अर्थ अथवा विषय प्रकाशित हो वह ज्ञान है।[1] हम जानते हैं कि हमारा समस्त ज्ञान सत्य नहीं होता। जब भी हम रज्जु के स्थान पर सर्प होने का विश्वास करते हैं तो हमारा सर्प-संबंधी ज्ञान असत्य ही होता है। साधारण रूप में सत्य ज्ञान प्रमा एवं असत्य ज्ञान अप्रमा कहलाता है। जब हम गहनता से प्रमा के लक्षण पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि विभिन्न दार्शनिकों ने प्रमा को जैसे परिभाषित किया उसमें पर्याप्त भेद पाया जाता है। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'मा माने' धातु से 'अङ्' प्रत्यय द्वारा 'प्रमा' शब्द की निष्पत्ति होती है जो भाववाचक कृदन्त होने से परिच्छेद का अर्थ देता है और परिच्छेद प्रमाण का फल होता है। न्यायदर्शन के अनुसार प्राप्ति या त्याग की आकांक्षा से प्रेरित होकर प्रवृत्त होने वाला प्रमाता होता है। जिसके द्वारा प्रमाता अर्थ का परिच्छेद करता है वह प्रमाण, जो परिच्छिन्न किया जाता है वह प्रमेय एवं अर्थविज्ञानरूप परिच्छेद प्रमिति है।[2] सांख्ययोगदर्शन के अनुसार जिस के द्वारा अर्थ प्रमित होता है वह प्रमाकरण प्रमाण है।[3] संशय-विपर्यय से शून्य अज्ञात-विषयाकार चित्तवृत्ति ही प्रमाण है और विषयाकार चित्तवृत्ति का जो बोधरूप प्रतिबिंब पुरुष में पड़ता है वह प्रमारूप प्रमाणफल है।[4] सांख्यसूत्र के अनुसार असन्निकृष्ट अर्थ का परिच्छेद प्रमा है। भासर्वज्ञ ने सम्यक् अनुभव को प्रमा कहा है।[5]

गौतम की मान्यता है कि ज्ञान, बुद्धि और उपलब्धि के अर्थ में कोई अंतर नहीं है।[6] इस दृष्टि से यदि ज्ञान विषयोपलब्धि है तो विषयों की सत्ता ज्ञान की पूर्वमान्यता है। यही न्याय का वस्तुवादी स्वरूप है। न्यायमत में ज्ञान और ज्ञेय का संबंध माना गया है। बिना ज्ञाता और ज्ञेय के ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। जब आत्मा या ज्ञाता ज्ञेय के संपर्क में आता है तो उसमें ज्ञान नामक गुण उत्पन्न होता है। ज्ञान का कार्य ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करना है क्योंकि ज्ञेय पदार्थ के बिना ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। दोषरहित सामग्री से उत्पन्न होने वाला ज्ञान सम्यक् ज्ञान और सदोष सामग्री से उत्पन्न ज्ञान असम्यक् ज्ञान है। पीलिया रोग से ग्रसित व्यक्ति को श्वेत शंख भी पीला लगता है। इसी

तरह अनुव्यवसायात्मक ज्ञान भी मन के द्वारा ही होता है। अत: इसे मानस प्रत्यक्ष कहा जाता है। ज्ञान भी प्रमेय होने के कारण घट-पटादि की तरह ज्ञानांतरवेद्य है। इसी तरह आत्मा भी ज्ञेय विषय बनकर ही प्रकाशित हो सकता है। स्मृतिभिन्न ज्ञान को अनुभव कहते हैं। यथार्थ एव अयथार्थ भेद से अनुभव के दो प्रकार हैं। वस्तु, जो जैसा है उसका वैसा ही वर्णन करना यथार्थानुभव है[7] और किसी वस्तु का ज्ञान वह जैसा नहीं है वैसा ज्ञान अयथार्थ अनुभव कहलाता है।[8]

कौमारिलों ने अज्ञातज्ञान अर्थात् अपूर्वदर्शन को प्रमा माना है जिसकी धारावाहिक ज्ञान में अव्याप्ति तथा भ्रम में अतिव्याप्ति है। अत: अन्य प्रमाण निरपेक्ष होने से यथार्थ अनुभव ही मान अर्थात् प्रमा है। अज्ञात की ज्ञप्ति को प्रमा मानना अयुक्त है क्योंकि कारण सामग्री में प्रतिबंध न होने से अधिगत अर्थ में भी अधिगति उत्पन्न होती है। धारावाहिक स्थल में ज्ञात की ज्ञप्ति होती है और सकृत् प्रत्यक्षीकृत घट या अनुमित वह्नि के प्रत्यक्ष या अनुमिति में क्या बाधा है कि उन्हें प्रमा न माना जाए? यदि कहा जाए कि उत्पन्न होने पर भी ज्ञात की ज्ञप्ति के प्रति ज्ञाता की अपेक्षा नहीं रहती तो यह भी असंगत है क्योंकि प्रामाण्य अपेक्षा के अधीन नहीं है। ज्ञान की उत्पत्ति प्रमाता की अपेक्षा या उपेक्षा के वश में नहीं पायी जाती। पूर्वज्ञान से विशिष्ट न होना मात्र अप्रमात्व का प्रयोजक नहीं हो सकता अन्यथा उत्तरज्ञान से विशिष्ट न होने को लेकर पूर्वज्ञान के अप्रामाण्य की अनिष्टापत्ति है और उत्तरज्ञान से निरपेक्ष पूर्वज्ञान का प्रमात्व स्वीकार करने पर पूर्वज्ञान निरपेक्ष उत्तरज्ञान का भी प्रमात्व मान्य होना चाहिए क्योंकि दोनों सामग्री में कोई अंतर नहीं है। अर्थात् अनधिगतार्थत्व ही प्रमात्व का निमित्त नहीं हो सकता क्योंकि विपर्यय भी अनधिगतार्थक ही हो सकता है जिसमें अतिव्याप्ति का प्रसंग है। यदि यथार्थत्व विशिष्ट अनधिगतार्थत्व को प्रमात्व का प्रयोजक माना जाए तो धारावाहिक ज्ञानस्थल में अव्याप्ति की आपत्ति आती है। यदि कालखंड विशिष्ट अर्थ को अज्ञात मानते हुए समाधान लाया जाए तो भी अनुपपन्न है क्योंकि क्षणों की उपाधियाँ अज्ञात रहती हैं जिससे क्षणविशिष्ट अर्थ की अज्ञातज्ञप्ति रूप प्रमा नहीं सिद्ध हो सकती।[9]

प्रभाकर ज्ञानमीमांसा तथा तत्त्वमीमांसा दोनों ही क्षेत्रों में कट्टरवादी वस्तुवादी हैं। उनकी मान्यता है कि हमारे ज्ञान के विषय स्वतंत्र रूप से सत्तावान् हैं तथा हमारा ज्ञान उन्हें प्रकाशित मात्र करता है। हमारे ज्ञान में जो विषय हमें प्रकाशित प्रतीत होते हैं वही उनका वास्तविक रूप है। इस प्रकार के दर्शन को हम कट्टरतापूर्वक स्वीकार करें तो हम देखेंगे कि ऐसे दर्शन में वास्तव में भ्रम के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।[10] इस प्रकार के वस्तुवादी दर्शन में भ्रम की समुचित व्यवस्था असंभव है। अस्तु, यदि प्रभाकर मीमांसक अपने दर्शन के अनुकूल प्रतिपादित करते हैं कि वास्तव में सभी ज्ञान प्रमा रूप ही है, तो यह उनकी दृष्टि से ठीक ही है। उनके अनुसार ज्ञान इकाई रूप न होकर दो ज्ञानों का मिश्रित रूप होता है। जब मैं यह कहता हूँ कि 'यह सर्प है' तब इस ज्ञान में वास्तव में दो विभिन्न ज्ञानों का समावेश होता है। पहले ज्ञान का स्वरूप 'यह' तथा दूसरे ज्ञान का स्वरूप 'सर्प' होता है। ये दोनों ज्ञान अपने में सदैव प्रमा रूप होते हैं। 'यह' का ज्ञान सदैव 'यह' के आकार का ही होता है अन्यथा नहीं होता तथा 'सर्प' का ज्ञान भी सदैव 'सर्प' रूप ही होता है। इसीलिए अलग-अलग रूप से 'यह' का ही ज्ञान कराता है तथा सर्प 'सर्प' का ही। इनमें अन्यथा कल्पना करना विरोधाभास है। प्रभाकर कहते हैं कि यह कैसे संभव है कि कोई भी ज्ञान किसी विषय को प्रकाशित भी करे तथा वह असत्य भी हो?[11] सर्प का ज्ञान सदैव सर्परूप होने से सत्य ही होगा। भ्रम का कारण वास्तव में भावात्मक न होकर अभावात्मक होता है। भ्रम कहलाने वाले स्थल में 'यह सर्प है' इस उदाहरण में 'यह' तथा 'सर्प' के भेद को ग्रहण नहीं करते। 'यह' यहाँ पर प्रत्यक्ष का विषय है तथा 'सर्प' स्मृति का तथा इन दोनों

विभिन्न ज्ञानों में भेद न करना ही भ्रम का कारण है।

स्मृतिरूप संविद् से भिन्न अनुभूतिरूप संविद् प्रमाण (प्रमारूप) है। स्मृतिसहित सभी प्रतीतियाँ स्वयं प्रत्यक्ष प्रकाशित रहती हैं, अत: स्वरूपत: वे सब प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। संविदों की प्रमाणता में बाह्यफल होते हैं त्याग, ग्रहण या उपेक्षा। परंतु व्यवहारोपयोगिनी संविद् ही ज्ञान का फल (प्रमा) रहती है। जब इंद्रिय, विषयसन्निकर्ष तथा मन:सन्निकर्ष को ज्ञानसाधन होने से प्रमाण (प्रमाकरण) माना जाता है तब भी संविद् ही फल अर्थात् प्रमा रहती है क्योंकि उसी के लिए सभी साधन प्रवृत्त होते हैं। वस्तुत: हानादिबुध्यपेक्षया प्रमा स्वयं करणमेव[12] अर्थात् हानादि-बुद्धि के प्रमात्व की अपेक्षा प्रमा करण है। इस प्रकार प्रमाणफल व्यवस्था यथापेक्ष की जाती है। प्रभाकरविजय में स्वतंत्र परिच्छेद को अनुभूति कहा गया है और वही प्रमाण है। परिच्छेद में पूर्वानुभव की निरपेक्षता स्वतंत्रता है। स्मृति पूर्वानुभवसापेक्ष होने से प्रमाण नहीं है।[13]

प्रभाकर के भाष्यकार शालिकनाथ ने इसीलिए स्मृति से भिन्न अन्य सभी अनुभूति को प्रमा कहा है।[14] उनका कहना है कि स्मृति किसी अन्य अनुभूति के संस्कारों से उत्पन्न होती है अत: वह प्रमा नहीं है। स्पष्टत: ही प्रभाकारों का अनुभूति से तात्पर्य केवल उस ज्ञान से है जो इंद्रिय के विषय के साथ सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। इस दृष्टि से सामान्य अर्थ में अनुभव से जो तात्पर्य लिया जाता है उससे अनुभूति का अर्थ भिन्न है। सामान्य रूप में अनुभव में सभी प्रकार के ज्ञान का चाहे वह सत्य हो अथवा मिथ्या, स्मृति हो अथवा प्रमाण समावेश हो जाता है जो कि प्राभाकारों के अनुभूति संप्रत्यय से भिन्न है।

उक्त स्थल पर प्रभाकर मत में अंतर्विरोध दृष्टिगत होता है। अपनी अख्याति की व्यवस्था में वे स्वीकार करते हैं कि 'यह' ज्ञान तथा 'सर्प' ज्ञान अपने भिन्न-भिन्न रूप में प्रमारूप है। 'यह' जो प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है उसमें भेद के अग्रहण के कारण भ्रम उत्पन्न होता है। इस प्रसंग में स्मृति को भी प्रमा रूप ही स्वीकार किया गया है तथा जब वे अन्य स्थल पर स्मृति के अतिरिक्त अन्य अनुभूति को प्रमा रूप कहते हैं तथा स्मृति को अप्रमा रूप स्वीकार करते हैं तब दोनों कथनों में विरोध स्पष्ट ही है। यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि जब हम किसी को कुछ समय तक निरंतर देख रहे होते हैं तब उस धारावाहिक ज्ञान में प्रथमक्षण के ज्ञान के पश्चात् अन्य क्षणों के ज्ञान को इस दृष्टि से प्रमा के अंतर्गत मानेंगे अथवा अप्रमा में। यह कहा जा सकता है कि वास्तव में उसकी अनुभूति तो प्रथम क्षण में ही हुई थी। बाद के क्षणों के ज्ञान में कोई नवीनज्ञान हमें नहीं हुआ। अत: उसे स्मृतिरूप मानकर अप्रमा रूप ही मानना होगा। किंतु इस प्रकार हमारा अधिकांश ज्ञान अप्रमा की कोटि में आ जाएगा। इस प्रकार की मान्यता न्यायसंगत नहीं प्रतीत होती। प्राय: जब तक हम किसी विषय का ज्ञान करते रहते हैं तो उसे प्रमारूप ही मानते हैं। इसके उत्तर में शालिकनाथ का कहना है कि वास्तव में धारावाहिक ज्ञान अप्रमारूप न होकर प्रमारूप ही है। धारावाहिक ज्ञान में भी विषय का इंद्रियों से निरंतर संपर्क होता रहता है। अत: यह प्रमारूप ही है स्मृतिरूप नहीं।[15] इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती है, केवल प्राचीन अनुभूति के संस्कारों से नहीं।

कुमारिल मीमांसक प्राभाकारों की प्रमा की उपर्युक्त परिभाषा को स्वीकार नहीं करते। पार्थसारथि ने शास्त्रदीपिका में प्रमा को अनुभूतिरूप में परिभाषित करने की कटु आलोचना की है। उनका कहना है कि प्रमा की इस परिभाषा को मान लेने से अनुमान जो कि व्याप्तिजन्य है तथा व्याप्ति प्राचीन अनुभूति के संस्कारों के अतिरिक्त कुछ नहीं है, अप्रमा रूप हो जाएगा। जबकि वे स्वयं अनुमान को प्रमारूप मानते हैं अप्रमारूप नहीं। इसी प्रकार सविकल्पक प्रत्यक्ष भी निर्विकल्पक

प्रत्यक्ष रूप प्राचीन अनुभूति से उत्पन्न होने के कारण अप्रमा होना चाहिए किंतु वे स्वयं सविकल्पक प्रत्यक्ष को प्रमा मानते हैं। निस्संदेह पार्थसारथि की यह आलोचना तर्कयुक्त नहीं है। प्रभाकर यह स्वीकार नहीं करते कि स्मृति की उपस्थिति मात्र से ही ज्ञान अप्रमारूप बन जाता है। उनका आशय यह है कि किसी भी ज्ञान को प्रमारूप होने के लिए विषय का सन्निकर्ष अवश्य ही होना चाहिए। यदि सन्निकर्ष के साथ स्मृति भी है। वह ज्ञान प्रमारूप इसीलिए मानते हैं कि उसमें इंद्रियों का विषय के साथ सन्निकर्ष भी होता है, यद्यपि उस ज्ञान में स्मृति का भी पर्याप्त योगदान रहता है। अनुमान तथा सविकल्पक प्रत्यक्ष में स्मृति का योगदान अवश्य रहता है, किंतु इन अवस्थाओं में विषय का प्रत्यभिज्ञा की भाँति इंद्रियसन्निकर्ष भी होता है अत: ये उनकी परिभाषा के अनुसार प्रमा के अंतर्गत ही आएँगे, अप्रमा के नहीं।

यह संभव है कि किसी दशा में अनुमान स्थल में पक्ष भी इंद्रियों के सम्मुख नहीं होता। स्मृति द्वारा प्रस्तुत पक्ष के संबंध में जब व्याप्ति के आधार पर कोई अनुमान लगाया जाता है तब अवश्य ही प्रभाकर मत द्वारा प्रस्तुत परिभाषा में कठिनाई होती है। किंतु वास्तव में जब प्रभाकर मत प्रमा को स्मृति से भिन्न अनुभूति रूप में परिभाषित करते हैं तो उनका मुख्य आशय नवीनता अथवा अनधिगतता को प्रमा का आवश्यक तत्त्व मानने से है। स्मृति में पूर्वज्ञान की ही पुनरावृत्ति होती इसीलिए इसे एक प्रकार का अनुभव होते हुए भी प्रमारूप स्वीकार नहीं किया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अनुभूति जिसमें नवीनता है तथा फलस्वरूप कुछ न कुछ ज्ञान की वृद्धि होती है प्रमारूप स्वीकार कर ली गई है। यदि हम इस तथ्य को ध्यान में रखें तो प्रभाकर मत में पार्थसारथि द्वारा प्रस्तुत कठिनाई का स्वत: ही समाधान हो जाता है।

ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से यदि प्राभाकरों का मत स्वीकार भी कर लिया जाए तो भी इससे समस्या का पूर्ण समाधान नहीं हो पाता। प्रमा की समस्या ज्ञानमीमांसीय होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी है। यदि ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से यह मान भी लिया जाए कि सभी ज्ञान वास्तव में प्रमारूप ही होते हैं तब भी व्यावहारिक दृष्टि से प्रमा का अप्रमा से भेद अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। बौद्धों की इस मान्यता में कि ज्ञान का प्रश्न मात्र सैद्धांतिक नहीं है, वह वास्तव में व्यवहार के संदर्भ में ही उठता है, बहुत कुछ सत्य का अंश है। स्वयं रामानुजाचार्य ने, जो प्रभाकार के अनुयायी हैं तीन विभिन्न स्तरों पर तीन प्रकार के प्रामाण्य या प्रमात्व की चर्चा की है। प्रथम अर्थ में, प्रत्येक ज्ञान जिसमें स्मृति भी निहित है प्रमा है। रामानुज ने इसे याथार्थ्य कहा है।[16] इस अर्थ में जैसा कि किसी भी ज्ञान के लिए विषय को प्रकाशित करना ही उसका प्रमात्व है किंतु प्रमात्व की यह परिभाषा प्रमा तथा अप्रमा के भेद को पूर्णत: समाप्त कर देती है। अत: प्रमा का यह लक्षण व्यवहार की दृष्टि से तो पूर्णरूपेण महत्त्वहीन है ही, ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व नहीं रखता। जब सभी ज्ञान प्रमारूप ही है तब अप्रमा तथा प्रमा के भेद का ही क्या अर्थ है? यह परिभाषा वास्तव में पुनरुक्ति मात्र है। इसलिए स्वयं प्राभाकारों ने भी इस लक्षण को प्रमात्व का वास्तविक लक्षण स्वीकार न कर इसके दूसरे लक्षण की कल्पना की। दूसरे अर्थ में, रामानुजाचार्य जिसे प्रामाण्य संज्ञा देते हैं प्रमा तथा अप्रमा का भेद संभव होता है। इस अर्थ में स्मृति के अतिरिक्त सभी ज्ञान प्रमा है। प्रमा का यह अर्थ भी व्यवहार की दृष्टि से मूल्यहीन है। अत: उन्होंने प्रमा के तीसरे अर्थ की चर्चा की जिसे वे संयुक्त्व कहते हैं। संयुक्त्व की परिभाषा वे व्यवहार अविसंवाद के रूप में देते हैं।[17] कोई भी ज्ञान जब व्यवहार में सफलता का हेतु होता है तब वह ज्ञान प्रमा तथा यदि उस ज्ञान से व्यवहार में सफलता के स्थान पर असफलता हाथ लगे तो वह अप्रमा माना जाता है।[18]

 ISSN 0975-735X

कुमारिल ने अपने स्वत: प्रामाण्य को प्रतिपादित करते हुए प्रामाण्य को बोधात्मकत्व के रूप में परिभाषित किया है।[19] इस अर्थ में प्रमा का लक्षण प्राभाकरों के याथार्थ्य से भिन्न प्रतीत नहीं होता। प्रत्येक ज्ञान में अपने विषय का बोध कराने की शक्ति होती है, यहाँ तक कि स्मृति भी अपने विषय को प्रकाशित करती ही है। इस प्रकार विषय का बोध कराने का यह स्वभाव ही प्रामाण्य का लक्षण हो तो प्रत्येक ज्ञान आवश्यक रूप से प्रमारूप होगा तथा इस परिभाषा में वे सभी दोष होंगे जो प्राभाकरों के प्रमा को अनुभूति रूप प्रतिपादित करने में हमने दर्शाए हैं। किंतु संभवत: कुमारिल स्वयं भी प्रमात्व को इस प्रकार परिभाषित नहीं करना चाहते। एक अन्य स्थल पर प्रमा का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि विषय का वह निश्चित ज्ञान जिसके संवाद (प्रामाण्य) के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती, प्रमा होता है।[20] उम्बेक इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि दृढ़ पद संशय को प्रमा से अलग करता है तथा 'न विसंवाद मृच्छति' (जिसका किसी अन्य ज्ञान से बाध नहीं होता) इसका भ्रम से भेद करता है। पार्थसारथि के अनुसार प्रमा वह ज्ञान है जो कारण दोषरहित, बाधक ज्ञानरहित तथा पहले से ज्ञात न हो।[21] अर्थात् वह ज्ञान जिसके कारण में कोई दोष नहीं हो, जिसका किसी अन्य ज्ञान से बाध न हो तथा जो अनधिगत हो वह प्रमा है।

विशिष्टाद्वैतवेदांत के अनुसार प्रमेय का स्फुरण ही प्रमाण का प्रयोजन है और वह प्रमा के अधीन है, अत: प्रमा का ही प्रमाण होना उचित है। त्रिपुटी प्रत्यक्ष के अनुसार प्रमेयमात्र का स्फुरण प्रमा नहीं है क्योंकि प्रमा का प्रमात्वरूप से तथा प्रमेय का विषयत्वरूप से पृथक् स्फुरण होता है। प्रमा ही प्रमाण है जो स्वयंप्रकाश रहती हुई प्रमेय को भी प्रकाशित करती है। सभी अनुभवात्मक ज्ञान यथार्थ होते हैं अत: यथार्थानुभव को प्रमा मानने में 'यथार्थ' पद किसी की व्यावृत्ति नहीं करता स्मृतिभिन्न ज्ञान अनुभव है और अनुभवमात्र का प्रमात्व एवं प्रमाणत्व व्यवस्थित है। यह दर्शन सत्ख्यातिवाद है अत: कोई ज्ञान अयथार्थ नहीं होता।[22]

वैशेषिक दर्शन को विद्या और अविद्या के रूप में ज्ञान की दो विधाएँ मान्य हैं। विद्या को ही प्रमा या यथार्थ ज्ञान एवं अविद्या को अप्रमा या अयथार्थ ज्ञान कहते हैं। संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय एवं स्वप्न के रूप में अप्रमा या अविद्या को चार भागों में विभक्त किया गया है। एक ही वस्तु में परस्पर विरुद्ध धर्मों का जहाँ एक ही साथ ज्ञान हो वह संशय कहलाता है। यथा–स्थाणुर्वा पुरुषो वा। मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहा गया है'[23] जैसे रास्ते में पड़ी रज्जु को देखकर सर्प की प्रतीति करना। विपर्यय अर्थात् भ्रम है। अनिश्चयात्मक ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। निद्रावस्था में चित्त के अनवस्थित होने पर जो मिथ्या ज्ञान होता है, उसे स्वप्न कहते हैं।[24]

प्रमा पदार्थ के अनुरूप यथार्थ होता है एवं अविरुद्ध अर्थात् संपादि होता है। उसमें सफल प्रवृत्ति सामर्थ्य होता है। न्याय परत:प्रामाण्य को मानता है। ज्ञान का प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य ज्ञान की उत्पत्ति के बाद उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने के बाद उसका ज्ञान होता है।[25] यथार्थ तथा संपादि होना सम्यक् ज्ञान या प्रमा का स्वभाव है। इस प्रमा के लिए चार प्रकार की सामग्रियाँ अपेक्षित मानी गई हैं–प्रमाता, प्रमेय, प्रमिति और प्रमाण। यहाँ प्रमाण से तात्पर्य है जानने वाला और प्रमेय का अर्थ है, जिसे जाना जाए अर्थात् ज्ञेय। प्रमिति को ज्ञान कहते हैं और ज्ञानप्राप्ति के साधन को प्रमाण कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रमा को परिभाषित करते हुए सामान्यत: उसमें दो विशेषताओं का समावेश अवश्य किया जाता है, एक तो यह कि प्रमा सत्य को ज्ञापित करती है अर्थात् यथार्थ या अबाधित विषय वाली होती है, और दूसरा वह पूर्वत: अज्ञात/अनधिगत विषय का बोध कराती है। इस प्रकार दार्शनिक ग्रंथों में प्रमा के संबंध में विशद मीमांसा की गई है।

संदर्भ

1. योऽयमर्थं प्रकाश: फलम्। भामती, 1.1.4
2. यस्येप्साजिज्ञासाप्रयुक्तस्य प्रवृत्ति: स प्रमाता। स येनार्थं प्रमिणोति तत् प्रमाणम्। योऽर्थ: प्रमीयते तत् प्रमेयम्? यदर्थविज्ञानं सा प्रमिति:। न्यायभाष्य 1/1/1 उपोद्घात
3. प्रमीयतेनेनेति निर्वचनात् प्रमां प्रति करणत्वमवगम्यते। तच्चासन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्ति:। बोधश्च पौरुषेय: फलं प्रमा। तत्साधनं प्रमाणमिति। तत्त्वकौमुदी 4
4. असन्निकृष्टार्थपरिच्छित्ति: प्रमा। सांख्यसूत्र 1/87
5. सम्यगनुभव: प्रमा। न्यायभूषण, पृ॰ 62
6. बुद्धिरुपलब्धिज्ञानमिति अनर्थान्तरम्। न्यायसूत्र, 1.1.15
7. तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थ:। तर्कसंग्रह
8. दभाववति तत्प्रकारकश्चायथार्थ:। तर्कसंग्रह
9. न ह्यधिगतेर्थेधिगतिरेव नोत्पद्यते, कारणानात्प्रतिबन्धनात्। न चोत्पद्यमानापि प्रमातुरनपेक्षितेति न प्रमा, प्रामाण्यस्यातदधीनत्वात्। नापि पूर्वाविशिष्टमात्रेणाप्रामाण्यम्, उत्तराविशिष्टतया पूर्वस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात्। तदनपेक्षत्वेन तु तस्य प्रामाण्ये तदुत्तरस्यापि तथैव स्यादविशेषात्। न चानधिगतार्थत्वमेव तन्निमित्तम्, विपर्ययेपि प्रमाअव्व्वहारप्रसङ्गात्। नापि यथार्थत्वविशिष्टमेतदेव धारावहनबुद्धयव्याप्ते:। न च तत्तत्कालकलाविशिष्टतया तत्राप्यनधिगतार्थत्वमुपपादनीयम्, क्षणोपाधीनतामनाकलनात्। न्यायकुसुमाञ्जलि, 4/1 की व्याख्या
10. गंगानाथ झा : प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्वमीमांसा, पृ॰ 28.33
11. प्रभाकर, बृहती, पृ॰ 24
12. तन्त्ररहस्य, पृ॰ 9
13. अनुभूति: प्रमाणम्। का चानुभूति:? स्वतन्त्रपरिच्छित्ति:। किमिदं स्वातन्त्र्यं नाम? परिच्छेदे पूर्वबुद्धयनपेक्षत्वम् स्मृतिस्तु परिच्छेदे पूर्वबुद्धयपेक्षेवेति न प्रमाणम। प्रभाकरविजय, पृ॰ 24
14. अनुभूति: प्रमाणम् सा स्मृतेरन्या स्मृति: पुन: पूर्व विज्ञाना संस्कारमात्रजम् ज्ञानमुच्यते। प्रकरणपञ्चिका, पृ॰ 127
15. शालिकनाथ, प्रकरणपंचिका, पृ॰ 42
16. तन्त्ररहस्य, पृ॰ 3
17. यत्र तु न (व्यवहारविसंवादा:) तत्र संयुक्त्वम्। तन्त्ररहस्य, पृ॰ 3
18. यत्र व्यवहारविसंवादा: तत्र पूर्वज्ञानस्य भ्रांतत्वम्। तन्त्ररहस्य, पृ॰ 3
19. श्लोकवार्तिक 2.53
20. तस्मात् दृढम् यदुत्पन्नम् नाऽपि संवादमृच्छति।
    ज्ञानान्तरेन विज्ञानम् तत् प्रमाणम् प्रतीयताम्।। श्लोकवार्तिक, शून्यवाद 2.80
21. कारण दोषबाधक ज्ञानरहितम् अगृहीतग्राही ज्ञानम् प्रमाणम्। शास्त्र दीपिका, पृ॰ 45
22. प्रमाणस्य प्रमेयस्फुरणार्थत्वात् तत्स्फूर्तेश्च प्रमाधीनत्वात् प्रमाया एव प्रमाणत्वमुचितम्। न च प्रमेयस्फूर्तिरेव प्रमा, प्रमात्वेन विषयत्वेन च तयो: पृथक् स्फुरणात्। यथार्थानुभव: प्रमएति प्रमाणलक्षणं च दुष्टम्, सर्वानुभवानां यथार्थतया यथार्थपदव्यावृत्त्यभावात्। नयुद्यमणि, पृ॰ 184
23. मिथ्या ज्ञानं विपर्यय:। तर्कसंग्रह
24. अनिश्चयात्मकं ज्ञानमनध्यवसाय:। तर्कसंग्रह,
25. उत्पत्तौ ज्ञप्तौ च परत: प्रामाण्यम्।

संदर्भ ग्रंथ

1. बृहदारण्यकोपनिषद्, बंबई 1893
2. भामती, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य वाचस्पतिमिश्र टीका
3. न्यायदर्शन, वात्स्यायनकृतभाष्यसहित, चौखंभा, वाराणसी 1970
4. तत्त्वकौमुदी, सांख्यतत्त्वकौमुदी, वाचस्पतिमिश्रकृत सांख्यकारिकाव्याख्या
5. न्यायभूषणम्, भासर्वज्ञप्रणीतम्, षड्दर्शनप्रकाशन, वाराणसी 1968 ई०
6. न्यायकुसुमाञ्जलि:, (हिंदी व्याख्या सहित) उदयनाचार्यकृत, चौखंभा वाराणसी, 1970
7. सांख्यसूत्रम्, विज्ञानभिक्षुकृतभाष्ययुक्तम्, भारतीयविद्याप्रकाशन, वाराणसी, 1977
8. तर्कसंग्रह: (अन्नंभट्टकृतम्) चौखंभा, वाराणसी, 1961 ई०
9. बृहती (मीमांसाभाष्ये प्रभाकरटीका) शालिकनाथमिश्रकृत ऋजुविमलायुक्ता, चौखंभा, वाराणसी,1929
10. तन्त्ररहस्यम्, रामानुजाचार्यकृत, बड़ौदा, 1956 ई०
11. प्रभाकरविजयम्, नंदीश्वरकृतम्, संस्कृतसाहित्यपरिषद्, कलकत्ता, 1926 ई०
12. प्रकरणपंचिका (प्रभाकरमीमांसा), शालिकनाथमिश्रकृत, हिंदूविश्वविद्यालय, वाराणसी, 1961 ई०
13. शास्त्रदीपिका, पार्थसारथिमिश्रकृतम्, वाराणसी, 1977, श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली 1977-83 ई०
14. श्लोकवार्तिकम्, (कुमारिलभट्टकृतम्), पार्थसारथिमिश्रकृत, चौखंभा, वाराणसी, 1898 ई०
15. तत्त्वचिन्तामणि, (गंगेशोपाध्यायकृत) कलकत्ता, 1884 ई०
16. नयुद्यमणि: (विशिष्टाद्वैत), मेघनादसूरिकृत, गवर्नमेण्ट ओरिएण्टलसीरीज, मद्रास, 1956 ई०

Mob. 8010583262
mrigankmalasi@gmail.com

नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव एवं भारतीय हितों को चुनौती

डॉ॰ शिखा श्रीवास्तव
प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजीय अध्ययन विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)
मुकेश कुमार प्रजापति
शोध छात्र, रक्षा एवं स्त्रातजीय अध्ययन विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

नेपाल भारत के पड़ोसी देशों में प्रमुख स्थान रखता है तथा भारत के विदेश नीति के निर्धारण में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारत का नेपाल के साथ काफी अच्छे संबंध रहे हैं परंतु बीते कुछ वर्षों से भारत का नेपाल के साथ सीमावर्ती क्षेत्रों को लेकर आपसी मनमुटाव देखा गया है। चीन अपने महत्त्वाकांक्षी परियोजना बेल्ट एंड रोड पहल (BRI) के तहद नेपाल में बुनियादी विकास के लिए अरबों डालर का निवेश करके यहाँ की सरकार को नियंत्रित करके भारत के खिलाफ भड़का रहा है। नेपाल में चीन का किसी भी तरह से उपस्थिति भारतीय हितों को निश्चित रूप से प्रभावित करेगा। वर्तमान समय में भारत-चीन सीमा पर चीन का आक्रामक होना, सीमा के पास सैन्य बुनियादी का विकास करना तथा सीमा के पास अपने सैनिकों की उपस्थिति बढ़ाना आदि 'नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव एवं भारतीय हितों को चुनौती' शीर्षक की प्रासंगिकता को बढ़ाता है। इस क्षेत्र में चीन के बढ़ते प्रभाव ने भारत की भू-राजनीतिक, भू-स्त्रातजिक और भू-आर्थिक हितों के समक्ष गंभीर चुनौती को उत्पन्न किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से भारत का नेपाल के साथ संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा इस देश में चीन के द्वारा भारतीय हितों को प्रभावित करने वाले बिंदुओं पर चर्चा की गई है।

तकनीकी शब्द:

1. **परियोजना**–किसी कार्य की योजना जिसे सावधानीपूर्वक, नियोजित और व्यवस्थित किया जाता है। जिसमें अक्सर कई लोग शामिल होते हैं और यह प्राय: लंबी अवधि के लिए होता है।

2. **बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव**–बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना द्वारा शुरू की गई एक रणनीति है जो क्षेत्रीय एकीकरण में सुधार, व्यापार में वृद्धि और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से भूमि और समुद्री नेटवर्क के माध्यम से एशिया को अफ्रीका और यूरोप से जोड़ना प्रस्तावित है।

3. **हित**–हित किसी देश के सर्वोच्च प्राथमिकताओं से संबंधित होता है जिसे प्राप्त करने के लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहता है। किसी देश की विदेश नीति के निर्धारण में हित प्रमुख अवयव होता है, इसलिए इसको किसी देश की व्यापक सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए सर्वोपरि माना जाता है।

4. **बुनियादी विकास**–इसके अंतर्गत सड़क, बिजली, आईसीटी, पानी और स्वच्छता, जल

 ISSN 0975-735X

आपूर्ति जैसे बुनियादी ढाँचा और और भूमि-परिवहन के लिए नेटवर्क अवसंरचना के विभिन्न घटकों की गुणवत्ता में सुधार करना शामिल है।

5. **भू-राजनीतिक**–अंतर्राष्ट्रीय संबंध के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से भौगोलिक कारकों से प्रभावित राजनीति, भू-राजनीति कहलाता है। भू-राजनीति भौगोलिक स्थान से जुड़ी राजनीतिक शक्ति पर केंद्रित होती है। जिसका सहसंबंध विशेष रूप से, क्षेत्रीय जल और भूमि से होती है।

6. **भू-स्त्रातजिक**–भौगोलिक तत्त्व का युद्ध कौशल में क्या स्थान है अथवा भौगोलिक तत्त्व किस प्रकार यौद्धिक कूट योजना को प्रभावित करते हैं–यह संपूर्ण विवरण हम भू-स्त्रातजी के अंतर्गत प्राप्त करते हैं।

प्रस्तावना: नेपाल एक लैंडलॉक हिमालयी राष्ट्र है जो कि एक संप्रभु देश के रूप में एक मजबूत और अनूठी पहचान रखता है। जुलाई 2022 के अनुसार नेपाल की जनसंख्या 29.5 मिलियन हो गई है जो जनसंख्या अनुसार दुनिया का 49वाँ सबसे बड़ा देश है।[1] यह दो महाकाय एवं विशाल जनसंख्या वाले देशों, भारत और चीन के मध्य एक बफर राष्ट्र है। इसकी भौगोलिक एवं सामरिक अवस्तिथि के कारण, नेपाल की विदेश नीति की वरीयताएँ और विकल्प सीमित है। नेपाल में हिंदु 80.7, बौद्ध 10.3, इस्लाम 4.6, ईसाई 0.5, लोक या पारंपरिक धार्मिक 3.6 और धार्मिक रूप से असंबद्ध 0.3 प्रतिशत लोग निवास करते हैं।[2] दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में नेपाल भारत के 1758 किमी॰ सीमा रेखा से घिरा हुआ है। उत्तर की ओर हिमालय दुर्गम सीमाओं का निर्माण करता है जहाँ इसकी सीमाएँ चीन को छूती हैं।

नेपाल और भारत के बीच काफी लंबे समय से मजबूत द्विपक्षीय संबंध रहे हैं। नेपाल और भारत के मध्य रोटी-बेटी का संबंध है। वर्ष 1950 में भारत और नेपाल के मध्य दो संधियाँ हुईं– व्यापार और वाणिज्यिक संधि तथा शांति और मित्रता की संधि, जिसने इन दोनों देशों के संबंधों को और प्रगाढ़ किया। शांति और मित्रता की संधि के माध्यम से नेपाल के नागरिकों को भारत में बेजोड़ सुविधाएँ मिली हैं और उन्हें भारतीय नागरिकों की तरह कई व्यापक विशेषाधिकार और अवसर मिले हैं। दोनों देशों में सीमा के आर-पार निर्बाध रूप से आने जाने की परंपरा रही है। भारत ने नेपाल में शांति प्रक्रिया में हमेशा एक निर्णायक भूमिका निभाई है और लोकतंत्र स्थापित होने में सहयोग दिया है। नेपाल के आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में भारत का सहयोग रहा है, जिसमें विशेषत: द्विपक्षीय व्यापार, निवेश और तकनीकी स्थानांतरण की अहम भूमिका रही है। समुद्र का मुहाना न होने कारण, नेपाल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निकास मार्ग की सुविधाओं के लिए पूर्ण रूप से भारत पर निर्भर है।

भारत के विदेश मंत्रालय ने नेपाल को 530 मिलियन अमेरिकी डॉलर देने की बात कही जिससे कि वहाँ चार समन्वित चेक पोस्ट, 33 जिलों को जोड़ने वाली 1500 किलोमीटर सड़क और दोनों देशों के मध्य 184 किमी ब्रोडगेज रेलवे लाइन का निर्माण प्रस्तावित है। नेपाल की दक्षिणी नदियों पर बाँध बनाने के लिए भारत ने 216 मिलियन रुपए की सहायता प्रदान की है।[3] नेपाल और भारत के बीच पाँच सीमा पार बिंदुओं महेंद्रनगर, नेपालगंज, भैरहवा, बिरगंज और ककरभीट्टा के माध्यम से यात्री वाहनों के यातायात के नियमन के लिए 2004 में एक परिवहन समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे।[4]

इस क्षेत्र के भू-राजनीतिक खेल में चीन ने सदैव भारत के प्रभुत्वशाली प्रभाव को प्रतिसंतुलित करने की सक्रिय कोशिश की है। वर्ष 2008 में नेपाल में राजतंत्र के खत्म होने के बाद

एक राजनितिक शक्ति की रिक्तता आ गई है और चीन इस अवसर का लाभ उठाकर यहाँ भारत के प्रभाव को स्थिर करने की कोशिश कर रहा है। इसके तहत उसने नेपाल के साथ आर्थिक और व्यापारिक संबंधों में वृद्धि की। मुख्यतया, तिब्बत की सुरक्षा पर भू-राजनीतिक चिंताओं के चलते चीन ने नेपाल पर हमेशा ध्यान दिया है। तिब्बत से हजारों शरणार्थी प्रत्येक वर्ष नेपाल में प्रवेश करते हैं और चीन का यह उद्देश्य रहा है कि इनकी संख्या कम हो। चीन की सुरक्षा और विदेश नीति में नेपाल एक अहम मुद्दा है। नेपाल और चीन लगभग 1414 किमी॰ लंबी अंतर्राष्ट्रीय सीमा साझा करते हैं।

दक्षिण एशियाई क्षेत्र में भारत और चीन को एक क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वी के रूप में माना जाता है और ये दोनों देश नेपाल में अपनी पर्याप्त उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अथक प्रयास कर रहे हैं। नेपाल के परिवहन बुनियादी ढाँचे में चीन का निवेश लगातार बना हुआ है। नेपाल में निवेश के पीछे चीन का रणनीतिक हित है इसीलिए चीन नेपाली मामलों में भारत के प्रभुत्व को कमजोर करना चाहता है और अपने प्रभाव को मजबूत करना चाहता है। नेपाल की राजनीति में वामपंथी और साम्यवादी विचारधाराएँ 20वीं शताब्दी के मध्य से ही मौजूद थीं और इन विचारधाराओं ने अपनी पैठ भी बनाई है। नेपाल में कम्युनिस्ट आंदोलन के लिए सहानुभूति 1990 के दशक के अंत और 2000 के दशक की शुरुआत तक तेजी से जारी रही, जिसकी वजह से नेपाल में बड़े पैमाने पर माओवादी विद्रोह हुए हैं और जिसको समय-समय पर चीन का तेजी से समर्थन भी मिलता रहा है।[5] चीन ने विशेष रूप से 2008 में नेपाल की राजशाही के उन्मूलन के बाद से इसकी आंतरिक राजनीति में अपना प्रभाव बढ़ाया है। नेपाल में चीन की बुनियादी चिंता का मुद्दा है स्वायत्त तिब्बती लोग। क्योंकि लगभग 20,000 तिब्बती शरणार्थी नेपाल में रहते हैं और चीन चाहता है कि नेपाल अपनी भूमि को किसी भी चीन विरोधी गतिविधियों, विशेष रूप से अलगाववादियों द्वारा उकसाने का स्थान न बने, निश्चय ही चीन का यह इशारा भारत की ओर है।[6]

शोध-पत्र का उद्देश्य

1. नेपाल में प्रस्तावित चीन की बीआरआई परियोजनाओं का अध्ययन करना।
2. नेपाल में चीन की उपस्थिति का भारतीय हितों पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3. भारत द्वारा चीन को प्रतिसंतुलित करने के लिए किए जा रहे प्रयास पर चर्चा करना।

प्राप्त परिणाम एवं विश्लेषण

नेपाल में माओवादी प्रभुत्व से पहले भारत के साथ नेपाल के संबंध काफी अच्छे थे। नेपाल में बुनियादी निवेश के नाम पर चीन ने न सिर्फ भारतीय हितों को प्रभावति किया है बल्कि नेपाली लोगों के मूल अधिकारों एवं अस्तित्व के लिए खतरा बना बैठा है। शोध-पत्र के विभिन्न उद्देश्यों के अध्ययन एवं विश्लेषण से प्राप्त परिणाम निम्नलिखित हैं–

1. **नेपाल में प्रस्तावित चीन की बीआरआई परियोजनाएँ**–नेपाल और चीन ने मई 2017 में तत्कालीन प्रधान मंत्री पुष्प कमल दहल के नेतृत्व में BRI पर एक समझौता ज्ञापन (MoU) पर हस्ताक्षर किए। उन्हें व्यापक रूप से 'चीनी समर्थक' माओवादी नेता माना जाता है। जो एक दशक लंबे तक सशस्त्र विद्रोह के बाद नेपाल की राजनीति में शामिल हो गए थे। नेपाल में माओवादी नेता, पीएम के॰पी॰ शर्मा ओली जो चीन पर अपनी निर्भरता के लिए जाने जाते थे, ने 2019 की शुरुआत में बीआरआई के तहत नौ अलग-अलग परियोजनाओं को आगे बढ़ाने का प्रस्ताव दिया। इनमें जिरॉन्ग/केरुंग के चीनी बंदरगाह से काठमांडू तक प्रवेश करने वाले ट्रांस-हिमालयी

रेलवे का व्यवहार्यता अध्ययन, जिसमें 400 केवी बिजली ट्रांसमिशन लाइन का विस्तार, नेपाल में एक तकनीकी विश्वविद्यालय की स्थापना, सुरंगों और पनबिजली बाँध और नई सड़कों का निर्माण शामिल है। लेकिन इनमें से एक भी प्रोजेक्ट आगे नहीं बढ़ा है।[7] हालाँकि चीन और नेपाल दोनों देश 2016 में भी तिब्बत में स्थित शिगात्से से काठमांडू तक रेल लाइन का विस्तार करने पर सहमत हुए थे। प्रस्तावित 170 किमी० रेलवे दक्षिणी तिब्बत में केरुंग शहर को नेपाल के रासुवागाड़ी जिले से प्रवेश करते हुए काठमांडू से जोड़ेगी। रासुवागाड़ी और काठमांडू के बीच की दूरी लगभग 100 किमी० है। बाद में, यह घोषणा की गई कि चीनी सरकार काठमांडू और चीनी सीमा बिंदु केरुंग के बीच की दूरी को लगभग आधा करने के लिए 30 किमी० लंबी सुरंगों का निर्माण करेगी। व्यवहार्य अध्ययन रिपोर्टों के अनुसार, लगभग 98.5 रेलवे पुल या सुरंग होंगे। सितंबर 2019 में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की नेपाल यात्रा के दौरान अभियंता दल द्वारा काठमांडू-पोखरा-लुंबिनी रेलवे के व्यवहार्यता अध्ययन पर एक रिपोर्ट भी प्रस्तुत की।[8] ल्हासा-काठमांडू रेलवे लाइन किंघई-तिब्बत रेलवे लाइन का हिस्सा है। जो पश्चिमी चीन के किंघाई प्रांत की राजधानी और तिब्बती पठार के सबसे बड़े शहर शिनिंग से शुरू होती है और तिब्बत की राजधानी ल्हासा तक जाती है। चीन के विदेशमंत्री वांग यी दिसंबर 2021 को वीडियो लिंक के जरिए नेपाल से बीआरआई सहयोग को गहरा करने का भी आह्वान किया, ताकि नेपाल को 'लैंडलॉक्ड कंट्री' से 'लैंड-लिंक्ड कंट्री' में बदलने का नेपाल के सपने को साकार किया सके।[9] उपर्युक्त परियोजना के अतिरिक्त नेपाल में कुछ प्रस्तावित परियोजनाएँ इस प्रकार हैं—नेगारकोट में व्यू टावर, रसुवागढ़ी-काठमांडू सड़क का उन्नयन, कोरला-पोखरा सड़क, किमाथंका-हिले सड़क निर्माण, करनाली कॉरिडोर (जमुनाहा-हिलसा), गंडकी कॉरिडोर (बेलहैया-कोरला), थोरी-केरुंग कॉरिडोर, कोडारी-बीरगंज कॉरिडोर, कोशी कॉरिडोर (रानी-किमथंका), भिट्टामोड़-लामबागर-लापचा कॉरिडोर, गलची-रसुवागढ़ी-केरुंग 400 केवी ट्रांसमिशन लाइन इत्यादि।[10] केरुंग-रक्सौल रेलवे मार्ग की आर्थिक व्यवहार्यता अनिश्चित है, जो भारतीय सीमा के पास है। चीन, नेपाल के माध्यम से गंगा के मैदानी इलाकों तक पहुँचने की योजना बना रहा है।[11]

तिब्बती क्षेत्र शिगात्से या शिगाजे से हिमालयी देश नेपाल की राजधानी काठमांडू तक 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर की क्रॉस-बॉर्डर रेलवे दक्षिण एशिया में चीन की महत्त्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड रणनीति का भी एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मणिपाल एडवांस्ड रिसर्च ग्रुप के वाइस-चेयरमैन प्रोफेसर माधव नालापत ने रेलवे के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस रेलवे का आर्थिक एवं व्यापारिक से कहीं अधिक भू-स्त्रातजीय महत्त्व है। इसका व्यावहारिक उपयोग सीमित होगा क्योंकि मार्ग पर व्यापार की माँग में कमी थी। नालापत ने कहा, इसलिए भारत में कई लोगों का विचार है कि रेलवे का वास्तविक उद्देश्य चीन से नेपाल (जो भारत की सीमा पर है) में सैनिकों के प्रवेश को गति देना है।[12]

2. **नेपाल में चीन की उपस्थिति का भारतीय हितों पर प्रभाव**—वर्तमान समय में हिमालयी देश नेपाल में चीन की उपस्थिति भारत के लिए चिंता का कारण बनता जा रहा है। खासतौर से तब जब नेपाल ने वर्ष 2017 में चीन के महत्त्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनीशिएटिव पर हस्ताक्षर करके साम्यवादी चीन को अपने यहाँ निमंत्रण दिया था। चीन भारत-नेपाल सीमा पर अपनी उपस्थिति बढ़ाने के लिए नेपाल में काफी निवेश किया है। चीन भारतीय सीमा के पास अपनी उपस्थिति बढ़ाने के लिए नेपाल को एक भू-रणनीतिक एवं भू-राजनीतिक क्षेत्र के रूप में

देखता है। यही कारण है कि वर्तमान समय में भारत एवं नेपाल का राजनीतिक संबंध संक्रमण काल में चल रहे हैं। नेपाल के द्वारा नया मानचित्र जारी करना जिसमें लिम्पियाधुरा, कालापानी और लिपुलेख को अपने क्षेत्र में दिखाना, नेपाल में चीनी प्रभाव को दर्शाता है। जिस नेपाल के साथ भारत का संबंध दशकों से रोटी एवं बेटी का था, आज वही नेपाल चीन की गोदी में जाकर बैठ चुका है। भारत और चीन के बीच स्थित, नेपाल 'एशिया का भू-राजनीतिक केंद्र' बनता जा रहा है। नेपाल की भू-सामरिक स्थिति और भारत एवं चीन के बीच नेपाल में बढ़ती प्रतिस्पर्धा इस क्षेत्र की महत्ता को दर्शाता है।

नेपाल हमेशा व्यापार पारगमन और आवश्यक वस्तुओं के साथ-साथ बुनियादी ढाँचे और कनेक्टिविटी के लिए भारत पर अत्यधिक निर्भर रहा है। हालाँकि, 2015 की नेपाल नाकाबंदी-जिसे 'बदसूरत और अप्रभावी भारतीय पड़ोस कूटनीति का प्रतीक' कहा गया है-[13] ने भारत-नेपाल संबंधों के मूल सिद्धांतों को प्रभावित किया। इस नाकाबंदी ने नेपाल की अर्थव्यवस्था को पंगु बना दिया, जिसने नेपाल को व्यापार और पारगमन के लिए चीन की ओर रुख करने के लिए प्रेरित किया। केपी ओली का चुनाव प्रचार भारत-विरोधी मुद्दे पर भी आधरित था जिसने 2017 में नेपाल साम्यवादी पार्टी (NCP) को जीत दिलवाई। नेपाल की राजनीति में NCP के सत्ता में आने के साथ, चीन ने नेपाल में अपने राजनीतिक प्रभाव को व्यापक और मजबूत करना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप 12 मई 2017 को नेपाल ने बेल्ट एंड रोड इनीशिएटिव के तहत 8 बिलियन अमेरिकी डालर की अनेक परियोजनाओं पर हस्ताक्षर किए।[14]

नेपाली मीडिया में भी चीन ने अपना प्रभाव बढ़ा लिया है नेपाल के कई अखबारों और रेडियो स्टेशन में चीन की तारीफ वाले कार्यक्रम प्रकाशित और प्रसारित किए जाते हैं। कई बार अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर नेपाली मीडिया के जरिये भारत के खिलाफ दुष्प्रचार भी किया जाता है जिसका उद्देश्य नेपाल में भारत के प्रभाव को कम करना होता है। चीन के कई एनजीओ भारत से सटे नेपाल सीमा में काफी सक्रिय हैं। नेपाल के लुंबिनी में चीन से कुछ एनजीओ सोशल वेलफेयर से जुड़े कार्यक्रम कर रहे हैं। कई बार इन एनजीओ की आड़ में चीन के जासूस भारत से जुड़े सीमावर्ती इलाकों अपनी गतिविधियों को अंजाम दे रहे हैं।[15]

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने नेपाल में कुछ कम्युनिस्ट गुटों के साथ संबंधों को मजबूत कर फायदा उठाने की कोशिश की है, ताकि वो नेपाल की विदेश नीति को भारत के खिलाफ इस्तेमाल कर सके और उसी का एक उदाहरण भारत के तीन क्षेत्रों को नेपाली मानचित्र में शामिल करना और उसे संसद में पास कराना शामिल है। ये काम सत्ता में रहते हुए नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टियों ने किया था। नेपाल की सत्ता पूरी तरह से कम्युनिस्ट पार्टियों के हाथ में आ जाए और दूसरी पार्टियों का राजनीतिक वजूद ही मिट जाए, इसके लिए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने नेपाल में एक संयुक्त वामपंथी पार्टी के गठन के लिए जोर दिया है, और इसके लिए चीन की तरफ से वामपंथी पार्टियों को कई तरह के लालच भी दिए गए और नेपाल को चीन का पूरा समर्थन देने का वादा भी किया गया। एशिया-पैसिफिक फाउंडेशन के सीनियर रिसर्च फेलो मार्कस एंड्रियोपोलोस ने फॉरेन पॉलिसी में लिखे अपने लेख में लिखा है कि 'चीन की कोशिश नेपाल में भी चीन की तरह ही शासन का निर्माण करना है, ताकि नेपाल में भी सिर्फ एक कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार बनी रहे, बाकि पार्टियाँ खत्म हो जाएँ और नेपाल के सारे संस्थान कम्युनिस्ट पार्टी के अधीन आ जाएँ।' उन्होंने आगे कहा कि अगर नेपाल में चीन की मनपसंद कम्युनिस्ट सरकार का गठन हो जाता है,

ISSN 0975-735X

तो फिर तिब्बत के स्वतंत्र होने की सारी उम्मीदें हमेशा के लिए खत्म हो जाएँगी।[16] काठमांडू के त्रिभुवन विश्वविद्यालय में पूर्व राजनयिक और राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर विजयकांत कर्ण ने कहा, 'बीजिंग नेपाल और भारत के बीच सदियों पुराने संबंधों को कम करना चाहता है और एक ऐसा शासन चाहता है जो चीन के हितों के प्रति अधिक संवेदनशील हो और जो भारतीय प्रभाव का विरोध करने में सक्षम हो।'[17] फॉरेन पॉलिसी की एक रिपोर्ट के मुताबिक, नेपाल के पोखरा में बनने वाले इंटरनेशनल एयरपोर्ट के उद्घाटन में बार-बार देरी की वजह चीन की कर्ज देने की नीति ही थी। अभी हाल ही में इसी पोखरा अतंर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट पर यति एयरलाइंस का एक विमान लैंडिंग करते समय 15 जनवरी 2023 को दुर्घटनाग्रस्त हो गया। जिसमें 5 भारतीय समेत 72 यात्री और चालक दल सवार थे। इस दुर्घटना के पीछे चीन को जिम्मेदार ठहराया गया।[18]

3. **भारत द्वारा चीन को प्रतिसंतुलित करने के लिए किए जा रहे प्रयास**—यद्यपि दक्षिण एशिया का यह भारतीय पड़ोसी राष्ट्र विगत तीन दशकों से राजनीतिक अस्थिरता व आर्थिक संकटों से प्रभावित रहा है तथापि भारत ने सदैव उसके विकास, स्थायित्व व सुरक्षा के प्रति सक्रियतापूर्वक हर संभव सहायता पहुँचाई है। भारत, नेपाल का सबसे बड़ा निर्यातक व प्रमुख आयातक राष्ट्र है तथा प्रचुर मात्रा में सहायता व निवेश की नीतियों द्वारा सदैव नेपाल की सहायता हेतु भारत तत्पर रहा है। भारत-नेपाल सीमा से संपन्न होने वाले व्यापार में दोनों देशों ने पारस्परिक रूप से 16 मूलभूत वस्तुओं को निःशुल्क कर दिया है साथ ही लगभग 384 वस्तुओं पर मात्र 5 प्रतिशत व अन्य 9 प्रकार वस्तुओं पर मात्र 8 प्रतिशत का आयात-निर्यात कर लागू है। यदि भारत व नेपाल के व्यापार की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला जाए तो सन् 2002-03 से 2017-18 के वर्षों में भारत का नेपाल को आयात आवश्यकता से अधिक रहा है। भारत ने समय-समय पर नेपाल की हरसंभव मदद की है, चाहे वह नेपाल में आर्थिक संकट हो या कोविड-19 जैसी महामारी के समय वैक्सीन की आपूर्ति हो भारत ने विगत में नेपाल के साथ की गई संधियों की प्रतिबद्धता को हमेशा चरितार्थ किया।

इसके अलावा भारत को नेपाल के साथ आपसी संबंधों में आई खटास को दूर करने के लिए वार्तालाप करना चाहिए। अभी हाल में नेपाल और भारत के बीच हवाई सेवाओं को फिर से शुरू किया गया। नेपाली और भारतीय अधिकारियों ने 15 जनवरी 2021 को नई दिल्ली में नेपाल-भारत संयुक्त आयोग की छठी बैठक में द्विपक्षीय मुद्दों के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं की समीक्षा की गई। इस बैठक में कोविड-19 वैक्सीन से लेकर सीमा और सीमा प्रबंधन, संपर्क, आर्थिक सहयोग, व्यापार, पारगमन जैसे मुद्दों पर चर्चा की गई। बैठक के बाद भारत ने नेपाल को आक्सफोर्ड-एस्ट्राजेनिका के कोविशील्ड वैक्सीन की दस लाख खुराक प्रदान किया। कुछ विश्लेषक इसको भारत की वैक्सीन कूटनीति (Vccine Diplomacy) का नाम दे रहे हैं जो नेपाल में चीन के प्रभाव को नियंत्रित एवं प्रति संतुलित करने में मदद करेगा। भारत को नेपाल में हवाई, सड़क, ट्रेन और जलमार्ग कनेक्टिविटी पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है इसके अलावा BBIN (बांग्लादेश, भूटान, भारत और नेपाल), SAARC (सार्क), BIMSTEC (बिम्स्टेक) और NAM (गुट निरपेक्ष आंदोलन) जैसे समान हितों वाले बहुपक्षीय मंचों में सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता है।[19] भारत को चीन को प्रतिसंतुलित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मंचों का सहारा भी लेना चाहिए जैसे क्वाड (Quard) जो अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत का सामान उद्देश्यों को प्राप्त करने सामूहिक मंच है। भारत को अमेरिका के उस पहल का समर्थन करना चाहिए

जिसके तहद अमेरकि ने नेपाल में बिजली व अन्य बुनियादी विकास के लिए MCC (Millennium Challenge Compact) तहद तहद 500 मिलियन डालर दिया है। हालाँकि कुछ लोग इसको हिंद-प्रशांत स्त्रातजी (Indo-Pacific Strategy) का हिस्सा मानते हैं।[20]

अमेरिका के नेतृत्व में G.7 देशों ने चीन की महात्वाकांक्षी BRI (Belt and Road Initiative) परियोजना को प्रतिसंतुलित करने के लिए Build Back Better World (B3W) परियोजना प्रस्तावित किया है। जो निम्न और मध्यम आय वाले देशों के बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए डिजाइन किया गया है। इस पहल का उद्देश्य आधारभूत संरचना निवेश में +40 ट्रिलियन प्रदान करना है, जिसकी निम्न और मध्यम आय वाले विकासशील देशों को 2035 तक आवश्यकता होगी। राष्ट्रपति जो बिडेन ने इस साल मई 2022 में टोक्यो में क्वाड समिट में इंडो-पैसिफिक इकोनॉमिक फ्रेमवर्क (IPEF) का प्रस्ताव दिया, जिसके चार स्तंभ हैं–व्यापार; आपूर्ति शृंखला; स्वच्छ ऊर्जा, डीकार्बोनाइजेशन और बुनियादी ढाँचा; कर और भ्रष्टाचार विरोधी नीति।[21]

निष्कर्ष–नेपाल की आंतरिक राजनीति पिछले कुछ वर्षों में काफी अस्थिर रही है। जाहिर है नेपाल की राजनीतिक अस्थिरता उसकी विदेश नीति को सँभलने नहीं दे रही है। वहाँ एक सशक्त और मजबूत नेता की सख्त जरूरत है जो पड़ोसी देशों के साथ रिश्तों को बेहतर कर सके। इसी के साथ भारत को भी अपनी विदेश नीति की समीक्षा करने की जरूरत है। भारत को नेपाल के प्रति अपनी नीति दूरदर्शी बनानी होगी। जिस तरह से नेपाल में चीन का प्रभाव बढ़ रहा है, उससे भारत को अपने पड़ोस में आर्थिक शक्ति का प्रदर्शन करने से पहले रणनीतिक लाभ-हानि पर विचार करना होगा। इसके अलावा नेपाल को भी यह समझना होगा कि 'चीन उसके ढाँचागत संरचना में चाहे जितना निवेश कर ले, किंतु वह भौगोलिक ज्यादतियों को नहीं बदल सकता।' नेपाल को इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि वह स्वयं चीन के 'फाइव फिंगर' नीति का हिस्सा है जिसको प्राप्त करने के लिए चीन पहले से सज्ज है। इसके अलावा नेपाल को श्रीलंका और पाकिस्तान में चीनी निवेश से उत्पन्न आर्थिक संकट से सीख लेने की भी आवश्यकता है। किसी भी प्राकृतिक आपदा के समय चीन से की ज्यादा त्वरित सहायता नई दिल्ली ही काठमांडू को पहुँचा सकता है। भारत भी अपने पड़ोसी देशों के साथ साझेदारी व सहयोग के द्वारा ही अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के साथ, राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित कर सकता है।

संदर्भ

1. CEIC Team. (2022). Nepal Population. CEIC, URL- https://www.ceicdata.com/en/indicato r/nepal/population
2. (2022). Nepal Population. countrymeters, URL.https://countrymeters.info/ en/Nepal
3. R.K. Meena. (2015). China's Influence on Nepal: India's attempt to balance. Indian Council of World Affairs, p-1, URL- https://icwa.in/show_content.php?lang=1&level=3&ls_id= 558&lid=429
4. H.B. Jha. (2013). Nepal's Border Relations with India and China. Eurasia Border Review, vol 41, p-64, URL-https://src-h.slav.hokudai.ac.jp/publictn/eurasia_border_review/Vol41/V4N 104J.pdf
5. A S Azad. (2022). नेपाल आम चुनाव को कैसे प्रभावित कर रहा है चीन, अगर इस बार जीता, तो भारत की होगी बड़ी 'हार' Oneindia, URL- https://hindi.oneindia.com/amphtml/news/international/h ow-china-trying-to-control-nepal-s-domestic-politics-ahead-of-2022-elections-concern-for-india-725072.html

6. Dilip Nepal. (2021). Nepal's Relationship with India and China in the Changing Context. Mangal Research Journal, Vol.2, pp-41,43. URL- file://C:/Users/acer/Downloads/127595%20(1).pdf
7. S.D. Pradhan. (2022). Nepalese populaton opposes Chinese BRI projects. THE TIMES OF INDIA, URL- https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/Chanak yaCode/nepalese-population-opposes-chinese-bri-projects/
8. Abhinandam Mishra. (2022). Strategic China-Kathmandu rail line to gather speed post Wang Yi's visit. The Sunday Guardian, URL- https://www.sundayguardianlive.com/world/strategic-china-kathmandu-rail-line-gather-speed-post-wang-yis-visit
9. A Wang & Z Ziwen. (2021). Tibet railway in focus as China vows change for landlocked Nepal, in move sure to worry. South China Morning Post, URL- https://www.scmp.com/news/china/diplomacy/article/3159111/tibet-railway-focus-china-vows-change-landlocked-nepal-move
10. H B Jha. (2019). Chinese Investments in Nepal in the Context of BRI. Vivekanand International Foundation, p-4, URL- https://www.vifndia.org/article/2019/october/11/chinese-investments-in-nepal-in-the-context-of-bri
11. Anil Sigdel. (2018). China's Growing Footprint in Nepal: Challenges and Opportunities for India. Observer Research Founadation, ISBN 978-93-88262-43-9, Issue 260, p-5-6, URL-https://www.orfonline.org/wp-content/uploads/2018/10/ORF_IssueBrief_260_India-Nepal_FinalForUpload.pdf
12. A Wang & Z Ziwen. (2021). Tibet railway in focus as China vows change for landlocked Nepal, in move sure to worry. South China Morning Post, URL- https://www.scmp.com/news/china/diplomacy/article/3159111/tibet-railway-focus-china-vows-change-landlocked-nepal-move
13. शिवशंकर मेनन (2021) भारत और एशियाई भू-राजनीति, अतीत, वर्तमान, पेंगुइन रैंडम हाउस, पृ० 347
14. (2018). China Welcomes The Merger Of Nepal's Two Communist Parties. SPOTLIGHT, URL-https://www.spotlightnepal.com/2018/05/18/china-welcomes-mergernepals-two-communist-parties/
15. N. Srivastava. (2022). नेपाल में भारत के प्रभाव को कम करने के लिए चीन की साजिश। india.com, URL-https://www.india.com/hindi-news/explainer/china-s-conspiracy-to-reduce-india-s-influence-in-nepal-5680566/amp/
16. A SAzad. (2022). नेपाल आम चुनाव को कैसे प्रभावित कर रहा है चीन, अगर इस बार जीता, तो भारत की होगी बड़ी 'हार' One india, URL-
https://hindi.oneindia.com/amph tml/news/international/how-china-trying-to-control-nepal-s-domestic-politics-ahead-of-2022-elections-concern-for-india-725072.html
17. Ruchi Tiwari. (2020). Politics, economy, people ties, culture-how China has slowly expanded its grip over Nepal. The Print, URL- https://theprint.in/diplo acy/politics-economy-people-ties-culture-how-china-has-slowly-expanded-its-grip-over-nepal/452422/
18. H Ellis & A Hassan. (2023). Nepal plane crash: last moments inside cabin caught on passenger's Facebook live video. Guardian, URL-https://www.theg uardian.com/world/2023/jan/16/nepal-plane-crash-facebook-live-video
19. H B Jha. (2021). A reset of India-Nepal relations. Observer Research Foundation, URL-https://www.orfonline.org/expert-speak/reset-india-nepal-relations/

20. Krishna Plkharel. (2022). Nepal Parliament Approves $500 Million in U.S. Aid Despite China's Objections. The Wall Street Journal, URL-https://www. wsj.com/articles/nepal-parliament-approves-500-million-in-u-s-aid-despite-chinas-objections-11645998357
21. PIB (2022). Indo-Pacific Economic Framework (IPEF) for Prosperity ministerial meet was inclusive and fruitful: Shri Piyush Goyal. Ministry of Commerce & Industry, URL-https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1 858243

मुकेश कुमार प्रजापति
पुत्र श्री अलगूराम प्रजापति
ग्राम-अहमदपुर (छावनी),
पोस्ट-जफराबाद, जौनपुर, 222180 **उ०प्र०**
मो० 8960551164
mukesprj89@gmail.com

 ISSN 0975-735X

मान्यवर काशीराम जी के आर्थिक विचार

पुष्पेन्द्र कुमार, शोध छात्र, इतिहास विभाग,
चौ॰ चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
प्रो॰ ए॰वी॰ कौर, इतिहास विभाग,
चौ॰ चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मा॰ काशीराम अपनी अव्वल दर्जे की नौकरी छोड़कर एक अज्ञात सफर पर निकले। काशीराम एक अलग तरह के व्यक्ति थे। काशीराम ने बाबा साहेब डॉ॰ अंबेडकर के बारे में जानने के लिए व उनके कार्यों को पूरा करने के लिए अपने पूरे होश-हवाश में नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। काशीराम ने यह भी महसूस किया था कि दलितों का आर्थिक जीवन भी बहुत खराब है। जो समुदाय दो वक्त की रोटी का मुहताज है। वह राजनीति के बारे में सोच भी नहीं सकता क्योंकि वह दलित समाज रोटी कमाने में इतना व्यस्त है कि राजनीति तो उसके लिए बहुत दूर की बात हो गई। इसलिए ही इस समाज का वोट के नाम पर फायदा उठाया जा रहा है।[1] मा॰ काशीराम अक्सर कहते थे जिस देश में गंगा, जमुना का उपजाऊ दोआब क्षेत्र हो। जहाँ सतलज, व्यास, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र, सरस्वती जैसी अनके नदियाँ हों, वर्ष का एक चौथाई समय वर्षा काल में गुजरता हो बड़े-बड़े बाँध हों, सरोवर-तालब हों, अनगिनत नहरें हों, कुछ पथरीले क्षेत्रों को छोड़कर अधिकतर भूमि उपजाऊ हो। फिर भी देश का कोई न कोई भाग हर इस साल सूखे, अकाल और भुखमरी से अछूता नहीं रहा है।[2] यह एक सोचनीय सवाल है। ऐसी परिस्थितियों से निपटने और सुदृढ़ व्यवस्था करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों के पास अलग-अलग से मंत्रालय होता है। जिन्हें हर वर्ष आवश्यकतानुसार बजट से राशि भी आवंटित की जाती है और बड़े पैमाने पर आवश्यकता हुई तो सरकार विश्व बैंक से सहायता भी लेती है। अतंर्राष्ट्रीय स्तर के यूनिसेफ और डब्ल्यू॰एच॰ओ॰ जैसे संगठनों की मदद भी लेते रहते हैं लेकिन फिर भी सिंचाई के लिए पानी जैसी इस प्रमुख आवश्यकता पर शासक वर्ग कोई विशेष ध्यान नहीं देकर बड़े पैमाने पर देश के उस धन का दुरुपयोग करता है। जो धन पिछड़े क्षेत्रों के विकास, कमजोर और गरीब लोगों की उन्नति तथा उनकी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए होता है उसका अधिकतर भाग उच्च वर्ग की खुशहाली में ही खर्च कर दिया जाता है।[3] मान्यवर काशीराम जानते थे बहुजन समाज की आर्थिक स्थिति को सिर्फ सत्ता की चाबी से ही सुधारा जा सकता है। काशीराम जी ने अपनी कृषि नीति के अंतर्गत किसानों से भेट की थी। उनका विचार था कि एक किसान है जो जमीनों का मालगुजार है, शायद उस वर्ग को पता ही नहीं उसके पास कितनी जमीन है? वह जमीदार वर्ग जो आज भी किसी न किसी माध्यम से मौजूद है। वह खुद खेती नहीं करता बल्कि करवाता है। दूसरा वर्ग वह है जिसके पास खेती के लिए पर्याप्त जमीन है गुजारे के बाद जो बच जाता है उसे बेचकर अपनी दूसरी जरूरतें पूरी करता है। इसे आर्थिक तौर पर खुशहाल किसान कहा जा सकता है। तीसरा वर्ग भी है जो अपनी थोड़ी-सी जमीन पर खेती करता है लेकिन उससे पर्याप्त अनाज नहीं होता है तो दूसरों की जमीन बँटाई पर लेकर काम चलाता है। खेती में उसका पूरा परिवार मेहनत करता है।[4] इस जमीन से खर्चा ठीक तरह से नहीं चल पाता है इसलिए

उसे दूसरे काम धंधे ढूँढने पड़ते हैं। कभी दूसरों की जमीन पर भी काम करना पड़ता है इसलिए खेती में इस वर्ग की जरूरतें पूरी नहीं होतीं। महाजनों से कर्ज लेना पड़ता है। महाजनों का कर्जा एक बार लेकर कभी चुकता नहीं किया जा सकता है क्योंकि अनपढ़ किसान जरूरतमंद होता है। साहूकार के कर्जे में फसल चली जाती है मजबूरन किसान को आत्महत्या तक करनी पड़ जाती है। ऐसे सैकड़ों मामले सिर्फ फाइलों में दबकर रह गए। यह भूमिहीन किसान तीन-चार महीने खेती करते हैं। बचे हुए दिनों में मजदूरी करते हैं।[5] देहात में वह भी नहीं मिलती है। इसलिए उसका जीवन स्तर कमजोर होता है। मान्यवर काशीराम ने कहा था कि किसानों के बल पर नेता बनने की तमन्ना सब रखते हैं लेकिन किसानों को खुशहाल बनाने की इच्छा कोई नहीं रखता, यह दुर्भाग्य की बात है अनाज के पर्याप्त भंडार होते हुए भी गरीब भूखा मर रहा है। आज कोई खेती नहीं करना चाहता क्योंकि खेती घाटे का सौदा है। जिनके पास है वह मजबूरीवश कर रहे हैं क्योंकि दूसरा कोई चारा नहीं है। लोग खेती छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। मान्यवर काशीराम जी ने सारे आँकड़े घूम-घूमकर इकट्ठा किए और देखा पिछड़े लोगों का जीवन कितनी दयनीय स्थिति में है शायद इन्हीं बातों ने काशीराम को वह चेतना प्रदान की कि सत्ता तक इन लोगों को पहुँचाना है। स्वतंत्र भारत में दस करोड़ लोग ऐसे हैं जिनके पास पहनने के लिए कपड़े नहीं हैं, रहने के लिए मकान नहीं है, वे बड़े-बड़े शहरों में अपना गुजारा कर रहे हैं। कुछ रेल की पटरियों के किनारे गुजर-बसर कर रहे हैं तो कुछ पुलों के नीचे अपने दिन व्यतीत कर रहे हैं। अभी सरकार ने उनके रहने के इंतजाम नहीं किए, क्योंकि वह बहुजन समाज के अभिन्न अंग हैं। काशीराम ने कहा गरीबी हटाओ योजना एक राजनीतिक नारे के रूप में शुरू हुई और अब तक मात्र वोट प्राप्त करने का एक साधन ही बनी हुई है। भारत सरकार खोखली भाषणबाजी करके दलित वर्ग को संतुष्ट करने का खेल खेलती रही है। गरीबी हटाओ योजनाओं से बहुत से गरीब लोग आपने पैरों पर खड़े होने के बजाए कर्ज के बोझ से दबकर रह गए, और उन्हें उत्पीड़न सहन करना पड़ा है। जैसे कुम्हार, बुनकर, लौहार, खिलौने बनाने वाले आदि।[6] ये योजनाएँ पर्याप्त रूप में लाभ भोगियों का उत्थान करने में या तो पूर्णत: असफल रही हैं या इसका बहुत कम प्रभाव पड़ा। क्योंकि इन योजनाओं का संचालन निरूद्देश्य और प्रक्रिया से बँधे लाभ-भोगियों को केवल अफसरशाही का गुलाम बना दिया क्योंकि ये योजनाएँ प्रशासन अनुदान पर आधारित थीं इसलिए इनकी धीमी क्रिया के फलस्वरूप अधिकतर लाभार्थी अपने पाँवों पर खड़े नहीं हो सके। साथ-ही-साथ यह भी शोचनीय है कि लाभार्थियों का चयन उनके लिए योजनाओं का चयन तथा लाभार्थियों को अपने कौशल बेहतर बनाने के प्रशिक्षण कार्यक्रम इतने गैर सुनियोजित ढंग से किए गए कि गरीबी उन्मूलन योजनाओं का समाज पर गलत प्रभाव पड़ा।[7] गरीबी हटाओ नारे के पीछे यह बात छिपकर रह गई कि इन योजनाओं के लाभार्थी पहले से अधिक आश्रित एवं सरकारी नौकर शाही पर निर्भर हो गए। शोषित एंव पीड़ित जनता की सेवा के लिए बामसेफ द्वारा कई तरह की योजनाएँ चलाई जा रही हैं। बामसेफ चिकित्सा सहायता एवं सलाह-केंद्र की स्थापना इन्हीं योजनाओं में से एक है। इस योजना के द्वारा शहरों की झुग्गी-झोपड़ियों में बसने वाले शोषित एवं पीड़ित तथा गरीब लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए उन्हें मार्गदर्शन दिया जाएगा। बामसेफ ठाणा यूनिट द्वारा शुरू की गई योजनाओं में से इस केंद्र की शुरुआत एक महत्त्वपूर्ण कदम था। जिला यूनिट के अध्यक्ष डॉ॰ सुरेश घरडे तथा अन्य सहयोगियों के कठिन परिश्रम से इस केंद्र का उद्घाटन 4 मई 1988 को उल्हास नगर के सूबेदार रामजी अंबेडकर नगर की झुग्गी-झोपड़ी बस्ती में बामसेफ के अध्यक्ष आदरणीय

ISSN 0975-735X

मा० काशीराम जी द्वारा किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए काशीराम जी ने कहा कि झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाला दलित शोषित समाज एक ऐसे वातावरण में पलता है जहाँ उसका स्वास्थ्य हमेशा खतरे में रहता है।[8] इस तरह के खतरे से बचाने के लिए तथा अच्छा-स्वास्थ्य रखने के लिए उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता है। इसके साथ इन लोगों में व्याप्त बुरी आदतों को भी बदलना अति आवश्यक है जिनसे इनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। इन झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों को सहायता के बजाए मार्गदर्शन की कहीं ज्यादा आवश्यकता है। शुरुआती दिनों में काशीराम को बहुत आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। आज बामसेफ और अन्य संस्थाएँ बहुजनों के लिए जो कार्य कर रही हैं वह एक या दो दिन की लड़ाई नहीं थी। काशीराम ने काफी लंबी लड़ाई लड़ी। शुरुआत में लोगों ने काशीराम को पागल तक कहा कि सरकारी नौकरी छोड़कर पागलों की तरह मारा-मारा फिर रहा है। काशीराम ने ऐसे लोगों की बातों पर ध्यान नहीं दिया। बल्कि मेहनत से अपना काम करते रहे। काशीराम सादा जीवन में विश्वास रखते थे। वे चकाचौंध तड़क-भड़क से हमेशा दूर रहते थे।[9] काशीराम का जीवन बहुत कठोर एवं परिश्रम से भरा हुआ था। उन्हें किसी भी चीज का कोई शौक नहीं था, एकदम सादे कपड़े पहनना सादा जीवन व्यतीत करना। तीन जोड़ी कपड़ों के अतिरिक्त कभी फालतू कपड़े नहीं बनवाए। सुरेख भारती पत्रिका में प्रकाशित एक घटना से काशीराम के सादा सरल जीवन की जानकारी मिलती है। 1970 के आस-पास की बात है काशीराम को कड़ाके की ठंड में संगठन के कार्य के लिए जाना था। उस समय मान्यवर काशीराम की आर्थिक स्थिति अत्यधिक खराब थी। नौकरी पहले ही छोड़ चुके थे। रुपए-पैसे की बहुत किल्लत थी। ठंड से बचने के लिए काशीराम कोट खरीदने के लिए सोचने लगे। काशीराम शहर के उस सप्ताहिक बाजार में गए जहाँ पुराने और सस्ते कपड़े मिलते हैं। आम बोलचाल में इस बाजार को पैठ कहा जाता है जो सप्ताह में एक बार लगती है। काशीराम पर अधिक पैसे नहीं थे। उन्होंने दुकानदार से सस्ते से सस्ता कोट दिखाने को कहा। दुकानदार ने काशीराम का मजाक उड़ाते हुए कहा कि तुम श्मशान घाट चले जाओ वहाँ काम करने वाला आदमी तुम्हें फ्री माफिक दे देगा।[10] काशीराम बिना वक्त गँवाए पास के श्मशान घाट पहुँच गए। वहाँ मुर्दों के रखे पुराने कपड़ों में से एक कोट 5 रुपए में खरीदकर उस कोट को पहनकर आंनद के साथ अपने अगले मिशन पर चल दिए। काशीराम ऐसा सादगी-भरा जीवन जीते थे। एक पत्रकार ने कहा था काशीराम और लाल बहादुर शास्त्री दोनों ने ही कपड़ों को लेकर कभी दिखावा नहीं किया। दोनों ही राजनेता सादा जीवन उच्च विचार वाले थे। काशीराम एक प्रयोगवादी व्यक्ति थे। चुनाव लड़ने के लिए धन की आवश्यकता थी। उन्होंने कभी किसी पूँजीपति से धन नहीं माँगा।[11] बल्कि बहुजन समाज से धन इकट्ठा किया। काशीराम का आकर्षण इतना था कि लोगों ने काशीराम की इस नई शर्त को भी स्वीकार कर लिया। काशीराम ने कहा मैं इस समय 52 वर्ष का हूँ, अब मैं चाहता हूँ कि लोग मेरी उम्र के बराबर 52000 हजार रुपए इकट्ठा करने में मदद करें तथा मैं 10,000 साईकिल सवार लोगों को जुटाना चाहता हूँ। इस शर्त के साथ उन्होंने उत्तर प्रदेश में 40 सभाओं को संबोधित किया। सात ऐसी सभाओं को संबोधित किया जिसमें प्रत्येक में लगभग एक लाख लोग इकट्ठे हुए थे। केवल उत्तर प्रदेश में अपनी ताकत के दम पर बिना पैसा खर्च किए, वे 47 लाख रुपए इकट्ठे करने में सफल रहे। इन सभाओं में भारी संख्या में लोगों की उपस्थिति इस बात का संकेत थी कि दलित अपनी खुद की पार्टी बनाना चाहते हैं।[12] काशीराम कम्युनिस्टों के प्रति आलोचनात्मक थे लेकिन विभिन्न अवसरों पर उनका झुकाव कम्युनिस्ट विचारधारा की ओर दिखता है। समाजवादी विचारों

को उन्होंने नया मोड़ दिया। वह दृढ़ता से कहते थे कि यदि उनकी पार्टी सत्ता में आती है तो महत्त्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर देंगे। इसके अलावा उन्होंने दावा किया कि वे ऐसी परिस्थिति का निर्माण करेंगे। जिसके चलते श्रमिक एक बेहतर जिंदगी जी सकें। उनके अनुसार प्राकृतिक संसाधन सरकार के नियंत्रण में होने चाहिए। आज जब सरकारें इन्हें निजी कंपनियों को बेच रही हैं, उनकी बात और प्रासंगिक हो गई है। मान्यवर काशीराम का मानना था कि सरकार को बंजर भूमि अधिग्रहीत कर लेनी चाहिए और भूमिहीनों में वितरित कर देनी चाहिए।[13] काशीराम ने कहा था कि उनकी पार्टी ऐसे उद्योगपतियों का समर्थन नहीं करेंगी जो सरकारी पैसे से उद्योग धंधे खड़ा करते हैं जिसका श्रमिकों को कोई फायदा नहीं होता। मान्यवर निजी पूँजीपतियों के विरोध में नहीं थे, लेकिन सरकार द्वारा उन्हें लाभ पहुँचाने के विरोध में थे। Man और Money के बीच समन्वय को लेकर पहले मान्यवर साहब को और मौजूदा समय में बहनजी को सबसे ज्यादा आलोचना झेलनी पड़ रही थी। आज चुनाव लड़ने के लिए जहाँ मनुवादी दलों को अलग-अलग माध्यमों से हजारों करोड़ चंदे मिलते हैं वहीं मान्यवर साहब की पार्टी बहुजन समाज के छोटे-छोटे सहयोग से सभी मनुवादी दलों से लोहा ले रही है। इसमें कोई संशय नहीं है कि आज चुनाव बहुत महँगा हो चुका है।[14] ऐसे में भारत की तीसरी सबसे बड़ी राष्ट्रीय पार्टी बसपा को भी चुनाव के लिए धन की जरूरत होती है। इसलिए Man और Money के बीच सामजस्य बिठाने की नितांत आवश्कयता है। शुरुआती समय में मान्यवर साहेब ने एक नोट एक वोट के तहत समाज से सहयोग लिया लेकिन जब यह रकम नाकाफी साबित हुई तो मान्यवर साहब ने लोगों से कहा कि मुझे भाषण के लिए बुलाने से पहले मेरे वजन के बराबर सिक्कों की रकम दीजिए, फिर हम सभा को संबोधित करेंगे। इस तरह मान्यवर साहब ने एक सभा से लगभग 12 से 16 हजार रुपए इकट्ठा करते हुए, सौ से अधिक सभाओं को संबोधित किया जिससे उन्होंने कई चुनाव व उपचुनाव लड़े। परंतु चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखते हुए आवश्यक धन इकट्ठा नहीं हो पा रहा था। इसलिए मान्यवर साहब ने पुनः लोगों से कहा कि सभा में भाषण के लिए मुझे मेरी उम्र जो कि 52 साल है के बराबर 52 हजार रुपए दीजिए। इस प्रकार मान्यवर साहब एक सभा से 52 हजार रुपए इकट्ठा करने लगे। मान्यवर साहब कहते थे कि अक्सर देखा जाता है कि पीड़ित समाज के लोग अनुभव राजनीति व इतिहास से बेखबर होकर हिंसक रुख अख्तियार कर लेते हैं जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक तौर पर लाचार राजनीतिक तौर पर अनाथ समाज के लोग पीड़ित के बजाए हिंसक करार कर दिए जाते हैं।[15] नतीजा पुलिस कार्यवाही में मौतें, जेल, कोर्ट के चक्कर और बदतर होती आर्थिक स्थिति के तौर पर साफ देखी जा सकती है। एक सच्चे नेतृत्व का दायित्व अपने लोगों के जान-माल की रक्षा संग उद्देश्य की प्राप्ति करना होता है यही वजह है कभी-कभी विरोधी लोग ऐसे सच्चे नेतृत्व को डरा हुआ प्रदर्शित कर उनके समर्थकों को गुमराह करने का प्रयास करते हैं। वर्तमान राजनीति में जब बिना पैसे, स्वजाति और मीडिया के समर्थन से संसद और विधानसभा तो दूर छोटा चुनाव तक जीतना मुश्किल है, काशीराम ने इस मिथक को चकनाचूर कर दिया। उन्होंने कमजोर हैसियत के उन तमाम लोगों को संसद और विधानसभा में पहुँचा दिया जो निगम या पार्षद तक का चुनाव जीतने की उम्मीद नहीं रखते थे। वे काशीराम ही थे जिन्होंने दलित थ्योरी को बहुजन थ्योरी में बदला था उन्होंने दलितों और पिछड़ों को एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया और उन्हें यह एहसास कराया कि वे अपनी संख्या में सत्ता के भागीदार बनें। वे जनता को यह बताने में सफल हो गए कि कैसे दूसरी पार्टियाँ पूँजीपतियों के पैसों से सत्ता में आकर उनके हितों और अधिकारों पर कुठारघात कर

 ISSN 0975-735X

रही हैं और परिवारवाद के रूप में लोकतंत्र देश में राजशाही चल रही है। जनता द्वारा पैसे लेने के आरोपों पर उन्होंने कहा कि अन्य पार्टियाँ पूँजीपतियों और सामंतवादी मानसिकता के लोगों से चंदे लेती हैं जो चुनाव जीतने के बाद पूँजीपतियों के हित में नीतियाँ बनाती हैं। जबकि हम लोग जनता से इसलिए पैसा लेते हैं क्योंकि हम उनके लिए नीतियाँ बना सकें।[16] इससे हम पूँजीपतियों के दबाव से मुक्त रहेंगे और किसानों-मजदूरों और शोषित वर्ग के हित के लिए नीति बनाएँगे। बहुजन राजनीति का यह उद्देश्य आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि सामान्य सीटों से कुम्हार, नाई, पाल, निषाद, गड़रिया, लोधी, पटेल आदि बहुजन समाज के लोग चुनाव जीतकर संसद और विधानसभा में पहुँचे। काशीराम जी समय-समय पर आर्थिक एजेंडे का जिक्र किया करते थे, जिसका दर्शन अंबेडकरवाद था। उनका बहुजन समाज के सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक पुनरुत्थान का बहुजन एजेंडा था, जिसे लागू करने के लिए मायावती के छः माह के शासनकाल के दौरान तमाम शक्ति का इस्तेमाल करके उस एजेंडा को प्राप्त करने का प्रयास किया गया।[17] काशीराम जी का बसपा सरकार का साफ निर्देश था कि छः साल का काम 6 माह में करना है और फूले शाहू और बाबा साहेब अंबेडकर के एजेंडे को बड़े पैमाने पर लागू करना है। हैदराबाद में एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए मान्यवर साहब ने कहा कि केंद्र सरकार रिक्त पड़ी भूमियों को बहुजनों में नहीं बाँटती है। जब हमारी सरकार बनेगी तब खाली पड़ी जमीनों को भूमिहीन और शोषित को बाँटा जाएगा। उन्होंने भारतीय खानों के बारे में स्पष्ट रूप से कहा था कि हम अपने खनिज संसाधनों का प्रयोग अपनी तकनीकों के द्वारा शोधित करने के बाद विश्व में निर्यात करेंगे ताकि यहाँ पर आर्थिक उन्नति और तकनीकी की वही शुरुआत हो जो कभी हमारे पूर्वज शासकों ने स्थापित की थी।[18] यहाँ पर उनका आशय निर्माण उन्मुख अर्थव्यवस्था और समृद्ध ग्राम व्यवस्था से था क्योंकि वह जानते थे कि इन प्रक्रियाओं से आदिवासी, दलित, पिछड़े आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करेंगे। 1988 में मुरादाबाद में मान्यवर काशीराम ने एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था कि अमेरिका की कुछ प्रतिशत जनसंख्या ही अपने खेतों पर उतना अनाज उत्पन्न कर लेती है कि वह अपने नागरिकों को आपूर्ति के साथ-साथ बहुत से देशों को अन्न निर्यात करता है जबकि हमारी 65 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर काम करने के बाद भी भुखमरी के कगार पर है। इसका कारण यह है कि हमारी सरकार खेती के उन्नत साधनों का प्रयोग नहीं करने देती है। 22 जून 1989 को लखनऊ के महोना में सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक मुक्ति आंदोलन कार्यक्रम में काशीराम ने कहा कि अब हम ग्रामीण क्षेत्रों में सभाओं का आयोजन इसलिए करेंगे क्योंकि ग्रामीण जनसंख्या हमारी सरकार के आर्थिक एजेंडे और सामाजिक परिवर्तन को समझ सके।[19] यह पहली बार किसी राष्ट्रनेता के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी सभाओं को करने का संकल्प था। उनका इस तरह का कदम सत्ता में हिस्सेदारी न लेकर प्रत्यक्ष भागीदारी और नियंत्रण करके राष्ट्र निर्माण तथा समता मूलक समाज की स्थापना करना था। 90 के दशक के बाद मान्यवर काशीराम घूम-घूमकर विकसित गाँव की संकल्पना दे रहे थे। इसी के तहत उन्होंने अंबेडकर ग्राम बनाकर और वहाँ पक्की सड़क बनाकर उनको मुख्य मार्गों से जोड़ने का निर्देश मायावती की सरकार को दिया था। क्योंकि बसपा के प्रचार-प्रसार के दौरान गाँवों की खाक केवल काशीराम जैसे राष्ट्रीय नेता ने ही छानी थी। काशीराम की सोच की जमीनी हकीकत बहुजन समाज को आर्थिक तौर पर आगे ले जाने की थी।[20] मान्यवर साहब आगे बताते हैं कि भारत में सबसे पीड़ित व शोषित मजदूर यानी सफाई मजदूर है। उसे भारत में विविध नामों से पुकारा जाता है। अतिशुद्र घटक का यह मानव हेय दृष्टि से देखा जाता

है। मानव ही मानव का मल उठाए फिर भी उसे निम्न स्तर का समझा जाए। ऐसा भारत में ही हो सकता है। बीमारियों को अपने सिर पर ढोना ही इस समुदाय के पतन का कराण है। यह समस्या इंसान के स्वास्थ्य से संबधित है। फिर भी इस आदमी को सबसे कम मेहनताना मिलता है। उनकी बस्तियाँ आज भी शहर के बाहर व गंदे नालों के आसपास होती हैं। काशीराम जी की नजरें इस घटक पर भी थीं। उनकी योजना के अनुसार इस समुदाय के लोगों का वेतन व रोजी इतनी बढ़ाई जाए कि यह अपने को शूद्र न समझे। मेहनताना इतना दिया जाए कि उसका जीवन स्तर दूसरों के समान हो सके। यह जिंदगी में खुशहाल हो सके। इस समुदाय के बच्चे अच्छे स्कूलों में पढ़ सकें। ऊँचे ओहदों पर जा सकें। हजारों साल से गंदे काम करते-करते इन लोगों में जीवन का मोह व सोच काफी निराशावादी हो जाती है।[21] नए जमाने में यह इतना ऊपर उठाया जा सके कि इस काम को सर्वमान्य समाज हेय की दृष्टि से न देख सके। इसमें सुधार करते-करते एक दिन ऐसा आ जाए कि इस काम का स्तर व क्रियाकलाप सभी ओर से यांत्रिक हो, ताकि हाथों से काम करने की जरूरत ही न हो। भारत की आर्थिक नीति में अलूतेदारी प्रथा थी। भारत के देहाती जीवन में ऐसे भी लोग लंबे समय से रहते आए हैं जो काम तो पूरे गाँव का करते हैं परंतु उन्हें पैसा बहुत कम मिलता है। साल के अंत में जमीन की फसल जब निकलती थी तब यह आदमी खेत में जाकर जो भी किसान दे, वह लेकर आता था। जैसे नाई, कुम्हार, लोहार, जुलाहें आदि जातियाँ बलुतेदारी कहलाती थीं। यह लोग वर्षभर किसान व गाँव के आदमी का काम बिना कुछ लिए करते थे।[22] बारह महीने काम करने का परिश्रम खेती की फसल पकने पर मिलता था। वह भी बहुत कम रहता था। गाँव की रचना ऐसी थी कि सबका जीवन स्तर काफी खराब था। सभी एक-दूसरे पर आश्रित थे और हास्यपद बात यह भी थी सब गरीब थे। बाबा साहेब ने गाँव की व्यवस्था में काफी दोष देखे थे। इसलिए उन्होंने दलितों को शहरों में जाने के लिए कहा था। कम-से-कम शहरों में काम के दबले अच्छा पैसा मिल सके। आज शहरीकरण के जमाने में यह व्यवस्था बहुत धीरे-धीरे से बदल रही है। इस पर भी काशीराम जी की नजर गई थी वे इस व्यवस्था को बदलना चाहते थे जिससे इनका आर्थिक स्तर इतना ऊँचा उठ सके कि एक आरामदायक जीवन जी सकें। काशीराम के विचार में इसका एक ही हल था इन सब भटके लोगों को एक करना और सत्ता में पहुँचाना। मान्यवर का मानना था जब सरकार में इनका कोई है ही नहीं तो इनकी सुनेगा कौन? जो लोग रोटी कमाने में व्यस्त हों वे सत्ता के बारे में सोच भी नहीं सकते। लेकिन काशीराम जी ने वह कर दिखाया जिसके बारे में किसी ने सोचा भी नहीं होगा। काशीराम पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने दलितों बहुजनों को सत्ता का स्वाद चखाया कि वे भी अपनी सरकार बना सकते हैं और अपने भविष्य का निर्माण स्वयं कर सकते हैं।[23]

संदर्भ

1. विनोदकुमार, मान्यवर काशीराम के कुछ अंतिम संपादकीय, सम्यक प्रकाशन दिल्ली, 2015, पृ॰ 43
2. मा॰ काशीराम, चमचायुग, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली, 2010, पृ॰ 80
3. अशोकदास (संपा॰), करिश्माई काशीराम, दास पब्लिकेश दिल्ली, 2018, पृ॰ 46
4. डॉ॰ कालीचरण स्नेही (सं॰), मान्यवर काशीराम के चमत्कार, नवभारत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 2011, पृ॰ 72
5. इंद्रा, रजनीकांत, मान्यवर काशीराम साहब संगठन-सिद्धांत एवं सूत्र, बुक क्लीनिक पब्लिशिंग छत्तीसगढ़, 2021, पृ॰ 68
6. वही, पृ॰ 42

7. बद्रीनारायण, काशीराम बहुजनों के नायक, राजकमल पैपर बैक्स दिल्ली, 2022, पृ॰ 82
8. ए॰आर॰ अकेला (संपा॰) मा॰ काशीराम साहब के संपादकीय लेख, आनंद साहित्य सदन, अलीगढ़, पृ॰ 68
9. गौरव जितेंद्रकुमार, युग प्रवर्तक काशीराम की देन, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2019, पृ॰ 35
10. मनीकुमार, अंबेडकर मूवमेंट के सजग प्रहरी काशीराम, सम्यक प्रकाशन, 2020, पृ॰ 76
11. इंद्रा, रजनीकांत, मान्यवर काशीराम साहेब संगठन-सिद्धांत एवं सूत्र, पृ॰ 52
12. सतनाम सिंह, बहुजन नायक काशीराम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ॰ 47
13. वही, पृ॰ 48
14. सतनाम सिंह, काशीराम की नेक कमाई सोती कौम जगाई, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ॰ 77
15. रामचंद, हमारे मध्य मान्यवर काशीराम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ॰ 56
16. के॰एल॰ अहरवाल, मान्यवर काशीराम महाकाव्य, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ॰ 311
17. वही, पृ॰ 312
18. कुमार अनुज (सं॰), बहुजन नायक काशीराम के अविस्मरणीय भाषण, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली 2009, पृ॰ 109
19. वही, पृ॰ 76
20. वही, पृ॰ 162
21. मा॰ काशीराम, चमचाचुग, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, 2019, पृ॰ 73
22. कुमार मनी, अंबेडकर मूवमेंट के सजग प्रहरी काशीराम, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृ॰ 92
23. सतनाम सिंह, बहुजन नायक काशीराम, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ॰ 86

Pushpendra Kumar
1808 Bheem Nagar,
Garh Road, Hapur 245101
Mob.9286199494
pushpendrakumar10101986@gmail.com

दलित-विमर्श की अवधारणा

राजमणि सरोज, असि॰ प्रोफेसर, हिंदी विभाग
धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

दलित का आशय दलित शब्द का अर्थ है–मसला, रौंदा अथवा कुचला हुआ। दलित वह है जिसका दलन किया गया हो, शोषण किया गया हो, उत्पीड़न किया गया हो। इस तरह सदियों से प्रताड़ित, उपेक्षित, तिरस्कृत, शोषित व्यक्ति को दलित कहा जाता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, 'दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ठ, मर्दित, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।'[1]

कँवल भारती का मत है कि 'दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है, जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें, अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।'[2]

डॉ॰ श्योराज सिंह बेचैन दलित शब्द की परिभाषा देते हुए कहते हैं, 'दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।' मोहनदास नैमिशराय दलित शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि 'दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा वर्ग की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है।'[3]

दलित साहित्य का आशय–यह एक ऐसी साहित्यिक धारा है जिसमें मानवीय सरोकारों तथा संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति होती है सदियों से जिन्हें सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से शोषण का शिकार बनाया गया है, उनकी संवेदना, पीड़ा की अभिव्यक्ति दलित साहित्य में होती है।

दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कँवल भारती कहते हैं, 'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलित द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।'[4]

अर्जुन डांगले के अनुसार, 'सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरुद्ध आंदोलन खड़ा करके एक नए समाज का निर्माण करना, यह दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।'[5]

बाबू राव बागूल के शब्दों में, 'मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला, मनुष्य को महान

 ISSN 0975-735X

बनाने वाला, वंश, वर्ण और श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।'[6]

दलित साहित्य के संदर्भ में ओम प्रकाश वाल्मीकि का विचार है, 'दलित रचनाकार अपने परिवेश एवं समाज के गहरे सरोकारों से जुड़ा है। वह अपने निजी दुखों से ज्यादा समाज की पीड़ा को महत्त्व देता है। जब वह मैं शब्द का प्रयोग कर रहा होता है तो उसका अर्थ हम ही होता है, सामाजिक चेतना उसके लिए सर्वोपरि है, अपने समाज के दुख दर्द उसे ज्यादा पीड़ा देते हैं, उनके उन्मूलन के लिए उसने लेखन का रास्ता चुना है। अपनी अभिव्यक्ति में वह समाज की पीड़ा उकेर रहा है इसलिए वह ज्यादा प्रमाणिक है।'[7]

राजेंद्र यादव दलित शब्द को काफी व्यापक दायरे में देखते हैं। वे स्त्रियों को भी दलित मानते हैं। पिछड़ी जातियों को भी दलितों में शामिल करते हैं लेकिन डॉ॰ श्यौराज सिंह बेचैन उनके इस तर्क से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि इससे साहित्य में सही स्थिति सामने नहीं आती। दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है जिन्हें सामाजिक स्तर पर सम्मान नहीं मिला। सामाजिक स्तर पर जाति भेद के जो लोग शिकार हुए हैं, उनकी छटपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रही है।

दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं को केंद्र में रखकर किए गए साहित्यिक आंदोलन से है जिसकी शुरुआत दलित पैंथर से माना जाती है। दलित जातियों को सामाजिक व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर होने के कारण उसे न्याय, शिक्षा, समानता, स्वतंत्रता आदि मानवीय, मौलिक अधिकार से वंचित रखा गया और उन्हें हिंदूधर्म में अछूत स्वीकार किया गया। इन समस्याओं को दलित साहित्यकारों ने अपनी रचना के माध्यम से जनसाधारण के बीच इस आवाज को मुखरित करने का प्रयास किया है।

आज की स्थिति में दलित साहित्य एक मजबूत परिवर्तनकारी धारा के रूप में अपनी अलग पहचान स्थापित कर चुका है। कई दलित साहित्यकारों ने अन्य परिवर्तनकारी धारा के साथ मजबूत एकता बनाकर इसे एक आंदोलन के रूप में स्थापित करने की वकालत की है। इस समय दलित साहित्य बेहतर व्याख्या, विश्लेषण एवं आत्मलोचन की स्थिति में है। दलित साहित्य के अब तक के विकासक्रम को देखते हुए यह उम्मीद की जा सकती है कि जल्द ही यह संघर्ष के नए क्षेत्र में प्रवेश करेगा।

आत्मकथा 'जूठन' के माध्यम से दलित जीवन की सच्ची संवेदना की जो अभिव्यक्ति हुई है और इस कृति को जो प्रसिद्धि मिली है, उससे यह प्रश्न उभरा कि क्या दलित साहित्य पर लिखने के लिए दलित होना जरूरी है? कई आलोचकों का मत है कि दलितों पर लिखने के लिए दलित होना जरूरी नहीं है। उनका तर्क है कि घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है। साहित्य आलोचक नामवर सिंह का मानना है कि 'कोई लेखक दलित कुल में जन्म लेने से ही दलित चेतना का संवाहक नहीं हो जाता है। जन्मना दलित ही दलित चेतना का प्रतिनिधि होगा, दूसरा कोई नहीं, गलत है।'[8]

दलित चिंतक व लेखक, साहित्यकार इस तर्क से सहमत नहीं हैं। उनका तर्क है कि घोड़े की पीड़ा को समझे बगैर उसका वाह्य चित्रण उसकी भावनाओं का काल्पनिक रेखांकन भर ही होगा। थका-माँदा, भूखा-प्यासा, कोड़े की चोट से पीड़ित घोड़ा अपने मालिक के प्रति क्या भाव रखता है। इसे सिर्फ घोड़ा ही बता सकता है। इसी प्रकार दलितों ने हजारों वर्षों की सामजिक यातना में जो भोगा है, उनके द्वारा जो अनुभव किया गया है, उन्हे गैर दलित जान ही नहीं पाता है; इसीलिए

उसकी पीड़ा के साक्षात्कार की उनकी कल्पना अधूरी होती है। रवींद्र त्रिपाठी का विचार है कि जो लोग यह मानते हैं कि दलितों के बारे लिखने के लिए दलित होना कतई जरूरी नहीं है और हर लेखक अपनी सहज संवेदना शीलता की वजह से किसी दलित लेखक की तरह दलित साहित्य लिख सकता है, यह निष्कर्ष सही नहीं है।

आलोचक मैनेजर पांडेय का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि 'राख ही जानती है जलने का दर्द, दलित होने की पीड़ा सिर्फ दलित जानता है।'[9]

दलित लेखक एवं चिंतक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दलितों की पीड़ा, उनकी संवेदनात्मक अनुभूति को दलित ही समझ सकता है, वही उस पीड़ा का प्रामाणिक प्रवक्ता भी है। जिस दु:खद सच्चाई को वहन करते हुए दलित अपना जीवन गुजार देता है, उसे समझने के लिए सिर्फ सहानुभूति ही काफी नहीं है बल्कि उन स्थितियों में बदलाव के लिए छटपटाहट चाहिए जिसे सिर्फ दलित जानता है। दूर खड़ा व्यक्ति सिर्फ आँसू टपकाकर अपनी संवेदना प्रकट कर सकता है।

दलित चेतना का आशय—अपनी अस्मिता की पहचान करके, अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए, मानवीय हक के लिए जातिवादी व्यवस्था के खिलाफ, अपने प्रति हो रहे शोषण, अन्याय, अत्याचार के खिलाफ प्रतिरोध एवं संघर्ष की तीव्र भावना को दलित चेतना कहते हैं। इस प्रकार दलित जातियों के अंदर अपनी अस्मिता की खोज, अपने प्रति भेदभाव, जातीय अपमान आदि के प्रति उत्पन्न जागरूकता दलित चेतना है। यह दलित चेतना साहित्य के माध्यम से समाज के सामने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने में समर्थ हुई है। दलित चेतना के सरोकारों में दलित साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस चेतना के अभाव में दलित साहित्य केवल कल्पना की उड़ान ही समझा जा सकता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, 'दलित की व्यथा, दु:ख, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है या दलित पीड़ा का भावुक या अश्रुविगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना से विहीन हो, चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। वह है दलित चेतना। दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो उसकी चेतना यानि दलित चेतना।'[10]

बाबूराम बागूल की धारणा है कि 'स्वतंत्रता समता और बंधुता की मूल भावना दलित साहित्य की मूल गर्भ चेतना है। दलित साहित्य की अनुभूति परंपरागत साहित्य में बिल्कुल अलग है क्योंकि दलित चेतना मनुष्य की मुक्ति की बात करती है।'[11]

दलित चेतना के विषय पर विचार विमर्श करने से पूर्व भारतीय सामाजिक व्यवस्था को समझना नितांत आवश्यक है। इसको समझे बगैर दलित चेतना की तीव्रता का एहसास करना कठिन है। सदियों की प्रताड़ना, अत्याचार, शोषण, भेदभाव, उपेक्षा, अपमान से दबा हुआ दलित अपने अस्मिता, आत्मसम्मान की खोज के लिए सजग दिखाई पड़ता है। ऐतिहासिक परिदृश्य में उसे अपनी पहचान कहीं दिखाई नहीं पड़ती है। अतीत उसके लिए नर्क से भी भयावह है। दलित चेतना वास्तव में वर्षों से दलितों के प्रति हो रहे सामाजिक असमानता, भेदभाव आदि की भावना के खिलाफ प्रतिरोध एवं अधिकार के लिए संघर्ष है। यह अधिकांशत: शिक्षित वर्ग में मुखरित होती है जिन्होंने स्वयं इस पीड़ा को भोगा है और उसे महसूस किया है। अपने समाज के साथ हो रहे अत्याचार, अन्याय, शोषण के प्रतिरोध में दलित साहित्य आवाज बनकर खड़ा हुआ है। दलित

चिंतकों के द्वारा साहित्य के माध्यम से दलित जाति के लोगों में एक नई सोच पैदा हो रही है, जो सामाजिक बदलाव देखने के लिए प्रतिबद्ध है।

दलित का सीधा संबंध अंबेडकर दर्शन से है। यह दर्शन ही दलितों का प्रेरणास्रोत भी है। सामाजिक उत्पीड़न, सामंती सोच, वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न ऊँच-नीच, भेदभाव की भावना ने दलित जातियों को सदियों से मानसिक गुलामी की जंजीरों में जकड़कर रखा है। उनकी मुक्ति के तमाम रास्ते बंद थे। इस गुलामी से स्वतंत्र होने की छटपटाहट ही दलित चेतना को आधार प्रदान किया है।

दलित-विमर्श का आशय—विमर्श का अभिप्राय विचार अथवा विवेचन से है। किसी तथ्य या विषय पर विवेचना करना, उसकी वास्तविक स्थिति के बारे में चिंतन करना विमर्श कहलाता है। हिंदी में विमर्श शब्द अँग्रेजी के Discouse का हिंदी का पर्याय है। यह लेटिन शब्द Discurus से निर्मित है जिसका अर्थ, बहस, संवाद, वार्तालाप और विचारों का आदान-प्रदान है।

डॉ० रोहिणी अग्रवाल के अनुसार, 'विमर्श यानी वाद-विवाद संवाद यानी किसी भी समस्या को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पलटकर देखना, इसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना।'

दलितों की स्थिति, समस्याओं एवं उनके अधिकारों के संबंध में किया जाने वाला विचार विमर्श दलित-विमर्श कहा जाता है। समकालीन दलित साहित्यकारों की कृतियों, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि में दलित-विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। यही नहीं तमाम साहित्यिक सेमिनारों तथा गोष्ठियों में तीव्र गति से दलित-विमर्श पर चर्चा हो रही है। दलित-विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं, समस्याओं, संभावनाओं आदि को तलाशने वाली दृष्टि है।

दलित-विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में परंपरागत रूप में शोषित, उपेक्षित चले आ रहे दलित जातियों की मुक्ति के प्रयासों से है। दलित-विमर्श सामाजिक समस्याओं की जाँच पड़ताल करके दलित के संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति करता है। आज भी दलित का मूल प्रश्न उसे मनुष्य के रूप में स्वीकार किए जाने की बुनियादी संघर्ष है।

संदर्भ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2019, पृ० 13
2. वही, पृ० 14
3. वही, पृ० 14
4. वही, पृ० 14
5. वही, पृ० 24
6. वही, पृ० 16
7. वही, पृ० 38
8. वही, पृ० 44
9. वही, पृ० 29
10. वही, पृ० 30

Basna khas , Prayagraj -212405
Mob. 9140789384
singhaniya826@gmail.com

भारतीय पुरातत्त्व और संस्कृति का समन्वय

राजसिंह, शोधार्थी
प्रो॰ अजय विजय कौर, (शोध निर्देशिका)
चौ॰ चरणसिंह विश्वविद्यालय (कैंपस), मेरठ

पुरातत्त्व विज्ञान की महत्ता सर्वविदित है। कुछ समय पूर्व तक इतिहासकार केवल साहित्यिक स्रोतों का आश्रय लेकर ही किसी स्थान से संबंधित इतिहास लिखा करते थे पर अब पुरातत्त्व विज्ञान की सहायता से अधिकांश स्थानों का सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास बड़ी सुगमता से लिखा जा सकता है। पुरातत्त्व विभाग ने हजारों वर्ष पुराने खंडहरों में दबी हुई सभ्यता को खोदकर प्रकाश में लाने का जो सफल, सारगर्भित एवं भगीरथ प्रयास किया है वह केवल सराहनीय ही नहीं वरन् विश्व के इतिहास में अविस्मरणीय भी रहेगा। पुरातत्त्व ने हम लोगों के समक्ष इतिहास का एक जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है और यही इनकी अक्षय निधि है। वे सभ्यताएँ जो अभी तक पृथ्वी के विशाल गर्भ में दबी हुई विलाप कर रही थीं अब प्रकाश में आकर हम लोगों के जागरण का केंद्र बन गई हैं। यही पुरातत्त्व का अभिप्राय भी होता है कि किसी स्थान के अंदर दबी हुई सभ्यता करके प्रकाश में ला देना। उत्खनन का कार्य होता है कि किसी भी स्थान का विधिवत परीक्षण और उत्खनन करके वहाँ पर उपलब्ध हुए अवशेषों के आधार पर सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास का निर्माण कर देना। विज्ञान का साहचर्य भी इस विषय में एक वरदान के रूप में सिद्ध हुआ है। यदि इस पुरातत्व विज्ञान का प्रादुर्भाव न होता तो आज भी हमारे देश का इतिहास अंधकार रहता तथा आज हम जिस भारतीय संस्कृति पर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं उसका प्रादुर्भाव शायद ही हुआ होता।

पुनर्जागृति काल में मनुष्य की आत्मा ने रूढ़िवादिता को त्यागकर आधुनिक विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया। उसकी प्राचीन चेतना फिर से वैज्ञानिक विचारधारा की ओर ले गई। प्राचीन वस्तुओं की खोज यूनान तथा रोम से प्रारंभ हुई 17वीं और 18वीं शताब्दी का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाने लगा। टामस ब्राउन (1605-82) जो विज्ञान का पिता कहा गया उसने सर्वप्रथम मृतक स्थानों से प्राप्त खोपड़ियों का अध्ययन किया। आधुनिक विचाराधारा को मानने वाला था। उसकी धारणा पाषाण, उत्तर पाषाण या लौह युग की तरह न थी। उसने स्वयं लिखा है जो कोई व्यक्ति अतीत के विषय में सोच सकता है। वह धार्मिक धारणा को ठुकराने लगता है, उसके अनुसार ई॰पू॰ 4000 के पहले के मनुष्य ही न था। 19वीं शताब्दी में लोग मिस्त्र के पिरामिड को देखने जाते थे। वे लोग उस समय की कथाओं में विश्वास मान लेते थे लेकिन सर्वप्रथम रेम रोज द्वितीय ने ई॰ पू॰ (1300-1234) में इस ओर ध्यान दिया। इसकी पुष्टि पीट्री द्वारा 1898 में मिस्र में उत्खनन से प्राप्त संग्रह से होती है। वेविलिन में मेवोडियन (ई॰पू॰ 555-538) का पतन मंदिरों की मूर्तियों को वहाँ पर एकत्रित करने और उनकी कला की दृष्टि से निखरने के कारण हुआ। इतिहास के पिता हिरोडोटस, डायडोरस, स्ट्रोवो प्लिनी नामक इतिहासकार पुरातत्व की संग्रह की हुई चीजों का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए तत्पर हुए। लेकिन उस समय वैज्ञानिक जिज्ञासा के लिए यूनानी

 ISSN 0975-735X

प्रसिद्ध थे। उसी समय प्रसिद्ध दार्शनिक जेनोकोन ने सिसली की पहाड़ियों से पत्थर पर अंकित समुद्री घोघें के अवशेष प्राप्त किए। जिससे यूनानियों की रुचि को बढ़ावा मिला। हिरोडोटस, प्लिनी तथा अन्य प्राचीन इतिहासकारों के ग्रंथों का यूनानियों ने आधुनिक ढंग से अध्ययन प्रारंभ किया पर यह आधुनिक विचार इंजील (वाइविल) की विचारधारा से अलग न हो सके। लोगों को इसकी सत्यता और इसमें उल्लिखित प्राचीन मनुष्य से संबंधित कई बातों को मानना पड़ा।[1]

अब पुरातत्व केवल प्राचीन कला और उसके अध्ययन तक ही सीमित नहीं रहा। आधुनिककाल में प्राचीन स्थलों का सर्वेक्षण वैज्ञानिक ढंग और नियमित रूप से होने लगा है। परिणामस्वरूप उचित निरीक्षण के साथ उत्खनन और प्राप्त वस्तुओं के आधार पर इतिहास लिखा जाता है। स्वतंत्रता से पुरातत्त्वीय विचाराधारा का प्रवाह 18वीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ। लोगों की रुचि प्राचीन कला और उससे संबंधित उन सभी पदार्थों से थी जिसका प्रादुर्भाव यूनान और रोम से हुआ। लोगों की रुचि प्राचीनकाल और उससे संबंधित उन सभी पदार्थों से थी जिसका प्रादुर्भाव यूनान और रोम से हुआ था। वहाँ से वह यूरोप के अन्य देशों में आई। इग्लैंड में भी प्राचीनकला से संबंधित मूर्तियों का पुरातात्त्विक अध्ययन एवं प्राचीन स्थलों का उत्खनन प्रारंभ हुआ। कनिंगटन, कोल्ट, होर तथा आब्रे पुरातत्त्व के अग्र व्यक्ति माने जाते हैं। यह पुरातात्त्विक अध्ययन लोगों के रुचि को भूगर्भ शास्त्र के अध्ययन की तरफ उन्मुक्त किया। इसके साथ ही साथ आदि मनुष्य के विषय में खोज जारी हुई। 19वीं शताब्दी के मध्य युग में पुरातत्त्व के क्षेत्र में इवेन्स, मरिएट, मासपेरो, श्लीमान, पिट्टरिवर्स और पीट्री के नाम प्रमुख हैं। इस शताब्दी के अंत तक पाश्चात्य जगत के अतिरिक्त मध्यपूर्व, भारत तथा सुदूर पूर्व के प्राचीन स्थानों की खोज हुई और बहुत से स्थानों का उत्खनन भी किया गया।[2]

पिछले कुछ दशकों में पुरातत्त्व एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में विकसित हुआ है। पुरातत्त्व शब्द वास्तव में अँग्रेजी के आर्कियोलॉजी का समानार्थी है। अँग्रेजी का आर्कियोलॉजी यूनानी भाषा के आर्कयास+लोगास से निर्मित है। जिसका शाब्दिक अर्थ पुरातन ज्ञान है। समय के साथ-साथ इसकी परिकल्पना एक विषय विस्तार में परिवर्तन होता गया। पुरातत्त्व को अब इतिहास के पूर्ण निर्माण का वैज्ञानिक अध्ययन कहकर परिभाषित करते हैं। यह मानव संस्कृति और इतिहास को एक नवीन आयाम प्रदान करता है। उसका एकमात्र आधार पुरातत्त्व है।

व्यापक अर्थों में इतिहास का संबंध मानव के उद्‌भव एवं विकास से लेकर उन सभी विषयों एवं वस्तुओं से है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मानव से संबंधित है इतिहास के अंतर्गत हम मानव के विकास का संपूर्ण अध्ययन करते हैं। इस दृष्टि से इतिहास अथवा ऐतिहासिक काल का प्रारंभ उस समय से हो जाता है। जब से मानव की उत्पत्ति की संभावना का विकास होता है किंतु सुविधा की दृष्टि से मानव इतिहास को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रागैतिहासिक काल, आधऐतिहासिक काल तथा ऐतिहासिक काल के ज्ञान का मुख्य आधार पुरातत्त्व को माना गया है पुरातत्त्व का मूलाधार अनेक प्रस्तर उपकरण शवाधान शैल चित्र आदि को माना गया है। इस काल के ज्ञान के लिए लिखित साक्ष्यों को छोड़कर उन सभी स्रोत को शामिल किया जाता है जिनके माध्यम से इतिहास के विषय में हमें उचित जानकारी प्राप्त होती है।[3] मानव जीवन विकास के इतिहास में ऐतिहासिक काल अतीत का निकटतम सोपान है। इस प्रकार अगर देखें तो मानव के संपूर्ण उद्‌भव के काल का कम प्रतिशत ही इतिहास का ज्ञान लिखित प्रमाण से होता है तथा शेष के लिए हम पूर्णत: पुरातत्त्व पर ही आश्रित हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन इतिहास मध्यकालीन इतिहास तथा कभी-कभी आधुनिक इतिहास की अनेक ऐसी समस्याओं का निदान पुरातत्त्व के द्वारा

होता है। जिसके लिए लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है अथवा अपर्याप्त हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास का सम्यक् ज्ञान पुरातात्विक साक्ष्यों के अभाव में असंभव है। हड़प्पा संस्कृति के संपूर्ण ज्ञान का आधार पुरातात्विक साक्ष्य है।[4]

मानव इतिहास का अधिकांश भाग पुरातत्त्व एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर ही आधारित है। मानव का प्रारंभिक इतिहास पुरातत्त्व के बिना गति हीन निष्प्रभाव है। पुरातत्त्व इतिहास को जीवंत बनाता है। तथा अतीत को समग्र रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है वस्तुपरक होता है तथा इसके सभी निष्कर्ष पुरा मंदसौर तथा संबंधित वस्तुओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित होते हैं। निर्जीव सी दिखने वाली वस्तुएँ यथा–प्रस्तर उपकरण, मिट्टी के ठीकरे, पशु–पक्षियों की हड्डियाँ, शवाधान तथा उनसे संबंधित वस्तुएँ आदि पुरातत्त्व के हाथों में सजीव हो जाते हैं क्योंकि इन भौतिक अवशेषों को वह वस्तु के रूप में नहीं देखता बल्कि उनके माध्यम से वह क्रियाशील मानव को अनेक संपूर्ण परिवेश में सजीव देखता है। खंडहर से दिखने वाले निर्जन स्थल, मात्र नींवो में सिमटे भवन एवं स्पंदित होते हैं वे अतीत में न रहकर वर्तमान में साकार होने लगते हैं इस संबंध में व्हीलर महोदय की यह उक्ति कि 'उत्खनन कर्ता मात्र वस्तुओं को नहीं खोदता अपितु वह लोगों को खोदता है'[5] सार्थक प्रतीत होती है।

पुरातत्त्व एक बहुआयामी विषय है तथा अपने उद्देश्य प्राप्ति मानव इतिहास का भौतिक साक्ष्यों के आधार पर संरचना करने के लिए इसे विविध सामाजिक विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान एवं मूल विज्ञान से सहयोग लेना पड़ता है। प्राय: विद्वानों में यह विवाद का विषय है कि पुरातत्त्व को विज्ञान वर्ग में रखा जाए अथवा कला वर्ग में कुछ विद्वानों ने इसे विज्ञान वर्ग में तो कुछ ने इसे कला वर्ग में रखा किंतु अधिकांश विद्वानों ने इसे कला वर्ग अथवा सामाजिक विज्ञान वर्ग में रखा। जहाँ तक पुरातात्त्विक प्रणालियों का प्रश्न है वे प्राय: पूर्णता वैज्ञानिक पद्धतियों पर आश्रित हैं यहाँ पर पुन: यह बता देना अनुचित नहीं होगा कि विद्वानों का संकलन महत्त्वपूर्ण तत्त्व का उद्देश्य नहीं है। इसका उद्देश्य मानव के इतिहास एवं संस्कृति की रचना करना है तथा इस दृष्टि से यह सामाजिक विज्ञानों के अधिक निकट है इसे केवल मानविकी अथवा विज्ञान विषय में रखना उचित प्रतीत नहीं होता।[6]

किसी संस्कृति के विकास को हम सामान्यत: उसके कृषि विकसित उद्योग धंधे शिल्प कला उस देश की सामूहिक स्थलीय व्यापारिक यात्रा उसके साहित्यिक कृतियाँ सैन्य या रक्षात्मक प्रणाली भव्य कलापूर्ण स्थापत्य की प्रगति से मापन करते हैं। इससे हमें मानव समाज के शिक्षित होने की अवस्था का ज्ञान होता है। सभ्यता के निर्माण और अस्तित्व के दौर में मनुष्य को सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से प्राकृतिक आपदाएँ झेलनी पड़ती हैं। बहुधा ऐसे अवसर आते हैं जब मानव कृत्य समस्याओं और संकटों को पार करना पड़ता है। सुख–दुख सहन करने, कभी निर्माण कभी ध्वंस, कभी विजय तो कभी पराजय स्वीकार करने को मजबूर होना पड़ता है तो कभी शांति घोष सुनने को मिलते हैं। तब जाकर सैकड़ों हजारों सालों में सभ्यता एवं संस्कृतियों का निर्माण होता है, प्रेरक इतिहास बनता है। समाज ऐसे ही नहीं बन पाते, संस्कृतियाँ ऐसे ही नहीं बन पातीं, सभ्यताओं का निर्माण ऐसे ही नहीं होता, लंबे समय तक जातियों को संघर्ष कर प्रतिद्वंद्विताओं का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक संघर्ष, राजनीतिक अंतर्द्वंद्व का सामना कर जातीय समन्वय, सौहार्द, शांति, समझौते होते हैं। आर्थिक उत्कर्ष, व्यापारिक लेन–देन की वृद्धि होती है संस्कृतियों का आदान–प्रदान चलता है, कलाएँ स्थापत्य अपने रंग बिखेरते हैं। तब सभ्यता एवं संस्कृति का उदय होता है। मानव

समाज ने प्रागैतिहासिक युग में अपनी जीवन यात्रा शुरू की थीं प्रारंभ में मानव नग्न अवस्था और बर्बरता की स्थिति में यायावरी जीवन व्यतीत करता था धीरे-धीरे मनुष्य ने अर्धसत्य समाज फिर सभ्य समाज में पदार्पण किया।[7]

इस प्रकार आदिम सभ्यता के बर्बर युग से उन्नत सभ्यता तक पहुँचने में हजारों साल लगे विश्व के सर्वाधिक प्राचीन निवासी पुरा पाषाण युगीन सभ्यता के लोग थे। इसके पश्चात मध्य पाषाण संस्कृति का विकास हुआ। इस सभ्यता के बाद नव पाषाण संस्कृति लोहा युग में आदिमानव ने शिकार करना सीखा। पत्थरों के औजार बनाए, शिकार करने से लेकर कृषि कर्म और पशुपालन तक काफी लंबा समय लगा। मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक शक्तियों का विकास संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति में जो संस्कृति जितना अधिक योगदान करेगी वह संस्कृति उतनी ही उत्कृष्ट कहलाएगी मनुष्य यह उत्कृष्ट बुद्धि शिक्षा एवं संस्कारों के सहयोग से प्राप्त करता है।[8]

अत: संस्कृति का संबंध मानव बुद्धि स्वभाव एवं उनकी मनोवृत्ति से होता है यह विशेषताएँ या तो स्वत: महान होती हैं अथवा महत्ता को जन्म देती हैं। अत: इसे साध्य एवं साधन दोनों के रूप में जाना जा सकता है जब संस्कृति व्यक्ति तक सीमित होती है तो व्यक्तित्व का निर्माण करती है। किंतु यही जब जन-जन तक पहुँचती है तो वह राष्ट्रीय चेतना को विकसित करती है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का विस्तार जितना अधिक था आत्मसात करने की क्षमता उतनी ही प्रबल थी। यह संस्कृति समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करती चली गई। भारतीय सहिष्णुता सद्भावना एवं सदा सहायता भारतीय सामाजिक आदर्श का आधार था। सद्भावना एवं सहिष्णुता प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श था। ऐसी धारणा आम थी मन वचन कर्म से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा सभी के साथ यथार्थ और प्रिय संभाषण करना। सद्भावना युक्त व्यवहार भारतीय मानस की संस्कृति में महत्त्वपूर्ण है।[9]

भारतीय सामाजिक संस्थाओं का उदय और विकास ऐसे समय में हुआ था जब विश्व के अनेक देशों की दृष्टि से उन्नत, व्यवस्थित और सुगठित सामाजिक संस्थाएँ नहीं थीं। भारतीय सामाजिक संस्थाएँ जो अत्यंत प्राचीनकाल से थीं, जो आज भी हैं और उनके आधार तत्त्व में किसी प्रकार का मूलभूत परिवर्तन नहीं आया है उनकी लक्षण पूर्णता बनी हुई है। यद्यपि इस बीच समय-समय पर अनेकानेक विदेशियों हर्षित यूनानी शक कुसुमपुर का आदि के आगमन हुए जिन्होंने देश को आक्रांत और अशांत किया तथा अपना शासन स्थापित किया इससे हिंदू सामाजिक संस्थाओं को गहरे आघात पहुँचे। परंतु इन संस्थाओं की जड़ें इतनी गहरी थीं कि उनको हिला पाना असंभव हो गया था। वस्तुत: भारतीय संस्कृति की यह मूलभूत विशेषता थी कि उसने अपने को अक्षम और अटूट बनाए रखा।[10]

इस प्रकार देखा जाए तो, जो भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक मानी जाती है उसकी सार्थकता को सिद्ध करने में पुरातत्त्व विज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। परिणामस्वरूप हमारी संस्कृति विभिन्न जीवन पद्धतियों के मिले-जुले रूप में विकसित हुई यह न केवल व्यापक एवं विविधता से परिपूर्ण है अपितु विशिष्ट भी है। जो शाश्वत मूल्यों में अनुप्रमाणित होती है भारतीय सामाजिक संस्थाओं में सद्भावना और सहिष्णुता की भावना के पीछे भारतीय संस्कृति का अहम योगदान रहा है जिसके कारण वह वर्तमान में भी निरंतर बनी हुई है। यही विशिष्टता प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति की प्रधान प्रेरणा रही है। भारतीय समाज और संस्कृति

की यह मुख्य विशेषता रही है कि वह दूसरी समकक्ष संस्कृतियों के साथ समन्वय स्थापित करती रही है। भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने में पुरातत्त्व ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन किया है। उसे कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह पुरातत्त्व का ही प्रतिफल है कि आज संपूर्ण विश्व सनातन संस्कृति के विषय में नित नए तथ्यों से रूबरू होता रहता है।

संदर्भ

1. रामप्रकाश ओझा, पुरातत्व विज्ञान, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, 1978
2. वही
3. मानिकलाल गुप्त, प्रागैतिहासिक काल से गुप्तकाल तक, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली
4. प्रो॰ शारदा आर॰ पटेल, भारतीय कला एवं संस्कृति, रावत प्रकाशन नई दिल्ली 110002, ISBN : 978-93-86687-524
5. अनिलचंद्रा, प्राचीन भारत की झाँकियाँ, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली 110006
6. डॉ॰ दीपककुमार, भारतीय संस्कृति, चौखंबा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी। ISBN: 978-93-80326-68-9
7. कन्हैयालाल चंचरीक, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली 110002
8. प्रो॰ ओमप्रकाश पांडेय, वैदिक इतिहास एवं पुरातत्त्व की अद्यतन पद्धति, नाग पब्लिशर दिल्ली 110007
9. राज आहूजा, (1999) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
10. आर॰एन॰ त्रिपाठी, भारतीय कृषि का इतिहास, शिवाय प्रकाशन, नई दिल्ली

Krishna Nagar, New Mandi Garh road,
Hapur 245101
rajsingh.kgabv@gmail.com
9457309033

संविधान संशोधन की प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन (भारत, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, ब्रिटेन के विशेष संदर्भ में)

डॉ॰ राजेश कुमार साहू, सहा॰ प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान
शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी (म॰प्र॰)
डॉ॰ राम निवास पटेल, सहा॰ प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान
शा॰ शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज (रीवा) म॰प्र॰

लार्ड मैकाले के अनुसार यदि किसी आदर्श संविधान में संशोधन प्रक्रिया का अभाव है तो वह संविधान जड़ बन जाएगा। उस राष्ट्र की जनता निरंतर आगे बढ़ती जाएगी परंतु संविधान पिछड़ता जाएगा और यदि संविधान में सरलता से परिवर्तन नहीं किया जा सकता तो क्रांति ही प्रगति का अंतिम उपाय होगा। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि बिना गंभीर विचार-विमर्श और गहन जाँच के अथवा मात्र भावुकता और सामाजिक तरंगों में बहकर संवैधानिक मूल्य छतिग्रस्त होंगे बल्कि उनके भावी दुष्परिणामों से भी इनकार नहीं किया जा सकता। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की दो शताब्दियों की उपलब्धियों का प्रतिफल भारतीय संविधान है, इसके कुछ मूल्य हैं, आदर्श हैं और प्राथमिकताएँ भी। इसमें गणतंत्र वाद, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और राष्ट्रीयता सर्वप्रथम है यद्यपि कुछ विद्वानों की मान्यता है कि संविधान कोई अविकल दस्तावेज नहीं है और न ही यह आने वाली पीढ़ियों को परिवर्तन के अधिकार से वंचित किया जा सके। यह सच है कि हर पीढ़ी को अपनी भावना और सामायिक जरूरतों के अनुसार संशोधन का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

कठोर संविधान पर आधारित संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान संशोधन

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान कठोर है अर्थात् अमेरिकी काँग्रेस के द्वारा जिस प्रक्रिया के आधार पर सामान्य कानूनों का निर्माण किया जाता है उसी प्रक्रिया के आधार पर संवैधानिक कानूनों का निर्माण अर्थात् संविधान में संशोधन का कार्य नहीं किया जा सकता। संवैधानिक संशोधन के लिए साधारण कानूनों के निर्माण से भिन्न प्रक्रिया को अपनाया जाना आवश्यक है। संघात्मक शासन व्यवस्था को स्थापित किए जाने के कारण अमेरिका के लिए कठोर संविधान को अपनाना आवश्यक भी था। अमेरिकी संविधान न केवल पारिभाषिक दृष्टि से कठोर है वरन् व्यवहार में भी संविधान में परिवर्तन किया जाना बहुत कठिन है। इसी कारण लगभग 222 वर्षों के संवैधानिक इतिहास में संविधान में केवल 29 संशोधन ही हुए हैं और इनमें भी प्रथम 10 संशोधन तो एक साथ संविधान निर्माण के तुरंत बाद नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करने हेतु प्रस्तावित किए गए थे।

अमेरिकी संविधान के पाँचवें अनुच्छेद में संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। जिसमें यह निश्चित है कि 'काँग्रेस जब कभी दोनों सदनों के दो तिहाई सदस्य आवश्यक समझेंगे, इस संविधान में संशोधन का प्रस्ताव करेगी या काँग्रेस विभिन्न राज्यों के दो-तिहाई राज्यों के विधान मंडलों के आवेदन पर संशोधन के प्रस्ताव के लिए एक सम्मेलन बुलाएगी। जब ऐसे किसी

संशोधन को तीन चौथाई राज्यों के विधान मंडल या 3/4 राज्यों के सम्मेलन स्वीकार कर लेंगे तो यह संशोधन समस्त प्रयोजनों के लिए संविधान का एक भाग बन जाएगा। काँग्रेस संशोधन की स्वीकृत के लिए इन दोनों पद्धतियों में से किसी एक भी प्रस्ताव कर सकती है।' अमेरिका के संविधान के संशोधन की प्रक्रिया के निम्न दो भाग हैं, और उन दोनों की ही प्रक्रिया ऐसी है कि उसके द्वारा संशोधन सरलता से नहीं किए जा सकते हैं।

–संशोधन की प्रक्रिया का पहला भाग संशोधन की प्रस्तावना का है। संशोधन का प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए संविधान में दो विधियों की व्यवस्था है। संशोधन को प्रस्तावित करने की पहली विधि के अंतर्गत काँग्रेस को यह अधिकार है कि वह संशोधन का प्रस्ताव रख सके। संशोधन का प्रस्ताव काँग्रेस के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है, पर उसके पारित होने के लिए यह आवश्यक है कि प्रस्ताव दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से पारित हो। संशोधन प्रस्तावित करने की दूसरी विधि काँग्रेस द्वारा बुलाए हुए उस सम्मेलन द्वारा संशोधन को प्रस्तावित करने की है, जिसके लिए इकाई राज्यों की संख्या के कम से कम दो तिहाई राज्यों के विधान मंडलों के अनुरोध किया हो।

–संशोधन की प्रक्रिया का दूसरा भाग संशोधन के पुष्टिकरण का है। इस संबंध में संविधान की पाँचवी धारा के अनुसार व्यवस्था इस प्रकार है, 'संशोधन सब प्रकार से इस विधान का एक भाग बन जाएँगे, जब उनका पुष्टिकरण या तो विविध राज्यों के तीन चौथाई विधान मंडलों द्वारा या उसके द्वारा आहूत तीन चौथाई राज्यों के सम्मेलनों द्वारा कर दिया जाएगा।' इस प्रकार जैसा स्पष्ट है, संशोधन के पुष्टिकरण के लिए भी दो विधियों की व्यवस्था है। पहली विधि के अनुसार प्रस्तावित होने के बाद संशोधन सब राज्यों को उनके विधान मंडलों द्वारा पुष्टिकरण के लिए भेज दिया जाता है तथा जब तीन चौथाई राज्यों के विधान मंडलों द्वारा उसका पुष्टिकरण हो जाता है वह संविधान का अंग बन जाता है। दूसरी विधि के अनुसार संशोधन का पुष्टिकरण उन सम्मेलनों द्वारा भी हो सकता है जो विभिन्न राज्यों में इसके लिए बुलाए जाएँ तथा जब विविध राज्यों के तीन चौथाई सम्मेलनों द्वारा संशोधन का पुष्टिकरण हो जाता है, वह संविधान का अंग बन जाता है।

स्विजरलैंड में संविधान संशोधन–स्विट्जरलैंड का संविधान औपचारिक रूप से लिखित तथा अनम्य संविधानों की श्रेणी में गिना जाता है। प्रत्येक संघीय संविधान केंद्र और इकाई राज्यों के बीच में एक लिखित समझौता होता है जिसके द्वारा राज्य अपनी स्वाधीनता को त्याग कर स्वायत्त शासन के अधिकारों का उपभोग करते हैं। स्विट्जरलैंड में भी केंद्रीय सरकार और कैंटनों के बीच में शक्तियों और अधिकारों का विभाजन एक लिखित संविधान के आधार पर हुआ है। स्विट्जरलैंड के संविधान लिखित होने का दूसरा कारण यह है कि वहाँ इंग्लैंड तथा अमेरिका की तरह सामान्य कानून, अलिखित कानूनी परंपराओं या न्यायालय के निर्णयों का संवैधानिक महत्त्व नहीं है। यदि स्विट्जरलैंड संविधान में अमेरिकी संविधान की तरह नागरिकों का अधिकार पत्र नहीं है लेकिन कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकारों का उल्लेख लिखित संविधान में प्रसंग के अनुसार अनेक स्थलों पर कर दिया गया है।

अब तक स्विट्जरलैंड में 57 संशोधन हो चुके हैं और 1874 के संशोधन में तो पूर्ववर्ती संविधान का संपूर्ण कलेवर ही बदल दिया था। इस संशोधन द्वारा 40 अनुच्छेदों को संशोधित किया गया 14 अनुच्छेदों को निकाल दिया गया तथा 21 नए अनुच्छेद जोड़ दिए गए। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्विट्जरलैंड संविधान उतना कठोर नहीं जितना संशोधन-संबंधी अनुच्छेदों

 ISSN 0975-735X

के पढ़ने से प्रतीत होता है।

स्विट्जरलैंड के संविधान के तीसरे अध्याय में संशोधन प्रणाली का वर्णन है। 118 से लेकर 123 अनुच्छेदों तक संशोधन प्रक्रिया की व्याख्या की गई है। स्विट्जरलैंड संविधान में संशोधन दो प्रकार के होते हैं–(1) पूर्ण पुनर्विचार (2) आंशिक पुनर्विचार। पूर्ण संशोधन का आज तक केवल एक उदाहरण है। यह 1874 का संशोधन कहलाता है अन्य सभी संशोधन आंशिक है।

संविधान पर पूर्ण पुनर्विचार का प्रस्ताव कोई भी सदन रख सकता है। जब दोनों सदन सामान्य बहुमत से संशोधित संविधान का प्रारूप स्वीकार कर लेते हैं तो उसे स्वीस जनता के समक्ष लोक निर्णय के लिए भेज दिया जाता है। लोकनिर्णय में मतदान करने वाले नागरिकों और कैंटनो का साधारण बहुमत यदि इस प्रारूप का अनुमोदन करें, तो संशोधित संविधान स्वीकृत हो जाता है। कैंटनो का निर्णय अलग से नहीं होता। लोकनिर्णय के वोट गिनते समय देख लिया जाता है कि कम से कम 12.50 कैंटनो और अर्ध कैंटनो में संशोधन को जनता का बहुमत प्राप्त हुआ है अथवा नहीं। स्विट्जरलैंड में कुल मिलाकर 19 कैंटनो और 6 अर्ध कैंटन है। संशोधन के पारित होने के लिए कैंटनो के बहुमत के साथ साथ पूर्ण राष्ट्रीय मतदान का बहुमत भी मिलना चाहिए। अर्ध कैंटन के मत को आधा माना जाता है।

यदि संशोधन के प्रस्ताव को दूसरा सदन स्वीकार न करें तो स्विट्जरलैंड संविधान की धारा नंबर 120 के अनुसार पहले लोकनिर्णय इस प्रश्न पर होता है कि संशोधन किया जाए अथवा न किया जाए। यदि लोकनिर्णय का परिणाम संशोधन के विपक्ष में हो तो संशोधन नहीं किया जाता। यदि लोक निर्णय संशोधन की आवश्यकता के पक्ष में हो तो विधानमंडल का विघटन कर नया निर्वाचन कराया जाएगा। इस लोकनिर्णय में कैंटनों के मत लेने की आवश्यकता नहीं है। नया विधानमंडल संशोधन के प्रारूप को बनाकर लोक निर्णय के लिए प्रस्तुत करता है। जनता और कैंटनों के बहुमत के आधार पर वह स्वीकृत अथवा अस्वीकृत हो सकता है। अस्वीकृत होने के लिए केवल कैंटन अथवा जनता का अल्पमत मिलना पर्याप्त है।

पूर्ण संशोधन का प्रस्ताव 50000 नागरिकों द्वारा भी रखा जा सकता है। ऐसा होने पर संशोधन की आवश्यकता पर लोक निर्णय लिया जाता है। संशोधन के पक्ष में निर्णय होने पर विधान मंडलों का विघटन हो जाएगा। नए निर्वाचन के पश्चात विधानमंडल संशोधन का प्रारूप बनाएगा जो पुन: लोक निर्णय के आधार पर स्वीकृत अथवा अस्वीकृत होगा।

संशोधन के आरंभ का दूसरा प्रकार वह होता है, जिसके अंतर्गत संविधान के आंशिक संशोधन का प्रारंभ किया जा सकता है। वह कार्य दो विधियों से किया जा सकता है।

पहली विधि के अंतर्गत जो व्यवस्था है, उसके अनुसार स्विट्जरलैंड के 50000 मतदाता या तो आंशिक संशोधन कराने की इच्छा व्यक्त कर सकते हैं अथवा वे आवश्यक संशोधन का प्रारूप दे सकते हैं। पहले प्रकार के प्रारंभ को अनिर्मित आरंभ कहा जाता है और दूसरे प्रकार के आरंभ को निर्मित आरंभ कहा जाता है। आंशिक संशोधन का प्रस्ताव लोगों की ओर से यदि अनिर्मित रूप में आता है और संसद संशोधन-संबंधी जनता की माँग को मोटे रूप से स्वीकार कर लेती है, तो राज्यसभा संशोधन का प्रारूप बनाती है, पर यदि संसद लोगों की माँग को अस्वीकार कर देती है तो इस बात का निर्णय जनमत संग्रह द्वारा किया जाता है कि प्रस्तावित आंशिक संशोधन किया जाना चाहिए या नहीं।

आंशिक संशोधन की माँग जब संशोधन के प्रारूप के साथ अर्थात् निर्मित आरंभ के रूप

में प्रारंभ की जाती है, तो संघीय संसद के लिए यह आवश्यक होता है कि वह उसे जनता की स्वीकृत के लिए रखे। चाहे स्वयं वह उसे स्वीकार करें या न करें। यदि संशोधन के प्रारूप के साथ प्रस्तुत की हुई माँग को संघीय संसद स्वीकार नहीं करे तो उसे अधिकार है कि वह उस प्रारूप को जनता के समक्ष जनमत संग्रह करने के लिए रखते हुए यह सिफारिश कर सके कि जनता उसे स्वीकार करें या अपनी ओर से उसके विरुद्ध ऐसा प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके, जिसे वह जनता अस्वीकार करने के लिए कह सके। ऐसी दशा में जनता के प्रस्ताव के साथ ही साथ संसद का अपना प्रस्ताव भी जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आंशिक संशोधन का प्रस्ताव संघीय संसद के एक सदन अथवा उसके दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग या संघीय परिषद द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है यदि ऐसा प्रस्ताव सदन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और दूसरा सदन उसे स्वीकार नहीं करता तो प्रस्ताव पर जनमत संग्रह किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संविधान में संशोधन प्रस्तावित करने के विषय में स्विट्जरलैंड में जनता संघीय परिषद तथा संघीय संसद तीनों को अधिकार दिया गया है।

संशोधन का पुष्टिकरण—स्विट्जरलैंड के संविधान के संशोधन की प्रक्रिया का दूसरा स्तर पुष्टिकरण का स्तर होता है। प्रस्ताव के बाद संशोधनों के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें जनमत संग्रह से जनता द्वारा स्वीकार किया जाए। संशोधन तभी पारित समझा जाता है जब बहुसंख्यक कैंटनो द्वारा तथा उनकी जनता के बहुमत द्वारा उसे स्वीकार कर लिया हो। इस संबंध में यह ध्यान देने की बात है कि बहुमत का हिसाब लगाने में पूरे कैंटन का मत एक और आधे कैंटन का मत आधा गिना जाता है। संशोधन को पारित समझे जाने के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम 11.50 कैंटनों द्वारा स्वीकृत किया जाए और उनकी उस जनता के बहुमत द्वारा स्वीकृत की जाए जो वहाँ इस संबंध में संविधान सभा के रूप में कार्य करती है।

ग्रेट ब्रिटेन में संविधान संशोधन प्रक्रिया व विधि निर्माण प्रणाली—ब्रिटेन में साधारण कानूनों के निर्माण और संशोधन प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं है अत: संशोधन प्रक्रिया को समझने के लिए वहाँ की विधि निर्माण प्रणाली एवं विधेयकों के प्रकार को समझना आवश्यक है।

सार्वजनिक विधेयक—सार्वजनिक विधेयक का संबंध सर्वसाधारण से होता है, अर्थात् यह समाज के सभी लोगों पर लागू होते हैं जैसे शिक्षा पद्धति या करों में कोई संशोधन या परिवर्तन करने वाला विधेयक।

असार्वजनिक विधेयक—वह विधेयक होता है जो किसी विशेष स्थान संस्था या व्यक्ति से संबंध रखता है। अगर कोई विधेयक किसी को जमीन खरीदने का या व्यापार करने का अधिकार देता है या किसी नगरपालिका के अधिकारों को बढ़ाता है तो उसे समुदाय विशेष व स्थान विशेष से संबंधित होने के कारण असार्वजनिक विधेयक कहा जाता है।

सार्वजनिक विधेयक दो प्रकार के होते हैं—

(क) **सरकारी विधेयक**—वह होते हैं जिन्हें मंत्रिमंडल के सदस्य सरकार के नाम से प्रस्तुत करते हैं अधिकांश विधेयक सरकारी ही होते हैं।

(ख) **गैरसरकारी विधेयक**—वह होते हैं जो मंत्रियों के अतिरिक्त संसद के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं लेकिन गैर सरकारी विधेयक भी सार्वजनिक ही होते हैं व्यक्तिगत नहीं।

सरकारी विधायकों को पुन: दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) **धन विधेयक**–जिन विधेयकों का संबंध धन से होता है अर्थात् आय-व्यय कर आदि धन विधेयक सरकारी तौर पर ही प्रस्तुत किए जाते हैं गैरसरकारी सदस्यों उन्हें प्रस्तुत नहीं कर सकते।

(ब) **साधारण विधेयक**–वित्तीय विधायकों को छोड़कर अन्य विधेयक साधारण विधेयक कहलाते हैं इस प्रकार के विधेयक जब मंत्रियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं तो सरकारी साधारण विधेयक कहलाते हैं अन्य किसी संसद सदस्य द्वारा रखे जाने पर उसे गैर-सरकारी विधेयक कहते हैं।

सार्वजनिक विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया–सार्वजनिक विधेयक दोनों सदनों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं चाहे उसे किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जाए पर यह दोनों सदनों द्वारा स्वीकार किया जाता है प्रत्येक विधेयक को पास होने के लिए निम्न अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है।

प्रथम वाचन–पहली स्थित पुर: स्थापना तथा प्रथम वाचन है। इसमें प्रस्तावक को दो मार्गों में से किसी एक मार्ग को अपनाना होता है। वह पुर: स्थापना की सूचना दे सकता है जो उस दिन के कार्यक्रम में छप जाती है और तब वह उसे सदन में प्रस्तुत करता है तब सदन का सचिव जोर से उसका शीर्षक पड़ता है।

दूसरा तरीका यह है कि प्रस्तावक पुन: स्थापना की आज्ञा मानता है। प्रस्तावक तथा विरोधियों में से एक-एक सदस्य संक्षिप्त भाषण देता है और अध्यक्ष प्रस्ताव पर मत लेता है। साधारणतया प्रथम विधि का पालन किया जाता है। जब कोई विधेयक इस प्रकार से पुर: स्थापित हो जाता है। तब विधेयक का प्रथम वाचन होता है। उस समय कोई वाद-विवाद नहीं किया जाता और द्वितीय पाठन की तिथि निश्चित कर दी जाती है और विधेयक को छापने की आज्ञा दे दी जाती है।

द्वितीय वाचन–किसी भी विधेयक के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था द्वितीय वाचन की होती है। एरस्काइन का कथन है कि 'द्वितीय वाचन विधेयक के जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थित होती है क्योंकि इस अवस्था पर इसके आधारभूत सिद्धांतों की परीक्षा होती है और सदन अपनी स्वीकृति तथा अस्वीकृत के लिए अपना मत प्रकट करता है।' तब निश्चित तिथि पर विधेयक प्रस्तावित किया जाता है तो उसे उद्देश्यों, प्रयोजनों तथा सिद्धांतों पर पर्याप्त रूप से वाद-विवाद किया जाता है। विधेयक के समर्थक उसके समर्थन में भाषण देते हैं तथा विरोधी विरोध में। इस समय यह विचार किया जाता है कि विधेयक की आवश्यकता है या नहीं तथा उसके उद्देश्य प्रयोजन तथा सिद्धांत उचित है अथवा नहीं। इस वाद विवाद के पश्चात विधेयक पर मत लिए जाते हैं। यदि बहुमत द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है तो विधेयक इसी अवस्था में समाप्त हो जाता है और बहुमत याद उसका समर्थन कर देता है तो उसे संबंधित समिति के पास भेज दिया जाता है। गैरसरकारी विधेयक इस अवस्था पर साधारणतया समाप्त हो जाते हैं किंतु सार्वजनिक विधेयक सदन से पारित हो जाते हैं। क्योंकि उनको मंत्रिमंडल के द्वारा प्रस्तावित किया जाता है और उनका लोकसभा में बहुमत होता है। यह विधेयक लोकसभा में स्वीकृत नहीं हो पाता तो यह समझा जाता है कि लोकसभा का विश्वास मंत्रिमंडल खो चुका है अत: उसको अपना त्यागपत्र देना होता है कई बार ऐसा भी होता है कि जब मंत्रिमंडल यह समझता है कि उसके विधेयक का लोकसभा में बहुत अधिक विरोध हो रहा है तो वह उसको वापस ले लेता है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से स्मरणीय है कि द्वितीय वाचन के अवसर पर विधेयक की समस्त धाराओं पर विस्तृत रूप से विचार नहीं किया जाता है और न उससे संबंधित संशोधन ही

प्रस्तावित किए जाते हैं इस समय उसके प्रयोजन उद्देश्य तथा सिद्धांतों पर ही वाद-विवाद किया जाता है किंतु उसकी धाराओं पर नहीं।

सार्वजनिक विधायकों में यदि विरोधी दल कोई रोड़ा अटकाना चाहे तो वह प्रस्ताव कर सकता है कि इस विधेयक का द्वितीय वाचन 6 माह पश्चात हो या ऐसी तारीख निश्चित करता है कि जिस दिन संसद का अधिवेशन न हो। ऐसी दशा में विधेयक अनिश्चितकाल के लिए टल सकता है। यह कार्य वाद विवाद होने के पहले हो सकता है।

समिति अवस्था–द्वितीय वाचन के पश्चात विधेयक समिति में जाता है। यदि वह धन विधेयक है तो उसे संपूर्ण सदन की समिति में भेजा जाता है अन्यथा स्थाई समितियों में से किसी एक संबंधित समिति के पास भेज दिया जाता है। कभी-कभी उसे प्रवर समिति में भेज दिया जाता है और वहाँ से लौटने पर या तो संपूर्ण सदन की समिति या किसी स्थाई समिति में भेज दिया जाता है। समिति में विधेयक पर विस्तार पूर्वक विचार होता है। प्रत्येक धारा पर वाद विवाद होता है और उसे स्वीकार किया जाता है या संशोधित किया जाता है। उसे रद्द भी किया जा सकता है। समिति अवस्था में विधेयक की कानूनी संबंधी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि विधेयक के आधारभूत सिद्धांत पहले से ही स्वीकार किए जा चुके होते हैं। इस संबंध में विरोधी दल के सदस्य विधेयक में बहुत कुछ परिवर्तन करने का प्रयत्न करते हैं और उसके प्रभाव को कम करना चाहते हैं।

प्रतिवेदन अवस्था–विधेयक पर समिति अपनी रिपोर्ट सदन को प्रस्तुत करती है। इस अवस्था पर समिति द्वारा किए गए संशोधनों पर विचार होता है और नए संशोधन भी रखे जाते हैं। विधेयक की प्रत्येक धारा पर विचार किया जाता है। पूरे विधेयक पर विचार होने पर विधेयक को तृतीय वाचन के लिए सदन में रखा जाता है।

तृतीय वाचन–यह विधेयक की अंतिम अवस्था है इस समय केवल शाब्दिक संशोधन किए जा सकते हैं और सिद्धांत पर विवेचना हो सकती है। इसके पश्चात मत लिए जाते हैं और सदन उसे स्वीकार या अश्वीकार कर सकता है। प्राय: इस समय कोई भी विधेयक अस्वीकृत नहीं होता है। इस लंबी यात्रा के बाद विधेयक पास हो जाने पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर होते हैं और उसे दूसरे सदन में भेज दिया जाता है।

दूसरे सदन की प्रक्रिया–एक सदन द्वारा पारित होने पर विधेयक दूसरे सदन में भेजा जाता है अधिकतर सरकारी विधेयक चूँकि पहले लोग सदन में प्रस्तुत किए जाते हैं अत: लोग सदन द्वारा विचार होने के पश्चात विधेयक लार्ड सभा में भेजा जाता है सन् 1855 तक ऐसी प्रथा थी कि वह मंत्री जो विधेयक को लोकसदन में प्रस्तुत करता था लार्ड सभा में भी उसे प्रस्तुत करता था। पर अब सदन का लिपिक विधेयक को दूसरे सदन में ले जाता है। जहाँ तक प्रक्रिया का प्रश्न है उसमें दोनों सदनों में कोई विशेष अंतर नहीं है। दूसरे सदन में भी वे ही स्तर प्रथम वाचन व प्रस्तुतीकरण, द्वितीय वाचन, समिति स्तर, प्रतिवेदन स्तर तथा तृतीय वाचन होते हैं, पर अंतर केवल इतना है कि वहाँ पर समिति स्तर पर स्थाई समितियों व विशिष्ट समितियों का प्रयोग नहीं किया जाता, वरन् वहाँ संपूर्ण सदन की समिति का प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप विधेयक लार्ड सभा द्वारा शीघ्र पारित कर दिए जाते हैं, क्योंकि जब विधेयक संपूर्ण सदन की समिति को दिए जाते हैं तो प्रतिवेदन स्तर केवल एक उपचार मात्र जाता है। यदि विधेयक दूसरे सदन द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है अथवा उसके द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को पहला सदन स्वीकार कर लेता है तो विधेयक को राजा की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

दोनों सदनों में मतभेद–यदि दूसरा सदन विधेयक में संशोधन करता है तो विधेयक फिर से पहले सदन के पास जाता है वहाँ संशोधनों के पास होने पर वह राजा की स्वीकृत के लिए भेज दिया जाता है। यदि विधेयक प्रारंभ करने वाला सदन दूसरे सदन के संशोधनों को अस्वीकार करता है और यदि लार्ड सभा आरंभ करने वाला सदन है तो विधेयक का अंत कर दिया जाता है। यदि विधेयक लोकसभा में प्रस्तावित हुआ है और लार्ड सभा ने ऐसे संशोधन किए हैं जो लोकसभा स्वीकार करने को तैयार नहीं है तो सन् 1949 के संसदीय अधिनियम के अंतर्गत लोकसभा द्वारा दो सत्रों में लगातार पास होने पर और यदि प्रथम सभा के द्वितीय वाचन और अंतिम सत्र के बीच 1 वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है तो बिना लार्ड सभा की स्वीकृति के भी यह दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

राजकीय स्वीकृत–विधेयक के जीवन का अंतिम स्तर राजकीयकृत का होता है। यह केवल औपचारिक होता है। विधेयक राजा की स्वीकृत के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं तथा अध्यक्ष की उपस्थिति में उनके शीर्षक लार्ड सभा में पढ़े जाते हैं। राजा का एक प्रतिनिधि यह घोषणा करता है कि 'राजा ऐसा चाहते हैं' तथा इस प्रकार राजकीय स्वीकृति का कार्य पूरा होकर विधेयक कानून बन जाते हैं।

भारत में संविधान संशोधन-प्रक्रिया–विश्व के संविधानों के अध्ययन और दृष्टिकोण से पूर्णत:भिज्ञ हमारे संविधान निर्माता भारतीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनों हेतु मध्यम मार्ग के पक्षधर थे और यह मार्ग स्वर्णिम पथ का अनुसरण करते हुए संविधान के अनुच्छेद 368 में स्पष्टता संवैधानिक संशोधन-प्रक्रिया का प्रावधान किया है इसमें विहित प्रक्रिया द्वारा संविधान में कुछ भी जोड़ा या घटाया या बदला जा सकता है। अनुच्छेद 368 में प्रावधान है कि इस उद्देश्य के लिए संसद के किसी भी सदन में विधेयक लाया जा सकता है, जिसे संसद में पारित हो जाने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु भेजा जाना चाहिए। विधेयक को स्वीकृति मिल जाने पर जिसके लिए समय की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है संविधान को विधेयक के प्रावधानों अनुसार संशोधित माना जाएगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में संशोधन की तीन प्रक्रियाएँ हैं–

1. साधारण विधि द्वारा संशोधन की प्रक्रिया
2. संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा संशोधन की प्रक्रिया
3. राज्य विधान मंडलों और संसद के दो तिहाई बहुमत से संशोधन की प्रक्रिया।

1. **साधारण विधि द्वारा संशोधन की प्रक्रिया**–संविधान के कई अनुच्छेदों में साधारण विधि द्वारा संशोधन किया जा सकता है। इन अनुच्छेदों में संसद के साधारण बहुमत और राष्ट्रपति की अनुमति से ही संशोधन लाया जा सकता है। संसद स्वयं राज्य विधान मंडलों के अनुरोध पर भी संशोधन कर सकती है। राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से संसद विधि के द्वारा नए राज्यों का निर्माण कर सकती है यह राज्यों के नाम बदल सकती है। स्वप्रेरणा से संसद कतिपय अनुच्छेदों में संशोधन कर सकती है। संविधान संशोधन की यह विधि सरलतम है। भारत में इस विधि के द्वारा कई संशोधन किए गए हैं, उदाहरणार्थ राज्य पुनर्गठन विधेयक, केंद्र शासित क्षेत्र के गठन आदि।

2. **संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा संशोधन की प्रक्रिया**–दूसरे वर्ग के अनुच्छेद से संघीय संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा ही परिवर्तन किया जा सकता है। संविधान में ऐसे संशोधन विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं। संसद में दोनों सदन उस विधेयक को पारित कर देते हैं। विधेयक पारित होने के बाद राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के

लिए भेजा जाता है राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होते ही वह संशोधन संविधान का अंग बन जाता है। न्यायपालिका तथा राज्यों के अधिकारों तथा शक्तियाँ जैसी कुछ विशिष्ट बातों को छोड़कर संविधान की अन्य समस्त व्यवस्थाओं में भी इस प्रकार से संशोधन किए जा सकते हैं।

3. **संसद के विशिष्ट बहुमत और राज्य विधानमंडल की स्वीकृत से संशोधन प्रक्रिया**–इस श्रेणी में वे उपबंध आते हैं जो संघात्मक ढाँचे से संबंधित हैं। इन उपबंधों के संशोधन के लिए सबसे कठिन प्रक्रिया अपनाई गई है इसमें संशोधन के लिए संसद के प्रत्येक सदन के दो तिहाई सदस्यों का बहुमत तथा कम से कम 50% राज्यों के विधान मंडलों का अनुसमर्थन भी आवश्यक है। निम्नलिखित उपबंधों के संशोधन के लिए बहुमत और राज्यों का अनुसमर्थन आवश्यक है–

1. राष्ट्रपति का निर्वाचन (अनुच्छेद 54,55)
2. संघ तथा राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनुच्छेद 73,162)
3. संघ तथा राज्य न्यायपालिका (अनुच्छेद 124,147,214,231,241)
4. संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्ति का वितरण (अनुच्छेद 245,255)
5. संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में (अनुसूची 4)
6. सातवीं अनुसूची की किसी सूची में या
7. अनुच्छेद 358 के उपबंधों में।

संविधान के तृतीय वर्ग में संशोधन की प्रणाली बहुत कुछ सीमा तक अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैंड की संशोधन प्रणालियों के अनुरूप है। भारत के संविधान संशोधन प्रक्रिया में कुछ सुझाव प्रस्तुत है, जो इस प्रकार है–

1. मंत्रिमंडलों के विरुद्ध जब अविश्वास प्रस्ताव किया जाए तो उसमें विश्वास का प्रस्ताव भी शामिल हो इस सुझाव पर भी गंभीर विचार विमर्श और संवैधानिक संशोधन की प्रविष्टि आवश्यक है। जिससे न केवल राजनीतिक बल्कि राज्य की अस्थिरता को रोका जा सके। यानी सरकार गिराने वाले पर सरकार बनाने का उत्तरदायित्व भी निर्धारित किया जाए जैसा पश्चिमी जर्मनी में है।

2. विधेयक को कानूनी स्वीकृत देने में हस्ताक्षर करते समय राष्ट्रपति विधायकों को कब तक अपने समक्ष विचारार्थ रोके रख सकता है इस प्रश्न पर राष्ट्रपति की कानूनी स्थिति को स्पष्ट किया जाना चाहिए जो संवैधानिक संशोधन से संभव है।

3. अनुच्छेद 243 जी और 11वीं अनुसूची को इस तरह संशोधित किया जाए कि पंचायतें स्वशासन की संस्थाएँ बन जाए तथा पंचायतों में सांसदों और विधायकों की उपस्थिति तय की जाए।

4. केंद्र में सत्ता परिवर्तन होने के बाद प्राय: राज्यों की विधानसभाएँ राजनीतिक कारणों से भंग कर दी जाती है इसके अलावा यह आरोपित किया जाता है कि राजनीतिक कारणों से किसी राज्य विशेष की विधानसभा को राज्यपाल भंग कर देते हैं अत: राज्यों का विधान सभाओं को भंग करने के प्रश्न पर राज्यपाल के अधिकारों की स्थित को संवैधानिक संशोधन से स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए।

1999 में भाजपा राजग के शासनकाल में गठित 11 सदस्यीय संविधान समीक्षा आयोग उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश एमएन बेंकट चलैया की अध्यक्षता में गठित की गई। इस आयोग की उद्देश्यों पर भी विचार करना चाहिए साथ ही एक लंबे अरसे से बुद्धिजीवियों, मनीषियों, राजनीतिक दलों, संविधान शास्त्रियों और राजनीति विज्ञानियों द्वारा संविधान में समयानुकूल परिवर्तन की बात भी उठाई जाती है और यह यदा-कदा अब भी उड़ती प्रतीत होती है और आज

ISSN 0975-735X

के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश में इन परिवर्तनों का जरूरतों से एकदम इंकार भी नहीं किया जा सकता। समाजवादी देशों में ऐसे परिवर्तन हो भी रहे हैं तथापि भारत जैसे विकासशील और प्रजातांत्रिक देश में इस प्रकार के आमूल परिवर्तन ना तो अति शीघ्र किया जा सकता है और न ही आवश्यक है किंतु भविष्य की संभावनाओं को दृष्टिगत कर इस प्रकार के दृष्टिकोण से पूर्णरूपेण इंकार भी नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष : यह कहा जा सकता है कि संसद को संविधान में संशोधन करने की पूरी शक्ति प्राप्त है और इस शक्ति में मौलिक अधिकारों से संबंधित अनुच्छेदों सहित विभिन्न अनुच्छेदों को बदलने या उनमें कुछ जोड़ने या उन्हें रद्द करने की शक्ति शामिल है किसी संविधान के लागू होने के बाद के वर्षों में उसके अनुसार चलने में कठिनाई का अनुभव हो सकता है। इन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के लिए संशोधन करने पड़ते हैं जिसके रूप भिन्न भिन्न हो सकते हैं। भारत में 100 से अधिक संशोधन हो चुके हैं लेकिन यह सब लोकसभा में खुले मंच पर हुए हैं तथा व्यापक बहस और समीक्षा करके तथा आवश्यकता अनुसार जनमत को ध्यान में रखकर किए गए संविधान का 24वाँ, 42वाँ, 44वाँ, 73वाँ, 74वाँ एवं 86वाँ संशोधन प्रावधान उल्लेखनीय रहे हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि संविधान जनता के लिए है, जनता संविधान के लिए नहीं, फिर कथित गरीबी अज्ञानता और अशिक्षा के धुंध में समय-समय पर भारतीय नागरिकों ने अपनी जिस जागरूकता और समझदारी का परिचय दिया है उसकी प्रशंसा सारे विश्व में की गई है तथा मतदाताओं के निर्णयों से लोकतंत्र की जड़ें मजबूत हुई हैं।

संदर्भ

1. हंसराज खन्ना, अदालती पुनरीक्षण या संसद से टकराव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1977, पृ॰ 13
2. प्रो॰ व्हीयर, फेडरल गवर्नमेंट संस्करण 1963, पृ॰ 211
3. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति 1972
4. संविधान का सच, डिपार्टमेंट ऑफ पॉलिटिकल साइंस गांधी जयंती, दिल्ली
   डॉ॰ नारायण इकबाल, विश्व के प्रमुख संशोधन वर्ष
5. 2004 पृ॰ 1, 2
6. मिश्र के॰के॰, तुलनात्मक शासन और राजनीति संस्करण 1979, पृ॰ 430-31
7. डॉ॰ इकबालनारायण, विश्व के प्रमुख संविधान अँग्रेजी संविधान का विकास वर्ष 2004, पृ॰ 215, 216
8. प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, 2009
9. परीक्षा मंथन, फरवरी, 2010

Mob. 8085400776
dr.rajeshsahu82@gmail.com
Mob. 9617475301
dr.rn.82@gmail.com

स्त्री–शिक्षा के संबंध में डॉ० भीमराव अंबेडकर के योगदान का संक्षिप्त अध्ययन

डॉ० रामचन्द्र सिंह, एसो० प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
एस०एम०पी० राजकीय महिला (पी०जी०) कालेज, मेरठ (उ०प्र०)

आधुनिक भारत के संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष व संपूर्ण संविधान के निर्माण का हिस्सा रहे भारत रत्न बाबा साहब डॉ० भीमराव अंबेडकर राजनीतिक व सामाजिक हलकों में अपने कई अविस्मरणीय योगदानों के लिए स्मरण किए जाते हैं। लोकतांत्रिक राष्ट्र की स्थापना हेतु आधुनिक व प्रकृति में पंथनिरपेक्ष और वैज्ञानिक संस्था निर्माण, स्वतंत्रता के भाव को राजनीतिक आजादी से अधिक सामाजिक परिवर्तन समझना, आंदोलन से अंबेडकर समाज के सबसे निचले तबकों के जुड़ाव के अथक प्रयासों जैसे कई कार्यों ने उन्हें कुछ लोगों का देवता व कई अन्य लोगों के लिए बाबा साहब बनाया। वे ऐसी किसी भी स्वतंत्रता के विपक्षी थे जो अपने मूल में सामाजिक ढाँचे के निम्नतर व्यक्ति के मानवीय अधिकारों से अछूती हो। स्त्रियों को शिक्षित कर उनकी सामाजिक राजनीतिक आंदोलनों में भागीदारी का सक्रिय प्रयास उनकी इसी समझ का एक नमूना है। शिक्षा शेरनी का दूध है, उनका प्रसिद्ध कथन स्त्री शिक्षा हेतु और अधिक प्रासंगिक है। शिक्षा स्वच्छता, महत्त्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, सीमित परिवार, पुरुष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर चलना और बराबरी का अधिकार माँगना नारी के विशेष कर्त्तव्य है। सामाजिक राजनीतिक आंदोलनों की शृंखला के तहत कार्य चाहे मंदिर प्रवेश व अंर्तजातीय भोज द्वारा समाज सुधार का हो या धर्मांतरण के जरिए हिंदुत्व व ब्राह्मणवाद के मूल विरोध का अथवा संविधान निर्माण द्वारा वैधानिक प्रयासों का, डॉ० अंबेडकर ने उनमें स्त्रियों की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए भरसक चेष्टाएँ कीं।

ऐसे ही कुछ प्रयासों के तहत 1928 में डॉ० अंबेडकर ने अपनी पत्नी रमाबाई के नेतृत्व में महिला संगठन 'मंडल परिषद' की नींव रखी व अन्य स्त्रियों को पुरुषों के साथ सामाजिक भागीदारी के लिए प्रेरित किया। महाड़ स्थित ऐतिहासिक सत्याग्रह में 300 से अधिक स्त्रियों ने अपने पुरुष सहभागियों के साथ हिस्सा लिया। इस सत्याग्रह के दौरान महिलाओं की एक बड़ी सभा को संबोधित करते हुए डॉ० अंबेडकर ने कहा–मैं समुदाय अथवा समाज की उन्नति का मूल्यांकन स्त्रियों की उन्नति के आधार पर करता हूँ। स्त्री को पुरुष का दास नहीं बल्कि उसका साझा सहयोगी होना चाहिए। उसे घरेलू कार्यों की ही तरह सामाजिक कार्यों में भी पुरुष के साथ संलग्न रहना चाहिए। आंदोलनों की इस ही कड़ी के अंतर्गत 1930 के नासिक स्थित कालरम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह में 500 से भी अधिक स्त्रियाँ भागीदार बनीं और उनमें से कई अपने पुरुष स्वयं साथियों के साथ जेल भी गईं। इस सत्याग्रह के दौरान राधा बाई वदल, जोकि एक निम्न वर्ग से संबंध रखने वाली स्त्री थी, ने एक पत्रकार सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा कि प्रताड़ना भरे जीवन से अच्छा है 100 बार मरना। हम अपने जीवन की कुर्बानी देकर अपने अधिकारों के लिए लड़ेंगे।

 ISSN 0975-735X

स्त्री शिक्षा एवं डॉ॰ अंबेडकर—डॉ॰ अंबेडकर ने हिंदू समाज में स्त्रियों की दुरावस्था के लिए मुख्यतः मनुस्मृति को दोषी माना। उनका मत है कि भारतीय समाज में स्त्रियों को धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से वंचित रखना, पारिवारिक जीवन में हीन स्थिति में रखना तथा सामाजिक जीवन में उनके भाग लेने पर प्रतिबंध लगाना इत्यादि ऐसी परंपराएँ हैं जिन्हें स्त्रियों की पारिवारिक व सामाजिक जीवन में पतन के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। डॉ॰ अंबेडकर मनुस्मृति के इस कथन के बहुत विरुद्ध थे कि 'बचपन में स्त्रियों की रक्षा पिता करे, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र करें अर्थात् स्त्री स्वतंत्र नहीं हो सकती है। अंबेडकर ने सदैव इस बात का विरोध किया कि परिवार में स्त्रियों की प्रस्थिति पुरुषों के अधीन होनी चाहिए। यह सामाजिक न्याय के विरुद्ध है। वास्तविकता यह है कि स्त्रियों में भी सभी गुण हैं जो पुरुषों में होते हैं। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा सामाजिक जीवन तथा धार्मिक जीवन में भी स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समान ही होने चाहिए। अंबेडकर का मानना था कि भारतीय समाज में जो स्थिति दलित स्त्रियों की है, दूसरे वर्गों की स्त्रियों की स्थिति भी लगभग उसी तरह शोषित है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिंदुओं के परंपरागत धार्मिक विधानों में इस तरह परिवर्तन किया जाए जिससे रूढ़िवादी ताकतों का प्रभाव कम हो सके।

1930 से 1940 के दशक के दौरान स्त्रियों ने डॉ॰ अंबेडकर के नारी उत्थान आंदोलनों से प्रभावित होकर शिक्षा, श्रम कानूनों में सुधार, अच्छे व समान वेतन की माँग जैसे कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर अपनी आवाज बुलंद की। 1942 में अंबेडकर ने शैड्यूल कास्ट फैडरेशन की नींव रखी जिसके प्रथम सम्मेलन में 5000 से अधिक महिलाएँ भागीदार बनीं। इस फैडरेशन के साथ शैड्यूल कास्ट महिला फैडरेशन का भी निर्माण किया गया जिसका हिस्सा बनकर स्त्रियों ने मैटरनिटी नियम कानूनों में सुधार, पूना पैक्ट के प्रावधानों को पुनः लागू करने जैसी माँगों को उठाया।

स्त्री शिक्षा : संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान—डॉ॰ अंबेडकर जब कभी भी किसी राजनीतिक दल का हिस्सा बने उन्होंने स्त्रियों के अधिकारों व उनकी माँगों को प्राथमिकता से उठाया। 1942 में गवर्नर जनरल ऐग्जिक्युटिव काउंसिल में श्रम मंत्री होते हुए उन्होंने काउंसिल से मैटरनिटी बैनिफिट बिल को मंजूरी दिलवाई। भारतीय संविधान में राज्य द्वारा निर्मित किसी भी तरह के संस्थान में लिंग आधारित किसी भी भेदभाव या प्रताड़ना के विरुद्ध कठोर दंडात्मक व्यवस्था के प्रावधान अंबेडकर के नारी उत्थान के लक्ष्य की दृष्टि का केंद्र बिंदु माने जा सकते हैं। जहाँ अनुच्छेद 14 सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में समान अधिकारों अवसरों की व्यवस्था करता है, वहीं अनुच्छेद 15 लिंग आधारित भेदभाव के निषेध को निर्देशित करते हुए राज्य को स्त्रियों के लिए अवसरों के स्तर पर विशेष प्रावधानों की व्यवस्था करने का निर्देश देता है। इसी तरह अनुच्छेद 39 समान कार्यों के लिए समान वेतन की व्यवस्था करने की बात कहता है वहाँ अनुच्छेद 41 कार्य के दौरान सुगम परिस्थितियों की व्यवस्था करते हुए मैटरनिटी अवकाश के प्रावधान की बात कहता है। डॉ॰ अंबेडकर न केवल स्त्रियों के सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों के पक्षधर थे बल्कि उनके व्यक्तिगत अधिकारों के नियोजक भी थे। आजाद भारत के प्रथम कानून मंत्री होते हुए उन्होंने संसद में हिंदू कोड बिल को मंजूरी दिलवाने के लिए ऐतिहासिक प्रयास किए। और इस बिल को संसद द्वारा पारित न किए जाने के विरोध में अपने पद से इस्तीफा भी दिया। यही बिल आगे चलकर कई भागों जैसे—हिंदू विवाह अधिनियम 1955 हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, अल्पसंख्यक व सुरक्षा कानून 1956 व हिंदू एडॉप्शन और मेंटिनेंस ऐक्ट 1956 में बँटकर संसद में पारित हुए और महिलाओं के मानव-अधिकारों की सुरक्षा का आधारबिंदु बने। डॉ॰

अंबेडकर ने मुस्लिम औरतों के नागरिक अधिकार व मानव अधिकारों पर भी कई टिप्पणियाँ और लेख लिखे। उन्होंने इस्लाम में प्रचलित पर्दा प्रथा का विरोध किया और मुस्लिम महिलाओं को शिक्षित करने पर जोर दिया।

डॉ॰ अंबेडकर संगठित व सुनियोजित आंदोलन के कुशल मार्गदर्शन के लिए शिक्षित कार्यकर्ताओं के होने को एक अनिवार्य पूर्व शर्त मानते थे। बहिष्कृत हितकारिणी सभा 1924 की स्थापना पर जनता को दिए उनके नारे 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, और संघर्ष करो' में इस तथ्य की सैद्धांतिक झलक स्पष्ट देखने को मिलती है। अत: आंदोलनों के कुशल संचालन के लिए स्त्रियों की निर्णायक भूमिका को तय करने के लिए वे स्त्रियों को शिक्षित किए जाने को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। स्त्री-शिक्षा की पैरवी करते हुए सर्वप्रथम उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय जहाँ वे समाजशास्त्र व अर्थव्यवस्था का अध्ययन कर रहे थे, से अपने पिता के एक मित्र को चिट्ठी लिखकर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया और कहा हम एक बेहतर कल की कल्पना स्त्रियों को शिक्षित किए बिना नहीं कर सकते। ऐसा पुरुषों के समान स्त्रियों को शिक्षित करके ही संभव है। 'बांबे लैजिस्लेटिव काउंसिल' 1927 को संबोधित करते हुए शैक्षणिक संस्थानों में स्त्रियों की कम उपस्थिति के लिए प्रांतीय सरकार को जिम्मेदार ठहराते हुए अंबेडकर ने कहा कि वर्तमान शिक्षा नीतियाँ अपने प्रभाव में इतनी निष्क्रिय हैं कि उनका अनुसरण करके अगले 300 वर्षों में भी स्त्रियों को पूर्णरूपेण शिक्षित नहीं किया जा सकता। वे इस कार्य के लिए अधिक संगठित प्रयास किए जाने और इस पर राजस्व का एक बड़ा हिस्सा खर्च किए जाने के पक्ष में थे। नारी उत्थान बिना परिवार नियोजन के असंभव है। अत: डॉ॰ अंबेडकर ने 1927 में विवाहित महिलाओं की एक सभा को संबोधित करते हुए कहा कि वे अधिक संतानें पैदा न करें व अपने बच्चों के गुणात्मक जीवन के लिए प्रयास करें। सभी स्त्रियों को अपने पुत्रों के साथ-साथ पुत्रियों को भी साक्षर बनाने के लिए समान प्रयत्न करने होंगे। डॉ॰ अंबेडकर के लगातार सकारात्मक प्रयासों के फलस्वरूप कई दलित महिलाएँ शिक्षित बनीं। उनमें से एक तुलसी बाई बंसोड़ ने 1931 में 'चोकमेला' नामक एक समाचारपत्र शुरू किया।

सामाजिक आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी और उनकी शिक्षा हेतु डॉ॰ अंबेडकर के द्वारा किए गए प्रयासों की उपर्युक्त कहानी इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि करती है कि डॉ॰ अंबेडकर सही मायनों में भारतीय इतिहास में नारीवादी आंदोलन के पहले ऐसे प्रसारक और प्रचारक थे जिन्होंने न केवल शिक्षा बल्कि समाजवादी आंदोलन से भी स्त्रियों को सक्रिय रूप से जोड़ा। उन्होंने समाज के सबसे निचले तबके की महिलाओं जो कि अछूत व स्त्री होने की वजह से दोहरा अभिशाप झेल रही थी में शिक्षा का प्रसार कर नारीवादी आंदोलन को 19वीं शताब्दी के कुलीनवादी ढर्रों से मुक्त करवाया।

डॉ॰ अंबेडकर के स्त्री शिक्षा और उनके राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों में भागीदारी की मुहिम और दृष्टिकोण को जे॰एस॰ मिल के उपयोगितावादी सिद्धांत के समीप देखा जा सकता है। वे समाज में सर्वाधिक लोगों की सर्वाधिक खुशहाली के पक्ष में थे। लिंग आधारित किसी भी भेदभाव के लिए उनके सामाजिक आदर्शों में कोई जगह नहीं थी। जे॰एस॰ मिल की ही भाँति उनकी नजर में भी नैतिक व वैधानिक आधारों पर एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का किसी भी तरह का शोषण मानव विकास व सभ्य समाज के मूल्यों के विरुद्ध था। अत: उन्होंने जीवनपर्यंत एक ऐसे मानवीय अधिकारों के प्रति संवेदनशील समाज के निर्माण के लिए लोकतांत्रिक क्रांति की जहाँ अधिकार

अथवा अवसर लिंग, जाति या धर्म पर नहीं बल्कि योग्यता पर दिए जाएँ। वे इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे की एक शिक्षित नागरिक ही अपने अधिकारों के प्रति सजग होते हुए दूसरे नागरिकों के अधिकारों के लिए संवेदनशील हो सकता है। ऐसे लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए शिक्षित नागरिक एक अनिवार्य शर्त था। परंपरागत, जाति आधारित समाज के परित्याग और नवीन मूल्यों पर आधारित समाज का निर्माण संवैधानिक माध्यमों से संचालित आंदोलनों से ही संभव था। अत: उनके उचित निर्देशन व अनुगमन की बागडोर शिक्षित स्वयं-सेवकों के हाथों में ही दी जा सकती थी। डॉ॰ अंबेडकर द्वारा स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार की चेष्टाओं के ध्येय में यह ही मूलभूत दृष्टि केंद्रित थी।

निष्कर्ष–डॉ॰ अंबेडकर का मानना था कि दुनिया के प्रत्येक समाज में लोगों का व्यवहार और सामाजिक व्यवस्थाएँ धार्मिक नियमों से प्रभावित होती है। हिंदू समाज भी उन धार्मिक नियमों से संचालित है जो सामाजिक न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध है। हिंदू धर्मशास्त्र में अस्पृश्यता, सामाजिक भेदभाव स्त्रियों की स्थिति तथा परिवार और विवाह के बारे में जो नियम दिए गए हैं, उन्हें तब तक नहीं बदला जा सकता जब तक कानून द्वारा उन्हें दूर न कर दिया जाए। डॉ॰ अंबेडकर ने इस बात पर बल दिया है कि भारत को जब एक लोकतांत्रिक देश घोषित किया गया है तो कानून की दृष्टि से सभी नागरिकों को समानता का अधिकार मिलना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब राज्य द्वारा ऐसे कानून बनाए जाए जो हर तरह सामाजिक असमानता को समूल दूर कर सके। उनके अथक प्रयत्नों का ही प्रभाव था कि दलितों और महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए विशेष प्रावधान रखे गए।

संदर्भ

1. डॉ॰ रामविलास शर्मा, डॉ॰ अंबेडकर और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डी॰आर॰ जाटव, डॉ॰ अंबेडकर के आलोचक, 40 मीना कॉलोनी, जयपुर
3. शिव, डॉ॰ बी॰आर॰ अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन, राजनीति विज्ञान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, काशी 2020
4. डॉ॰ डी॰आर॰ जाटव, डॉ॰ अंबेडकर भारतीय दर्शन के समीक्षक, समता साहित्य सदन 40, मीना कॉलोनी, इमलीवाला फाटक, जयपुर, 1996
5. संतोष भालेकर, डॉ॰ अंबेडकर और ओशो, विजन पब्लिकेशन, नागपुर, प्रकाशन वर्ष 1994
6. संतोष बलवान, तुलनात्मक राजनीति सिद्धांत के संदर्भ, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
7. धनंजय कीर, डॉ॰ बाबा साहेब अंबेडकर, पापुलर प्रकाशन
8. डॉ॰ अशोक मोडक, भारत सपूत डॉ॰ भीमराव अंबेडकर
9. डॉ॰ कृष्णगोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, केशवकुंज, झंडेवाला, नई दिल्ली
10. डॉ॰ डी॰आर॰ जाटव, राष्ट्रीय आंदोलन में अंबेडकर की भूमिका, समता साहित्य सदन, जयपुर

B 74 first floor Lakhmi vihar
Meerut 250004 UP
Mob. 9411554615
rcbasoya@gmail.com

उत्तरकाशी जनपद के सीमांत क्षेत्र 'बंगाण' के मुख्य लोकदेवता 'पबासिक' (पवासी) महासू

प्रो॰ प्रभात कुमार, प्रोफेसर
रणवीर सिंह, शोधार्थी
प्रा॰भा॰इ॰ संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

उत्तरकाशी जनपद परिचय एवं इतिहास—मानव के सांस्कृतिक विकास पर भौगोलिक एवं पारिस्थितिकी कारकों का विशेष महत्त्व रहता है। भारत के उत्तरी क्षेत्र का प्रहरी हिमालय भारत की सांस्कृतिक विविधता एवं समृद्धता के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों पक्षों को प्रभावित करता है। अनादिकाल से ही हिमालय भारतीय संस्कृति धर्म एवं अध्यात्म का आकर्षण केंद्र होने के चलते मानवीय गतिविधियों का प्रमुख केंद्र रहा है, जिसके संबंध में पुरातात्विक साक्ष्यों के साथ ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक ग्रंथों से अति महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

पश्चिम में नंगा पर्वत से पूर्व में नामचा बरवा पर्वत तक लगभग 2400 किलोमीटर की लंबाई में चापाकार आकृति में हिमालय का विस्तार है। भूगोल वेत्ताओं द्वारा हिमालय के प्रादेशिक विभाजन के आधार पर हिमाचल प्रदेश तथा नेपाल के मध्य विस्तृत क्षेत्र को मध्य हिमालय की संज्ञा दी है। मध्य हिमालय का विभिन्न कालखंडों यथा वैदिककाल में 'हैमवत', उत्तर वैदिककाल में 'उत्तरकुरु' एवं उपनिषद् काल में 'उत्तर पांचाल' तथा विभिन्न ग्रंथों यथा—रामायण में 'उत्तर कौशल' महाभारत में 'उत्तर कुरु' एवं कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में 'कुरूपथ' नाम से उल्लेख मिलता है। पौराणिककाल में किरात जाति एवं खस जाति के प्रभुत्व के दृष्टिगत किरात मंडल एवं खस मंडल तथा स्कंद पुराण में केदारखंड व मानसखंड के रूप में मध्य हिमालय को विभक्त किया गया है। कालांतर में विभिन्न कालखंडों के पुरातन संदर्भों के उत्तर तथा स्कंदपुराण के खंड अंश को जोड़कर इस मध्य हिमालय क्षेत्र का नाम उत्तराखंड (उत्तर-खंड) पड़ गया।[1] स्कंदपुराण में महाभारतकालीन हिमालयी जातियों, यथा—किरात, खस, हूण, नाग आदि का उल्लेख मिलता है।[2]

भारतीय संस्कृति की जीवनधारा पतित पावनी गंगा एवं उसकी सहायक नदी यमुना एवं टोंस (तमसा) नदी की उद्‌गम स्थली उत्तराखंड की पावन भूमि देवभूमि के नाम से जानी जाती है, जिसके पग-पग एवं कण-कण में देवी देवताओं का वास माना जाता है। जनपद उत्तरकाशी इसी हिमालयी अंचल में अवस्थित देवभूमि उत्तराखंड का प्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं सुंदर नगर है जो वरुणावत पर्वत की गोद में बसा हुआ है। इस नगर को 'उत्तर का काशी' के उपनाम से भी जाना जाता है। उत्तरकाशी का पौराणिक नाम बाड़ाहाट अथवा सौम्यकाशी है। पौराणिक कथाओं के अनुसार उत्तरकाशी में ही राजा सगर के वंशज दिलीप के पुत्र भगीरथ ने एक पैर पर 12 वर्षों तक कठोर तपस्या की और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने उन्हें वरदान दिया और कहा कि भगवान शिव धरती पर आ रही गंगा का वेग धारण कर लेंगे। स्वर्ग से धरती पर आ रही गंगा को

शिव ने अपनी जटाओं में बाँध लिया और गंगा की एक धारा को लेकर भगीरथ कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे। इससे राजा सगर के पुत्रों को मुक्ति मिली। उत्तरकाशी जनपद को ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतांत में 'शत्रुघ्न' नाम से संबोधित किया है, उत्तरकाशी जनपद में स्थित पुरोला देवढूंगा से कुणिंद शासक अमोघभूति की यज्ञवेदिका प्राप्त हुई है। छठी शताब्दी के पश्चात उत्तरकाशी जनपद के क्षेत्र में परमार वंश के राजाओं ने शासन किया। परमार शासक अजय पाल ने अपनी राजधानी चांदपुरगढ़ से श्रीनगर स्थापित की। 1803 ई० से 1815 ई० तक यह क्षेत्र गोरखा सैनिकों के अधीन रहा। अँग्रेजों के सहयोग से सुदर्शन शाह ने गढ़वाल को गोरखा सैनिकों से आजाद करवाया, इस प्रकार पूर्व में यह टिहरी रियासत का भाग था एवं 1949 में स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद यह उत्तर प्रदेश राज्य में मिला दिया गया जिसे 24 फरवरी 1960 को अलग जनपद बनाया गया। उत्तरकाशी जनपद का क्षेत्रफल 8016 वर्ग किलोमीटर है। यह समृद्ध सांकृतिक विरासतों से भरा हुआ जनपद है उत्तराखंड के चार धामों में से दो गंगोत्री एवं यमुनोत्री इसी जिले में स्थित हैं इसके अतिरिक्त जिले में अन्य अनेक धार्मिक एवं पर्यटन स्थल अवस्थित है यथा–शक्ति मंदिर, काशी विश्वनाथ, गंगनानी, हर्षिल, हनुमान चट्टी, नचिकेता ताल, दयारा बुग्याल, हर की दून। इस जिले का ऐतिहासिक महत्त्व के साथ-साथ सामरिक महत्त्व भी है क्योंकि इसकी सीमाएँ अंतरराष्ट्रीय सीमाओं से लगी हुई हैं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह चीन (तिब्बत) से लगता है।

उत्तराखंड के जनपद देहरादून के उत्तरी भाग में ट्यूनी, चकराता एवं कालसी तहसील में विस्तृत जौनसार-बावर तथा सीमांत जनपद उत्तरकाशी के रवाँई एवं टिहरी जनपद के जौनपुर क्षेत्र में महासू देवता की उपासना प्रमुखता से होती है। रवाँई का महासू वास्तव में उत्तराखंड के पार हिमाचल प्रदेश तक के क्षेत्र में पूज्य है। बल्कि हिमाचल के उस क्षेत्र को पुराने महासू जिले के रूप में जाना जाता था।[3] हिमाचल प्रदेश के गठन वर्ष 1948 ई० में हिमाचल प्रदेश में 4 जनपद चंबा, सिरमौर, मंडी एवं महासू बनाए गए तथा कालांतर में 1960 ई० में महासू जनपद से अलग करके सीमांत जनपद किन्नौर एवं 1972 ई० में महासू जनपद को तोड़कर शिमला एवं सोलन जनपद का निर्माण हुआ।

उत्तराखंड के पश्चिमोत्तर के अंतिम छोर पर बसे त्यूनी (जनपद देहरादून) एवं अराकोट (जनपद उत्तरकाशी) के साथ हिमाचल प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्र जुबब्ल, बुशेहर, सिरमौर तथा शिमला तक महासू देवता का आधिपत्य है। इस क्षेत्र के लोग न्याय प्राप्त करने के लिए प्रशासन अथवा न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के बजाय महासू देवता के मंदिर में जाकर न्याय के लिए गुहार लगाते हैं, इस संपूर्ण क्षेत्र के वासियों के मध्य महासू देवता न्याय के देवता के नाम से लोकप्रिय हैं। कुमाऊ क्षेत्र के प्रसिद्ध गोलू देवता की भाँति जौनसार बावरक्षेत्र में महासू देवता की मान्यता है। स्थानीय कथानक के अनुसार जनपद देहरादून के प्रसिद्ध हनोल के मंदिर में प्रतिवर्ष राष्ट्रपति भवन से नमक भेंट स्वरूप भिजवाया जाता है। पुजारी द्वारा बताया गया कि हनोल के मुख्य मंदिर के गर्भगृह में एक जलधारा प्रस्फुटित है जो निरंतर बहती रहती है जिसका रहस्य बराबर बना है तथा गर्भगृह में एक ज्योत भी निरंतर प्रज्वलित रहती है।[4]

जौनसार-बावर (देहरादून जनपद) रवाँई-जौनपुर (उत्तरकाशी-टिहरी जनपद), सिरमौर क्षेत्र (हिमाचल प्रदेश) का समाज अपनी अनूठी सांस्कृतिक विरासत, विशिष्ट परंपराओं एवं मान्यताओं तथा धार्मिक अवधारणाओं के समन्वय के लिए भारतीय संस्कृति में अद्वितीय स्थान रखता है इस क्षेत्र के महान एवं मुख्य देवता महासू का मुख्य मंदिर जनपद देहरादून की ट्यूनी तहसील में टोंस नदी के बाएँ तट पर हनोल स्थित है, देहरादून से हनोल पहुँचने के दो प्रमुख मार्ग है एक विकासनगर, कालसी,

चकराता एवं ट्यूनी होकर लगभग 180 किलोमीटर तथा दूसरा मसूरी, लाखामंडल, नौगाँव, पुरोला एवं मोरी होकर लगभग 190 किलोमीटर। हनोल स्थित महासू मंदिर जौनसार-बावर एवं रवाँई जौनपुर तथा सिरमौर क्षेत्र की संस्कृतियों का संगम स्थल माना जाता है। महासू/महाशू महा(महान) एवं शू (देवता) किरात भाषा के शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है महान देवता। एक अन्य मान्यता अनुसार महासू महाशिव का अपभ्रंश है। महासू नाम एक देवता का बोधक न होकर एक देवकुल का प्रतीकात्मक रूप है जिसमें चार महासू भाई 1.बासिक 2. बोठा 3. पबासिक 4.चालदा एवं उनकी माता देवलाडी को सम्मिलित रूप से महासू कहा जाता है तथा ये सभी सर्वत्र पूजा जाते हैं।[5]

जन अनुश्रुतियाँ एवं लोक मान्यताएँ–देवता महासू की उत्पत्ति के संबंध में अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं महासू देवता का संबंध महाशिव अर्थात् महेश्वर एवं नागवंश से जोड़ा जाता है। स्थानीय कथा के अनुसार शिव-पार्वती द्वारा अपने पुत्र गणेश एवं कार्तिकेय की परीक्षा ली गई, जिसमें गणेश द्वारा बुद्धि का परिचय देकर माता-पिता की परिक्रमा करके विजय पाई। गणेश की विजय से उनके भाई कार्तिकेय ने क्षुब्ध होकर कश्मीर के निकट अपने चार अंग भंग कर दिए, जिससे चार देवताओं की उत्पत्ति जोड़ी जाती है। इन चार देवताओं में एक नागवंशी विमल देव एवं उनकी पत्नी देवलाडी के चार पुत्र बासिक, बोठा, पबासिक, चालदा के नाम से प्रसिद्ध हुए।[6]

एक अन्य स्थानीय कथानक के अनुसार हिमालय क्षेत्र में भगवान शिव एवं पार्वती की तपस्या के दौरान एक राक्षस कर्मासुर उनकी तपस्या में विघ्न पैदा करता था जिससे एक दिन शिव ने अत्यंत क्रोधित होकर स्वयं को पत्थर के लिंग में परिवर्तित कर लिया तथा शिव के चार अंगों से चार वीर कपला (मैंद्रथ), कयलू (मैंद्रथ), कैलाथ (मैंद्रथ) तथा शेरकुड़िया वीर (रायगी) उत्पन्न हुए।[7] शिव की आज्ञा अनुसार हनोल के निकट खूनगाड़ स्थान पर इन चारों वीरों द्वारा राक्षस कर्मासुर का वध कर दिया गया और कश्मीर प्रस्थान कर गए। ये चार वीर ही कालांतर में चार महासू देवता के मुख्य वीरगण कहलाए। एक प्राचीन किंवदंती के अनुसार मैंद्रथ ग्राम निवासी हूणाभाट एवं उसकी पत्नी केलावती के सात पुत्रों में से 6 पुत्र किरमिट राक्षस द्वारा मारकर खा लिए गए, इससे दुखी होकर एवं अपनी पत्नी केलावती के निवेदन पर ब्राह्मण हूणाभाट ने अपने अंतिम पुत्र की रक्षा के लिए कश्मीर जाकर चार महासू देवताओं से प्रार्थना की। महासू देवताओं द्वारा ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार कर मैंद्रथ में प्रकट होकर उसके कष्टों का निवारण कर दिया। हूणाभाट के नाम पर ही क्षेत्र का नाम हनोल पड़ा जो पूर्व में चकटपुर था।[8]

उक्त कथानक एवं अन्य मान्यताओं के आधार पर महासू देवता को शिव का रूप स्वीकार करने में विद्वानों एवं इतिहासकारों में भिन्न-भिन्न मत हैं, कुछ विद्वान शिव परिवार एवं नागवंश से उत्पत्ति के आधार पर महासू देवता को महाशिव के एक रूप में स्वीकार करते हैं। अँग्रेज इतिहासकार हैमिल्टन, देहरादून गजेटियर के लेखक विलियम तथा अटकिंसन महासू की पूजा को नाग पूजा से जोड़कर देखते हैं। [9] साहित्यकार, कवि रतनसिंह जौनसारी महासू देवता को महाशिव का रूप न मानकर अलग प्रकार का देवता बताते हैं, जिसकी उत्पत्ति की गाथा अत्यंत रोमांचक एवं प्रमाणित है।[10]

महासू देवता के चार भाइयों में से सबसे बड़े भाई बासिक महासू (वीर-कपला) का मुख्य मंदिर हनोल से 10 किलोमीटर दूर त्यूनी मार्ग पर टोंस नदी के बाएँ किनारे पर स्थित मैंद्रथ में है, जो महासू देवता की प्रकाट्य भूमि/स्थली के रूप में विख्यात है दूसरे महासू बोठा महासू (वीर-केलू) हनोल के मुख्य मंदिर में विराजमान है तीसरे महासू भाई पबासिक/पवासी महासू (वीर केलाथ) हनोल के मुख्य मंदिर से 3 किलोमीटर दूर टोंस नदी के दायें तट पर उत्तरकाशी

जनपद के बंगाण क्षेत्र में ठडियार गाँव में अवस्थित हैं तथा सबसे छोटे भाई चालदा महासू (वीर शेरकुड़िया) भ्रमण प्रिय देवता है जो उत्तराखंड एवं हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र में भ्रमण करते रहते हैं उनकी डोली 12 साल सांठी तथा 12 साल पांसी क्षेत्र में विराजमान/चलायमान रहती है।

उत्तरकाशी जनपद की मोरी तहसील के बंगाण क्षेत्र की मासमुर पट्टी के ठड़ियार गाँव के मुख्य मंदिर में विराजमान/प्रतिस्थापित पवासी महासू संपूर्ण बंगाण क्षेत्र के कुल देवता है। उत्तराखंड राज्य के उत्तरकाशी जनपद के अराकोट में पश्चिम से बहकर आने वाली पब्बर नदी त्यूनी में टोंस नदी से संगम बनाती है। रूपिन एवं सुपिन नदियों के नेटवाड में हुए संगम से बनी टोंस नदी मोरी से बहते हुए त्यूनी पहुँचती है मोरी तथा अरा कोट के मध्य टोंस एवं पब्बर नदी के बीच का क्षेत्र बंगाण कहलाता है जो मोरी के सांद्रा स्थान से प्रारंभ होकर सुदूर पश्चिम उत्तर में स्थित मोणा गाँव तक विस्तृत है। हिमाचल प्रदेश से सटे इस बंगाण क्षेत्र में पवासी महासू के बामसू, चींवा, देवती, देवबन माकुडी, भूटाणु, किरौली तथा गमरी/मैजनी आदि गाँवों में देवस्थान एवं मंदिर स्थित है।

मोरी तहसील में लगभग 75-80 किलोमीटर तक फैले बंगाण क्षेत्र की तीन पट्टियों कोठिगाड़, पिंगल एवं मासमुर में पवासी महासू की उपासना की जाती है।[11] टोंस का दक्षिणी क्षेत्र पासीबिल (पांडव क्षेत्र) पवासी देवता महाराज का प्रशासकीय क्षेत्र माना जाता है। बंगाण क्षेत्र के सुदूर/सीमांत क्षेत्र में बसे चीवा गाँव में पवासी की पूजा ठड़ियार गाँव में नवनिर्मित मुख्य मंदिर बनने से पूर्व की जाती थी। क्षेत्रवासियों के आवागमन इत्यादि सुविधाओं के चलते पवासी महाराज का नया मंदिर हनोल के निकट ठड़ियार गाँव में बनाया गया, जिसके निर्माण का प्रारंभ 1999 ई० में हुआ तथा 2003 ई० में बनकर तैयार हुआ।[12] पवासी देवता के पुराना मंदिर देवबन तथा प्रमुख स्थान देवती है। प्रत्येक वर्ष पवासी देवता की डोली मई/जून माह में देवती होते हुए देवगन के लिए प्रस्थान करती है, जिसमें बंगाण क्षेत्र की तीनों पट्टियों के श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं, इस डोली यात्रा में क्षेत्रीय वाद्ययंत्र यथा ढोल नगाड़ों रणसिंगो के ध्वनि के साथ-साथ पवासी महाराज के जयकारों से जंगल गूँज उठता है। देवबन मंदिर के निकट स्थित पवित्र कुंड में स्नान करके श्रद्धालु किसी भी तरह के साए से मुक्ति पा जाते हैं।[13] देवबंन के घने जंगलों में श्रद्धालुओं द्वारा रात भर जागरण किया जाता है तथा सुबह अपनी मान्यताओं के अनुसार पूजा उपासना की जाती है ठड़ियार से लगभग 10 किलोमीटर ऊपर स्थित देवबंन से पवासी देवता की डोली वापसी के समय देवती में कुछ समय प्रवास करने के पश्चात मुख्य मंदिर ठड़ियार लौट आती है।

पूजा विधान—ठड़ियार गाँव के मुख्य मंदिर पवासी महासू गर्भगृह में बासिक, बोठा, चालदा भाइयों सहित धातु से निर्मित प्रतिमाओं के रूप में प्रतिस्थापित हैं जिसमें मुख्य पुजारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश निषेध है तथा गर्भगृह के अंदर का छायाचित्र लेने की भी पूर्ण मनाही है। पुजारी महोदय द्वारा बताया गया कि महासू भाइयों के बीच में पवासी महासू की धर्मपत्नी नटारी/रुसाणी विद्यमान है।[14] महासू के मुख्य मंदिर के संचालन हेतु पुजारी, वजीर, ठाणी, भंडारी, बाजगी एवं सयाणे आदि की विशेष भूमिका रहती है। ठड़ियार के पवासी देवता मंदिर में पिंगल पट्टी के डगोली गाँव के नौटियाल वंशजों द्वारा पूजा की जाती है। डगोली गाँव के पुजारियों का पूजा-समय कुछ दिन अथवा महीने नियत रहता है।

पुजारी जी द्वारा बताया गया कि परिवारों एवं सदस्यों में बढ़ोतरी के कारण मंदिरों में पूजा का समय धीरे-धीरे कम हो गया है ठड़ियार के मुख्य मंदिर में नियुक्ति पर रहने वाले पुजारी के नियम अत्यंत कठिन होते हैं मंदिर में मुख्य पूजा शाम 4:00 बजे तथा पुजारी द्वारा पूजा उपरांत साँय

5:00 बजे एक ही बार भोजन किया जाता है। पुजारी महोदय द्वारा बताया गया कि मौसम के अनुसार पूजा एवं खाने के समय में परिवर्तन किया जा सकता है।[15] मंदिर में दिनभर चढ़े चढ़ावे प्रसाद यथा फूल फल आदि की रात्रि 9:00 बजे लगभग सफाई की जाती है।

मंदिर परिसर की सफाई के उपरांत लगभग 10:00 बजे पुजारी द्वारा चाय/पान ग्रहण किया जाता है इसके बाद अगले दिन मुख्य पूजा 4:00 से पहले भोजन/जलपान तथा दवाई आदि भी वर्जित है ठाणी द्वारा बताया गया कि गाँव में किसी की भी मृत्यु हो जाने पर भी पवासी देवता के मुख्य मंदिर थड़ियार में पूजा अवश्य होती।[16] विदित है कि भारतीय संस्कृति में मृत्यु होने पर सामान्यत: एक निश्चित अवधि तक पूजा-अर्चना निषिद्ध रहती है। मंदिर के प्रसाद के रूप में गुड़, घी, फल, फूल, लड्डू, नारियल एवं आटा मुख्य रूप से देवता को अर्पित किए जाते हैं, प्रसाद कढ़ाई के रूप में अर्पित जाने की मान्यता है वर्तमान में मुख्य मंदिर में बलिप्रथा निषेध कर दी गई है।

मंदिर के प्रांगण में सुबह 4/4:30 बजे रात खुलने एवं कौआ आदि बोलने से पहले प्रभात में बाजगी लोकवाद्य यंत्र ढोलक रणसिंघा आदि तथा मंदिर के अंदर ठाणी घंटी बजाते हैं जो क्षेत्रवासियों के जागने एवं प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या व्यतीत करने का द्योतक है। इसी प्रकार रात 10:00 बजे मंदिर प्रांगण में बजगी लोकवाद्य यंत्र तथा पुजारी मंदिर के दरवाजे पर लटका हुआ बायणा एवं घंटी बजाते हैं। पवासी महासू देवता का सर्व प्रमुख मेला महासू देवता के जन्मोत्सव पर विशिष्ट लोक कलाओं के साथ भादो मास की अमावस्या के उपरांत आने वाली तृतीया के दिन संपूर्ण बंगाण क्षेत्र में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता बंगाण क्षेत्र के सबसे बड़े गाँव भूटाणु में बिस्सू का पर्व के पास 13/14 अप्रैल को मान्यता है जो तीन-चार दिन चलता है। इस पारंपरिक त्यौहार में पांडव कालीन संस्कृति की झलक दिखाई देती है, मान्यता अनुसार पांडवकालीन अस्त्रों यथा धनुष बाण द्वारा युद्धकौशल के लिए बिस्सु पर्व इस क्षेत्र की संस्कृति की अद्वितीय पहचान है। इस क्षेत्र में दीपावली के साथ साथ दीपावली के एक माह पश्चात् बूढ़ी दीपावली मनाने की प्रथा विद्यमान है, इसके संबंध में अलग मान्यताएँ है एक मत के अनुसार भगवान रामचंद्र जी की अयोध्या वापसी की सूचना इस सुदूर क्षेत्र को एक माह पश्चात मिली तथा दूसरे मत के अनुसार फसल का समय होने के कारण व्यस्तता के चलते 1 माह पश्चात कार्य निपटाकर बूढ़ी दीपावली का पर्व मनाया जाता है।[17] बंगाण क्षेत्र में पवासी महासू के विराजमान स्थल पर बसंत पंचमी का त्यौहार भी धूमधाम के साथ मनाया जाता है।

ठड़ियार का महासू मंदिर मुख्य रूप से यमुना शैली वास्तु में निर्मित है उत्तरकाशी जनपद की यमुना टोंस घाटी में पत्थर और लकड़ी से बने विभिन्न प्रकार के विशिष्ट मंदिर पर्वतीय क्षेत्र के प्रासाद वास्तु का अनूठा उदाहरण हैं, यमुना टोंस घाटी की प्राचीन मंदिर निर्माण विधाओं ने न केवल मध्य भारतीय परंपरा को प्रभावित किया वरन उत्तर मध्यकाल में पुन: सर्व नवीन वास्तु परंपराओं को भी जन्म दिया,18 इस क्षेत्र में पाषाणखंडों और देवदारू की शहतीरों को जोड़कर बिना सीमेंट एवं गारे के मंदिर का निर्माण किया जाता है। महासू मंदिर की तलछंद योजना में एक आयताकार बड़े कक्ष के पूर्वार्ध में वर्गाकार गर्भगृह बनाया जाता है आयताकार कक्ष के गर्भगृह के सामने का खुला भाग मंडप और अन्य भाग गर्भगृह के पीछे और पार्श्वों में बंद प्रदक्षिणा पथ का निर्माण करता है मंडप के ऊपर की छत से लकड़ी की झालरों में लटकाकर उसे आकर्षण प्रदान किया जाता है गर्भगृह का शिखर आयताकार कक्ष की छत से ऊपर निकला हुआ रहता है, गर्भगृह के शीर्ष पर ऊपर की ओर छोटे-छोटे वृत्ताकार छत्र शोभायमान रहते हैं।[19] मंदिर के मुख्य गर्भगृह

 ISSN 0975-735X

में देवता का निवास है। गर्भगृह के दरवाजे के निकट दूसरे कक्ष में पुजारी एवं ठाणी रात्रि में आराम करते हैं तथा तीसरे कक्ष में यात्रियों, महिलाओं तथा बाजगी के रात्रि में ठहरने की व्यवस्था रहती है, मंदिर के गर्भगृह से लगे दूसरे कक्ष में प्रवेश की अनुमति नहीं है। ठड़ियार महासू के मंदिर प्रांगण में मुख्य द्वार सामने विशाल नंदी मूर्ति एवं शिव परिवार का निर्माण हाल ही के वर्षों में किया गया है जो बहुत आकर्षक है मंदिर प्रांगण में पवासी महासू के वीर केलाथ का छोटा मंदिर विद्यमान है जिसके निकट माता काली के निवास की मान्यता है।

उपसंहार–सर्वविदित है कि संस्कृति को भौगोलिक सीमाओं में बाँधना कठिन है। महाभारतकालीन परंपराओं से जुड़े इस क्षेत्र के मुख्य आराध्य लोक देवता पबासिक (पवासी) महासू महाराज क्षेत्र की लोक संस्कृति का केंद्रबिंदु हैं तथा अपने को पांडवों का वंशज मानने वाले क्षेत्रवासी प्रकृति के नियमों से बँधे हैं। सारांशत: कहा जा सकता है कि बंगाण क्षेत्रवासी प्रकृति से छेड़छाड़ किए बिना अपनी संस्कृति को अनवरत आगे ले जा रहे हैं।

संदर्भ

1. प्रो॰ डी॰डी॰ शर्मा, उत्तराखंड के सामाजिक इतिहास लेखन की समस्याएँ, दून पुस्तकालय एवं शोध केंद्र देहरादून में 4 अप्रैल 2010 को दिए गए व्याख्यान के पृष्ठ संख्या 3-4 के अनुसार
2. सर्वेक्षण रिपोर्ट 1980-81, राकेश तिवारी, पर्वतीय पुरातत्त्व, इकाई-अल्मोड़ा, पृ॰ 4
3. उत्तराखंड का समग्र जनइतिहास का ताना-बाना, शेखर पाठक, पहाड़ तथा उत्तराखंड इतिहास तथा संस्कृति परिषद, पहला आचार्य शिवप्रसाद डबराल स्मारक व्याख्यान, श्रीनगर (उत्त॰) 2007, पृ॰ 24
4. साक्षात्कार, हनोल मंदिर के पुजारी श्री मायाराम, ग्राम पुटाड
5. उत्तराखंड ज्ञान कोश, प्रो॰ डी॰डी॰ शर्मा, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2019, पृ॰ 555
6. साक्षात्कार, हनोल मंदिर के ठाणी श्री दरबान रावत, ग्राम भूनाण
7. श्री रतनसिंह जौनसारी, जौनसार बावर, गीतांजलि प्रकाशन, 2004, पृ॰ 312
8. साक्षात्कार, हनोल मंदिर के पुजारी श्री हरिचंद्र जोशी, ग्राम चात्रा
9. उत्तराखंड ज्ञान कोश, प्रो॰ डी॰डी॰ शर्मा, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2019, पृ॰ 558
10. हिम ओज (जौनसार-बावर अंक), श्री रतनसिंह जौनसारी, 2004, पृ॰ 68
11. साक्षात्कार, श्री उपेंद्रसिंह चौहान पुत्र श्री ज्योतसिंह चौहान, ग्राम किरोली
12. साक्षात्कार, भूटाणु ग्राम के प्रधान, श्रीमाटी रेखा पंवार पत्नी श्री कुशालसिंह पंवार
13. जौनसार-बावर, रवाँई, जौनपुर, हेमा उनियाल, उत्तरा बुक्स, तक्षशिला प्रकाशन, 2018, पृ॰ 98
14. साक्षात्कार, ठड़ियार मंदिर के पुजारी श्री रामेश्वर नौटियाल, ग्राम डगोली
15. साक्षात्कार, ठड़ियार मंदिर के पुजारी श्री पीतंबर नौटियाल, ग्राम डगोली
16. साक्षात्कार, ठड़ियार मंदिर के थाणी श्री चैनसिंह राणा, ग्राम डगोली
17. साक्षात्कार, श्री दीपककुमार पुत्र श्री दीवानसिंह पंवार, ग्राम भूटाणु
18. सर्वेक्षण रिपोर्ट 1981,82,83, राकेश तिवारी, पर्वतीय पुरातत्त्व, इकाई अल्मोड़ा, पृ॰ 02
19. सर्वेक्षण रिपोर्ट 1981,82,83, राकेश तिवारी, पर्वतीय पुरातत्त्व, इकाई अल्मोड़ा, पृ॰ 77,78

रणवीर सिंह सुपुत्र श्री ऋषिपाल सिंह
ग्राम-रतनपुर खुर्द, पोस्ट-मुंडा खेड़ा
जिला-अमरोहा (उ॰प्र॰) 244221
मो॰ 7652010046
rnrsgh1441@gmail.com

ललित कला में संगीत का स्थान एवं मानव-जीवन के साथ संगीत का संबंध

डॉ॰ रविन्द्र कुमार
पूर्व शोधार्थी, संगीत विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

कलाओं को सामान्यत: दो वर्गों में विभक्त किया जाता है–ललित कला तथा उपयोगी कला। ललित कलाएँ मनुष्य के सौंदर्यबोध का प्रतीक हैं। उपयोगी कलाओं में बौद्धिकता तथा उपयोगिता का सम्मिश्रण रहता है। ललित कला क्या है? यह समझने के लिए लालित्य क्या है यह समझना आवश्यक है। इसे शब्दों में व्याख्या करना कठिन व्यापार है। लालित्य हम अनुभव कर सकते हैं। लालित्यपूर्ण किसी भी बात को देखते समय हम उसके कुछ गुणों का विचार करते हैं, तो केवल सुंदरता या सादगी न होकर इनसे भी कुछ विशेष बात उसमें होती है। माधुर्य, सौंदर्य, सहजता, सरलता, प्रसाद, ओज प्रवाह आदि बातें लालित्य के अंतर्गत आती ही हैं। लयात्मकता लालित्य का एक और विशेष प्रमुख गुण है। ये सारी बातें जिस कला में होंगी, वह ललित कला कहलाएगी।

ललित कलाओं में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला और काव्य कला की गणना होती है। उपयोगी कलाएँ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संबद्ध हैं। उपयोगी कलाओं में भी थोड़ा-बहुत सौंदर्यबोध का भाव तो रहता है, पर वह गौण है। कुर्सी-मेज आदि वस्तुओं में 'डिजाइन' का ध्यान रखा जाता है, किंतु यह डिजाइन प्राय: उपयोगिता के दृष्टि से बनाई जाती है। इस प्रकार उपयोगी कला व्यवहारजनित और सुविधाबोधी है तथा ललितकला मन के संतोष के लिए है। साथ ही उसमें उस विशिष्ट मानसिक सौंदर्य की योजना है, जो उपयोगितावाद से भिन्न वस्तु है। भावात्मक प्रदर्शन जिसका मुख्य ध्येय विशुद्ध आनंद-प्राप्ति हो, उसे ललित कला कहेंगे। ललित कला के उपयोग में पाँच में से केवल दो ही इंद्रियों का उपयोग होता है–दर्शनेंद्रिय (आँख) और श्रवणेंद्रिय (कान), बाकी इंद्रियों से हम जगत को जानते हैं।

कई विद्वानों ने ललित कलाएँ पाँच मानी हैं–

(1) भवन निर्माण के रूप में वास्तुकला

(2) भावों की पूर्ति के रूप में प्रतिपन्न करने पर मूर्तिकला

(3) प्राकृतिक दृश्यों को चित्रफलक पर उतारने पर चित्रफलक पर उतारने पर चित्रकला

(4) शब्द तथा भाषा के माध्यम से भावसंप्रेषण करने पर काव्यकला

(5) सप्तस्वरों के माध्यम से भाव व्यक्त करने पर संगीतकला

इनमें से प्रथम तीन अर्थात् वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला को 'दृश्य' माना जाता है तथा संगीतकला और काव्यकला को प्रमुखत: 'श्रव्य' कहा गया है। ललितकलाएँ मनुष्य के सौंदर्यबोध की विकसित अवस्थाओं की परिचायक हैं। ये गौण रूप से उपयोगी भी हो सकती हैं,

परंतु प्रमुखत: ये अलौकिक आनंद प्रदान करती हैं ललितकला का मुख्य ध्येय भावात्मक प्रदर्शन तथा विशुद्ध आनंद प्राप्ति होता है।

अन्य ललितकलाओं की तुलना में संगीत–काव्य के उपकरण भाषा और भाव है, चित्रकला के रेखा और रंग है, वहीं संगीत के प्रमुख उपकरणों के रूप में स्वर और लय ही हैं। यहाँ सुस्पष्ट है कि संगीत के उपकरण अन्य ललितकलाओं के उपकरणों की अपेक्षा अमूर्त (Abstract) व गतिशील (Dynamic) हैं। स्वाभाविक रूप से इन उपकरणों से निखरी कला भी अत्यंत अमूर्त व गतिशील होगी अन्य कलाएँ जब मूर्त से अमूर्त में, प्रत्यक्ष से परोक्ष में ढलने के प्रयत्न में लगी रहती हैं, वही संगीत सहज रूप में प्रारंभ से ही बिना किसी नाटकीय परिस्थिति तथा बिना किसी अन्य कला-विधा के हस्तक्षेप के अमूर्त रूप में हमारे कानों के समक्ष आती है, अन्य ललित कलाएँ अंततोगत्वा जहाँ पहुँचना चाहती हैं संगीत वहाँ पहले से ही स्थित है।

संगीतकला का मूल आधार नाद है। नाद अपने-आपमें पूर्ण है। उसे किसी बाह्य मूर्त आधार की जरूरत नहीं हैं। वैसे भी नाद को परमतत्त्व का अंश माना गया है 'और इसीलिए उसमें निर्मित संगीत परमतत्व के नकल की नकल नहीं हैं। वह एकदम परमतत्व से ही संबंधित हैं। संगीत मैं 'गायन', 'वादन', नृत्य तीनों की ही समावेश है। संगीत में भी 'कंठसंगीत' को परमात्मा के निकट माना गया है। और शायद इसी गुण के कारण संगीत को सर्वश्रेष्ठ 'ललितकला' कहा गया है।

कुछ विद्वानों काव्यकला को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं तो कुछ विद्वान् संगीतकला को इसके बारे में कई मतभेद हैं। 'प्लेटो' ने काव्यकला को सर्वश्रेष्ठ कला का स्थान दिया है। आधुनिक विचारकों के मतानुसार, संगीत अपने-आपमें एक स्वतंत्र और सौंदर्यपूर्ण कला है। संगीत के स्वर भौतिक जगत से परे है। संगीतकला अमूर्त इस कारण से है, क्योंकि उसे बाह्य साधनों की कम-से-कम आवश्यकता रहती है। स्वयं नाद ही अमूर्त है व नाद से ही संगीतोत्पत्ति होती है। कुछ विद्वानों के अनुसार सभी कलाएँ एक समान हैं। वैसे भी देखा जाए तो सभी कलाओं के मूल तत्त्व एक ही होते है। उद्देश्य भी एक ही है। फर्क सिर्फ माध्यम का है।

वास्तव में इस कलाओं द्वारा अलौकिक आनंद की सृष्टि होती है। यदि हम इन पाँचों ललित कलाओं के वाह्य आवरण को हटा लें तो हमें प्रत्येक कला का रूप एक-सा प्रतीत होगा। 'रसानुभूति' यह हर एक ललित कला का गुण है। संगीत भी एक ललित कला मानी गई है जो केवल सुंदर ही नहीं वरन् मन को शांति देने वाली आनंद एवं प्रेरणा प्रदान करने वाली उच्चकोटि की कला है। ईश्वर का साक्षातकार कराने वाली ब्रह्मसहोदर है। संगीत एक ईश्वरीय देन है।

इन पाँच ललित कलाओं में श्रेष्ठ स्थान कुछ विद्वानों के अनुसार काव्य का है, तो कुछ संगीत को सर्वोच्च ललितकला मानते हैं। इसके लिए कुछ निष्कर्षों के अनुसार इस प्रश्न का विचार करना पड़ेगा।

1. **शाश्वतता**–इस दृष्टि से देखा जाए तो वास्तुकला सबसे अधिक शाश्वत है। संगीत तो उतनी शाश्वत नहीं वह तो सुनने सुनाने वाली कला है।

2. **सूक्ष्म साधन**–अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए किसी भौतिक पदार्थ को माध्यम बनाना ही पड़ता है।

काव्य में शब्दों को उपकरण बनाकर कवि अपनी सृष्टि करता है। वास्तुकला मूर्तिकला तथा चित्रकला में ईंट, चूना पत्थर, छेनी हथौड़ी, कागज, रंग, ब्रश, तूलिका आदि भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। पर संगीतकार के पास सिर्फ सप्तस्वर हैं, और वे भी अमूर्त। कवि, वास्तुकार,

शिल्पकार, चित्रकार के लिए तो प्रकृति का विशाल द्वार खुला हुआ है, परंतु संगीत की रचना मात्र ध्वनि-संयोजना पर की जाती है एवं संगीतकला अपने ही पैरों पर खड़ी होकर अपना रूप प्रस्थापित करती है। संगीत की अभिव्यक्ति के माध्यम स्वर व लय हैं, जिनका कोई सांसारिक वस्तु से किसी प्रकार का संबंध नहीं है। जबकि अन्य सभी कलाओं की अभिव्यक्ति के साधन सांसारिक विषयों से संबंधित हैं।

3. **प्रभाव**–कला की श्रेष्ठता का एक मापदंड यह भी है कि उसका अधिकाधिक लोगों पर प्रभाव हो। स्थापत्य या वास्तुकला पूर्णरूप से स्थिर या अचल है। निर्मित भवन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जाया जा सकता है। अत: हर व्यक्ति इसे देखकर आनंदित हो, यह संभव नहीं है। मूर्तिकला में भी यदि मूर्ति छोटी है तभी उसका स्थानांतरण संभव है, परंतु इसमें भी मूर्ति के खंडित होने का भय रहता ही है। काव्य तथा संगीत ही ऐसी कलाएँ हैं जो पूर्णत: गतिशील हैं तथा किसी भी समय या किसी भी जगह प्रस्तुत की जा सकती हैं। साथ ही रेडियो, टी॰वी॰, टेपरेकॉर्डर आदि संचार-माध्यमों के कारण इनका प्रभाव भी अधिक व्यापक है। काव्य से भी ज्यादा प्रभावशाली संगीतकला है, क्योंकि इसमें काव्य के समान भाषा व शब्दों की सीमा नहीं रहती है। उदाहरण के लिए टी॰वी॰ पर प्रदर्शित लोकगीतों या नृत्य का आनंद सुदूर प्रांत का निवासी भी उठा सकता है, जबकि भाषा न समझने पर काव्य इसके लिए सर्वथा अनुपयोगी हो जाता है। अत: संगीत अन्य सभी ललितकलाओं की तुलना में अधिक व्यापक व सर्वग्राह्य है।

4. **आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति**–संगीत द्वारा आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति की जा सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य कलाओं का विचार करते समय यह प्रतीत होता है कि उनसे आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति हम नहीं कर सकते। संगीत हमें परमतत्त्व तक पहुँचा सकता है, जहाँ है केवल विशुद्ध आनंद। अरविंद जी के शब्दों में 'संगीत मूलत: एक धार्मिक व आध्यात्मिक कला है जिसके पथ पर चलकर हम अपने लक्ष्य 'परमतत्व' तक पहुँच सकते हैं। अन्य कलाएँ इस गुण में संगीत की बराबरी नहीं कर पातीं'।

5. **सर्वाधिक ललितकला संगीत**–ललितकला का अर्थ होता है, वह कला जो आनंद, सौंदर्य प्रदान करें। इस गुण को ध्यान में लाने से पता चलता है कि संगीत, इस गुण में सबसे आगे है। यद्यपि अन्य कलाएँ भी लालित्यपूर्ण हैं।

काव्य तो इस क्षेत्र में काफी आगे है, परंतु काव्य भी इस संदर्भ में संगीत से पिछड़ जाता है। क्योंकि वह केवल उन्हीं लोगों को आनंद प्रदान करता है जो उस भाषा से परिचित हों। परंतु संगीत मनुष्य ही क्यों पशु-पक्षियों तक को आनंदविभोर कर देता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'Music is the universal language of mankind' इस दृष्टि से भी अन्य कलाएँ संगीत से पीछे ही रह जाती हैं। काव्य का प्रभाव केवल मनुष्य तक ही सीमित है, परंतु उसके लिए भी शिक्षित होना व भाषा का ज्ञान रखना आवश्यक है। परंतु संगीत का प्रभाव मनुष्यों ही नहीं, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों तथा प्राकृतिक तत्त्वों पर भी पड़ता देखा गया है। फसलों के सुचारू रूप से वृद्धि होने में तथा गायों द्वारा अधिक दूध की प्राप्ति में संगीत सहायक होता है यह तथ्यों विभिन्न प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है।

कला की श्रेष्ठता के मापदंड को सुनिश्चित करते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि समय सतत परिवर्तनशील है। देश-काल व परिस्थितियों के अनुसार मानव की रुचियाँ व कल्पनाएँ बदलती रहती हैं। वास्तुकला के अंतर्गत जो भवन एक बार बन जाता है, उसमें परिवर्तन संभव नहीं

हैं। यही बात मूर्तिकला व चित्रकला पर भी लागू होती है। अत: यह आवश्यक है कि कला में भी समय, परिस्थिति व लोकरुचि के अनुसार बदलने की क्षमता हो।

काव्य व संगीत में एक ही विषय पर समय समय के कवियों व कलाकारों ने अपनी कल्पना व शैली के द्वारा उसे नवीन रूप दिया। संगीत के अंतर्गत एक ही समय में विभिन्न भावों का निष्पादन किया जा सकता है। उदाहरणत: ठुमरी की गायकी में एक ही समय में क्रोध के निराशा के शिकायत के, हठ के, रूठने के भाव दिखाए जा सकते हैं, जो अन्य किसी ललितकला में संभव नहीं हैं। अत: संगीत अन्य कलाओं से अधिक लचीला व परिवर्तनशील होता है।

संगीत एक गतिशील कला है। इसमें जैसे-जैसे कृति बनती जाती है, आनंद आता है। उसके विपरीत अन्य कलाओं की कृतियाँ जब तक पूर्ण न हो जाएँ, आनंदानुभूति नहीं करा सकतीं। अपूर्ण चित्र, कविता, भवन या मूर्ति कभी किसी को आकर्षित करने की क्षमता नहीं रखती। इसके विपरीत संगीत अपने प्रथम चरण से ही श्रोता को आनंदित करना प्रारंभ कर देता है। तानपूरा वाद्य छिड़ते ही या षडज स्वर स्थापित होते ही संगीत अपने अनुकूल वातावरण तैयार कर देता है। इसके उपरांत जैसे-जैसे संगीत के अंतर्गत रचना का विकास होता है, आनंदानुभूति में वृद्धि होती जाती है। इस दृष्टि से भी संगीत अन्य ललितकलाओं से श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

ऊपर बताए गए सभी तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि समस्त ललितकलाओं में संगीत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। मधुर संगीत की स्वर लहरियाँ सुनकर पाषाणहृदयी भी झूम उठता है।

इस संगीतकला की एक ही कमी है, वह यह है कि इस कला का अंत कलाकार के साथ होता है। 'ताजमहल' आज भी अपने जन्मदाता की स्मृति ताजा करता हुआ स्थित है। मूर्तिकला के नमूने एलोरा, कोणार्क में सुरक्षित हैं, पर 'तानसेन' 'बैजू बावरा' आदि की कला उनके साथ ही गई। यह परंपरा कुछ समय आगे तक शिष्यों के रूप में नि:संदेह चलती रही और वैसे आज नोटेशन (Notation) टेपरिकार्डर आदि द्वारा उनकी कलाकृतियों को और सुरक्षित रख सकते हैं। पर इतना होते हुए भी ललितकलाओं में संगीत को जो श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है, वह और किसी भी कला को नहीं। संगीत अन्य कलाओं से अधिक परिवर्तन व लचीला होता है। संगीत अन्य सभी ललित कलाओं की तुलना में अधिक व्यापक व सर्वग्राह्य है। स्वर-समूह की संयोजना चाहे मानव कंठ से प्रस्फुटित हो या वाद्य से, बिना किसी साहित्य का आश्रय लिए पशु, पक्षी, मानव संपूर्ण जड़ चेतन को अपने प्रभाव में बाँधने की क्षमता रखती है। संगीत सहजतापूर्वक एक हृदय से निकलकर दूसरे हृदय को छू लेता है। अत: संगीत उत्कृष्टतम ललितकला है व अन्य समस्त ललितकलाओं की तुलना में सर्वश्रेष्ठ है।

संसार में मनुष्य प्रीति व आनंद के लिए लालायित है। सभी कार्यों, सभी अवस्थाओं में मनुष्य प्रणय और प्रीति का संधानी है। प्रीति-साधन के लिए जितने उपाय हैं, संगीत उनमें श्रेष्ठ है। यह सर्वसाधरण के लिए उपयोगी है। संगीतविलासी के लिए विलास का उपकरण, कर्मी के लिए अवसर विनोद साधन, भावुक के लिए भाव प्रस्रवण, साधक के लिए श्रेष्ठ साधन और योगी के लिए प्राणायाम है। क्षुद्र क्षणभंगुर माया-मोह से चिरस्थायी निर्मल आनंद, सभी संगीत से प्राप्त है। संगीत से प्रत्येक को जिसका जितना अधिकार है, उतना ही आनंद या सुख प्राप्त होता है। संगीत प्रमोद-कल्पतरु है, देवगण को अभिलषित फल प्रदान करता है। संगीतालाप से प्रणयी विमोहित होता है, विरही विरह-व्यथा में अपने को भुला देता है, शोकार्त्त संगीत के गुण से हृदय में शांति प्राप्त करता है, दुखी दु:ख की ज्वाला-यंत्रणा भूल जाता है, भावुक हृदय में शत-शत नवीन भाव

जाग्रत होते हैं, साधक संगीत की अनुप्रेरणा से विमल शाश्वत सुख के अधिकारी होते हैं। ब्रह्मरस स्वरूप और आनंदस्वरूप है, संगीत में उसी आनंदस्वरूपता की उपलब्धि होती है।

गोपी पतिरनंतोऽपि गीत ध्वनिवंशगत:

साम गीतरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती।। (स्वरमेल कलानिधि, पृ॰ 11)

मानव-जीवन में संगीत उस समय से व्याप्त है, जब पृथ्वी का विकास भी पूर्ण रूप से नहीं हुआ था। हमारे शास्त्रों के अनुसार संगीत ईश्वरीय वाणी है अत: वह ब्रह्मा का ही एक रूप है। गोपी पति (भगवान कृष्ण) जो अनंत हैं, वे भी गीतध्वनि के वशीभूत हैं। ब्रह्माजी सामगीत रत हैं, अर्थात् सामगान अतीव प्रिय है। सरस्वती देवी वीणा पर आसक्त हैं। फिर हम मनुष्यों की तो बात ही क्या है। जैसे जैसे मुनष्य ने संस्कृति का विकास किया, संगीत जीवन के अधिक निकट आता गया। क्योंकि जीवन की तकनीकी एवं व्यस्तता के कारण मनुष्य मानसिक शांति के लिए संगीत की आवश्यकता को अधिक महसूस करने लगा।

यह एक स्तुत्य तथ्य है कि जगन्नियंता ने जबसे ब्रह्मांड का सृजन किया, तभी से प्रत्येक विषयवस्तु के दो पहलू हुए हैं। यही तथ्य मानव स्वभाव के साथ भी लागू है। मानव स्वभाव से एक ओर जहाँ सत्तापिपासी, हिंसक तथा वैभव-आकांक्षी होता है, वहीं दूसरी ओर वह दानी, दयालु तथा कला प्रेमी भी होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिए उसे जीवनयापन का कुछ-न-कुछ सहारा भी ढूँढना पड़ता है। जीवनयापन के लिए धन किसी-न-किसी कला या उद्योग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, जैसे संगीतकला, अन्य ललितकलाएँ, सिलाई, कारीगरी, लेख-खुदाई आदि। किंतु उपर्युक्त कलाओं में भी संगीत को चौंसठ कलाओं में श्रेष्ठतम कला तथा समस्त विद्याओं में आत्मानंद की विद्या कहा जाता है।

संगीत मनुष्य की नहीं बल्कि भगवान् की दी हुई अमूल्य निधि है। इसकी महिमा के विषय में प्रसिद्ध अँग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर का कथन है–

'The man that has no music in himself nor is moved
With the concord of sweet sound is fit for treasons,
Stratagems as night and his ffaection dark As era Bees.
Let no such man be trusted.'

अर्थात् जिस मनुष्य में संगीत के प्रति रुचि नहीं, जो इसके मधुर स्वरों से मोहित नहीं होता, वह पतित, विश्वासघाती एवं आत्मद्रोही है और उसका हृदय अंधकारमय रात्रि से भी भयंकर है। जिस मनुष्य का मनरूपी कुमुद संगीतरूपी चंद्रिका से चमत्कृत न हो, वह अभागा ही कहा जाएगा।

संगीत मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करने का श्रेष्ठतम साघन है। संगीतकला शुष्कतम जीवन को सरस बनाती है। संगीत एक लोकोपयोगी कला है। संगीत मानवता का पाठ पढ़ाता है। असभ्य को सभ्यता का और संकीर्ण हृदयी को विश्व बंधुत्व का संदेश देता है। संगीत समीर के शीतल झोंके, हृदय की कलुषता, विकृत वासनाओं की संकीर्णता तथा तामसी एवं आसुरी भावनाओं का समूल उच्छेदन कर आत्मा को निश्चल तथा पवित्र वना देता है। शास्त्रों में संगीत के विषय में कहा गया है–

ज्ञानं कोटि गुणं ध्यानं, ध्यानं कोटि गुणं स्रोतं।

स्रोतं कोटि गुणं जपं जयं कोटि गुणं गानं।

अर्थात् ज्ञान, स्रोत, ध्यान, जप, तप, इन सभी से बढ़कर 'गायन' है क्योंकि गायन से परे कुछ नहीं।

'सृष्टि के स्वर्णिम विहान से लेकर प्रलय की काली संध्या तक संगीत का अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता है। युगस्रष्टा मानव ने जन्म लेते ही गीत सुने और मृत्यु होने पर भी गीत सुनते-सुनते उसने श्मशान-यात्रा की। घंटे-घड़ियाल और 'राम-नाम सत्य है' की ध्वनियों के साथ उसका स्थूल शरीर भी शून्य में खो गया।

भावुकता से हीन कोई कितना ही पाषाण-हृदय क्यों न हो संगीत से विमुख होने का दावा उसका भी नहीं माना जा सकता। संगीत मानव-समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांगीतिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रतीक है। यह आदिमकाल से जनजीवन आत्मिक और सुखानुभूतियों की ललित अभिव्यक्ति का मधुरतम माध्यम रहा है। प्रकृति के कण-कण में संगीत-सरिता का कर्णप्रिय कल-कल निनाद व्याप्त है। ओंकार रूप सार्वभौम सत्ता को ही नादब्रह्म की संज्ञा दी गई है। संगीत एक ऐसा विश्वव्याप्त स्नेहसूत्र है जो हर समय, विश्व की प्राकृतिक विविधा और मानवीय असंगति को एक मधुरतम और मौलिक एकता की अनुभूति से आबद्ध करता है। विश्व के कण-कण में संगीत, कहीं पर अव्यक्त, कहीं पर मुखर इस तरह व्याप्त है। मेघों की मंद गंभीर ध्वनि, आँधी-तूफान की विभीषिकाएँ, शोर करती हवाएँ, पक्षियों का कलरव, सागर की उत्ताल तरंगों का गर्जन, निर्झरों का कल-कल निनाद, यह सब शाश्वत संगीत के ही विविध रूप हैं।[4]

मानव जीवन में संगीत का स्थान—यहाँ पर केवल शास्त्रीय संगीत से ही नहीं वरन् स्वरों में व्यक्त होने वाले भावों के उद्रेक से भी संगीत का अभिप्राय है। उसमें लोकगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक सभी गीतों का समावेश है।

'जीवन-पथ के किसी भी मोड़ पर रुककर देख लिजिए, वहीं आपको संगीत मिलेगा। दु:ख से सुख से, रूदन से हास से, योग से वियोग से, सारांश यह है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था से येन-केन प्रकारेण संगीत की कड़ी अवश्य जुड़ी रहती है। युद्ध के मोर्चे पर उत्साह-वृद्धि के लिए वर्तमान युग में भी विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के सैनिक विभिन्न प्रकार के संगीत का ही प्रयोग करते हैं। अट्टहास करती हुई मृत्यु के उस बीभत्स वातावरण में सैनिकों के मस्तिष्क का संतुलन ठीक रखने एवं गगनभेदी तोपों के भयावने गर्जन में कर्त्तव्य की कसौटी पर खरे उतरने की शक्ति गीत ही प्रदान करता है।'[5]

'जगत संगीतमय है, प्रकृति संगीतमयी। पवन के मधुर निस्वन, वृक्षपत्र के संचलन, कल्लोलिनी की कलध्वनि में संगीत है, मयूर के केकास्वर, कोकिल के कुहुरव, चकोर, चातक, पपीहा आदि कितने ही पक्षियों के सुमिष्ट स्वर में संगीत निरंतर झंकृत होता रहता है। संगीत का अपना स्वभाव है। मानव-कंठ में संगीत की पूर्ण स्फूर्ति है। गंधर्व-किन्नर देवताओं में इसका चरमोत्कर्ष है। मनुष्य के वाक्यंत्र में विविध स्वरों का विकास होता है। जिस नैसर्गिक शक्ति के प्रभाव से मनुष्य भाषा मे विविध भाव, विविध चिंतन एवं विविध कामना व्यक्त करता है, वह शक्ति ही संगीत के मधुर स्वर-विन्यास में उसे समर्थ बनाती है। मानव जीवन में अत्यधिक परिमाण में संगीतशक्ति है। असंख्य स्वरों में सात स्वर ही स्वरों के मान-स्वरूप में ग्रहण किए गए हैं। इनके नाम यथाक्रम—षड़ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हैं। इन सात स्वरों की सहायता से सभी स्वरों के भेद एवं परिमाण स्थिर किए जाते हैं। जिस स्वर से अन्य छह स्वरों की उत्पत्ति होती है, उसका ही नाम 'षड़ज' अर्थात् एक षड़ज् से श्रुति-भेद के क्रमोत्थान से अन्य छह स्वर मिलते हैं।'[6]

संगीत की मोहिनी शक्ति की तुलना नहीं है। जाति, उम्र, संस्कृति का भेद नहीं है। संगीत से,

समान रूप से संपूर्ण मानव-जाति मुग्ध होती है। सुस्वर, सुछंद, ताल में उद्गीत संगीत के श्रवण से मोहित नहीं ऐसा कोई नहीं है। यहाँ तक कि अरण्य के पशु-पक्षी भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। संगीत की इस दिव्य शक्ति पर हमारी श्रद्धा है और केवल मनोरंजन नहीं बल्कि आत्मा का साक्षात्कार करने वाली प्रचंड शक्ति स्वरों में है। संसार में हर व्यक्ति अंतिम आनंद की खोज में लगा हुआ है। यह खोज मनुष्य के संपूर्ण जीवन जारी रहेगी।

अंतिम सत्य भी केवल विशुद्ध आनंद है। संगीत से प्राप्त आनंद ब्रह्मानंद सहोदर माना जा सकता है। आनंद के जो चार प्रकार हैं, वे निम्नोक्त हैं–

1. ऐंद्रिय सुख देने वाला आनंद
2. मानसिक आनंद
3. बौद्धिक आनंद
4. आध्यात्मिक आनंद

सभी तरह के आनंद संगीत से प्राप्त होकर जीवन आनंदमय बनाते हैं। संगीत मुनष्य को उच्चत्तर भावों के लिए प्रेरित करता है। मानव-हृदय के सभी भावों पर संगीत का समान आधिपत्य रहते हुए भी धर्म-भाव ही संगीत की प्रधान आश्रयभूमि है। आत्मा को स्वस्थ रखने का कार्य संगीत करता है–

'What medicine is to the body
Music is to the soul'

ईश्वर की उपसना का यही सर्वोत्कृष्ट प्रीतिपूर्ण मार्ग है। अंतर से, खुले मन से भगवान् की आत्म-निवेदन करने का ऐसा उपाय और उपकरण ओर नहीं है। सभी देशों में, सभी जातियों में देवोपासना के लिए संगीत की सहायता लेती हैं। मोक्षप्राप्ति के लिए योगादि साधन कष्टमय है परंतु संगीत के साधना से भी सच्चिदानंद प्राप्त होता है, व्यक्ति को चिंताओं से मुक्ति मिलती है और शांति भी प्रदान करता है। संगीत मानव की सहज प्रवृत्ति है। संगीत विश्व के कण कण में समाया हुआ है। जब शब्द का ज्ञान भी मानव को नहीं हुआ था, उस समय भी नि:शब्द स्वर-लहरियाँ मानव के हृदय से निकल पड़ती थीं अत्यंत आनंद के क्षणों में या विरह-वेदना के रूप में स्वर फूट पड़ते थे।

जीवन का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण क्षण संगीत से पूर्ण है। संगीत के द्वारा हम अपने भावों को प्रकट करते हैं। साथ ही दूसरे के भावों को भी समझ सकते हैं। जीवन के विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत हम अपने-अपने रुचि के अनुसार गाते हैं। संगीत के अंतर्गत शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, लोकगीत, नृत्यगीत, नाट्यगीत, कथागीत, ग्राम्यगीत, व्रत एवं त्योहारगीत, मेले, अनुष्ठान एवं उत्सव-संबंधी गीत, जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाहादि संस्कार-संबंधी गीत, बालगीत, परिवारिक गीत, धान एवं फसल की कटाई के समय गाए जानेवाले गीत आदि आते हैं। ऐसे गीतों से हमें विभिन्न क्षेत्रों की परंपराएँ, रीति-रिवाज, आचार-विचार, भाषा, संस्कार-व्यवहार, तौर-तरीके, विश्वास, रूढ़ियाँ, धार्मिक अनुष्ठान आदि की सामान्य प्रवृत्तियों के संबंध में जानकारी मिलती है।

यह ललितकला महफिल की आनंददायक वस्तुओं का आभूषण, मानव के मनोरंजन का साधन, संतों के लिए आत्मानंद की मार्गदर्शक, प्रेमियों के जीवन की मित्र, विरहाग्नि से पीड़ित व्यक्तियों को सांत्वना देने वाली, एकांतवासियों की मित्र तथा सहायक और अपाहिज एवं आपदाग्रस्त प्राणियों की सहचरी ही नहीं, अपितु इस प्रकार के सैकड़ों गुणों के अतिरिक्त इस कला में और भी अनेक विशेषताएँ हैं। यदि संगीत की कलात्मक गहराइयों, कठिनतम बारीकियों और महान् सिद्धांतों

तथा नियम आदि के कठिन स्थलों की उपेक्षा करके कतिपय साधारण विशेषताओं पर ही दृष्टिपात किया जाए, तो निष्कर्षरूपेण यही कहना पड़ेगा कि संगीत मानव के लिए नितांत आवश्यक है।

मानव-जीवन में संगीत हमेशा रहेगा। क्योंकि जीवन के लिए संगीत एक वरदान है। वैयक्तिक, सामाजिक आध्यात्मिक सभी स्तरों पर संगीत का एक सा महत्त्व है। संगीत के बिना मानव-जीवन अधूरा है। ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। दूसरे शब्दों में 'Music Adds richness to life' जीवन की पूर्णता करवाने में संगीत का बड़ा योगदान है।

संदर्भ

1. भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, पृ॰ 18
2. संगीत विशारद, पृ॰ 522
3. संगीत पत्रिका 1990 जुलाई, पृ॰ 23
4. संगीत विशारद, पृ॰ 522
5. संगीत पत्रिका, 1990 जुलाई, पृ॰ 23
6. भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, पृ॰ 25

V.P.O Siwani Bolan teh nd
District Hisar 125047 (H.R.)
Mob. 9416455319
ravinder.nagar05@Gmail.com

जलवायु परिवर्तन एवं बदलती कृषि की चुनौतियाँ : पूर्वी उत्तर-प्रदेश का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कु॰ ऋतु रानी, शोधछात्रा, पीएच॰डी, समाजशास्त्र विभाग
डॉ॰ पारिजात प्रधान, असि॰ प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय दक्षिण बिहार, गया (बिहार)

जलवायु परिवर्तन के कारण पिछले कुछ दशकों में भारतीय कृषि एवं किसानों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आज जलवायु परिवर्तन का प्रभाव हम सभी क्षेत्रों पर देख सकते हैं। जलवायु परिवर्तन आज कृषि को भी अपनी चपेट में में ले रहा है। भारतीय कृषि आज भी मानसून पर निर्भर है लेकिन जलवायु परिवर्तन से मौसम चक्र में आए इस बदलाव ने किसानों को समस्याओं में उलझा दिया है और इसका सबसे अधिक प्रभाव छोटे एवं गरीब किसानों पर पड़ रहा है जिससे आज कृषक समाज तनावग्रस्त होता जा रहा है। छोटे एवं गरीब किसानों पर कर्ज का बोझ और मानसिक दबाव बढ़ता ही जा रहा है जिससे किसानों की आत्महत्या दर बढ़ रही है। पहले यह समस्या देश के कुछ हिस्से में ही थी जैसे आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग तक ही कृषि की समस्याएँ सुनने को मिलती थीं लेकिन आज यह समस्या पूरे देश की समस्या बनती जा रही है। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि यह जलवायु परिवर्तन पूर्वी उत्तर-प्रदेश की कृषि एवं कृषक-समाज को कैसे प्रभावित कर रहा है और किसानों को किन-किन समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यह शोध पत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश के कृषि संकट और चुनौतियों को देखने का प्रयास करता है। इस शोध पत्र के लिए प्रयोग में लिए गए द्वितीयक स्रोतों को देखें तो अलग-अलग निष्कर्ष सामने आते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश की कृषि की समस्याओं को मापने के लिए अलग-अलग स्रोतों को प्रयोग में लिया गया है जिससे कृषि संकट की सही व्याख्या की जा सके। पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि संकट की समस्या कम ही देखी जाती है किंतु अलग अलग जिलों में समस्याएँ भी अलग-अलग हैं। किंतु वक्त के साथ जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप यह संकट पूर्वी उत्तर-प्रदेश राज्य में भी बढ़ती ही जा रही है जिससे किसानों की सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक स्थिति बिगड़ती ही जा रही है। यह शोध पत्र न सिर्फ कृषि संकट की ख्याख्या करता है बल्कि यह कृषक समाज की अन्य समस्याओं एवं चुनौतियों को भी विश्लेषित करता है।

प्रस्तुत शोध पत्र का सर्वप्रथम प्रमुख उद्देश्य उत्तर प्रदेश में जलवायु परिवर्तन के कारण कृषिक्षेत्र में उत्पन्न हो रही समस्याओं का अध्ययन करना है। अध्ययन की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक तथा अन्वेषणात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है, जिससे अध्ययन क्षेत्र के विभिन पहलुओं के बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त की जा सके।

जलवायु परिवर्तन एवं उससे जुड़ी समस्याएँ—भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा उत्तर प्रदेश कृषि में अग्रणी राज्यों में एक बड़ा राज्य है जिसकी अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है। आज जिस

 ISSN 0975-735X

तरह से जलवायु परिवर्तन संपूर्ण विश्व को तेजी से प्रभावित कर रहा है उसे देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि भारत भी इससे अछूता नहीं है। कृषि मंत्रालय की एक विशेष रिपोर्ट के अनुसार–'यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो धान, गेहूँ मक्का, ज्वार, सरसों जैसी फसलों पर जलवायु परिवर्तन का काफी बुरा प्रभाव पड़ सकता है, और इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि इस समस्या को हल करने के लिए सरकार की कोशिश नाकाफी है।' जलवायु पूर्वानुमान कभी भी पूरे यकीन के साथ नहीं लगाए जा सकते हैं उसका एक प्रमुख कारण यह है कि जलवायु कैसे बदलेगी यह आने वाले वर्षों के हमारे फैसलों पर निर्भर करता है। जलवायु परिवर्तन पर आए विश्व बैंक के एक प्रतिवेदन के अनुसार 2050 तक देश के जी॰डी॰पी॰ में 2.5% की कमी आ जाएगी और रहन-सहन के वर्तमान मानकों में 9% तक की गिरावट आ जाएगी।

योजना, जुलाई (2018), में प्रकाशित एक लेख के अनुसार, 'हमारे 85% से अधिक किसान छोटे और सीमांत हैं, जिनके पास बाजार में बेचने लायक अतिरिक्त फसल कम होती है और खेतीबाड़ी में उनका खर्च बहुत अधिक होता है। इसलिए सरकार ने लाइसेंस तथा कराधान संबंधी बाधएँ दूर करने एवं किसानों का मुनाफा बढ़ाने के लिए 2015 में इलेक्ट्रानिक राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई.नाम) शुरू किया।'

जलवायु परिवर्तन का कृषि और खाद्य सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

रिचर्ड महापात्रा ने अपने लेख 'किसानों की मुसीबत बढ़ाएगा जलवायु परिवर्तन' में लिखा है कि भारत डब्लू॰आर॰आई॰ 2020 रैंक में 181 देशों में 89 स्थान पर रहा है इस इंडेक्स में भारत दक्षिण एशिया के देशों में चौथा सबसे जोखिम वाला देश था। भारत दक्षिण देशों में बांग्लादेश, अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बाद चौथा सबसे ज्यादा जोखिम वाला देश था। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी आपदाएँ केवल आज सिर्फ फसलों को नुकसान नहीं पहुँचा रही हैं बल्कि पलायन को भी बढ़ा रही हैं। सितंबर 2020 में 'नेचर क्लाइमेट चेंज' नामक एक जर्नल में प्रकाशित एक अध्ययन में बताया गया है कि जलवायु परिवर्तन से जुड़ा हुआ पलायन मुख्यत: उन देशों में होता है जहाँ कृषि पर निर्भरता अत्यधिक होती है। मौसमी आपदाओं से त्रस्त होकर ही लोग पलायन करने के लिए विवश होते हैं। अध्ययन के मुख्य लेखक और पॉट्सडम और इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इंपैक्ट रिसर्च (पीआइके) व ऑस्ट्रियन अकेडेमी ऑफ साइंसेज के वियना इंस्टीट्यूट ऑफ डेमोग्राफी में वैज्ञानिक रोमन हॉफमैन के अनुसार–'पर्यावरण के कारक पलायन बढ़ा सकते हैं लेकिन यह काफी हद तक देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों पर निर्भर है।' उन्होंने आगे लिखा है कि निम्न और उच्च आय वाले देशों में जलवायु परिवर्तन का पलायन पर असर अलग-अलग है। अक्सर गरीब लोग अपनी गरीबी के कारण ही पलायन की स्थिति में नहीं होते इसलिए आपदाओं में फँस जाते हैं। वहीं अमीर देशों में लोगों के पास संकट से जूझने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन होते हैं जिसकी सहायता से वे इन सभी आपदाओं का सामना करने में सक्षम होते हैं। वहीं मध्यम आय वाले क्षेत्रों में कृषि पर निर्भर लोग ही पलायन अधिक से अधिक करते हैं और इन्हीं पर आपदाओं का असर ज्यादा होता है। (डाउन टू अर्थ, रिचर्ड महापात्रा, 03 फरवरी 2021, किसानों की मुसीबत बढ़ाएगा जलवायु परिवर्तन)

खुर्शीद अहमद खान, (2017)अपने एक लेख 'Regionl Dimensions in Crisis of Agriculture : A Case Study of Uttar Pradesh' में लिखते हैं–उत्तर प्रदेश राज्य एक विशाल विकास क्षमता रखने के बावजूद अभी भी पिछड़े राज्यों की श्रेणी में है और इसकी विशेषता

विनिर्माण कि धीमी गति से वृद्धि और कृषि के संकट से है। राज्य की 60 से प्रतिशत अधिक आबादी को आजीविका प्रदान सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP) का लगभग एक चौथाई उत्पादन करने के लिए अत्यधिक अस्थिर कृषि अभी भी महत्त्वूर्ण बनी हुई है। कृषि अभी भी यहाँ जीवनयापन का मुख्य आधार है और लोगों की स्थिति, भाग्य और अस्तित्व इस पर निर्भर करता है। हालाँकि पिछले दो दशकों के दौरान कृषि की स्थिति अधिक खराब हो गई है जिससे कृषि क्षेत्र में संकट की स्थिति पैदा हो गई है। सीमांत और लघु श्रेणी के 80 प्रतिशत से अधिक किसानों के लिए कृषि अव्यवहार्य हो गई है। उत्पादन और उत्पादकता की वृद्धि में गिरावट, कृषि के प्रतिफल में उल्लेखनीय गिरावट, किसानों के कर्ज में वृद्धि, जोखिम में वृद्धि और बार-बार फसलों के खराब होने के कारण अनिश्चितता आदि रही है। इनका संयुक्त प्रभाव कृषि में संकट जैसी स्थिति का होना है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बढ़ती जनशक्ति को अवशोषित करने के लिए कृषि की घटती क्षमता और प्रति व्यक्ति खाद्यान की कम होती उपलब्धता ने स्थिति को और बढ़ा दिया है। उत्तर प्रदेश की विशेषता यह है कि कृषि संकट की कृषि संरचना और प्रकृति और परिणाम (तीव्रता) क्षेत्रीय स्तर पर काफी भिन्न है। वरिष्ठ समाजशास्त्री प्रोफेसर सुरिन्दर जोधका (2021) भी कृषि संकट और खेती से मोहभंग के परिणाम में व्यापक पलायन, बढ़ते कृषि कर्ज और आत्महत्या की तरफ इशारा करते हैं।

रुचिसिंह अपने शोध-पत्र Trends and Patterns of Male-out migration from Rural U.P. में लिखती हैं कि उत्तर प्रदेश में पुरुष प्रवास अत्यधिक हुए हैं। 1.1 मिलियन लोगों ने 2001 में अंतरप्रवास किया जबकि 3.8 मिलियन लोगों ने बाह्य प्रवास किया। उत्तर प्रदेश में सबसे ज्यादा प्रवजन देवरिया, आजमगढ़, कुशीनगर, बस्ती और सुल्तानपुर जिले में देखा जा सकता है।

पॉलीन अहोई (Pauline Ahoy), (2016), अपने एक लेख 'grarian Crisis India : An After math of the New Economic Reforms' में लिखते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था संरचनात्मक परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है। 1970 और 2011 के बीच कृषि का सकल घरेलू उत्पाद का हिस्सा 43% से गिरकर 16% और 2013 में 13.7% हो गया है। यह कृषि के कम महत्त्व के कारण नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर नये आर्थिक सुधारों के कारण हैं। एलपीजी (उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण)।

निष्कर्ष–भारतीय जीवनदर्शन को अपनाना, कृषि वानिकी को बढ़ावा देना, प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन निर्धारित करना, कार्बन क्रेडिट जैसे उपागमों को लागू करना, जैविक कीट नियंत्रकों एवं रसायनों का उपयोग, कृषि अपशिष्ट प्रबंधन आदि उपायों से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है। वृक्षारोपण अकेले जलवायु संबंधित अनेक समस्यओं का हल है। यदि देखा जाए तो मनुष्य की सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि के द्वारा ही संभव है। आज विश्व तेजी से बदलते जलवायु परिवर्तन की वजह से अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सभी क्षेत्रों पर पड़ रहा है किंतु कृषि क्षेत्र पर इसका नकारात्मक प्रभाव अधिक पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण ही वातावरण में अनेकों बदलाव देखे जा सकते हैं जैसे कि अत्यधिक बारिश का होना या सूखा पड़ना या अचानक तापमान में औसत से अधिक वृद्धि होना आदि। बढ़ते जलवायु परिवर्तन की एक बड़ी वजह ग्लोबल वार्मिंग है जिससे आज तेजी से परिवर्तन हो रहा है।

यह बात निष्कर्ष रूप में कही जा सकती है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा उत्तर

प्रदेश भारत का एक कृषि प्रधान राज्य है जिसकी अर्थव्यवस्था कृषि पर ही मुख्य रूप से आधारित है। जिस तरह से जलवायु परिवर्तन का प्रभाव फसलों पर तेजी से पड़ रहा है उसे रोकने के लिए या कम करने के लिए सतत विकास एवं वांछनीय विकास के लिए सरकार एवं नीति निर्माताओं को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कृषि और कृषक समुदाय दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं जिसमें हम किसान की अहम भूमिका को देख सकते हैं। इसलिए किसानों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मुख्य रूप से सीमांत एवं लघु किसानों को केंद्रित नीति के बिना कृषि क्षेत्र सफलता नहीं मिल सकती है।

जिस तरह से आज कृषि संकट न केवल उत्तर प्रदेश में है बल्कि यह पूरे विश्व की समस्या बनती जा रही है और इसकी एक बड़ी वजह जलवायु परिवर्तन है। आज कृषि क्षेत्र में आए कृषि संकट का समाधान मात्र कुछ पैकेज के माध्यम से नहीं हो सकता है, बल्कि इसके लिए कृषि से संबंधित वर्तमान आर्थिक नीतियों में भारी बदलाव में है। कृषिक्षेत्र में नीतियों को मात्र लागू न किया जाए बल्कि उसे जमीन पर उतारा जाए जिससे सीमांत एवं छोटे किसानों को आसानी से इसका लाभ मिल सके इसके लिए सरकार को सख्त कदम उठाने चाहिए। आज भारत एक महाशक्ति बन सकता है, जब बहुसंख्यक लोग अर्थात् किसान समृद्ध होंगे और वास्तविक रूप से शसक्त होंगे। डॉ॰ स्वामीनाथन ने कहा है कि 'ऐसे देश में जहाँ 60% लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं, परमाणु बल के बजाय खाद्य सुरक्षा पर आधारित कृषि बल बनना बेहतर है।'

हम देख सकते हैं कि कृषि क्षेत्र एवं किसानों के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं का लाभ अधिकांशत: कुछ विशेष राज्यों जैसे–महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा आदि के साथ-साथ पश्चिमी उत्तर प्रदेश को ज्यादा लाभ मिलता है और नीति निर्माताओं का ध्यान भी इन्हीं क्षेत्रों पर अधिक केंद्रित रहता है जबकि नीति निर्माताओं को उत्तर प्रदेश के पूर्वी पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है तथा सरकार को पूर्वी क्षेत्रों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि गौर किया जाए तो राज्य (उत्तर प्रदेश) की कृषि को एक स्थाई कृषि प्रणाली की जरूरत है जो आर्थिक रूप से व्यवहार होता है तथा रुपया खेती करने वाले किसान के हाथ में जाए, जहाँ किसान या सीमांत किसान या छोटे किसान कोई भी खेती छोड़कर अन्य रोजगार की तरफ पलायन न करे और किसानों के लिए एक ऐसा किसान-सेटअप तैयार किया जाए जिससे किसानों को अपने ग्रामीण क्षेत्र में ही आसानी से रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें। जलवायु परिवर्तन की वजह से जिस तरह से लगातार फसलों के हो रहे नुकसान को सरकार एवं किसान सभी को मिलकर कम करने का प्रयत्न करना चाहिए अन्यथा देश में खाद्य संकट की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

संदर्भ

1. एच॰आर॰ गौतम, आर॰ कुमार, (2007) कृषि जलसंचयन की आवश्यकता, कुरुक्षेत्र 55: 12-15
2. आर॰के॰ माल, आर॰ सिंह, ए॰ गुप्ता, आर॰एस॰ सिंह, जी॰ श्रीनिवास, एट अल (2006), भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव : एक समीक्षा। जलवायु परिवर्तन 78: 445-478
3. IPCC (2009) जलवायु परिवर्तन 2001: प्रभाव, अनुकूलन और मेहता IPCC की तीसरी अकलन रिपोर्ट के कार्य समूह II का योगदान/कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, यू॰के॰
4. IPCC (1998) IPCC कार्य को संचालित करने के सिद्धांत, IPCC के सत्र में स्वीकृत
5. एच॰आर॰ गौतम, (2009), भविष्य का संरक्षण में जीवन की खुशी, द माईटी, बेनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, टाइम्स आफ इंडिया, चंडीगढ़

6. आर०के० माल, ए० गुप्ता, आर०एस० सिंह, एल०एस० राठौर (2005), जल संसाधन और जलवायु परिवर्तन: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य, वर्तमान विज्ञान 90: 14610-1626
7. IPCC (2007), नीति निर्माताओं के लिए सारांश, जलवायु परिवर्तन 2007: शमन, IPCC चौथी मूल्यांकन रिपोर्ट में कार्यसमूह III का योगदान, कैंब्रिज, यूनिवर्सिटी प्रेस कैंब्रिज, यूनाइटेड किंगडम
8. Ahmad khan,k. .(2017), Regional Dimensions in Crisis of Agriculture : A Case Study of Uttar Pradesh , Ind. Jn. of Agri.Econ. , Vol. 72 No.3, July-Sept. 2017.
9. Ahoy, P. (2016) , Agrarian Crisis India : An Aftermath of the New Economic Reforms , International Journal of Sociology and Social Anthropology (IJSSA) ,1 (1):91-98,Dec.2016 .
10. Raman, R., Ahmad khan ,K.(2017) , Crisis of Agriculture in Uttar Pradesh : Investigating Acuteness and Antecedents , Amity Journal of Agribusiness ,2 (1), (13-27) ,Vol.2 Issue 1 ,2017 .
11. Abrol, Y.P. , Baga, A.K., Chakoavorty, N.V.K. and Wattal P.K. (1991); Impoat of rise in temperature on the productivity of wheat in India, In ! Import of global climate changes in photosynthesis and plant productivity (eds. Y.P. Abral et. all) PP. 787-789, New Delhi.
12. Aggrawal, P.K., Joshi, P.K., Ingram, J.S.I. and Gupta , R.K, (2004), Adapting food system of the infogangetic Plains to global environment change: Key information need to improve policy formulation', Environmental Science and Policy 7,487-498.
13. Aggrawal,P.K., Kropff, M.I., Cassman, K.G. and ten Berge, H.F.M. (1997), Simulating Genetic Strategies for Increased yield Potential in Irrigated, Tropical Environments; Field Crops Res-51-5-18.
14. Chatterjee, A, (1998) Simulating the impact of increase in temperature and CO2 on Growth and Yield of Maiza and sorghum', M.Sc. Thesis (Unpublished), Indian Agricultural Research Institute, New Delhi.

KM REETU RANI
Near lovely girls hostel
Panchanpur, tekari, Gaya 824236 (Bihar)
Mob. 8887554017
ranireetu1728@gmail.com

शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन

डॉ॰ रेणु सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षा विभाग)
दीवान इंस्टीट्यूट आफ प्रोफेशन स्टडीज, मेरठ (उ॰प्र॰)

शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत छात्राएँ जीवन की अनेक समस्याओं से ग्रसित रहती हैं जिनका समाधान पाने की वे इच्छुक होती हैं। यह समस्याएँ मुख्यत: व्यक्तिगत, शैक्षिक, पारिवारिक एवं आर्थिक क्षेत्रों से संबंधित होती हैं। शिक्षण के दौरान कई बार उन्हें शिक्षक व सहपाठियों की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है और वह अपने-आपको उपेक्षित-सा महसूस करने लगती हैं। इसका परिणाम यह भी होता है कि वे अपनी शिक्षण-प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित नहीं कर पाती हैं। परिवार के सदस्यों द्वारा कई प्रकार की ऐसी अपेक्षाएँ जिन्हें यह पूरा नहीं कर पातीं, जिससे वह संशय की स्थिति में रहती हैं और कुछ भी निर्णय लेने में अक्षम रहती हैं। एक तरफ जहाँ परिवार के नियमों को मानने की बाध्यता होती है। वहीं दूसरी तरफ अपने स्वाभिमान को वे खोना नहीं चाहती हैं। आर्थिक क्षेत्र को लेकर भी कई बार वे परेशान रहती हैं क्योंकि लड़की होने के नाते उनकी शिक्षा, विवाह इत्यादि पर होने वाले व्यय को लेकर कहीं-न-कहीं परिवार पर बोझ या दबाव बना ही रहता है। दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं की समस्याएँ भिन्न भी हो सकती हैं व कुछ समान भी। आर्थिक भिन्नता, पारिवारिक स्तर स्वयं का व्यक्तित्व सामुदायिक व शैक्षिक वातावरण आदि का समस्याओं पर प्रभाव पड़ता है।

सामान्य रूप से समाज में छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याएँ होती हैं वे स्वयं को अनुपयोगी एवं उपेक्षित महसूस करना शुरू कर देती हैं और वे अपनी आवश्यकताओं के संबंध को पूरा न होने पर उदासीन रहती हैं। इसके अलावा समाज में व्याप्त असुरक्षा की भावना और लोगों की मानसिकता भी प्रमुख कारण है। पारिवारिक समस्या छात्राओं को परिवार में ही प्राप्त हो जाती हैं। उन्हें घर-परिवार में समानता का हक मिलने पर भी एक पुरुष की तरह समानता नहीं मिल पाती है। उनकी उपेक्षाएँ परिवार से ही शुरू हो जाती हैं।

हमारे देश का संविधान महिलाओं हेतु तीन तरीकों से विशिष्ट मंशा रखता है–

1. महिलाओं और पुरुषों में भेदभाव मिटाने की मंशा।
2. पारिवारिक प्रताड़ना से बचाव हेतु प्रावधान।
3. इन अधिकारों की अवहेलना होने पर न्यायालय द्वारा संरक्षण का प्रावधान।

महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने वाले महत्त्वपूर्ण कतिपय कानून हैं–दहेज अधिनियम 1955, वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम 1986, हिंदूविवाह अधिनियम 1955, विशेष विवाह अधिनियम 1954, शरीयत प्रार्थना अधिनियम 1937, सिनेमैटोग्राफ अधिनियम 1952, मुस्लिम विवाह भंग अधिनियम 1959, स्त्री अशिष्ट रूपण प्रतिबंध 1956 बालविवाह अवरोधक 1929, चिकित्सा गर्भ समाप्ति 1956, हिंदू गोद लेना व भरण-पोषण अधिनियम 1956, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम

1956: दिल्ली पुलिस अधिनियम (महिला से छेड़खानी) 1978 आदि।

भारत सरकार द्वारा 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया। आयोग का मुख्य कार्य है कि वह महिलाओं के लिए संविधान व अन्य रक्षा उपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण और परीक्षण करना तथा महिलाओं की शिकायतों पर जाँच करना सभी राज्यों में इसी तर्ज पर राज्य महिला आयोग गठित किए गए।

स्पष्ट है कि महिलाओं के संरक्षण के लिए कानूनी जामा काफी विस्तृत है। बस आवश्यकता है उन्हें जागरूक बनाने की। एक जागरूक महिला स्वस्थ परिवार का स्रोत हो सकती है। उन्हें उनके अधिकारों से अवगत कराकर ही एक विकसित राष्ट्र का स्वप्न देखा जा सकता है। शिक्षा मानव की मानसिक एवं आध्यात्मिक खुराक है और शिक्षा द्वारा ही व्यक्तित्व का विकास संभव है व जागरूकता लाई जा सकती है। शिक्षा प्राप्ति का औपचारिक केंद्र शिक्षण संस्थान होते हैं। यहाँ पर विभिन्न विषयों के माध्यम से छात्राएँ ज्ञान प्राप्त करती हैं इस हेतु ज्ञानवान शिक्षक, उत्तम पुस्तकालय, विद्यालयी वातावरण, तकनीकी संसाधन, ज्ञानवर्धन में सहायक होते हैं। महिला जागरूकता सामाजिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है क्योंकि महिलाएँ यदि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में उन्नत रहेंगी और अपने अधिकारों का प्रयोग करेंगी तभी अपना जीवन सुचारू रूप से चला पाएँगी और अपने अधिकारों को जान पाएँगी यहाँ पर छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं को ध्यान में रखते हुए इस पर अध्ययन किया गया है।

मुख्य परिकल्पना 1.1: शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की 'व्यक्तिगत समस्याओं' में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका सं॰ 1.1

शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की 'व्यक्तिगत समस्याओं' से संबंधित तालिका

समूह	**संख्या** (N)	**मध्यमान** ( )	**प्रमाप विचलन** (S.D.)	**टी-मूल्य** (t-Value)
शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राएँ	350	37.30	3.18	1.76
व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राएँ	350	8.41	2.89	

(df) = (N-2) = 700-2 = 698

0.05 स्तर पर t का मान = 1.96

विश्लेषण एवं व्याख्या—उपर्युक्त तालिका संख्या 1.2 में शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत 700 छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं से संबंधित आँकड़ों को प्रदर्शित करती है। प्रस्तुत तालिका में शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्या का मध्यमान मूल्य 37.30 व प्रमाप विचलन 3.18 है जो कि व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं के संदर्भ में क्रमश: 38.41 व 2.89 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का औसत व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का औसत लगभग समान है। किंतु 698 df लिए टी-टेबल के 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका का अपेक्षित मूल्य 1.96 है जबकि तालिका में प्रदर्शित टी-मूल्य 1.76 है अर्थात् अवकलित टी-मूल्य तालिका मूल्य से कम है जो यह प्रकट करता है कि दोनों समूहों की समस्याओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है। अर्थात् उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि

ISSN 0975-735X

शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं में व्यक्तिगत समस्याएँ समान रूप से पाई गई हैं। उक्त तथ्य यह प्रकट करता है कि परिकल्पना 'शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है' स्वीकृत की जाती है।

गौण परिकल्पना 1.2 –शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश की छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका सं॰ 1.2

शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश की छात्राओं की 'व्यक्तिगत समस्याओं' से संबंधित तालिका

समूह	**संख्या** (N)	**मध्यमान** ( )	**प्रमाप विचलन** (S.D.)	**टी-मूल्य** (t-Value)
शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण छात्राएँ	150	9.38	1.49	.69
व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण छात्राएँ	150	8.68	1.21	

(df) = (N-2) = 300 -2 = 298

0.05 स्तर पर t का मान=1.97

विश्लेषण एवं व्याख्या-तालिका संख्या 1.2 में शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् ग्रामीण परिवेश की छात्राओं की व्यक्तिगत समस्या से संबंधित आँकड़ों को प्रदर्शित करती है। प्रस्तुत तालिका में शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्या का मध्यमान मूल्य 9.38 व प्रमाप विचलन 1.49 है जो कि व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण छात्राओं के संदर्भ में क्रमश: 8.68 व 1.21 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का औसत शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं से कम है किंतु 2.98 df के लिए टी-टेबल के 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका का अपेक्षित मूल्य 1.97 है जबकि तालिका में प्रदर्शित टी-मूल्य 0.69 है अर्थात् अवकलित टी-मूल्य तालिका मूल्य से कम है जो यह प्रकट करता है कि दोनों समूहों की समस्याओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है। अर्थात् उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश की छात्राओं में व्यक्तिगत समस्याएँ समान रूप से पाई गई हैं। उक्त तथ्य यह प्रकट करता है कि परिकल्पना 'शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश की छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है' 'स्वीकृत' की जाती है।

गौण परिकल्पना 1.3 –शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी परिवेश की छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका सं॰ 1.3

शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी परिवेश की छात्राओं की 'व्यक्तिगत समस्याओं' से संबंधित आरेख

समूह	**संख्या** (N)	**मध्यमान** ( )	**प्रमाप विचलन** (S.D.)	**टी-मूल्य** (t-Value)
शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी छात्राएँ	200	10.41	2.40	2.81
व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी छात्राएँ	200	9.33	1.98	

(df) = (N-2) = 400–2 = 398

0.05 स्तर पर t का मान = 1.97

विश्लेषण एवं व्याख्या-तालिका संख्या 1.3 में शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी परिवेश की छात्राओं की व्यक्तिगत समस्या से संबंधित आंकड़ों को प्रदर्शित करती है। प्रस्तुत तालिका में शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्या का मध्यमान मूल्य 10.41 व प्रमाप विचलन 2.40 है जो कि व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी छात्राओं के संदर्भ में क्रमश: 9.33 व 1.98 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का औसत शैक्षिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं से कम है। किंतु 3.98 तक के लिए टी-टेबल के 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका का अपेक्षित मूल्य 1.97 है जबकि तालिका में प्रदर्शित टी-मूल्य 2.81 है अर्थात् अवकलित टी-मूल्य तालिका मूल्य से अधिक है जो यह प्रकट करता है कि दोनों समूहों की समस्याओं के मध्य सार्थक अंतर है।

अर्थात् उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी परिवेश की छात्राओं में व्यक्तिगत समस्याएँ समान रूप से नहीं पाई गई है। यह समस्या शैक्षिक पाठ्यक्रम की शहरी छात्राओं में अधिक पाई गई है।

उक्त तथ्य यह प्रकट करता है कि परिकल्पना शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शहरी परिवेश की छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं में सार्थक अंतर पाया जाता है।

संदर्भ

1. भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार (1989) पिल्लई अरुणकुमार, आगरा राधा पब्लिकेशन आगरा।
2. वीमेन राइट्स (1989) एन्टोनी एम॰जे॰, हिंद पॉकेट पुस्तक, नई दिल्ली।
3. सांख्यिकी (2000) मिश्रा अग्रवाल, ए॰ नीतू, राधा प्रकाशन एवं मंदिर आगरा।
4. रोल ऑफ वीमेन इन डवलपमेन्ट सैक्टर (2005) बेनर्जी श्रुति इलाहाबाद पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. नवछात्राओं का राजनीतिक दृष्टिकोण सुमेरगंज मंडी तहसील इंद्रगढ़ के संदर्भ में, गुप्ता आशा, वनस्थली विद्यापीठ, राजनीति विज्ञान विभाग
6. सांख्यिकी विधियाँ (2005) गुप्ता एस॰पी॰ इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
7. भारतीय महिलाओं की दशा (2006) शर्मा सुभाष, आधार पब्लिकेशन, पंचकुला हरियाणा।
8. ह्ययूमन राइट्स फॉर वीमेन (2009) अय्यर पदमा, जयपुर पाइन्टर पब्लिशर्स।

Dr. Renu Singh W/o Mr. Vikas Singh

H.no 180/1 Jagrati vihar, Meerut 250004

Mob. 9917202511

athrav282012@gmail.com

तिलक का राष्ट्रीय योगदान

डॉ॰ विकास रंजन कुमार, सहा॰ प्राध्यापक (इतिहास विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाजपुर (उत्तराखंड)

प्रस्तावना—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एक महान राष्ट्रवादी, समाज सुधारक और जननेता थे, जिन्होंने अपने मत और विचारों से अनेक पीढ़ियों को अपने विचारों से प्रभावित किया। बाल गंगाधर तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन के समय भारतीयों के अंदर राजनीतिक जनचेतना जाग्रत करने में मुख्य भूमिका निभाई। बाल गंगाधर तिलक स्वराज के प्रबल समर्थकों में से थे। उनके द्वारा प्रसिद्ध नारा 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा' दिया गया जिसने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लाखों-करोड़ों भारतीयों को प्रेरित किया। बाल गंगाधर तिलक महान विद्वान और दूरदृष्टि रखने वाले नेता थे, जिन्हें समस्त भारत में 'लोकमान्य' के रूप में भी जानता है।

बाल गंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई सन् 1856 ई॰ को भारत के रत्नागिरि नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता गंगाधर रामचंद्र तिलक संस्कृत के विद्वान थे और गंगाधर शास्त्री के नाम से जाने जाते थे दृढ़ निश्चय, अदम्य इच्छाशक्ति, स्वस्थ मन, अध्यवसाय और उपलब्धि की क्षमता और सुव्यवस्थित तरीके से कार्य करने की विशेषताएँ तिलक को अपने पिता से विरासत में प्राप्त हुई थीं। उनके पिता श्री गंगाधर रामचंद्र तिलक पहले रत्नागिरि में सहायक उपशैक्षिक निरीक्षक हो गए थे। वे अपने समय के अत्यंत लोकप्रिय शिक्षक थे। लोकमान्य तिलक के पिता श्री गंगाधर रामचंद्र तिलक का सन् 1872 ई॰ में निधन हो गया। बाल गंगाधर तिलक अपने पिता की मृत्यु के कारण 16 वर्ष की उम्र में अनाथ हो गए। बाल गंगाधर तिलक प्रतिभाशाली छात्र थे। इसलिए अपने पिता की मृत्यु के उपरांत भी उन्होंने अपनी शिक्षा को जारी रखा उन्होंने अपनी अधिकांश शिक्षा पुणे में प्राप्त की थी। वह तीक्ष्ण बुद्धि, अध्ययन में गहन रुचि, दृढ़ आत्मसम्मान और अन्याय का तीव्र विरोध करने के लिए जाने जाते थे। मैट्रिक के पश्चात् उन्होंने पुणे के दक्कन कॉलेज में प्रवेश लिया। उन्होंने 1876 ई॰ में बी॰ए॰ आनर्स की परीक्षा वहीं से पास की सन् 1879 ई॰ में उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय से एल॰एल॰बी॰ की परीक्षा पास की। तिलक हिंदू धर्मग्रंथों के अच्छे ज्ञाता थे तथा राजनीति और तत्त्व मीमांसा-संबंधी पश्चिमी विचारों से भी काफी प्रभावित थे। उन्हें विशेष रूप से वाल्टेयर, रुसो, हेगेल, कांट स्पेंसर, मिल और बेंथम प्रिय थे। कानून की पढ़ाई करते समय तिलक की 'आगरकर' से दोस्ती हो गई।

अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद तिलक ने सरकारी नौकरी के लाभप्रद प्रस्तावों को ठुकरा दिया और राष्ट्रीय जागृति के महान कार्य के लिए स्वयं को समर्पित करने का निर्णय लिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि भारतीय लोगों को शासन और शासित का सिद्धांत जिसे अँग्रेज बनाए रखना चाहते थे, स्वीकार न करके स्वयं को ऊँचा उठाना है तो उन्हें आधुनिक शिक्षा स्वयं भारतीयों द्वारा दी जानी चाहिए। उन्होंने अपने तीन मित्रों जी॰जी॰ आगरकर, एम॰ए॰ चिपलंकर और महादेव बी॰ नाम जोशी के साथ मिलकर 1880 में पुणें में न्यू इंगलिश स्कूल की स्थापना की और बाद में वर्ष

1884 और 1885 में पुणे में क्रमश: दक्कन एजूकेशन सोसायटी और फर्गुसन कॉलेज की स्थापना की।

बाल गंगाधर तिलक का राष्ट्र जागरण में योगदान—तिलक ने देश भक्ति की भावना को जगाने में विशेष भाग लिया और काँग्रेस आंदोलन को अधिक 'विस्तृत' आधार प्रदान किया। तिलक भारत के प्रथम राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने जनता से निकट संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया और उनके बाद महात्मा गांधी ने ऐसा किया इसलिए इस दृष्टिकोण से तिलक, गांधी के अग्रगामी नेता थे। जनता से निकट संबंध स्थापित करने और उनमें राष्ट्रवादी दृष्टिकोण जाग्रत करने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने अखाड़े, लाठी क्लब तथा गो-हत्या विरोधी सभाएँ स्थापित कीं। जी॰जी॰ आगरकर के साथ उन्होंने 1881 में मराठी भाषा में केसरी और अँग्रेजी में 'मराठा' नाम से दो अखबारों का प्रशासन शुरू किया। 1888 में उन्होंने स्वयं दोनों अखबारों के संपादक का पदभार सँभाला और उनके माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ लिखकर भारत की जनता को जागरूक करना प्रारंभ किया। बाल गंगाधर तिलक एक निडर, साहसी और बेलाग बोलने वाले निष्पक्ष पत्रकार थे। जो स्पष्ट, सरल और सीधी चोट करने वाली भाषा में लिखते थे। जिसका प्रभाव जनता पर स्थाई होता था। तिलक ने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार-प्रसार करने का एक नया और अद्भुत तरीका खोजा। संपूर्ण मराठा क्षेत्र में अत्यधिक उत्साह और श्रद्धा से मनाए जाने वाले गणपति महोत्सव को उन्होंने पहली बार 1893 में राष्ट्रीयता के प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया। इसके बाद 1896 में शिवाजी जयंती पर मनाए जाने वाले समारोह का भी उन्होंने इसी तरह इस्तेमाल किया और राष्ट्रीय संघर्ष के लिए युवाओं को तैयार किया। इसी साल उन्होंने कपड़े पर लगे उत्पाद शुल्क के विरोध में सारे महाराष्ट्र में 'विदेशी वस्त्र बहिष्कार आंदोलन चलाया। बाल गंगाधर तिलक पहले राष्ट्रवादी नेता थे, जिन्होंने इस तथ्य को पहचाना कि राष्ट्रीय आंदोलन में निम्न मध्यवर्ग, किसान, मजदूर और दस्तकार कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और इसलिए इन लोगों को भी काँग्रेस के साथ जोड़ा जाना चाहिए।[2]

समाज सुधार में योगदान—तिलक ने भारत में समाज सुधार का कार्यक्रम लागू करने के लिए ब्रिटिश सरकार का मुँह ताकना उचित नहीं समझा, हालाँकि राजा राममोहन राय (1772-1833) जैसे समाज-सुधारक इन मामले में ब्रिटिश सरकार की सहायता लेना उचित समझते थे। तिलक ने स्वयं समाज-सुधार आंदोलन के नेतृत्व का बीड़ा उठाया। तिलक ने विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन किया ताााकि स्त्रियों के प्रति अन्याय को रोका जा सके, स्त्री-शिक्षा की पैरवी की, अस्पृश्यता की अमानवीय प्रथा का विरोध किया और जात-पात पर आधारित भेदभाव की निंदा की। उन्हें निर्धन और दलित-वर्गो के प्रति असीम सहानुभूति थी। तिलक भारत के चिरस्मृत सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप भारतीय समाज में सच्चा सुधार लाना चाहते थे, वे पश्चिम के अंधानुकरण के पक्ष में नहीं थे।[3]

राष्ट्रीय शिक्षा से राष्ट्रवाद में योगदान—तिलक ने यह अनुभव किया कि लार्ड-मैकॉले ने इस देश में जो पश्चिमी शिक्षा प्रणाली स्थापित की थी, वह राष्ट्र के भावी स्वास्थ्य और कल्याण के लिए घातक थी। यह शिक्षा-प्रणाली नई पीढ़ी और भारत की विशाल जनसंख्या के बीच ने केवल अलगाव पैदा कर रही थी, बल्कि नई पीढ़ी को भारत की सांस्कृतिक मूल्य परंपरा और आदर्शों से भी विमुख रही थी। सरकारी संस्थाओं में प्रचलित पश्चिमी शिक्षा प्रणाली युवा पीढ़ी को अपने अतीत की शानदार धरोहर से वंचित कर रही थी। इसके विपरीत तिलक ने संपूर्ण देश में

राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज खोलने की सलाह दी ताकि जनसाधारण को कम खर्चीली और स्वस्थ शिक्षा प्रदान की जा सके जो उनमें आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन की भावना भर सके।

तिलक के अनुसार, शिक्षा प्रणाली का निर्माण प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्वस्थ और जीवंत परंपरा के आधार पर होना चाहिए सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नींव पर नया ढाँचा खड़ा करना चाहेगा। पुरानी परंपराओं की अवमानना करके जो सुधार लाया जाएगा वह निराधार होगा। हमारी संस्थाओं के अँग्रेजीकरण का अर्थ होगा, उनका अराष्ट्रीयकरण। वस्तुत: तिलक पश्चिमी आदर्शों और मूल्य परंपरा के विरुद्ध थे। पश्चिमी कार्य प्रणाली के विरुद्ध नहीं थे।[4]

जति-पाति अस्पृश्यता, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, मद्यपान आदि पर विचार–बाल गंगाधर का समाज सुधार को लेकर अपना नजरिया था। वे पुरातन परंपराओं और आधुनिकताओं को एक साथ लेकर आगे बढ़ना चाहते थे। तिलक ने सामाजिक संबंधों को लेकर हिंदू समाज की अनेक मान्यताओं को स्वीकार किया लेकिन वे कभी भी हिंदू-समाज की रूढ़िओं से बँधकर नहीं रहे। वे सभी जाति वर्ग के लोगों के साथ बैठकर भोजन करने में कभी नहीं हिचका करते थे। 1891 'पंचदौड़ कांड' मे जिसमें उन्हें ईसाई पादरी जोशी के साथ चाय पीनी पड़ी। जिसके फलस्वरूप जनसाधारण में एक बवंडर खड़ा हो गया और उन्हें जाति से बहिष्कार की धमकी दी गई, तो उन्होंने गुरु शंकराचार्य के पवित्र न्यायालय में उपस्थित होकर हल्के से दंड को स्वीकार किया और अपने इस व्यवहार से यह स्पष्ट किया कि वह परिस्थितियों की माँग थी कि विदेशी सरकार से लड़ने के लिए जनता को अपना सहयोगी बनाया जाए और जन समुदाय का अनादर नहीं करना चाहिए।[5]

तिलक जी कहा करते थे कि 'समाज सुधारक जादू की छड़ी घुमाकर ही सभी सुधार करना चाहते हैं। हमारा कहना यह है कि सुधार देशकाल की परिस्थितियों के अनुरूप ही हो सकते हैं। हम सभी के अपने परिवार हैं और समाज के साथ ही रहना चाहते हैं। इस दशा में वैयक्तिक भावनाओं और समाऐच्छा के बीच सामंजस्य होना ही चाहिए। अन्य लोग समाज में रहना चाहते हैं, उन्हें अपनी इच्छाओं और सामाजिक परिपाटी के बीच समझौता करना होगा।'[6]

तिलक ने अस्पृश्यता के विरोध में कहा कि 'यदि ईश्वर भी कहे कि मैंने अस्पृश्यता की व्यवस्था कर दी है, तो मैं ईश्वर के अस्तित्व को भी नहीं मानूँगा।[7]

निष्कर्ष–तिलक का राष्ट्र के प्रति समर्पण पर कभी भी संदेह नहीं किया जा सकता लेकिन कुछ इनके विरोधी इन पर ये आरोप लगा देते हैं कि तिलक के भारतीय राष्ट्रवाद में हिंदू राष्ट्रवाद की मिलावट थी। उन्होंने गणपति तथा शिवाजी महोत्सव आयोजित करके हिंदुत्व को बढ़ावा दिया लेकिन हमें यह बात बिल्कुल नहीं भूलनी चाहिए कि तिलक ने यह उत्सव युवाओं और भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के लिए आयोजित करना प्रारंभ किए थे जिसमें वे पूर्ण सफल भी हुए।

तिलक जी ने मुस्लिम या किसी अन्य संप्रदाय के प्रति कभी भी वैमनस्य का भाव नहीं रखा और नहीं अपने कर्मों से कभी इसका परिचय दिया। तिलक तो सदैव ही यही चाहते थे कि राष्ट्रीय हित के लिए हिंदुओं और मुसलमानों को एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर राष्ट्र के लिए कार्य करना चाहिए। यहाँ तक कि तिलक ने 1920 ई० के मुस्लिमों के धार्मिक आंदोलन, खिलाफत आंदोलन तक का समर्थन सिर्फ इसलिए किया ताकि हिंदू और मुस्लिमों के बीच की दूरी मिटे और वे एक साथ मिलकर राष्ट्र को समर्पित होकर अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ सकें। तिलक गरम दलीय अवश्य थे, परंतु उन्होंने कभी भी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हिंसा की वकालत कभी नहीं की। उन्होंने

क्रांतिकारियों की सराहना जरूर की लेकिन जनमानस की निद्रा को तोड़ने के लिए निष्क्रिय प्रतिरोध का समर्थन किया। तिलक ब्रिटिश आर्थिक हितों को हानि पहुँचाकर और अँग्रेजों के शासन तंत्र में रोड़े अटकाकर अँग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश करना चाहते थे। तिलक जी एक सच्चे राष्ट्रभक्त थे उनका राष्ट्रीय योगदान अतुलनीय रहा जिसको एक शोध-पत्र में समाहित नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

1. बी॰एल॰ ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, एस॰ चंद्र एंड कंपनी प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, पृ॰ 330
2. प्रो॰ विपिनचंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 2015, पृ॰ 82
3. ओमप्रकाश गाबा, भारतीय राजनीति-विचारक, नेशनल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली पृ॰ 144
4. डॉ॰ पी॰ करमकर, बाल गंगाधर तिलक ए स्टडी, पापुलर बुक डिपो, बंबई 1956, पृ॰ 78
5. एन॰जी॰ जोग, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग भारत सरकार नई दिल्ली, पृ॰ 33
6. वही, पृ॰ 35
7. ओमप्रकाश गाबा, भारतीय राजनीति विचारक, नेशनल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ॰ 145

Mob. 9761581616
mohitkurmi143@gmail.com

ISSN 0975-735X

शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता का समीक्षात्मक अध्ययन

अनिता पांडेय, शोधार्थी
डॉ॰ वंदना सिंह, शोध निर्देशिका
हेमचंद यादव विश्वविद्यालय, दुर्ग

प्रस्तावना

शिक्षण और अधिगम शिक्षा और प्रशिक्षण की नींव हैं। शिक्षा की प्रक्रिया में दोनों ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ भी तब तक पढ़ा हुआ नहीं माना जाता जब तक कि वह विद्यार्थी द्वारा सीखा न जाए। इसलिए शिक्षण और अधिगम साथ-साथ चलते हैं। एक शिक्षक छात्रों को सिखाने के लिए विभिन्न शिक्षण विधियों की रणनीतियों का उपयोग करता है ताकि प्रत्येक छात्र स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित हो। छात्रों के सीखने के तौर-तरीके में विविधता होती है जैसे अनुभवों के माध्यम से प्रश्न पूछने, सुनने, सोचने, चिंतन करने, अभिव्यक्त करने, छोटे एवं बड़े समूहों में गतिविधियाँ करने आदि से सीखते हैं। छात्रों को शिक्षण से पूर्व उन्हें तैयार करने हेतु समुचित अवसर व वातावरण निर्मित करने की आवश्यकता होती है। सीखने की प्रक्रिया न केवल विद्यालय में वरन् विद्यालय के बाहर भी निरंतर चलती रहती है। अत: शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया इस प्रकार संचालित की जानी चाहिए ताकि छात्र सीखने की प्रक्रिया में संलग्न हो जाएँ। उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण करने के लिए मान तथ्यों को रटाने के बजाए उनमें समझ विकसित करने की आवश्यकता है। अत: शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को जानने के लिए इसके घटकों को जानना आवश्यक है। जो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के लिए अनिवार्य है।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के चार घटक हैं-अध्यापक, विद्यार्थी, अधिगम की प्रक्रिया तथा अधिगम स्थिति।

कहा जाता है कि इंद्रियाँ हमारे ज्ञान का द्वार कहलाती हैं। शिक्षण-अधिगम के इस बहुचर्चित सूत्र को ध्यान में रखते हुए प्रभावकारी शिक्षण-अधिगम के लिए अधिक-से-अधिक इंद्रियों का प्रयोग करना हमेशा ही लाभदायक रहता है। शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधात्मक कार्यों एवं प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि शिक्षण-अधिगम का आयोजन एवं संचलान उसी परिस्थिति में सबसे अच्छा होता है जिसमें किसी एक इंद्रिय माध्यम एवं उपागम के स्थान पर अनेक इंद्रियों, माध्यमों एवं उपागमों का सहारा लिया जाए। इसलिए शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षण-अधिगम को अधिक सशक्त, प्रभावपूर्ण और सहज बनाने के लिए आज एक नई शिक्षण पद्धति या उपागम को जन्म दिया जिसे बहुमाध्यम उपागम का नाम दिया गया।

अत: बहुमाध्यम किसी भी वस्तु तथा पाठ्यवस्तु की प्रस्तुतीकरण का सर्वोत्तम साधन है। विद्यार्थियों को आसानी के साथ कम-से-कम समय में शिक्षा प्रदान करने के लिए बहुमाध्यम उपागम वरदान साबित हुआ है। इस उपागम का उद्देश्य है कि वह शिक्षार्थियों की रुचियों, जरूरतों

और संज्ञानात्मक प्रकिया को ध्यान में रखकर शिक्षण कराए। बहुमाध्यम उपागम को इस तरह से डिजाइन किया जाना चाहिए कि वह शिक्षक की भूमिका को बदल दे। आज बहुमाध्यम उपागम प्राद्योगिकी की सर्वोत्तम गुणवत्ता पूर्ण प्रकिया है।

बहुमाध्यम उपागम का अर्थ–बहुमाध्यम उपागम विभिन्न प्रकार के डिजिटल मीडिया का संयोजन है जिसमें दृश्य, श्रव्य, एनीमेशन, वीडियो का एकीकृत बहुसंवेदी प्रस्तुतीकरण होता है। परंपरागत शिक्षण विधा में विद्यार्थी को दी गई जानकारियों एवं व्यावहारिक आवश्यकताओं के मध्य सुव्यवस्थित तालमेल का अभाव होता है। बहुमाध्यम उपागम उत्पादन की गतिशीलता बढ़ाकर एक समस्या समाधान के रूप में शिक्षक को गंभीरता प्रदान करता है। वस्तुत: प्रयोगशाला में अधिगम से संबंधित समस्याओं के लिए एक नवीन उपागम एवं तकनीकी पर विचार किया गया है जो छात्रों को बहुमाध्यम उपागम के प्रयोग द्वारा शिक्षण व्यूह रचना को श्रेष्ठ बताते हुए अधिगम को गति एवं रुचि प्रदान करता है।

डॉ॰ भोरास्कर के अनुसार, 'बहुमाध्यम उपागम का अर्थ बहुत से माध्यमों के प्रयोग से नहीं है वरन् वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए अनेक माध्यमों तथा विधाओं के उपयुक्त सुनियोजित उपयोग से है।'

फिलिप्स के अनुसार, 'बहुमाध्यम को टैक्स्ट, चित्र, ध्वनि, एनीमेशन और वीडियो की उपस्थिति की विशेषता है जिनमें से कुछ या सभी को किसी सुसंगत कार्यक्रम में व्यवस्थित किया जाता है।'

इस नवीन पद्धति अथवा उपागम की विशेषता यह है कि इसमें शिक्षण-अधिगम की एक विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए विभिन्न उपयुक्त तकनीकों, विधियों एवं माध्यमों को चयन करके उन्हें ऐसे संयुक्त और समन्वित रूप में अपनाया जाता है कि निश्चित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति प्रभावपूर्ण ढंग से संपन्न हो सके। अत: शिक्षण-अधिगम में प्रयुक्त बहुमाध्यम उपागम को एक ऐसी पद्धति के रूप में जाना जा सकता है जिसमें उचित एवं भली-भाँति चयनित अधिगम अनुभवों का अनेक उपयुक्त तकनीकों, इंद्रियजनित माध्यम का प्रयोग हम सीखने एवं सिखाने के लिए करते हैं। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रकृति को संक्षेप में लिपिबद्ध किया जा सकता है।

* बहुमाध्यम उपागम शैक्षिक तकनीकी विषय में किए जा रहे उन नवीन अनुसंधानों एवं प्रयोगों का परिणाम है, जिनके द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को अधिक सजीव और प्रभावशील बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।
* इस उपागम द्वारा प्रदत्त अनुदेशन में एक से अधिक इंद्रियजनित माध्यम या पद्धतियों का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त एवं सार्थक उपागमों के चुनाव पर ध्यान दिया जाता है।
* बहु-इंद्रियजनित माध्यमों का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि उनमें इस तरह का तालमेल तथा समन्वय संभव हो कि उनके द्वारा शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति अच्छी से अच्छी तरह संभव हो सके।
* इस उपागम के चयन एवं उपयोग करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि हम जिन माध्यमों का प्रयोग कर रहे हैं वह माध्यम बहु-इंद्रियजनित माध्यम हो एवं वह शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की सर्वोत्तम प्राप्ति में भरपूर योगदान दे।

बहुमाध्यम उपागम वास्तव में सिखाने को अधिक खोजपूर्ण और मनोरंजनक कैसे बना

सकती है इसका उत्तर अभी पूर्ण रूप से नहीं दिया गया है। इस शोधपत्र में शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम द्वारा सीखने के लाभ का अध्ययन।
2. शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की आवश्यकता का अध्ययन।
3. शिक्षण-अधिगम प्रकिया में विभिन्न प्रकार के बहुमाध्यम उपागम के प्रयोगों का अध्ययन।
4. शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता का एक अध्ययन।

शिक्षण-अधिगम में बहुमाध्यम उपागम का महत्त्व–आज बहुमाध्यम उपागम शिक्षण-अधिगम प्रकिया का एक अभिन्न अंग बन गया है क्योंकि शिक्षा में इसका प्रयोग शिक्षण प्रकिया को सरल, आसान व प्रभावपूर्ण बनाने के लिए किया जाता है निम्न बिंदुओं के माध्यम से इसके महत्त्व को स्पष्ट किया जा सकता है–

* यह उपागम शिक्षण और सीखने के तरीकों को प्रभावशाली बनाती है।
* विभिन्न प्रकार के शिक्षण संस्थानों तक पहुँच होती है।
* इसका प्रयोग कर छात्र ऑफलाइन और ऑनलाइन दोनों ही शिक्षण-पद्धति में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।
* यह दिव्यांग छात्रों के लिए अधिक उपयोगी होता है।
* शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम उन्नत जानकारी प्रदान करती है।
* शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाती है।
* स्मार्ट वर्क को बढ़ावा देती है।
* प्रौद्योगिकी का उपयोग कर सीखने में समय की बचत व मेहनत कम लगता है।
* देश-विदेश के छात्र कहीं से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम द्वारा सीखने के लाभ–इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रौद्योगिकी शिक्षा में रुचि बढ़ा रही है पिछले वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से प्रगति प्रभावशाली रही है। 21वीं सदी की कक्षा में बहुमाध्यम उपागम द्वारा सीखने के लाभों का वर्णन निम्न बिंदु के माध्यम से किया गया है–

(क) **गहरी समझ**–शोध के अनुसार बहुमाध्यम उपागम द्वारा सीखने का एक लाभ यह है कि यह सामग्री के मौखिक और दृश्य प्रतिनिधित्व के बीच संबंध बनाने की मस्तिष्क की क्षमता का लाभ उठाता है जिससे गहरी समझ उत्पन्न होती है, जो बदले में अन्य स्थितियों में सीखने के हस्तांतरण का समर्थन करती है। यह सब आज की 21वीं सदी की कक्षाओं में महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि हम छात्रों को ऐसे भविष्य के लिए तैयार कर रहे हैं जहाँ उच्च स्तरीय सोच, समस्या समाधान और सहयोगी कौशल की आवश्यकता होगी।

(ख) **बेहतर समस्या समाधान**–मानव मस्तिष्क का एक बड़ा प्रतिशत स्वयं को दृश्य प्रसंस्करण के लिए समर्पित करता है। इस प्रकार, पाठ के साथ छवियों, वीडियो और एनिमेशन का उपयोग मस्तिष्क को उत्तेजित करता है और छात्रों का ध्यान तथा अवधारणा में वृद्धि भी करता है। बहुमाध्यम उपागम द्वारा सीखने के माहौल में छात्र उस परिदृश्य की तुलना में समस्याओं को अधिक आसानी से पहचान और हल कर सकते हैं जहाँ शिक्षण केवल पाठ्यपुस्तकों द्वारा संभव

बनाया गया है।

(ग) **सकारात्मक भावनाओं में वृद्धि**–मनोवैज्ञानिक बारबरा फ्रेडरिकसन के अनुसार, सकारात्मक भावनाओं का अनुभव करने से लोग अपने जीवन में अधिक संभावनाएँ देखते हैं। निर्देशों के दौरान बहुमाध्यम उपागम का उपयोग सीखने की प्रक्रिया के समय छात्र के सोच को प्रभावित करता है। सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ छात्र बेहतर और अधिक सक्रिय होकर सीखते हैं।

(घ) **विविध प्रकार की सूचनाओं तक पहुँच**–कंप्यूटर, टैबलेट, स्मार्टफोन और इंटरनेट के साथ, छात्र आज अपनी जरूरत की जानकारी खोजने के लिए पहले से कहीं बेहतर सुसज्जित है। एक अध्ययन से पता चला हैं कि 95% छात्र जिनके पास इंटरनेट है, वे इसका उपयोग ऑनलाइन जानकारी खोजने के लिए करते हैं। छात्र जानकारी साझा करने के साथ ही कक्षा चर्चा में अधिक आत्मविश्वास से भागीदारी करते हैं।

शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की आवश्यकता– शिक्षण-अधिगम प्रकिया में हमें एक ऐसा शिक्षण-माध्यम का प्रयोग करना चाहिए जिसके द्वारा शिक्षार्थी अपने विषय को अलग-अलग तरीके से सीख सकें एवं अनुभव कर सकें। अगर हम पारंपरिक शिक्षण विधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को शिक्षा प्रदान करते हैं तो वह उतना प्रभावी नहीं होगा किंतु अगर हम बहुमाध्यम उपागम अर्थात् ग्राफिक्स, वीडियो, आडियो, यू-ट्यूब, एनीमेशन आदि के माध्यम से शिक्षा प्रदान करते हैं तो वह छात्रों को सिखाने में ज्यादा प्रभावी होगा।

बहुमाध्यम उपागम का उपयोग सभी तरह की शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों औपचारिक एवं अनौपचारिक में तो संभव है ही साथ ही सभी तरह के शिक्षार्थियों औसत, औसत से कम तथा औसत से अधिक सभी के लिए हर तरह से अनुकूल सिद्ध हो सकता है एक तरफ इसे जहाँ मंद बुद्धि या मंद गति के सीखने वाले शिक्षार्थियों को शैक्षिक गतिविधियों के सफल संचालन के लिए काम में लाया जा सकता है तो दूसरी तरफ अति प्रतिभाशाली एवं सृजनशाली छात्रों के लिए भी इसका प्रयोग काफी हितकारी सिद्ध हुआ है।

शिक्षण-अधिगम प्रकिया में विभिन्न प्रकार के बहुमाध्यम उपागम के प्रयोग–शिक्षण-अधिगम प्रकिया में विभिन्न प्रकार के बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग कर शिक्षण प्रकिया को प्रभावशाली बनाया जाता है।

(1) **ग्राफिक्स**–यह बहुमाध्यम का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है इसी के कारण बहुमाध्यम में आकर्षण पैदा होता है इसमें विशेष डेटा संरचनाएँ होती है जिनका उपयोग 2-डी और 3-डी आकृतियों को परिभाषित करने के लिए किया जाता है एक चित्र हजारों शब्दों के बराबर संदेश देता है। ग्राफिक्स के माध्यम से हम बहुमाध्यम उपागम के उद्देश्यों को परिभाषित कर सकते हैं अर्थात् ग्राफिक्स ऐसे दृश्य प्रदर्शन को कहते हैं जो किसी दीवार, कपड़े, कागज, पत्थर, कंप्यूटर स्क्रीन या अन्य सतह पर ज्ञान, मनोरंजन, संदेश, मार्गदर्शन, पहचान या अन्य किसी ध्येय से बनाया गया हो।

(2) **वीडियो**–एक वास्तविक दृश्य की शूटिंग के बाद तैयार फ्रेम्स के संकलन को वीडियो कहते हैं वीडियो चलायमान चित्रण प्रस्तुत करता है तथा यह एक सम्मोहक छवियों और ध्वनि को जोड़ता है। इसके अंतर्गत डिजिटल कैमरे के विभिन्न उपयोगों को प्रदर्शित किया जाता है। इसके द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करके स्क्रीन पर डिस्प्ले किया जाता है। डिजिटल कैमरे के कार्यक्रमों को देखने के साथ-साथ उसमें आवाज सुनने के लिए हेडफोन का

भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार यह आडियो एवं वीडियो दोनों रूपों में प्रयोग किया जा सकता है। डिजिटल कैमरे के माध्यम से आवाज एवं दृश्य दोनों एक साथ सुने एवं देखे जा सकते हैं तथा पृथक रूप में भी देखे जा सकते हैं।

(3) **एनीमेशन**–बहुमाध्यम का अत्यंत सक्रिय भाग एनीमेशन होता है। एनीमेशन उत्पन्न करने के लिए अब कंप्यूटर अत्यंत सुविधाजनक उपकरण हो गया है। कंप्यूटर एनीमेशन तैयार करने के लिए ऐसी रेंडरिंग मशीन का प्रयोग किया जाता है जिसमें सक्सैसिव फ्रेम्स तैयार हो सकें और यहाँ प्रत्येक फ्रेम में कुछ परिवर्तन होता है। प्रत्येक फ्रेम में परिवर्तन करने के लिए दृश्य में स्थित वस्तुओं के आकार, स्थिति, रंग आदि में परिवर्तन को रिकार्ड किया जाता है। सापेक्ष परिवर्तन में कैमरे की स्थिति भी परिवर्तित की जा सकती है। कंप्यूटर एनीमेशन में किसी सिस्टम की सभी क्रियाएँ समय के सापेक्ष दर्शाई जाती हैं जो टाइप डिपेंडेंट होती हैं। बहुमाध्यम में प्रमुख रूप से दो प्रकार के एनीमेशन प्रयुक्त किए जाते हैं–2–डी और 3–डी।

(4) **टैक्स्ट**–बहुमाध्यम में तैयार किसी भी प्रजेंटेशन में टैक्स्ट एक आरंभिक भाग होता है। प्रजेंटेशन के शीर्षक को प्रस्तुत करने के लिए टैक्स्ट की सहायता ली जाती है। टैक्स्ट बहुमाध्यम के सभी भागों को परस्पर जोड़ने में भी सहायक होती है। यह संदेश देने व संवाद करने का सबसे सरल व उपयोगी साधन होता है। किसी पिक्चर, एनीमेशन व वीडियो को अर्थपूर्ण बनाने में भी टैक्स्ट महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरणार्थ किसी मूवी में कार्य करने वाले कलाकारों, डायरेक्टर, संगीतकार आदि के नाम आरंभ में प्रस्तुत करने के लिए टैक्स्ट का ही प्रयोग किया जाता है।

शिक्षण–अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता–निम्न बिंदुओं के माध्यम से हम शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता को स्पष्ट कर सकते हैं–

* बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग कठिन अवधारणाओं और जटिल समस्याओं के अध्यापन में सहायक है।
* शिक्षण–अधिगम प्रकिया को अति रोचक और आकर्षक बनाने के लिए बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग किया जाता है।
* शिक्षा के स्तर में सुधार और गुणवत्ता की विकास में सहायक है।
* बहुमाध्यम उपागम छात्रों को विषयवस्तु को सीखने और समझने में सहायता प्रदान करती है।
* यह उपागम छात्रों की सृजनशीलता में वृद्धि करती है।
* इन उपागमों का प्रयोग छात्रों की रुचि जाग्रत करके उन्हें जिज्ञासु बनाने तथा प्रेरित करने के लिए किया जाता है।
* इस उपागम के प्रयोग से छात्र अधिक सक्रिय और उत्साहित हो जाते हैं।
* इस उपागम का प्रयोग करते हुए छात्र सामग्री के साथ कार्य करते हुए नवीन कल्पना भी करता है एवं नवीन प्रयोग के लिए उत्साहित होता है।

निष्कर्ष–शिक्षण–अधिगम के लिए बहुमाध्यम उपागम से अभिप्राय शिक्षण–अधिगम की प्रभावशीलता में वृद्धि करने के लिए एक से अधिक माध्यमों का प्रयोग करना है इस नवीन उपागम की विशेषता यह है कि इसमें शिक्षण–अधिगम की एक विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए

विभिन्न उपयुक्त तकनीकों, विधियों एवं माध्यमों का चयन करके उन्हें ऐसे संयुक्त और समन्वित रूप से अपनाया जाता है कि निश्चित शिक्षण–अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति प्रभावपूर्ण ढंग से संपन्न हो सके। बहुमाध्यम एक माध्यम होता है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की जानकारियों को विभिन्न प्रकार के माध्यमों जैसे कि ग्राफिक्स, आडियो, वीडियो, एनीमेशन, टैक्स्ट का संयोजन करके दर्शकों तक पहुँचाया जाता है। बहुमाध्यम किसी भी वस्तु तथा पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण का सर्वोत्तम साधन है। विद्यार्थियों को आसानी के साथ कम–से–कम समय में शिक्षा करने के लिए बहुमाध्यम उपागम वरदान साबित हुआ है। आज के आधुनिक समय में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ बहुमाध्यम का प्रयोग नहीं किया जाता है।

संदर्भ

1. कुलश्रेष्ठ, एस॰पी॰ एवं अन्य (2008), शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, आर॰ लाल बुक डिपो पृ॰ 575–580
2. sagaracademi-blogspost-com
3. hi-m-wikipedia-org/wiki/ehfM;k
4. mopboard-online-com
5. targetnotes-com
6. researchgate-net/publication
7. hindiguider.com
8. nuiteq.com/company/blog/5benefits of multimedia.learning
9. testbook.com
10. geeksforgeeks.org
11. javatpoint.com
12. https://www.yoabby.com/educational-technology
13. https://www.sciencedirect.com
14. https://telrp.springeropen.com/articles
15. https://www.education.vic.gov.au
16. https://www.hindikiduniya.com

Anita Pandey C/o Tiwari Kirana Store
Ganesh Mandir Road, Balaji Nagar zone 2
Khursipar Bhilai, Durg 490011 Chhattisgarh
Mob. 7067148587
anitatiwari528@gmail.com

अफगानिस्तान में सत्ता-परिवर्तन : भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव

डॉ॰ दीपक, असि॰ प्रोफेसर, रक्षा अध्ययन विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा राज॰ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रयागराज (उ॰प्र॰)

15 अगस्त 2021 को अफगानिस्तान की सरजमीं पर लोकतांत्रिक सरकार तथा व्यवस्थित लोकतंत्र की स्थापना के लिए 20 वर्ष तक संघर्षरत रहने वाली संयुक्त राज्य अमेरिका की सेनाएँ तथा नाटो की सेनाओं की वापसी के बाद अफगानिस्तान में अफरा-तफरी के बीच तालिबान के हथियारबंद लड़ाकों ने बंदूक की नोंक पर सत्ता का परिवर्तन कर दिया और अफगानिस्तान की लोकतांत्रिक सरकार के चुनिंदा राष्ट्रपति अशरफ गनी के देश छोड़कर जाने के पश्चात तालिबान ने अफगानिस्तान की राजधानी तथा उसके सबसे अधिक आबादी वाले शहर काबुल पर भी कब्जा स्थापित कर लिया था और अफगानिस्तान का नाम बदलकर 'द इस्लामिक अमीरात ऑफ अफगानिस्तान' रख दिया है।

अफगानिस्तान की सरजमीं पर पुनः तालिबान के कट्टर शरिया शासन लौटने की आहटें वापस से सुनाई देने लगीं जिसके तले अफगान जनता ने 1996 से 2001 का समय बिताया था। वर्तमान समय में अफगानिस्तान में अफरा-तफरी का माहौल देखने में आया। अफगान नागरिक अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा तथा देश की सुरक्षा को खतरे में देख रहे हैं इसलिए अफगान से लोग जो अफगानिस्तान में लोकतंत्र के नीचे एक सुनहरे भविष्य को तलाश रहे थे वह किसी भी परिस्थिति में अफगानिस्तान की सरजमीं को छोड़ना चाहते हैं। हालाँकि वर्तमान में अफगानिस्तान में तालिबान के सत्ता परिवर्तन के पश्चात तालिबान के द्वारा देश में शांति एवं सुरक्षा का नया युग लाने का वादा किया गया लेकिन अफगान नागरिक इससे आश्वस्त नहीं हैं। उनके दिल में तालिबान का पुराना बर्बर शासन लौटने का भय दिन-प्रतिदिन दिखाई देता है। उसकी बर्बरता का भय अफगान जनता पर ही नहीं समस्त वैश्विक समुदाय पर भी दिखाई पड़ता है।

अफगानिस्तान में सत्ता परिवर्तन भारत के लिए भी शुभ संकेत नहीं है क्योंकि अफगानिस्तान में जितने बदलाब हो रहे हैं वह लगभग भारत के लिए एक चुनौती बनकर सामने आएँगे और हमेशा भारत की सुरक्षा व्यवस्था के लिए खतरा बनेंगे। भले ही अफगानिस्तान में अमेरिका के आतंकवाद के खिलाफ युद्ध का खात्मा हो गया है लेकिन वह अपने पीछे जो अराजकता का माहौल पैदा करके गया है उससे भारत की सुरक्षा के लिए खतरा और बढ़ गया है। वर्तमान समय में ऐसा प्रतीत होना लाजमी है कि विगत वर्षों में भारत ने अफगानिस्तान में विकास के जो भी काम किए हैं उनके लिए खतरा पैदा हो गया है अमेरिका की अफगानिस्तान से वापसी के चलते मानवीय त्रासदी का बड़ा संकट खड़ा हो गया है, इसके साक्षात उदाहरण बीते माह अफगानिस्तान से आ रही तस्वीरों के रूप में दिखाई दे रहे हैं।

प्रस्तावना–इतिहास शायद ही किसी देश की किस्मत के साथ इतने अजीबो-गरीब तरीके से वक्त के पन्नों को पलटते देखा है, जितना कि अफगानिस्तान की पहाड़ी और पथरीली जमीन ने

वक्त के साथ बदलती सत्ताओं को पलटते हुए देखा है। 70 के दशक में सत्ता में काबिज जहीर शाह के नेतृत्व में आधुनिकवाद की ओर बढ़ रहा अफगानिस्तान 1990 के दशक में तालिबानी संघर्ष की भेंट चढ़ा। चूँकि अफगानिस्तान से रूसी सैनिकों की वापसी के उपरांत अफगानिस्तान में सत्ता संघर्ष पुन: प्रारंभ हो गया और छोटे-छोटे कबीलों/गुटों में आपसी सत्ता हस्तांतरण का खूनी संघर्ष प्रारंभ हुआ। 90 के दशक में उत्तरी पाकिस्तान में भी एक गुट उभरा जिसे पश्तों भाषा में छात्र या छात्रों का संगठन कहा गया, खासकर ऐसे छात्र जो कट्टर इस्लामी धार्मिक शिक्षा से प्रेरित हों, और जिसका नाम था तालिबान। कहा जाता है कि कट्टर सुन्नी इस्लामी विद्वानों ने धार्मिक संस्थानों के सहयोग से पाकिस्तान में इसकी नींव खड़ी की थी इसी कारण तालिबान पर देबवंदी विचारधारा का पूरा प्रभाव देखने को मिलता है। प्रारंभ में तालिबान ने अन्य सभी गुटों को समाप्त कर भष्ट्राचार की समाप्ति की ओर कदम बढ़ाए और जनमत का विश्वास जीता और 1996 में अफगानिस्तान में तालिबान से अन्य सभी गुटों को समाप्त कर काबुल पर अपनी सत्ता काबिज की।[1]

दुनिया के सामने तालिबान का नया चेहरा 11 सितंबर 2001 को सामने आया जब दुनिया की सबसे बड़ी महाशक्ति अमेरिका में स्थित उसके रक्षा मंत्रालय पेंटागन और दुनिया के सबसे बड़े व्यापार संगठन विश्व व्यापार संगठन पर अलकायदा के द्वारा हमला किया गया। उस हमले में सैकड़ों बेगुनाह लोगों को अपने प्राण को गँवाने पड़े थे। उससे पूर्व वर्ष 1999 में भारत के एअर इंडिया के एक विमान आईसी-814 को आंतकियों के द्वारा अपहरण कर अफगानिस्तान के कंधार में उतारा गया था जिसके अपहरण होने में तालिबान ने अपना पूर्ण सहयोग दिया था और विमान में सवार यात्रियों की रिहाई के बदले में भारत को तीन मोस्ट वांटेड आंतकियों को छोड़ना पड़ा था।

अमेरिका ने 2001 में आंतक के विरुद्ध युद्ध का ऐलान किया था और अफगानिस्तान में अपनी तथा नाटो की सेनाओं को जमीनी संघर्ष की लड़ाई के लिए उतार दिया। वर्तमान में 20 वर्ष के संघर्ष के उपरांत 1 मई 2021 से अफगानिस्तान से अपनी सेना को वापस अपने वतन बुलाना शुरू कर दिया। जिस कारण से एक के बाद अफगानिस्तान के शहर पर तालिबान का कब्जा होना प्रारंभ हो गया था और 15 अगस्त 2021 को तालिबान के लड़ाके मशीनगनों और रॉकेट लांचरों से लैस अफगानिस्तान की राजधानी काबुल में घुसते चले गए, बगराम एअरबेस एवं बगराम जेल एवं काबुल के आस-पास के सभी क्षेत्रों में कब्जा करते हुए अंत में राजधानी काबुल पर पूर्णत: कब्जा कर लिया और पूरी दुनिया इस सत्ता हस्तांतरण को मौन होकर देखती रह गई।[2]

तालिबान के सत्ता परिवर्तन से भारत की चुनौतियाँ—अफगानिस्तान एशिया के चौराहे पर स्थित होने के कारण रणनीतिक महत्त्व बहुत रखता है क्योंकि अफगानिस्तान दक्षिण एशिया को मध्य एशिया तथा मध्य एशिया को पश्चिम एशिया से जोड़ने का कार्य करता है। चूँकि भारत का संपर्क ईरान, अजरबैजान, तुर्कमेनिस्तान तथा उज्बेकिस्तान के साथ अफगानिस्तान के माध्यम से होता है इसलिए अफगानिस्तान रणनीतिक रूप से भारत के लिए महत्त्वपूर्ण स्थिति रखता है क्योंकि तेल और गैस से समृद्ध मध्य-पूर्व एवं मध्य एशिया से भारत के हित हमेशा अफगानिस्तान से ही होकर गुजरते हैं, इसलिए अफगानिस्तान भारत के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति रखता है। इसलिए इस क्षेत्र में भारत हमेशा कोशिश करता है कि यहाँ शांति स्थापित हो और विकास का कार्य और तेजी आगे बढ़े जिससे भारत के निवेशों को सुरक्षा प्रदान होती रहे परंतु सत्ता स्थानांतरण के पश्चात भारत को अपने निवेशों पर खतरे की तलवार लटकती दिखाई दे रही है, जिसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी फिलहाल के लिए अधर में लटकी दिखाई दे रही है।[3] और तालिबान के सत्ता में आने

 ISSN 0975-735X

के पश्चात भारत को और कई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।

(1) **भारतीय सुरक्षा का मुद्दा**–अफगानिस्तान में तालिबान शासन की बहाली भारतीय सुरक्षा के लिए कुछ अत्यंत गंभीर आसन्न चुनौतियाँ प्रस्तुत करती है, चूँकि भारत उन देशों में एक है जिन्होंने वर्ष 1996–2001 के मध्य तालिबान के शासन को मान्यता प्रदान करने से इंकार कर दिया था इसलिए अभी तक भारत की नीति तालिबान के प्रति स्पष्ट रही है यहाँ तक कि भारत ने अफगानिस्तान में तालिबान विरोधी ताकतों को सहायता भी प्रदान की है। इसलिए भारत को अपनी सुरक्षा व्यवस्था की चिंता सीमा पार से हमेशा बनी रहती है। अफगानिस्तान में सत्ता परिवर्तन कर आई तालिबानियों की सरकार को पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई तथा चीन का पूर्ण सहयोग प्राप्त है यहाँ तक कि पाकिस्तान के वजीर–ए–आजम का एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बयान भी आया कि 'तालिबान को सत्ता की जीत मुबारक और तालिबान ने यह जीत हासिल कर गुलामी की जंजीरों को तोड़कर फेंक दिया है।' इन बयानों से साफ–साफ दर्शित है कि पड़ोस का कितना साथ है तालिबान पर। ऐसे में भारत को अपनी सुरक्षा व्यवस्था को और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि पाकिस्तान अफगानिस्तान से आए आतंकवादियों को पाकिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश कराने की पूर्ण कोशिश करेगा जिससे भारत में भय का माहौल हो और भारत में आंतरिक अराजकता फैल सके।[4] इन तथ्यों से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि तालिबान ने कश्मीर को भारत और पाकिस्तान का आंतरिक मुद्दा बताकर अपने–आपको एक तरफ कर लिया था परंतु पड़ोसी देश पाकिस्तान अवश्य ही तालिबानियों की वेश–भूषा में भारत के कश्मीर में धारा 370 के विरोध में अराजकता फैलाने की कोशिश करेगा जो कि भारत के लिए एक बहुत ही गंभीर विषय है।

(2) **अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का प्रसार**–पाकिस्तान के आतंकवादी समूह लश्कर–ए–तैयबा और जैश–ए–मोहम्मद जैसे अनेक समूहों का संबंध तालिबान से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य है, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को तालिबान से प्राप्त पुन: समर्थन और तालिबान की ओर से लड़ रहे जिहादी समूहों को पाकिस्तान द्वारा पुन: भारत की ओर मोड़ दिया जाना भारत के लिए एक गंभीर चुनौती है।

अफगानिस्तान के सुदूर कुनार प्रांत की एक घाटी में चरमपंथी संगठन अल–कायदा के समर्थक खुशियाँ मना रहे थे, यह आतंकवादी और कुछ लोग अफगानिस्तान में तालिबान की जीत को 'ऐतिहासिक जीत' बताकर पटाखे फोड़कर उनका स्वागत कर रहे थे। अफगानिस्तान से संयुक्त राज्य अमेरिका एवं नाटो की सेनाओं की वापसी के पश्चात् पूरी दुनिया में विस्तारित पश्चिमी देशों के विरोधी समूहों को बड़ा उत्साह और स्वयं से प्रोत्साहन मिला है जिन्होंने आज से 20 वर्ष पहले अफगानिस्तान की सरजमीं पर तालिबान और अल–कायदा को अस्थाई रूप से खदेड़ दिया था। आशंकित है कि इराक और सीरिया में मिली पराजय के पश्चात् जिहाद के लिए नई जमीन तलाश रहे कथित इस्लामिक स्टेट जैसे चरमपंथी संगठनों से जुड़े लड़ाकों के लिए अब अफगानिस्तान की भूमि एक मौका बनकर उभर सकती है और तालिबान एक मौकापरस्त बन जाएगा और आईएसआईएस के द्वारा अफगानिस्तान के वे अनियंत्रित स्थान पैर जमाने का नया अड्डा बन सकते हैं जहाँ तालिबान ने बीते दशक बिताए थे।[5] पश्चिमी देशों के सैन्य अधिकारियों और राजनेताओं ने चेतावनी देते हुए कहा है कि अफगानिस्तान में अल–कायदा पहले से कहीं अधिक ताकतों के साथ वापसी करेगा और अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का प्रसार तीव्र गति के साथ होगा तथा अफगानिस्तान की भूमि

चरमपंथियों का अड्डा बनकर वैश्विक पटल पर सभी देशों के लिए एक नासूर बनकर सामने आएगी।

(3) **धार्मिक कट्टरवाद**–वैश्विक पटल पर मौजूद अन्य अनेक आतंकवादी संगठनों की कट्टरपंथी और हिंसात्मक विचारधारा की तरह तालिबान के लिए भी अपनी विचारधारा को अफगानिस्तान के हितों की अनिवार्यता के साथ संतुलित करना एक कठिन कार्य है क्योंकि इसी धार्मिक कट्टरवाद के चलते तालिबान ने सर्वप्रथम अफगानिस्तान का नाम परिवर्तन कर 'इस्लामिक अमीरात ऑफ अफगानिस्तान' करने का विचार किया और अफगानिस्तान में शरिया कानून को लागू करने की विचारधारा पर जोर दिया। तालिबान का यह कानून और सत्ता परिवर्तन उन बहुत से अफगानों के लिए एक अभिशाप बनकर उभरा है जो गत 20 वर्षों के दौरान अमेरिकी उपस्थिति के बीच बड़े हुए थे और धार्मिक कट्टरवाद से अलग एक नवीनतम माहौल में साँस लेना सीख रहे थे। सबसे पहले दिमाग में विद्यार्थी, महिलाएँ तथा खिलाड़ी आते हैं इन दो दशकों के दौरान वे खूब उन्नति को परवान हुए हैं। उन्होंने उदार लोकतंत्रों द्वारा पेश स्वतंत्रता का स्वाद लिया है और वह उसी को अपनाना पंसद करते हैं जो अभी तक उन्होंने देखा तथा पसंद किया है। धार्मिक आजादी से इतर अफगान महिलाओं ने अपने से बड़े आकार के बुर्कों को उतार फेंका था जो उनकी गतिविधियों में रुकावट बनते थे। वे सभी जोर-शोर से स्कूल पहुँची थीं डॉक्टर और अन्य अफसर बनीं।[6]

वह उन जगहों के लिए चुनी गईं, जिन्हें हम भारत में विधानसभाएँ कहते हैं। अफगान महिलाओं ने उन्नति की सीढ़ियों पर चढ़कर टी॰वी॰ न्यूज एंकर जैसी नौकरियाँ तक प्राप्त कीं और सफल हुईं। यहाँ तक कि अफगान महिला फुटबॉल टीम भी बनाई गई। यह सभी धार्मिक आजादी संयुक्त राज्य अमेरिका के जाने और तालिबान के आ जाने के बाद समाप्त सी हो गई है। चूँकि तालिबान शब्द का इस्तेमाल ही मन में डर पैदा करता है जो एक तरह से संक्रामक है। भारत को दीर्घकालिक शांति और स्थिरता के लिए इस क्षेत्र को कट्टरपंथ से मुक्त करने जैसी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ेगा।

(4) **व्यापार पर खतरा**–भारत-अफगानिस्तान द्विपक्षीय व्यापार पर भी असर पड़ सकता है क्योंकि तालिबान के रहते हुए अफगानिस्तान का समस्त व्यापार ग्वादर और कराची बंदरगाह से होगा। ऐसे में भारत का ईरान के चाबहार बंदरगाह पर निवेश का अफगानिस्तान के मामले में कुछ अधिक महत्त्व नहीं रह जाएगा। यही कारण है कि अमेरिका और चीन ने पाकिस्तान के जरिए व्यापारिक संबंधों पर जोर दिया है। भारत द्वारा बनाए गए जरांज-डेलाराम हाईवे सलमा बाँध पर भी वर्तमान में तालिबान का कब्जा हो चुका है और कई बड़े प्रोजेक्ट अभी निर्माणाधीन हैं जिनके जरिए भारत के व्यापार में उन्नति का अवसर था परंतु वर्तमान में भारत का अफगानिस्तान से द्विपक्षीय व्यापार अंधकारमय दिख रहा है।

भारत के लिए आर्थिक चुनौती–भारत के विदेशमंत्री श्री एस॰ जयशंकर के द्वारा नवंबर 2020 में जिनेवा में अफगानिस्तान सम्मेलन में अपने वक्तव्य में कहा था कि भारत द्वारा अफगानिस्तान के सभी प्रांतों में शुरू की गई 400 से अधिक परियोजनाओं से अफगानिस्तान का कोई भी हिस्सा अछूता नहीं रहा है परंतु अब तालिबान के सत्ता हस्तांतरण के साथ इन परियोजनाओं का भविष्य अंधकारमय लगता है जिसमें कुछ परियोजनाएँ निम्नलिखित हैं[7]–

(क) **अफगान संसद**–काबुल में अफगान संसद का निर्माण भारत ने 90 मिलियन डॉलर की अनुमानित लागत से किया था। यह 2015 में चालू हो गया था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भवन

 ISSN 0975-735X

का उद्घाटन किया था।

प्रधानमंत्री मोदी ने इमारत को अफगानिस्तान में लोकतंत्र के लिए भारत की श्रद्धांजलि बताया था। प्रख्यात रूप से इमारत के एक ब्लॉक का नाम पूर्व प्रधानमंत्री वाजपेयी जी के नाम पर रखा गया है।

(ख) **जरांज-डेलाराम हाईवे**–एक अन्य महत्त्वपूर्ण परियोजना में सीमा सड़क संगठन द्वारा निर्मित 218 किमी लंबा जंराज-डेलाराम राजमार्ग भी है। जरांज ईरान के साथ अफगानिस्तान की सीमा के करीब स्थित है। 150 मिलियन डॉलर का राजमार्ग खश-रूड़ नदी के साथ जरांज के उत्तर पूर्व में डेलाराम तक जाता है, जहाँ यह एक रिंग रोड को जोड़ता है। जो दक्षिण में कंधार, पूर्व में गजनी और काबुल, उत्तर में मजार-ए-शरीफ और पश्चिम में हेरांत को जोड़ता है।

पाकिस्तान द्वारा अफगानिस्तान के साथ व्यापार के लिए भारत की भूमि द्वारा पहुँच से इंकार करने के साथ इस राजमार्ग का भारत के लिए रणनीतिक महत्त्व है क्योंकि यह ईरान के चाबहार बंदरगाह के माध्यम से भूमि से घिरे अफगानिस्तान में एक वैकल्पिक मार्ग प्रदान करता है। भारत ने महामारी के दौरान चाबहार के माध्यम से 75000 टन गेंहू अफगानिस्तान पहुँचाया था।

(ग) **पावर इंफ्रास्ट्रक्चर**–अफगानिस्तान में भारत के एक महत्त्वपूर्ण योगदान में राजधानी में बिजली की आपूर्ति बढ़ाने के लिए बगलान प्रांत की राजधानी पुल-ए-खुमरी से काबुल के उत्तर में 220 के॰वी॰ डीसी ट्रांसमिशन लाइन जैसे बिजली के बुनियादी ढाँचे का सुधार शामिल है। विशेष रूप से भारतीय उद्यमियों और यांत्रिकी ने प्रांतों में दूरसंचार प्रणालियों को बहाल किया।

(घ) **सलमा डैम**–इसे अफगान-मैत्री बाँध के रूप में भी जाना जाता है। जल विद्युत और सिंचाई परियोजना सभी बाधाओं के खिलाफ पूरी की गई थी और 2016 में इसका उद्घाटन किया गया था। तालिबान ने पिछले कुछ हफ्तों के दौरान आसपास के क्षेत्रों में कई हमले किए हैं जिसमें सुरक्षाकर्मियों की मौत हो गई है। तालिबान ने बाँध के आस-पास के क्षेत्र पर अब अपने नियंत्रण में दावा किया है।

(ङ) **परिवहन सुविधाएँ**–भारत ने सार्वजनिक परिवहन के लिए अफगानिस्तान को 400 बसें और 200 मिनी बसें उपहार में दी थीं। नगरपालिकाओं के लिए कुल 105 उपयोगिता वाहन, अफगान सेना के लिए 285 सैन्यवाहन और पाँच शहरों में सार्वजनिक अस्पतालों के लिए 10 एंबुलेंस भी भारत द्वारा दिए गए थे। अफगान राष्ट्रीय वाहक एरियाना को भी एयर इंडिया के तीन विमान मिले थे। जब उसने अपना परिचालन फिर से शुरू किया था।

भारत के समक्ष उपलब्ध विकल्प–अफगानिस्तान रणनीतिक रूप से तेल और गैस से समृद्ध मध्यपूर्व और मध्य एशिया में स्थित है, जो इसे एक महत्त्वपूर्ण भू-स्थानिक स्थिति प्रदान करता है भारत की अतिमहत्त्वाकांक्षी और अतिमहत्त्वपूर्ण तापी (TAPI Project-Turkmenistan, A¯gnistan, Pakistan and India) परियोजना से आती है, जिसका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश अफगानिस्तान से होकर गुजरता है इसलिए अफगानिस्तान में शांति बहाल होना भारत के लिए अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यह क्षेत्र पाइपलाइन मार्गों के लिए तो महत्त्वपूर्ण स्थान बन जाता है साथ ही अफगानिस्तान कीमती धातुओं और खनिजों जैसे प्राकृतिक संसाधनों से भी समृद्ध है।[8] अतः अफगानिस्तान में सत्ता स्थानांनातरण के पश्चात भी भारत के अपने हितों को साधने के लिए कुछ विकल्प उपलब्ध हैं–

(अ)**तालिबान से संवाद**–तालिबान ने अवैधानिक रूप से अफगानिस्तान में सत्ता ग्रहण

जरूर की है परंतु वर्तमान में तालिबान पूर्णत: अफगानिस्तान की सत्ता पर काबिज है इसलिए भारत को तालिबान के साथ संवाद को अफगानिस्तान में चल रही परियोजना से निरंतर विकास, सहायता और अन्य प्रतिष्ठानों के विकास की पूर्ति के बदले में तालिबानियों से अपने हितों की सुरक्षा की गारंटी का अवसर प्रदान कर सकता है। क्योंकि वर्तमान समय में तालिबान के बढ़ते कदमों और सत्ता परिवर्तन में तालिबान से वार्ता करना अपरिहार्य नजर आ रहा है लेकिन वार्ता में भारत को पाकिस्तान के सुरक्षा प्रतिष्ठान और हक्कानी नेटवर्क (तालिबान के अंदर संक्रिय एक प्रमुख गुट) के बीच गहरे संबंधों को नजरअंदाज नहीं करना होगा क्योंकि तालिबान से संघर्ष के समय अमेरिका ने इस पक्ष की अनदेखी की थी और उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी।

(आ) **क्षेत्रीय समाधान**–अगर आतंक की विजय हो तो यह हर देश की फिक्र बनती है लेकिन अफगानिस्तान के इस संक्रमण काल में अमेरिकी राष्ट्रपति की एक ऐसी तस्वीर सामने आई है जिससे पूरे अमेरिका का गुस्सा भड़क उठा क्योंकि अमेरिकी सरकार का सेना वापसी का कदम और सेना को समय से पूर्व अकथित तौर पर नाटकीय रूप से वापस कर लेना अमेरिका की वैश्विक स्तर पर नाकामी को दर्शाता है परंतु अफगानिस्तान में अशांति विश्व के साथ क्षेत्रीय समस्या बनकर भी उभरी है इसलिए अफगानिस्तान में शांति के लिए क्षेत्र के सभी देशों को एकजुट होकर समस्या का समाधान निकालने का प्रयास किया जाना चाहिए। हालाँकि अमेरिका और यूरोपीय संघ के प्रतिनिधियों के साथ भारत और चीन सहित 12 देशों ने फैसला किया कि वह सभी अफगानिस्तान में बंदूक के सहारे आने वाली किसी भी सरकार को मान्यता नहीं देंगे। वर्तमान में तालिबान की समस्या का समाधान वैश्विक स्तर पर करने के साथ ही इस समस्या का समाधान क्षेत्रीय संगठनों के संयुक्त प्रयास से किया जा सकता है जिसमें रूस, पाकिस्तान, ईरान और भारत शामिल हो सकते हैं क्योंकि रूस ने हाल ही के वर्षों में तालिबान के साथ संबंध विकसित किए हैं तालिबान के साथ किसी भी तरह की प्रत्यक्ष संलग्नता के लिए भारत को रूस के समर्थन की आवश्यकता अवश्य होगी। साथ ही भारत को क्षेत्रीय समाधान के रूप में ईरान को भी महत्त्व देने की आवश्यकता है क्योंकि अफगानिस्तान ईरान के साथ एक लंबी भूमि साझा करता है और उसके जातीय अल्पसंख्यकों से वह सांस्कृतिक संबंध रखता है। चूँकि ईरान में भारत की चाबहार परियोजना का मूल उद्देश्य पाकिस्तान को दरकिनार करते हुए अफगानिस्तान तक प्रत्यक्ष पहुँच कायम करना था क्योंकि अफगानिस्तान तक बड़ी मात्रा में आपूर्ति, गृहयुद्ध अथवा तालिबान के सत्ता हस्तातांरण के बाबजूद भी भारत की स्थिति वहाँ मजबूत बनाए रखने हेतु सभी परिदृश्यों में अफगानिस्तान तक प्रत्यक्ष पहुँच भारत के लिए महत्त्वपूर्ण है।

20 वर्ष पहले 9/11 के हमलों के पश्चात् भारत के तत्कालीन विदेशमंत्री जसवंतसिंह ने कहा था कि 'अमेरिका ने 11 सितंबर को जिस तरह से अपने-आपको लहू-लुहान पाया है भारत तो वैसे तजुर्बे से पिछले कई वर्षों से अवगत है। इस क्षेत्र में संपूर्ण वैश्विक समुदाय जानता है कि इन गतिविधियों के पीछे कौन है और वर्तमान में अफगानिस्तान की हालात का भी असली मास्टरमाइंड कौन है उसका मकसद क्या है और हम उससे कैसे निपट सकते हैं।' अक्टूबर 2001 में जब अमेरिका को 9/11 के बाद मिले जख्म अभी हरे ही थे तभी उसने पाकिस्तान को बड़ी खुशी से अपना साथी बना लिया था, जबकि पाकिस्तान की आईएसआई और अफगानिस्तान में तालिबान आपस में मिलकर जिहादी नेटवर्क चला रहे हैं वहीं दूसरी ओर भारत अपने हितों की रक्षा के साथ-साथ अफगान नागरिकों को शांति एवं उन्नति जीवन के लिए निवेशों को बढ़ा रहा है।[9] अफगानिस्तान

 ISSN 0975-735X

में भारत का प्रमुख हित क्षेत्रीय संपर्क के लिए रहा है नई सिल्क रोड रणनीति की पूरी अवधारणा मध्य एशिया (विशेष रूप से भारत) को अफगानिस्तान के माध्यम से व्यापार, पारगमन और ऊर्जा मार्गों से जोड़ने की थी। भारत की ओर से ईरान में चाबहार बंदरगाह और अफगानिस्तान में जरांज-डेलाराम रोड पर निवेश इस रणनीति का ही हिस्सा थे। भारत ने अफगानिस्तान में जो निवेश किया है उसे ध्यान में रखते हुए देश ने इस मुल्क में स्कूलों और अस्पतालों के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण सड़कों, बाँधों, बिजली लाइनों और सबस्टेशनों के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई है। भारत की विकास सहायता अब तक 3 अरब डॉलर से अधिक होने का अनुमान है। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण के लिए प्रतिबद्ध एक रणनीतिक साझेदारी समझौता भारत द्वारा 2011 में किया गया था। इस समझौते ने अफगानिस्तान में निवेश को प्रोत्साहित करते हुए कई क्षेत्रों में क्षमता निर्माण के लिए बुनियादी ढाँचे और संस्थानों, शिक्षा और तकनीकी सहायता को बहाल करने में मदद करने के लिए भारतीय समर्थन को अधिनियमित किया।

संदर्भ

1. थॉमस वॉरफील्ड (2012), अफगानिस्तान : ए कल्चर एंड पॉलिटिकल्स हिस्ट्री, प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, पृ० 08
2. https://www.aljazeera.com/where/afghanistan/
3. https://hindi.theprint.in/india/change-of-power-in-afghanistan-is-not-inclusive-will-affect-neighboring-countries-like-india-pm-modi/239485/
4. व्हीलटन टॉम (2021), पाकिस्तान चीयर्स तालिबान ऑउट ऑफ फीयर ऑफ इंडिया डिस्पाइट स्पीलवर्स थ्रेट, फ्रांस 24, पेरिस
5. पाकिस्तान कॉजन अफगान तालिबान अगेन्शट स्पॉयलर, द नेशन, 20 अगस्त 2020।
6. विक्टर ब्लू (2021), ए हर्ष न्यू रियल्टी फॉर अफगान वूमैन एंड गर्ल इन तालिबान-रन स्कूल, द न्यूयॉर्क टाइम्स, वाशिगटन डी॰सी॰
7. https://www.orfonline.org/hindi/research/aindias-developmental-partnership-in-afghanistan-here-to-stay-or-to-go/-
8. बाना सरोस (2021), भारत तथा तालिबान, स्ट्रेटजिक जर्नल्स आई॰डी॰एस॰ए॰, नई दिल्ली
9. अफगानिस्तान सिक्योरिटी फॉर्सेज वर्सेस द तालिबान : ए नेट असेसमेंट, कॉम्बेटिंग टेररिज्म सेंटर एट वेस्ट पॉइंट, 14 जनवरी 2021।

डॉ॰ दीपक

70 **एच॰आई॰जी॰ (जजेज कालोनी)**

ममफोर्ड गंज, प्रयागराज 211002 **उ॰प्र॰**

मो॰ 9451606611

mr.ritesh29@gmail.com

उत्तराखंड में पलायन, ग्रामीण विकास और महिला उद्यमिता: एक विवरणात्मक अध्ययन

डॉ० ललितमोहन पन्त, सह-प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी
विकास जोशी, सह-प्राध्यापक, इतिहास विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी
डॉ० आशीष टम्टा, सह-प्राध्यापक, पर्यटन विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

1990 के दशक में जब से भारत में आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत हुई तब से, भारत ने विकास की एक स्थिर दर देखी है और स्थिरीकरण-सह-संरचनात्मक समायोजन सुधार भारत के आर्थिक विकास के स्तंभ बन गए हैं। तभी से भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन लगातार प्रभावशाली रहा है और वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार, सांकेतिक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के संदर्भ में भारत अब दुनिया की 10वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और क्रय शक्ति समानता (पीपीपी) के आधार पर यह विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गई है। इस अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था को मुख्य रूप से क्वांटम निवेश में वृद्धि के कारण अत्यधिक लाभ हुए हैं। व्यापक आर्थिक संकेतकों के संदर्भ में अर्थव्यवस्था की स्थिति पूर्व-सुधार अवधि की तुलना में इस अवधि के दौरान सुसंगत रही है।

भारत में नियोजन के सबसे पुराने तरीकों में से एक मुख्य तरीका गरीबी और असमानता को कम करना रहा है। भारत में उदारीकरण के बाद से गरीबी में उल्लेखनीय गिरावट आई है और यह प्रवृत्ति पहले दो दशकों में प्रत्यक्ष रही है। हालाँकि गरीबी को कम करने के मामलों में विभिन्न राज्यों और ग्रामीण-शहरी क्षेत्रों में पर्याप्त अंतर दृष्टिगत है। लकड़वाला समिति (1951-52 से 2004-05 के लिए) और तेंदुलकर समिति (1993-94 से 2004-05 के लिए) गरीबी की माप करने वाली भारत में बनी प्रमुख समितियों में से एक है। तेंदुलकर समिति ने अपनी रिपोर्ट के माध्यम से बताया है कि साल 2004-05 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या शहरी क्षेत्रों में 25.7 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 41% थी। आजादी के बाद से ही ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में 'असमानता और गरीबी' एक प्रमुख मुद्दा रहा है। 1993-94 और 2009-2010 के बीच गिन्नी गुणांक द्वारा मापी गई खपत के संदर्भ में असमानता शहरी क्षेत्रों में मामूली रूप से बढ़ी है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह 1993-94 और 2004-05 के बीच बढ़ी और फिर 2009-10 में इसमें गिरावट दर्ज की गई।

इन सभी अनिश्चित तथा गंभीर कमियों के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था आज एक समेकित स्थिति में है। आज हमारा देश, विदेशी निवेश के एक प्रमुख गंतव्य स्थल के रूप में जाना

 ISSN 0975-735X

जाता है साथ ही यह बाहरी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (ओएफडीआई) को आकर्षित करने में सफल रहा है जो इसे एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करता है। हालाँकि इन सबके बावजूद भी अर्थव्यवस्था के समग्र विकास के संदर्भ में आज भी ग्रामीण भारत का विकास एक गहरी चिंता का विषय बना हुआ है।

भारत की अधिकांश आबादी (लगभग 65%) अभी भी गाँवों में निवास करती है जहाँ विषम गरीबी, स्वास्थ्य अवसरंचना में कमी और अशिक्षा जैसे मुद्दे केंद्र में बने हुए हैं। वे सरकार द्वारा चलाए जा रहे अपने स्वयं के कल्याण कार्यक्रमों में भी प्रभावी रूप से भागीदारी करने में असमर्थ हैं साथ ही उनमें तकनीकी ज्ञान की भारी कमी है, और अक्सर उनके पास अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए मानव पूँजी के अलावा कोई संसाधन उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थितियों में इस अपर्याप्तता और असंगति का सामना करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि एक सुविचारित नीति की पहल की जाए जो कि ग्रामीण पृष्ठभूमि के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो। इन पहलों को महिलाओं की भागीदारी और उद्यमशीलता के संदर्भ में और भी अधिक समावेशी बनाने की आवश्यकता है, ताकि महिलाओं के सशक्तिकरण के साथ-साथ मामूली निवेश के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार को भी सृजित किया जा सके। एक ओर जहाँ शहरी संगठित क्षेत्रों में महिलाओं की स्पष्ट भागीदारी है, वहीं गाँवों में महिलाओं के पास भागीदारी हेतु न ही उचित कौशल और प्रशिक्षण उपलब्ध है और न ही गाँवों में कोई संगठित संरचना का विकास हो सका है। हालाँकि उदारीकरण के पश्चात ग्रामीण क्षेत्र के विकास में भी सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं परंतु वैश्वीकरण की घटना अपने-आपमें ग्रामीण विकास का कोई समाधान नहीं है। कोई भी राष्ट्र अपने सभी आयामों और दृष्टिकोणों में तभी विकास कर सकता है जब ग्रामीण विकास पर नए सिरे से जोर दिया जाए, वैसे भी गरीबों के लिए एक सुरक्षा जाल होना आवश्यक है क्योंकि किसी भी प्रकार का अभाव विकास में परिवर्तित नहीं होता सकता।

द्वैतवाद–भारतीय परिप्रेक्ष्य में अर्थव्यवस्था का ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के मध्य आर्थिक, वित्तीय और सामाजिक रूप से एक गहरा अंतर्संबंध है। वस्तुत: इन दोनों क्षेत्रों के बीच पूँजीगत और मानवीय संसाधनों का मुक्त आवागमन होना आवश्यक है। किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के कारक के लिए सीमांत प्रतिफल समान होना चाहिएँ इससे जहाँ श्रम उत्पादकता में वृद्धि होती है वहीं फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी ज्यादा अंतराल उत्पन्न नहीं होता। हाल के दिनों में, अर्थव्यवस्था के अग्रणी जानकारों के मध्य ग्रामीण और शहरी विकास के बीच अंतर्संबंधों के विकास पर पुन: ध्यान दिया जाने लगा है और उन्होंने इस विषय पर नए सिरे से व्याख्या कर विश्व के सभी प्रमुख देशों का ध्यान इस दिशा में आकर्षित किया है।

हालाँकि इसके बावजूद भी सभी विकासशील देशों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच आर्थिक द्वैतवाद अभी भी प्रबल रूप से मौजूद है। यह अर्थव्यवस्था में एक आधुनिक शहरी क्षेत्र के साथ-साथ पारंपरिक ग्रामीण क्षेत्र के अस्तित्व को परिलक्षित करता है। इस अंतर्द्वंद्व का एक प्रमुख कारण यह है कि भारत सहित कई विकासशील देशों ने अभी भी भारी औद्योगीकरण की नीति को साकार बनाने हेतु अपने ग्रामीण क्षेत्रों से आधुनिक शहरी क्षेत्रों में संसाधनों तथा श्रम अधिशेष का मुक्त हस्तांतरण किया है। हालाँकि विकास की यह रणनीति ग्रामीण क्षेत्रों के विरुद्ध और शहरी क्षेत्र के पक्ष में झुकी हुई है। 1990 के दशक की शुरुआत में भारत ने व्यापक आर्थिक सुधार की शुरुआत की और यह सुधार नीतियाँ कुछ हद तक शहरी क्षेत्रों के विकास पर केंद्रित

प्रतीत होती हैं। यह शहरी क्षेत्रों में हुए सुधार के प्रति झुकाव को अभी भी अर्थव्यवस्था के प्रत्येक लक्षण में देखा जा सकता है, चाहे वह प्रति व्यक्ति आय की बात हो या फिर साक्षरता, शिक्षा, कौशल उन्नयन और सामाजिक सेवाओं तक पहुँच से संबंधित मापक हों।

उपर्युक्त समग्र स्थितियाँ अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों यथा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में उत्पादन के कारकों को स्थिर कर समान करने के आधार पर एक ढाँचे को अपनाने का समर्थन करती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवागमन बाधा मुक्त हो अर्थात् सर्वप्रथम संसाधनों की आवाजाही को प्रभावित करने वाली विकृतियों को अर्थव्यवस्था से दूर किया जाए। यदि कोई देश अपनी नीतियों का क्रियान्वयन बाजार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करता है तो उच्च दक्षता और अधिक समतावादी आय वितरण को प्राप्त किया जा सकता है। इससे अर्थव्यवस्था में जहाँ एक ओर अधिक दक्षता और समानता आएगी वहीं सहक्रियता भी उत्पन्न होगी। शहरी पूर्वाग्रह में सुधार के लिए भी आवश्यक है कि कृषि से संबंधित प्रसंस्करण गतिविधियों में तेजी लाकर अधिक मूल्यवर्धन के साथ उच्च विकास को बढ़ावा दिया जाए। इससे ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में गरीबी कम करने में तो मदद मिलेगी ही, साथ ही बेहतर ग्रामीण-शहरी संबंध भी स्थापित होंगे।

अधिकांश विकासशील देशों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की दर बहुत अधिक है। चूँकि अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है इस वजह से गरीबी की सघनता भी इस क्षेत्र में अधिक है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए कुछ उच्च विकास की नीतियों का क्रियान्वयन इन क्षेत्रों में किया जाए तो आवश्यक तौर पर गरीबी में भी कुछ कमी देखने को मिलेगी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकास की नीतियाँ कुछ हद तक पक्षपाती प्रतीत होती हैं क्योंकि वे शहरी क्षेत्र का पक्ष लेती हैं। हालाँकि वर्तमान समय में शहरी पूर्वाग्रह में कुछ सुधार हुआ है क्योंकि कृषि के लिए व्यापार की शर्तों ने विभिन्न सुधार प्रक्रियाओं को अपनाया है। फिर भी सरकारी निवेश में शहरी क्षेत्रों के प्रति अभी भी पक्षपात मौजूद है और इस पूर्वाग्रह सुधार के लिए आवश्यक है कि सरकार तत्काल ग्रामीण क्षेत्रों में निवेश करना प्रारंभ करे। परिवहन और संचार जैसे ढाँचागत विकास जो कि गतिशील सुविधा के साथ-साथ बेहतर ग्रामीण-शहरी संपर्क स्थापित करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं; का बेहतर विकास किया जाए जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रही आबादी के लिए बाजारों, रोजगार और सेवाओं तक पहुँच आसान हो सके। आर्थिक लाभ से संबंधित अनुभवजन्य साक्ष्य भी इस बात की ओर इंगित करते हैं कि ग्रामीण बुनियादी ढाँचे और अनुसंधान में निवेश करने से जहाँ एक ओर गरीबी के मामलों में कमी दृष्टिगत हुई है वहीं उसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में भी सुधार होता है।

विश्व के सभी देशों में द्वैतवाद की यह स्थिति आर्थिक द्वैतवाद के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी मौजूद है। उदाहरणस्वरूप भारत में सामाजिक द्वैतवाद लंबे समय से अपनी जड़ें जमाए हुए है। जाति और लिंग व्यवस्था के रूप में इसे जाना और समझा जा सकता है। महिलाओं के संदर्भ में उनके परिश्रम के बावजूद उन्हें दोयम दर्जा दिया जाता है साथ ही कभी-कभार तो उन्हें बहुत अधिक अपमान और दमन का भी सामना करना पड़ता है। हालाँकि अब शनैः-शनैः इस विचारधारा में परिवर्तन हो रहा है। साथ ही ग्रामीण विकास और आत्म-सशक्तिकरण के लिए महिलाएँ गाँवों में उद्यमशीलता की पहल शुरू कर महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ भी निभा रही हैं। चूँकि वर्तमान सरकारें ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमशीलता पैदा करने हेतु प्रयासरत हैं और इस संबंध में ग्रामीण क्षेत्रों में

 ISSN 0975-735X

उद्यमशीलता पैदा करने के लिए सरकार के पास महिलाओं के लिए महत्त्वाकांक्षी योजनाएँ, प्रावधान और विशेष प्रोत्साहन भी शामिल हैं इसलिए महिलाओं को चाहिए कि वे सरकार की नीतियों का लाभ उठाएँ और स्वयं सरकारी नीतियों में शामिल होकर रोजगार पैदा करें।

प्रवास (माइग्रेशन)–प्रवासन ने हाल ही में संपूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। भारतीय राज्य उत्तराखंड के संदर्भ में यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यहाँ इससे जुड़ा एक नया शब्द 'घोस्ट विलेज' अस्तित्व में आ चुका है। घोस्ट विलेज का तात्पर्य उत्तराखंड राज्य के पर्वतीय क्षेत्र के ऐसे गाँवों से है जिनकी संपूर्ण जनसंख्या पलायन कर चुकी है। इसके अलावा एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा 'कृषि का नारीकरण' रहा है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र का पुरुष वर्ग जो कृषि गतिविधियों में संलग्न था अब रोजगार की तलाश में शहरी औद्योगिक केंद्रों में प्रवेश कर चुका है।

प्रवासन के हैरिस–टोडारो मॉडल ने इसकी अंतर्निहित गतिशीलता को समझने के लिए इसका गहन विश्लेषण किया है। यह मॉडल आर्थिक प्रणाली के दो क्षेत्रों यथा–ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में श्रमिकों के प्रवास का विश्लेषण करता है। इन दो क्षेत्रों के बीच अंतर विभिन्न प्रकार के उत्पादित माल, उत्पादन की तकनीक और वेतन निर्धारण की प्रक्रिया से संबंधित हैं। जहाँ एक ओर कृषि वस्तुओं का उत्पादन ग्रामीण क्षेत्र की विशिष्ट गतिविधि है वहीं निर्मित वस्तुओं का उत्पादन शहरी क्षेत्र की विशेषता है। यहाँ वस्तुओं और श्रम बाजार दोनों में पूर्ण प्रतिस्पर्धा है। श्रम बाजार में विभाजन न्यूनतम वेतन पर आधारित होता है जिसका निर्धारण राजनीतिक और संस्थागत रूप से होता है वहीं ग्रामीण क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी में लचीलापन देखने को मिलता है जो इस क्षेत्र के सीमांत उत्पादकता के बराबर है। इस मॉडल के अनुसार विनिर्मित वस्तुओं की तुलना में कृषि वस्तुओं की सापेक्ष कमी विनिर्मित वस्तुओं की कीमत का निर्धारण करती है। हैरिस और टोडारो के अनुसार अर्थव्यवस्था में एक लंबी अवधी तक संतुलन बनाए रखने के लिए प्रवासन पर, ग्रामीण श्रमिकों का निर्णय अपेक्षित शहरी मजदूरी/वेतन के अनुमान पर निर्भर करता है।

इस मॉडल की प्रमुख धारणाओं में से एक धारणा यह है कि ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में प्रवासियों का स्थानांतरण तब तक अनवरत रूप में होता रहेगा जब तक कि शहरी मजदूरी, ग्रामीण वेतन से अपेक्षाकृत अधिक है। इसमें संतुलन की स्थिति तब ही उत्पन्न की जा सकती है जब ग्रामीण मजदूरी अपेक्षित शहरी मजदूरी के बराबर हो जाए। हैरिस टोडारो मॉडल एक एजेंट आधारित कंप्यूटेशनल मॉडल द्वारा परिष्कृत है जो कि श्रमिकों के ग्रामीण–शहरी विभाजन की प्रक्रिया को सामाजिक क्रियाओं के माध्यम से सीखने का औपचारिक रूप देता है। इसमें एजेंट ऐसे व्यक्ति होते हैं जो कमाई के सर्वोत्तम स्थानों की खोज करते हैं। हैरिस–टोडारो मॉडल के अनुसार ग्रामीण–शहरी प्रवासन तब होता है जब अपेक्षित शहरी–मजदूरी ग्रामीण मजदूरी से अधिक हो जाएगी इसके अलावा होने वाले अन्य प्रवासन यथा–गैर–समन्वित और बिखरे हुए व्यक्तिगत प्रवासन का निर्णय स्थानीय जानकारी के आधार पर होता है जिसमें सकल नियमितता पाई जाती है। इस कंप्यूटेशनल मॉडल की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सिमुलेशन में एक समग्र पैटर्न प्रदर्शित होता है जो कि मूल हैरिस–टोडारो मॉडल में नहीं पाया गया है। यह समेकित पैटर्न दर्शाता है कि औसत मूल्य के आसपास शहरी मजदूरी में उतार–चढ़ाव की संभावना है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कभी यह वास्तविक शहरी मजदूरी, ग्रामीण क्षेत्र में प्राप्त की जाने वाली मजदूरी से नीचे भी हो सकती है। इसी घटना को रिवर्स माइग्रेशन के रूप में जाना जाता है और इसे कई विकासशील

देशों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा गया है।

इस एजेंट-आधारित हैरिस-टोडारो मॉडल की उत्तराखंड में प्रवासी पैटर्न के लिए निश्चित प्रासंगिकता है। इसका मुख्य कारण मजदूरी में अंतर है क्योंकि उत्तराखंड के गाँवों में रोजगार के अवसर सीमित हैं और शहरी केंद्रों की अपेक्षा गाँवों में नाममात्र का वेतन प्राप्त होता है। हालाँकि यदि इसे वेतन और रहने लायक पर्यावरण के संदर्भ में देखा जाए तो यह अंतर कम हो जाता है। इसके साथ ही संशोधित मॉडल में यह भी भविष्यवाणी की गई है कि अगर शहरी वेतन में गिरावट आती है तो रिवर्स माइग्रेशन की संभावना बढ़ सकती है। इस रिवर्स माइग्रेशन को कोविड महामारी के आलोक में बेहतर तरीके से समझा जा सकता है, यह रिवर्स माइग्रेशन ऐसे समय में हुआ है जब शहरी केंद्रों में रोजगार के अवसर या तो कम हो गए हैं या मृतप्राय हो गए हैं, जिससे वापस ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन हुआ और इस रिवर्स माइग्रेशन के दौरान वापस आए प्रवासियों के पास विविध कौशल और नवोन्मेष विचारों का प्रवाह है जिसका उपयोग मानव संसाधनों के एक पुल के रूप में किया जा सकता है। क्योंकि ये वापस लौटे प्रवासी शहरी तौर-तरीकों और बाजारों से अच्छी तरह वाकिफ हैं अत: इसमें महिलाओं को केंद्र में रखकर उद्यम शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इन रिवर्स प्रवासियों को इस महामारी के दौरान अपने वास्तविक अहसासों की भी अनुभूति हुई है जिससे उनके भीतर अपने गाँवों में उत्पादक रोजगार के अवसर पैदा करने की भावना भी बलवती हुई है।

कोविड-19 लॉकडाउन के बीच शहरी क्षेत्रों में रोजगार के लिए प्रवास कर चुके कई हजारों प्रवासी वापस उत्तराखंड वापस लौटे हैं और उत्तराखंड राज्य सरकार ने उन्हें ब्याज मुक्त ऋण, सब्सिडी, इको-टूरिज्म और सूक्ष्म उद्यम स्थापित करने के लिए मुफ्त बिजली की पेशकश करते हुए यहाँ वापस रहने और अपने जीवन का पुनर्निर्माण करने के लिए मनाने की पुरजोर कोशिश की है। इसके साथ ही राज्य सरकार ने रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के लिए अपने वार्षिक वित्तीय विवरण में अलग से अतिरिक्त बजट का भी प्रावधान किया है। राज्य के ग्रामीण विकास और प्रवासन आयोग द्वारा जारी एक अंतरिम रिपोर्ट के अनुसार 23 अप्रैल, 2020 तक कुल 59,360 लोग राज्य के 10 पहाड़ी जिलों में वापस आ चुके थे, इनमें से 12,039 पौड़ी गढ़वाल में और 9,303 अल्मोड़ा से हैं। पौड़ी-गढ़वाल और अल्मोड़ा ये दोनों ही जिले प्रवास/पलायन से सर्वाधिक प्रभावित हैं। राज्य में पलायन का आलम यह था कि 2001 से 2011 की जनगणना के मध्य ही लगभग 3,50,000 निवासी राज्य से पलायन कर चुके थे और लगभग 1,048 गाँव निर्जन हो चुके हैं।

प्रवासियों की वापसी और उनके रहने से सामाजिक-आर्थिक असंतुलन को सुधारने में मदद मिल सकती है और निर्जन गाँवों को फिर से बसाया जा सकता है, इन निर्जन गाँवों में से कई गाँव तो सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं पर अवस्थित हैं।

उत्तराखंड में महिला उद्यमिता—किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति उसकी सभ्यता के स्तर का व्यापक सूचक होती है। उद्यमशीलता से आर्थिक विकास होता है और इस गतिविधि में महिलाओं की भागीदारी समय के साथ उलट गई है। उत्तराखंड की महिलाएँ राज्य की अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही हैं। उन्होंने राज्य गठन के संघर्ष में महत्त्वपूर्ण और रचनात्मक भूमिका निभाने के साथ-साथ राज्य के विकास कार्यक्रमों, संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था तो पूर्णत: महिलाओं पर ही केंद्रित है चाहे फिर

मुद्दा कृषि से संबंधित हो या फिर वन संरक्षण, मवेशियों की देखभाल, डेयरी उत्पादन या फिर पर्यावरण सरंक्षण का हो; उनकी भागीदारी को प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है।

इस बात में कोई दो राय नहीं की, उद्यमिता किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास की रीढ़ है क्योंकि यह मूल्य और रोजगार सृजित करती है। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि और विकास तब तक एकतरफा ही रहेगा जब तक उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महिला उद्यमशीलता को शामिल नहीं किया जाता। महिलाएँ जो कि विश्व की लगभग आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं; आज भी उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में भारी असमानता है। उनकी स्थिति को सही करने का एकमात्र उपाय उन्हें उद्यमिता में शामिल करना है। डेल द्वारा वर्ष 2015 में किए गए एक अध्ययन में कुछ प्रमुख मापदंडों के आधार पर देशों को रैंकिंग प्रदान की गई है। इन मापदंडों में शामिल हैं–कारोबार के लिए माहौल, संसाधनों तक लिंग आधारित पहुँच, महिलाओं का नेतृत्व और कानूनी अधिकार, उद्यमिता के लिए पाइप लाइन और संभावित महिला उद्यमी नेता। विभिन्न देशों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, स्वीडन, यूके और यूएसए ने महिला उद्यमिता क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम किया है, जबकि बांग्लादेश, भारत और पाकिस्तान ने एशियाई देशों में सबसे कम स्कोर किया है। (वैश्विक महिला उद्यमी लीडर्स स्कोरकार्ड 2015) वर्तमान समय में विश्व के तमाम देशों में से भारत में शिक्षित युवा आबादी की संख्या सर्वाधिक है। शैक्षणिक सुविधाओं के मद्देनजर उत्तराखंड राज्य के निवासियों को विविध कौशल सीखने के मौके अधिक उपलब्ध हैं क्योंकि राष्ट्रीय स्तर की तुलना में साक्षरता और शिक्षा का स्तर उत्तराखंड राज्य में बहुत अधिक है। इसके अलावा भी पूरे देश में विभिन्न अभियानों के माध्यम से उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा रहा है जैसे की स्किल इंडिया, मेक इन इंडिया, स्टार्ट–अप इंडिया आदि।

वर्तमान समय में महिला उद्यमिता के क्षेत्र में शिक्षाविदों द्वारा भी काफी ध्यान दिया जा रहा है। यह क्षेत्र दुनियाभर में जोर पकड़ रहा है और भारत भी इस दिशा में निरंतर आगे बढ़ रहा है। महिलाएँ जो कि आबादी के 50% भारांश का प्रतिनिधित्व भी करती हैं, की उद्यमशीलता क्षमता का दोहन करने के लिए ठोस प्रयास किए जा रहे हैं। हालाँकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह भी सच है कि यहाँ के पितृसत्तात्मक समाज में आर्थिक विकास की मुख्य धारा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। लेकिन समय की जरूरत है कि महिलाओं में उद्यमशीलता की संस्कृति को बढ़ावा देकर उनके आर्थिक सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त किया जाए। उत्तराखंड में, महिला उद्यमियों और स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) ने बुनियादी खाद्य प्रसंस्करण और ऊन बुनाई जैसी पारंपरिक गतिविधियों में कदम रखा है। उत्तराखंड के कुमाऊँ और गढ़वाल मंडल में अनुकरणीय प्रदर्शन के कई उदाहरण हैं। हालाँकि अभी भी मूल्य संवर्द्धन और कवरेज का दायरा बढ़ाने की जरूरत है साथ ही उत्पादन की प्रक्रिया को और अधिक बढ़ाना होगा ताकि अधिक वैल्यू एडिशन हासिल किया जा सके। नए मार्केटिंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से स्थानीय उत्पादों का संगठित विपणन एक सीमा के अधीन है। इसके चलते वस्तुओं का मूल्यवर्धन किया जाना अनिवार्य हो जाता है। उत्तराखंड में महिलाओं की भागीदारी की उच्च दर है और व्यावसायिक गतिविधियों में उनकी प्रमुख भूमिका है। यह इस दृष्टिकोण का भी समर्थन करता है कि इस क्षेत्र में व्यावसायिक क्षमता है, आवश्यकता है कि इसे निवेश के माध्यम से संस्थागत रूप से वित्तपोषित किया जा सके। महिलाओं द्वारा हीरे की कटाई और पॉलिशिंग का काम भी किया जा सकता है क्योंकि इस क्षेत्र में उनकी निपुणता अधिक होती है, हालाँकि इसके लिए कुशल प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी जिसके लिए संस्थागत मदद माँगी

जा सकती है। कोविड-19 महामारी के मद्देनजर एक और अवसर आतिथ्य क्षेत्र के रूप में भी उभरा है, जहाँ महिलाएँ वापस लौटने वाले लोगों की मदद से परित्यक्त घरों को होमस्टे में बदलने में मदद कर सकती हैं, क्योंकि उत्क्रमित प्रवासियों में से अधिकांश व्यक्तियों की उम्र 30 से 40 वर्ष के बीच है और इनमें से अधिकांश लोग काफी कम वेतन पर आतिथ्य क्षेत्र में काम भी कर चुके हैं। साथ ही इस माध्यम से जहाँ वे अन्य लोगों को भी रोजगार उपलब्ध करवा पाएँगे, वहीं राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

निष्कर्ष—उदारीकरण के बाद से भारत का विकास मार्ग संतोषजनक रहा है, लेकिन इसने सही अर्थों में विकास को हासिल नहीं किया है। यह विकास ग्रामीण क्षेत्रों तक नहीं पहुंचा है जैसा कि द्वैतवादी प्रतिमानों से परिलक्षित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, अभाव और सामाजिक द्वैतवाद अधिक स्पष्ट है। साथ ही महिला सशक्तिकरण के लिए लैंगिक असमानता अभी भी विद्यमान है। ग्रामीण भारत में महिलाओं का सशक्तिकरण तभी संभव है जब महिलाएँ पूर्णत: मुख्यधारा में शामिल हो सकेंगी। चूँकि विकास से संबंधित नीतियाँ मुख्यत: उद्योगों से संबंधित होती हैं और इनमें एक प्रकार से शहरी पूर्वाग्रह पहले से ही शामिल होते हैं, इसके अलावा किसी शहरी कारोबारी माहौल को गाँवों में स्थापित भी नहीं किया जा सकता इसलिए आवश्यक है कि कृषि के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक मूल्यवर्धन वाली गतिविधियों की भी शुरुआत की जाए।

उत्तराखंड के संदर्भ में रोजगार की तलाश में नगरीय औद्योगिक केंद्रों की ओर बहुत बड़े पैमाने पर पलायन हुआ है जो कि लाभ की दृष्टि से बेहतर है। राज्य में उद्यमी उपक्रम भी मौजूद हैं जो की बड़े पैमाने पर महिलाओं द्वारा प्रबंधित किए जाते हैं। महिला उद्यमिता के इस क्षेत्र को प्राथमिक कृषि पर आधारित गतिविधियों के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी बढ़ावा देने और विविधीकरण की आवश्यकता है। कोविड-19 महामारी के परिणामस्वरूप रिवर्स माइग्रेशन के चलते महिलाओं की भागीदारी के साथ नए उद्यमशीलता उद्यमों को शुरू करने का एक बेहतर मौका लोगों के पास उपलब्ध है जिसमें वापस लौटने वाले प्रवासियों के कौशल और ज्ञान का उपयोग भी किया जा सकता है।

संदर्भ

1. M.S. Ahuluwalia, (2002) , Economic Reforms in India Since 1991: Has Gradualism Worked. Journal of Economic Perspectives, Vol: 16, No. 03, P. 67-88
2. M.S.Ahuluwalia, (2011), Prospects and Policy Challenges in the Twelfth Plan, Economic and Political Weekly, Vol. 46, No. 21, P. 88-105
3. L.Aquino, S.J Jaylson And T.T.P. Penna, (2006), A Harris-TodaroAgent Based- Model to Rural-Urban Migration. Brazilian Journal of Physics, Vol- 36, Sao Paulo.
4. N. Bertaux And E. Crable, (2007) , Learning About Women, Economic Development, Entrepreneurship and the Environment in India.A Case Study, Journal of Developmental Entrepreneurship, Vol. 12, No. 04, P. 467-478.
5. S.S.Bhalla (2011) , Inclusion and Growth in India: Some Facts, Some Conclusions.Asia Research Center Working Paper 39, London School of Economics and Political Science.
6. N.R. Bhanumurthy and A. Mitra, (2003) , Declining Poverty in India:A Decompositions Analysis, Working Paper-70 Institute of Economic Growth, New Delhi
7. C. Brush, A. Bruin And F.Welter, (2009), A Gender-Aware Framework for Female Entrepreneurship, International Journal of Gender & Entrepreneurship. Vol.01, No.

1, P. 8-24
8. R.D. Hisrich And O.S.Ayse, (1999), Women Entrepreneurship inA Developing Economy" Journal of Management Development, Vol.18, No. 02, P. 114-123.
9. A.Kumar, (2011) , Entrepreneurial Role Played by the Women of Uttarakhand with The Help of Various Social, Structural Components, Global Journal of Human Social Science, USA.
10. V.M. Kumbhar, (2013) , Some Critical Issues of Women Entrepreneurship in Rural India, EuropeanAcademic Research, Vol-1, No. 2, P. 192-200.
11. U. Lenka And S. Agarwal, (2017), Role of Women Entrepreneur And NGOs in Promoting Entrepreneurship: Case Studies from Uttarakhand India, Journal of Asia Business Studies.
12. D. Ray, (1998) , Development Economics, Princeton University Press, Princeton.
13. T. Wandschneider, (2004), Small Rural TownsAnd Local Economic Development. Evidence from Two Poor States in India, Paper for the International Conference on Local Development, Washington, D.C.
14. World Bank (2009), World Development Indicators 2009, Washington, D.C.

Dr.Ashish Tamta, Dept. of Tourism
Uttarakhand Open University, Haldwani,
Vishwavidyalaya Marg, Near Transport Nagar,
Haldwani (Nainital) 263139 U.K.
ashishtamta@outlook.com

महर्षि अरविंद घोष के शिक्षादर्शन एवं समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन

मोनिका, शोधार्थी, शिक्षा विभाग
डॉ॰ यशवंती गौड़, शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर
अपेक्स यूनिवर्सिटी, जयपुर

शिक्षा दर्शन में महर्षि अरविंद का शिक्षा दर्शन भी एक प्रमुख दर्शन है। महर्षि अरविंद घोष ने भारतीय शिक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने ही घोषणा की कि मानव सांसारिक जीवन में भी देवी शक्ति प्रदान कर सकता है तथा भौतिक जीवन जीते हुए भी वह मानव मात्र की सेवा से अतिमानस एवं अतिमानव में परिवर्तित हो सकता है। उनके अनुसार वर्तमान परिस्थितियाँ भौतिकवादी सभ्यता का अंधानुकरण कर रही है, जबकि वे स्वयं लक्ष्य की दृष्टि से, आदर्शवादी आगम की दृष्टि से, यथार्थवादी तथा महत्त्वाकांक्षा की दृष्टि से मानवतावादी थे।

अध्ययन का औचित्य–महर्षि अरविंद घोष के शिक्षा दर्शन की वर्तमान समय में प्रासंगिकता से संबंधित कोई अध्ययन शोधकर्त्री की दृष्टि में नहीं आया है। अत: यह अध्ययन करना समीचीन प्रतीत होता है कि महर्षि अरविंद ने भी भारत के लिए ऐसे ही शिक्षा दर्शन का निर्माण किया है जो नैतिक एवं आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत था, जिससे सक्षम भविष्य का निर्माण हो, साथ ही संस्कृति की भी विशालता बनी रहे।

तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण–किसी भी समस्या को प्रस्तुत करने के लिए उसका परिभाषीकरण आवश्यक होता है, जिससे उसकी व्यावहारिकता स्पष्ट हो जाती है उपर्युक्त समस्या में मुख्य रूप से तीन घटक हैं–महर्षि अरविंद का शिक्षा दर्शन, समसामायिक, प्रासंगिकता।

अध्ययन के उद्देश्य :

* महर्षि अरविंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षा के अर्थ का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार विद्यालय के स्वरूप का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षक छात्र संबंध्ध का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार अनुशासन के स्वरूप का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षण विध्धियों का अध्ययन करना।
* महर्षि अरविंद के शिक्षा दर्शन की समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

शोध की मान्यता–महर्षि अरविंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में शिक्षा दर्शन परिलक्षित होता है।

शोध की परिकल्पना–महर्षि अरविंद का शिक्षा दर्शन वर्तमान समय के संदर्भ में प्रासंगिक

 ISSN 0975-735X

है।

शोध विधि–शोधार्थी द्वारा अध्ययन में विषयवस्तु विश्लेषण, दार्शनिक तथा सर्वेक्षण विधियों का प्रयोग किया गया।

प्रस्तुत शोधाध्ययन में प्रयुक्त चर–

शोधार्थी ने अपनी शोध समस्या के अध्ययन हेतु दो चर 'स्वतंत्र चर' एवं 'आश्रित चर' लिए हैं–

स्वतंत्र चर–महर्षि अरविंद का शैक्षिक दर्शन।

आश्रित चर–महर्षि अरविंद के शैक्षिक दर्शन की वर्तमान समय में प्रासंगिकता।

अध्ययन में जनसंख्या–प्रस्तुत अध्ययन की जनसंख्या हेतु समसामायिक प्रासंगिकता हेतु राजस्थान के सभी माध्यमिक स्तरीय विद्यार्थियों व शिक्षकों को लिया गया।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए न्यादर्श का चयन–

* प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्त्री ने महर्षि अरविंद से संबंधित सभी मुख्य पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, आलेखों एवं दस्तावेजों को न्यादर्श के रूप में चुनकर महर्षि अरविंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा शैक्षिक विचारधारा को विश्लेषित किया है।
* समसामयिक प्रासंगिकता जानने के लिए माध्यमिक स्तरीय 20 अध्यापकों तथा 100 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में स्वीकार कर अध्ययन किया गया है। जयपुर के दो विद्यालयों का यादृच्छिक विधि से चयन करके उनमें से निम्न प्रकार न्यादर्श चयनित किए गए–

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण–प्रस्तुत अध्ययन में उपकरण के रूप में स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया। शोध के विषय में कोई मानकीकृत उपकरण उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में इस स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। इस प्रश्नावली में 35 प्रश्नों, जिनका निर्माण शोधकर्त्री ने अध्ययन की आवश्यकता, प्रक्रिया व परिणाम की विश्वसनीयता व वैधता के प्रयोजन से किया, को रखा गया।

परिसीमांकन–

* प्रस्तावित शोध अध्ययन केवल महर्षि अरविंद के शिक्षा दर्शन पर ही केंद्रित है।
* प्रस्तावित शोध्ध में महर्षि अरविंद के कृतित्व का अभिप्राय: उनके शिक्षा संबंधी विचारों से है।
* महर्षि अरविंद के शैक्षिक दर्शन के महत्त्वपूर्ण विचारों का अध्ययन प्रस्तावित शोध के अंतर्गत किया गया है।
* शैक्षिक दर्शन के अंतर्गत शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विद्यालय संकल्पना, शिक्षक छात्र संबंध, शिक्षण विधियाँ, अनुशासन को ही सम्मिलित किया गया है।

युवावस्था : विचारधारा एवं कार्य–महर्षि अरविंद घोष यद्यपि बचपन से युवा होने तक अर्थात् कुल चौदह वर्षों तक ब्रिटेन में रहने, वहाँ से ही समस्त शिक्षा प्राप्त करने तथा उसी परिवेश में पले-बढ़े होने के कारण वहाँ की सभ्यता और संस्कृति से काफी प्रभावित थे। ब्रिटेन में रहकर पाश्चात्य दार्शनिकों और यहाँ के साहित्यकारों को भी खूब पढ़ा-समझा और उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। शिक्षा और दर्शन ने, यहाँ की भाषा और साहित्यादि सभी ने अरविंद पर अपनी बहुत अधिक छाप व प्रभाव छोड़ा तथा वे यहाँ की शिक्षा और दर्शन में पूर्णत: दक्ष और सिद्धहस्त

भी हुए, तथापि ब्रिटेन में वहाँ की कमियों को नजरअंदाज न कर सके और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की युक्तियुक्त आलोचना की। ब्रिटेन में रहते हुए भी वे बंगाल के 'बंगाली' नाम से प्रकाशित पत्र को येनकेनरूपेण प्राप्त कर उन्हें पढ़ते और वहाँ की सरकार व सत्ताधीशों की कमियों व निरंकुशताओं की निंदा भी करते। कैंब्रिज में ही 'इंडियन मजलिस', 'लोटस एंड डैगर' नामक संस्थाओं के संपर्क में भी आए और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अनेक खामियों और अनुचित प्रवृत्तियों तथा अन्योन्य बातों के कारण उनकी आलोचनापूर्ण अभिव्यक्ति का प्रकटीकरण करने से स्वयं को रोक न सके। इसका वास्तविक कारण यही कहना चाहिए कि अरविंद घोष किन्हीं पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों तथा देश या पक्ष विशेष के समर्थक, प्रशंसक अथवा निंदक न थे, प्रत्युत् स्वबुद्धि-विवेक और विचार-चिंतन-मनन पूर्वक उचितानुचित का ज्ञान करने तथा उनमें भेदाभेद करने की तत्त्वान्वेषी मेधा के धनी थे।

महर्षि अरविंद घोष के अनुसार शिक्षा का अर्थ–इसके अनुसार वास्तव में मनुष्य की शिक्षा उसके जन्मकाल से ही आरंभ हो जाती है और उसके संपूर्ण जीवनभर चलती रहती है। इसके अतिरिक्त यदि शिक्षा को अत्यधिक मात्रा में फलदायक होना हो तो उसे जन्म से पहले ही आरंभ हो जाना आवश्यक है। स्वयं माता ही इस शिक्षा का प्रारंभ विविध क्रिया द्वारा करती है। सर्वप्रथम वह अपनी निजी उन्नति के लिए उसे स्वयं अपने ऊपर आरंभ करती है और फिर उस बालक के ऊपर आरंभ करती है जिसे वह अपने अंदर स्थूल रूप में पोषण करती है।

महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य–शिक्षा के उद्देश्य विविध हैं। एक इसका सामूहिक पक्ष तथा दूसरा इसका वैयक्तिक पक्ष। सामूहिक पक्ष की दृष्टि से शिक्षा से यह आशा की जाती है कि वह व्यक्ति को सुनागरिक में परिवर्तित करे अर्थात् एक ऐसे व्यक्ति में, जो कि समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ अनुरूप संबंध जोड़ सके, साथ ही जो मानव समाज के लिए उपयोगी हो तथा जो अपने कर्त्तव्यों को एक अच्छे नागरिक के रूप में उत्साह के साथ पूर्ण करें।

दूसरी ओर महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षा से यह भी आशा की जाती है कि शिक्षा व्यक्ति को शक्तिशाली और स्वस्थ शरीर के बनाने में सहायक होगी तथा व्यक्तियों को उसके चरित्र निर्माण में सहायता प्रदान करेगी। उसे उसके प्राकृतिक योग्यताओं के अनुरूप विकसित करने तथा उसके अनुसरण के लिए सुअवसर प्रदान करेगी।

महर्षि अरविंद के अनुसार शिक्षा पद्धति–महर्षि अरविंद के पांडिचेरी शिक्षा में 'वर्कशीट' की पद्धति का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में यह भी उन्हीं सिद्धांतों पर आधारित है जिन पर आत्मशिक्षण। परंतु इसकी विशेषता यह है कि इसमें पृथक-पृथक अध्याय और वर्ग होते हैं, जो बालक की भिन्न-भिन्न रुचियों से संबंधित रहता हैं। 'वर्कशीट' शिक्षक द्वारा छात्रों को व्यक्तिगत रूप से एक समय में एक दे दी जाती है। छात्रों को दूसरी 'वर्कशीट' प्राप्त करने के पहले 'प्रथम वर्कशीट' में दिए हुए प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। यह पद्धति पुस्तकों से अधिक लचीली और लाभदायक है। वस्तुतः सीखने की प्रक्रिया को लाभदायक बनाने के लिए व्यक्तिगत प्रयत्न, अन्वेषण आदि आवश्यक है। इस पद्धति से बालक अनेक विस्तृत उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करने में समर्थ होता है। ये उत्तेजनाएँ विद्यालय के तात्कालिक वातावरण से आरंभ होकर बाद में विस्तृत संसार द्वारा उत्पन्न भिन्न-भिन्न उत्तेजनाओं में परिवर्तित हो जाती है।

महर्षि अरविंद के अनुसार पाठ्यक्रम–सामूहिक शिक्षा, व्यक्तिगत कार्य, उपदेशात्मक भाग, अन्वेषणात्मक प्रकार, मिश्रित प्रकार, दलगत कार्य, मूल्यांकन कार्य।

महर्षि अरविंद के अनुसार मूल्यांकन प्रणाली–परीक्षा मूलक प्रकार, पूरक प्रकार।

महर्षि अरविंद घोष के अनुसार गुरु-शिष्य/शिक्षक-विद्यार्थी संबंध–अरविंद के अनुसार शिक्षक छात्र को ज्ञान नहीं देता, वरन् वह सिखाता है कि विद्यार्थी स्वयं किस प्रकार ज्ञान प्राप्त करें। शिक्षक का छात्र को इसी सिखाने में मित्र बनना पड़ता है और हर प्रकार से उसकी सहायता करनी जरूरी होती है। यह सहायता विद्यार्थी की प्रकृति, मनोविज्ञान और क्षमताओं के अनुसार की जानी चाहिए। उनके अनुसार प्रत्येक बालक में जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से होती है। वह अज्ञात के विषय में सब जाँच-पड़ताल और विश्लेषण करना चाहता है। वह उसके बारे में सब कुछ जानना चाहता है।

महर्षि अरविंद घोष के अनुसार अनुशासन का स्वरूप–अरविंद का यह शिक्षा दर्शन और तन्निष्ठ अनुशासन की अवधारणा न केवल शिक्षा के लक्ष्य की सफलतापूर्वक सिद्धि में सहायक है, वरन भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का आधार भी है। अनुशासन के बिना न तो व्यक्ति भौतिक संसार व व्यवहार में सुख, समृद्धि और सफलता प्राप्त कर सकता है और न ही आध्यात्मिक उन्नति हेतु किसी भी सोपान पर प्रवेश कर सकता है। ऐहिक व पारलौकिक जगत की समस्त सुव्यवस्थाएँ व सफलताएँ अनुशासन पर निर्भर करती हैं। अनुशासन के अभाव में नैतिकता का पालन संभव ही नहीं।

निष्कर्ष:

* उच्च माध्यमिक स्तरीय पुरुष एवं महिला शिक्षकों की राय में महर्षि अरविंद के शैक्षिक विचारों को वर्तमान शिक्षा में उच्च वरीयता दी जानी चाहिए।
* उच्च माध्यमिक स्तरीय शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की राय में अरविंद के शैक्षिक विचारों को वर्तमान शिक्षा में उच्च वरीयता दी जानी चाहिए।
* शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की राय में महर्षि अरविंद के शैक्षिक विचारों को वर्तमान शिक्षा में उच्च वरीयता दी जानी चाहिए।
* उच्च माध्यमिक स्तरीय शिक्षक एवं विद्यार्थियों की राय में महर्षि अरविंद के शैक्षिक विचारों को वर्तमान शिक्षा में उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

गुणात्मक विश्लेषण–शिक्षा के द्वारा धर्म, आध्यात्म, संस्कृति और आत्मा के ज्ञान व चेतना के साथ ही विभिन्न विषयों साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा अन्योन्य सभी विषयों की शिक्षा के वे पक्षधर रहे हैं और उनके अनुसार सभी विषयों का समावेश शिक्षा व पाठ्यक्रम में जारी होना चाहिए–उनकी यह अवधारणा वर्तमान में स्वयं की प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। क्योंकि युगीन आवश्यकताओं, परिस्थितियों, विकास व प्रोन्नति के साथ विभिन्न विषयों व ज्ञान का अध्ययन-अर्जन जरूरी होता है। उसके बिना मानव का संपूर्ण मानव बनना तथा यथार्थ से जुड़ा रहना संभव ही नहीं।

संदर्भ

1. अभयचंद्र भट्टाचार्य, महर्षि अरविंद दर्शन, जगबंधु प्रकाशन, ज्ञानपुर भदोही
2. बी०के० लाल, समकालीन भारतीय दर्शन, दिल्ली, बनारस, पटना, 1991
3. एल०जी० चिंचोलकर, Critical Study fo Sri Aurobindo, नागपुर 1966
4. एस०एन० दास गुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास, हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1972
5. उमेशचंद्र दुबे, महर्षि अरविंद और ब्रेडले का परम सत्य, नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, वाराणसी, 1982
6. एम० हिरियन्ना, भारतीय दर्शन रूपरेखा, हिंदी रूपांतरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7. कविराज श्री गोपीनाथ, भारतीय संस्कृति और साधना, राष्ट्रभाषा प्रकाशन, बिहार, 1963

8. महर्षि अरविंद, दिव्य जीवन : प्रथम भाग (केशवदेव आचार्य द्वारा अनुदित) दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन, पांडिचेरी, प्रथम संस्करण, 1971
9. महर्षि अरविंद, दिव्य जीवन : द्वितीय भाग, प्रथम खंड, (केशवदेव आचार्य द्वारा अनुदित) दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन, पांडिचेरी, प्रथम संस्करण, 1972
10. महर्षि अरविंद, दिव्य जीवन : द्वितीय भाग, द्वितीय खंड (केशवदेव आचार्य द्वारा अनुदित) दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन, पांडिचेरी, प्रथम संस्करण, 1974
11. महर्षि अरविंद, गीता प्रबंध, जगन्नाथ वेदालंकार द्वारा अनुदित, महर्षि अरविंद सोसाइटी पांडिचेरी, प्रथम संस्करण, 1969
12. महर्षि अरविंद, इस जगत की पहेली, (मदन गोपाल गड़ोलिया द्वारा अनुदित), महर्षि अरविंद ग्रंथ माला, कलकत्ता, 1937

Monika
27, Lav Kushal Nagar 1,
Tonk fatak, Jaipur rajasthan, 301051
Mob. 7737424357
chauhanm79@gmail.com

गांधी जी का 'स्वदेशी' प्रतिमान एवं आर्थिक विकास

डॉ॰ मनोज सिंह यादव, असि॰ प्रोफेसर इतिहास विभाग
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही

गांधीजी का स्वदेशी-संबंधी विचार अपने पूर्ववर्ती स्वदेशी समर्थकों से भिन्न था। उनकी स्वदेशी की अवधारणा का अर्थ और परिधि दोनों ही अधिक व्यापक थे। उनके अनुसार स्वदेशी की भावना का अर्थ है, 'हमारी वह भावना जो हमें दूर के क्षेत्र को छोड़कर अपने समीपवर्ती प्रदेश का ही उपयोग और सेवा करना सिखाती है। उदाहरण के लिए इस परिभाषा के अनुसार धर्म के संबंध में यह कहा जाएगा कि मुझे अपने पूर्वजों से प्राप्त धर्म का ही पालन करना चाहिए। अपने समीपवर्ती धार्मिक वातावरण का उपयोग इसी तरह हो सकेगा। यदि मैं उसमें दोष पाऊँ तो मुझे उन दोषों को दूर करके उसकी सेवा करनी चाहिए। इसी तरह राजनीति के क्षेत्र में मुझे स्थानीय संस्थाओं का उपयोग करना चाहिए और उनके जाने-माने दोषों को दूर करके उनकी सेवा करनी चाहिए। अर्थ के क्षेत्र में मुझे अपने पड़ोसियों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिए और उन उद्योगों की कमियों को दूर करके उन्हे ज्यादा संपूर्ण और सक्षम बनाकर उनकी सेवा करनी चाहिए।'[1] यदि स्वदेशी की ऐसी भावना को व्यवहार में उतारा जाए तो मानवता के स्वर्णयुग की परिकल्पना की जा सकती है। सामान्य शब्दों में स्वदेशी का अभिप्राय है स्वयं या खुद द्वारा बनाए गए नियमों, कानूनों व शर्तों का पालन करते हुए अपने संसाधनों का उपयोग करना, अपनी आवश्यकताओं को अपने स्तर पर पूरा करना आदि। लेकिन आज इस शब्द का अधिकांश उपयोग आत्मनिर्भरता के रूप में हो रहा है।

1905 में सांप्रदायिक आधार पर जब बंगाल का विभाजन किया गया तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके विदेशों में निर्मित वस्त्रों एवं सामानों की होली जलाई गई तथा स्वदेशी का नारा बुलंद करते हुए स्थानीय उत्पादों के प्रयोग करने एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन चलाया गया। किंतु स्वदेशी के विचार को बहुआयामी और राष्ट्रीय स्वरूप देकर उसे आम जनमानस तक पहुँचाने का श्रेय गांधीजी को ही जाता है।

असहयोग आंदोलन की शुरुआत के समय उन्होंने स्वदेशी को न सिर्फ विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और उनको जलाए जाने तक सीमित रखा बल्कि राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक पहलू पर स्वदेशी का रंग चढ़ा दिया। वास्तव में 'स्वदेशी' स्वतंत्रता आंदोलन का मूल मंत्र था। मेरे सपनों का भारत में गांधीजी लिखते हैं कि 'स्वदेशी की भावना की खोज करते हुए जब मैं देश की संस्थाओं पर नजर डालता हूँ तो मुझे ग्राम-पंचायतें बहुत ज्यादा आकर्षित करती हैं। भारत वस्तुत: प्रजातंत्र का उपासक है इसलिए वह उन सब चोटों को सह सका है जो आज तक उस पर की गई हैं।'[2]

हिंद स्वराज्य में गांधीजी ने भारत के आर्थिक एवं राजनीतिक मॉडल पर विस्तार से प्रकाश डाला है। गांधीजी भारत के औपनिवेशिक शोषण से चिंतित थे वह यह जानते थे कि विदेशी वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से पश्चिमी देश तो जमकर लाभ कमा रहे हैं किंतु भारत इसकी बहुत बड़ी कीमत चुका रहा है। स्वदेशी के माध्यम से गांधीजी औपनिवेशिक शोषण को खारिज करने का रास्ता बताते हैं। ग्राम स्वराज्य में गांधीजी लिखते हैं, 'स्वदेशी की भावना से हट जाने का

कारण हमें भयंकर विघ्न-बाधाओं से गुजरना पड़ा है। हम शिक्षित वर्ग के लोगों को अपनी शिक्षा विदेशी भाषा के माध्यम से मिली है। इसलिए आम जनता को हम तनिक भी प्रभावित नहीं कर सके हैं। हम लोगों का प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, पर हम उसमें असफल सिद्ध होते हैं। वे किसी अँग्रेज अधिकारी को जितना जानते-पहचानते हैं उससे अधिक हमें नहीं जानते पहचानते। उनके दिल में क्या है, इसे न अँग्रेज शासक जानते हैं न हम लोग। उनकी आकांक्षाएँ हमारी आकांक्षाएँ नहीं हैं। इसलिए हमारा और उनका संबंध-सूत्र टूट सा गया है।'[3] गांधीजी भाषा के स्तर पर अँग्रेजी या पश्चिमी ज्ञान के विरोधी कदापि नहीं थे। बल्कि वह स्थानीय स्तर पर सभी कार्य स्थानीय/देशी भाषाओं में किए जाने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि इससे हमारा आपस में जुड़ाव होगा तथा स्वराज्य की भावना बलवती होगी वे कहते थे कि 'यदि पिछले पचास वर्षों में हमें अपनी ही भाषाओं के माध्यम से शिक्षा मिली होती तो हमारे बड़े-बूढ़े, घर के नौकर और पड़ोसी सब हमारे उस ज्ञान में हिस्सा लेते। यदि विविध पाठ्य-विषयों की शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा दी गई होती तो मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि हमारी ये भाषाएँ आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध बन गई होती, गाँवों की स्वच्छता के सवाल वर्षों पहले हल हो गए होते, ग्राम पंचायतें जीवित शक्ति के रूप में काम कर रहीं होती, भारत को जैसा स्वराज्य चाहिए वैसा स्वराज्य वह भोगता होता और उसे अपनी पुनीत भूमि पर संघटित हत्या का अपमानकारी दृश्य न देखना पड़ता।'[4] गांधीजी का मानना था कि भारत को विनाशकारी प्रतिस्पर्धा के उस चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए, जो आपसी लड़ाई-झगड़ों, ईर्ष्या और तमाम अन्य बुराइयों को जन्म देती हैं।

मेरे सपनों का भारत में गांधीजी लिखते हैं, 'अगर हम स्वदेशी के सिद्धांत का पालन करें तो हमारा और आपका कर्त्तव्य होगा कि हम उन बेरोजगार पड़ोसियों को ढूँढें जो हमारी आवश्यकता की वस्तुएँ हमें दें सकते हों और यदि वे इन वस्तुओं को बनाना न जानते हों तो उन्हें दूसरी प्रकिया सिखाएँ। ऐसा हो तो भारत का हर एक गाँव लगभग एक स्वाश्रयी और स्वयंपूर्ण इकाई बन जाए। दूसरे गाँवों के साथ वह उन वस्तुओं का आदान-प्रदान जरूर करेगा जिन्हें वह खुद अपनी सीमा में पैदा नहीं कर सकता।'[5] गांधीजी आम जनमानस की घोर गरीबी और बेरोजगारी का सबसे बड़ा कारण आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशी का परित्याग मानते हैं। हिंद स्वराज में लिखते हैं, 'मि० रमेशचंद्र दत्त की पुस्तक 'हिंदुस्तान का आर्थिक इतिहास' जब मैंने पढ़ी तब भी मेरी ऐसी हालत हो गई थी कि उसका फिर से विचार करता हूँ तो मेरा दिल भर आता है। मशीन की झपट लगने से ही हिंदुस्तान पागल हो गया है। मैंचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुँचाया है उसकी तो कोई हद ही नहीं है। हिंदुस्तान से कारीगरी जो करीब-करीब समाप्त हो गई है। वह मैंचेस्टर का ही काम है। लेकिन मैंचेस्टर को दोष कैसे दिया जा सकता है? हमने उसके कपड़े पहने तभी तो उसने कपड़े बनाए।'[6]

गांधीजी भारत को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। उनका मानना था कि हिंदुस्तान की आत्मा गाँवों में निवास करती है। इसलिए उनका ऐसा विचार था कि भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किए बिना यहाँ के विकास की बात करना बेमानी है। उनकी दृष्टि में ग्राम विकास प्राथमिक आवश्यकता है। इसलिए गांधीजी बड़े-बड़े उद्योगों के समर्थक न होकर छोटे-छोटे कुटीर एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने की बात करते हैं। गांधीजी भारतीय अर्थव्यवस्था में हो रहे बदलाव से वाकिफ थे। लघु एवं कुटीर उद्योगों का चलन बड़े पैमाने पर हो रहा था। कुछ लोगों का आक्षेप है कि भारत जैसे देश में कम-से-कम आर्थिक जीवन में तो स्वदेशी के नियम का आचरण नहीं किया जा सकता है। जो लोग यह दलील देते हैं वह स्वदेशी को जीवन के एक अनिवार्य सिद्धांत के रूप

में नहीं मानते है। उनके लिए यह महज देश सेवा का कार्य है जो अगर उसमें ज्यादा आत्मनिग्रह करना पड़ता हो तो उसे छोड़ा भी जा सकता है। गांधीजी ग्राम स्वराज्य में लिखते हैं–'स्वदेशी एक धार्मिक नियम है जिसका पालन उससे होने वाले सारे शारीरिक कष्टों के बावजूद होना ही चाहिए। स्वदेशी का सच्चा प्रेम हो तो सुई या पिन जैसी चीजों का अभाव क्योंकि वह भारत में नहीं बनती हैं–भय का कारण नहीं होना चाहिए। स्वदेशी का व्रत लेने वाला ऐसी सैकड़ों चीजों के बिना ही अपना काम चलाना सीख लेगा, जिन्हें आज वह अपने लिए जरूरी समझता है।'[7]

यदि इस संदर्भ में गहन विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जनता की अधिकांश गरीबी का कारण यह है कि आर्थिक और औद्योगिक जीवन में हमने स्वदेशी के नियम की अवहेलना की है। 'यदि भारत में व्यापार की कोई भी वस्तु विदेशों से न लाई गई होती तो हमारी भूमि में दूध और मधु की नदियाँ बहती होतीं।'[8] जो लोग स्वदेशी को असंभव कहकर टाल देना चाहते हैं वह यह भूल जाते हैं कि स्वदेशी आखिर एक आदर्श है जिसे सतत् प्रयत्न द्वारा प्राप्त करना है। कुछ लोग यह आक्षेप लगाते हैं कि स्वदेशी अत्यंत स्वार्थपूर्ण सिद्धांत है और सभ्यजनों की मानी हुई नीति में इसका कोई स्थान नहीं हो सकता। ऐसे लोग समझते हैं कि स्वदेशी का पालन तो असभ्यता की ओर लौटने जैसा होगा। इस संदर्भ में गांधीजी का मानना था कि 'नम्रता और प्रेम के नियमों के साथ एकमात्र स्वदेशी का मेल ही बैठ सकता है। यदि मैं अपने परिवार की भी यथोचित सेवा नहीं कर पाता हूँ तो उस हालत में मेरा संपूर्ण भारत की सेवा का विचार करना दुराभिमान ही कहा जाएगा। उस हालत में तो यही अच्छा होगा कि मैं अपना प्रयत्न परिवार की सेवा पर ही केंद्रित करूँ और ऐसा समझूँ कि परिवार की सेवा द्वारा मैं पूरे देश की या यूँ कहो कि पूरी मानवजाति की सेवा कर रहा हूँ। नम्रता और प्रेम इसी में है।'[9]

स्वदेशी का व्रत लेने वाला ऐसी सैकड़ों चीजों के बिना ही अपना काम चलाना सीख लेगा जिन्हें वह आज आवश्यक समझता है। 'स्वदेशी व्रत लेने पर कुछ समय तक असुविधाएँ तो भोगनी पड़ेंगी लेकिन उन असुविधाओं के बावजूद यदि समाज के विचारशील व्यक्ति स्वदेशी का व्रत अपना लें तो हम अनेक बुराइयों का निवारण कर सकते हैं, जिनसे हम पीड़ित हैं।'[10] गांधीजी का स्वदेशी-संबंधी विचार राष्ट्र और विशेष करके गाँवों को उन्नत बनाने का था जिसके लिए त्याग, बलिदान, प्रेम और दृढ इच्छाशक्ति की आवश्यकता थी। वास्तव में स्वदेश में निर्मित वस्तु का उपयोग अपने आस-पास रहने वाले पड़ोसीजनों के प्रति प्रेम एवं बंधुत्व का दर्शन है। गांधीजी के अनुसार स्वदेशी का सार है–समीपस्थ की पवित्र भाव से सेवा, अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं कृतज्ञता। 'अपनी संपत्ति का उपयोग इस तरह से करो कि उससे तुम्हारे पड़ोसी को कोई कष्ट न हो, यह केवल कानून का सिद्धांत नहीं, परंतु एक महान जीवन सिद्धांत भी है। वह अहिंसा या प्रेम के समुचित पालन की कुंजी है।'[11]

गांधीजी मेरे सपनों का भारत में ऐसे लोगों की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि 'जो लोग चरखे से जैसे-तैसे सूत कातकर खादी पहन-पहनाकर स्वदेशी धर्म का पूरा पालन हुआ मान लेते हैं वे बड़े मोह में डूबे हुए हैं। खादी सामाजिक स्वदेशी की प्रथम सीढ़ी है, वह स्वदेशी धर्म की आखिरी हद नहीं है। ऐसे खादीधारी भी देखे गए हैं जो और सब चीजें परदेशी खरीदते हैं। वे स्वदेशी धर्म का पालन नहीं करते हैं। वे तो सिर्फ चालू बहाव में बह रहे हैं। स्वदेशी व्रत का पालन करने वाला हमेशा अपने आस-पास निरीक्षण करेगा और जहाँ-जहाँ पड़ोसियों की सेवा की जा सके यानी जहाँ-जहाँ उनके हाथ का तैयार किया हुआ जरूरत का माल होगा वहाँ दूसरा छोड़कर उसे लेगा फिर भले ही स्वदेशी चीज पहले-पहल महँगी और कम दरजे की हो। व्रतधारी उसको सुधारने की

कोशिश करेगा। स्वदेशी खराब है इसलिए कायर बनकर वह परदेशी का इस्तेमाल नहीं करने लग जाएगा।'[12] इस प्रकार स्वदेशी का व्रत धारण करने वाला एक सच्चा देशभक्त होने के साथ-ही-साथ मानवतावादी भी होगा। स्वदेशी किसी के प्रति नफरत या घृणा की बात नहीं करता है बल्कि इसमें सेवा का भाव होता है जिसकी पृष्ठभूमि में अहिंसा एवं प्रेम है। इस योजना के माध्यम से गांधीजी अपने देश और देशवासियों की सेवा करके किसी दूसरे देश को क्षति नहीं पहुँचाना चाहते थे। किंतु व्यावहारिक रूप में गांधीजी इस वैज्ञानिक सच को भी स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की सेवा करने की क्षमता की भी एक सीमा है अत: विदेशों में निर्मित प्रत्येक वस्तु को त्याज्य समझना भी गांधीजी मंशा नहीं थी। संभवत: यही कारण था कि उन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली तो जलाने का आह्वान किया किंतु विदेशी रेल के बहिष्कार या उखाड़ने का आह्वान कदापि नहीं किया। 'स्वदेशी धर्म पालने वाला परदेशी का द्वेष कभी नहीं करेगा इसलिए पूर्ण स्वदेशी में किसी का द्वेष नहीं है। वह संकुचित धर्म नहीं है। वह प्रेम में से निकला हुआ सुंदर धर्म है।'[13]

इस प्रकार गांधीजी का स्वदेशी-संबंधी विचार स्वदेशी की सकारात्मक अवधारणा है। वास्तव में स्वदेशी एक ऐसा सिद्धांत है जिसमें मानवता, प्रेम, सेवा एवं राष्ट्रवाद जैसी पवित्र भावना समाहित है। गांधीजी लघु उद्योग, कुटीर उद्योग से आगे बढ़कर ग्राम स्वराज्य के सपने को साकार करना चाहते थे। वह चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति एवं गाँव स्वयं में एक उद्योग बने और प्रत्येक व्यक्ति स्वालंबी बने। हर व्यक्ति कुछ-न-कुछ काम करे और इससे सबकी जरूरतें पूरी होंगी, सब लोग काम पर लगेंगे और बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा मिल जाएगा। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई-न-कोई कौशल अवश्य है और उसको अपने इस कौशल का उपयोग करके विकास में अपना योगदान अवश्य देना चाहिए। इस प्रकार से गांधीजी ने जहाँ एक तरफ देश के ग्रामीण क्षेत्रों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए ग्राम स्वराज्य का उल्लेख किया जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया तो वहीं दूसरी तरफ स्वदेशी का नारा देकर देश में राष्ट्रवादी भावना जाग्रत करने का काम किया है।

संदर्भ

1. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, पृ॰ 69
2. महात्मा गांधी, मेरे सपनों का भारत, पृ॰ 105
3. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, पृ॰ 70-71
4. वही, पृ॰ 71
5. महात्मा गांधी, मेरे सपनों का भारत, पृ॰ 107-08
6. मोहनदास कर्मचंद गांधी, हिंद स्वराज्य, पृ॰ 84
7. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, पृ॰ 73
8. महात्मा गांधी, मेरे सपनों का भारत, पृ॰ 106
9. वही, पृ॰ 109
10. वही, पृ॰ 108
11. स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, पृ॰ 340-44
12. महात्मा गांधी, मेरे सपनों का भारत, पृ॰ 110
13. मंगल प्रभात, पृ॰ 59

Manoj.dheup2013@gmail.com

महर्षि पतंजलि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मनोज कुमार सकलानी, शोधार्थी शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ
डॉ॰ हलधर यादव, शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

महर्षि पतंजलि का जीवन (व्यक्तित्व)

महर्षि पतंजलि योग दर्शन के निर्माता हैं। उन्होंने जीवन में आध्यात्मिक साधना, योग एवं ब्रह्मचर्य को अधिक महत्त्व दिया। वे योग के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तथा योग के द्वारा व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य दिव्य शक्ति का बोध प्राप्त करना बताते हैं। उनका विश्वास यह है कि व्यक्ति पूर्ण एवं अखंड चेतना को प्राप्त करे। उनको जीवन का लक्ष्य मुख्यत: योग के द्वारा परमतत्त्व को प्राप्त करना है।

पतंजलि मुनि की जीवनी का सही से पता नहीं चलता है किंतु यह बात नि:संदेह सत्य है कि महर्षि पतंजलि भगवान कपिल के पश्चात् और अन्य चारों दर्शनकारों से पूर्व हुए हैं। परंतु कुछ विद्वानों ने इनका जन्म काशी में ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में विद्यमान थे। इनका जन्म गोनर्द में हुआ था पर ये काशी में नागकूप में बस गए थे। ये व्याकरणाचार्य पाणिनी के शिष्य थे। काशीवासी आज भी श्रावण कृष्ण पंचमी को छोटे गुरु का बड़े गुरु का नाग लो भाई, नाग लो कहकर नाग के चित्र बाँटते हैं क्योंकि पतंजलि को शेषनाग का अवतार मानते हैं।

महर्षि पतंजलि ने संसार को दुखों का भंडार बतलाया है और मोक्ष प्राप्त करके ही संसार के दुखों से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। यह सब अष्टांग योग का पालन करने के पश्चात् ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि यह चित्त या मन पर नियंत्रण करता है। उन्होंने योग दर्शन में स्पष्ट किया है 'योगचित्तवृत्तिनिरोध' अर्थात् योग के द्वारा मन पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

महर्षि पतंजलि ने योग को धर्म, आस्था और अंधविश्वास से परे बताया है। योग एक सीधा विज्ञान है जो व्यक्ति को जीने की कला सिखाता है। महर्षि पतंजलि ने कहा कि यदि ईश्वर को जानना है, सत्य को जानना है, सिद्धियाँ प्राप्त करना है या सिर्फ स्वस्थ रहना है, तो शुरुआत शरीर के तल से ही करनी होगी। शरीर बदलेगा तो मन बदलेगा। मन बदलेगा तो बुद्धि बदलेगी। बुद्धि बदलेगी तो आत्मा स्वत: ही स्वस्थ हो जाएगी। आत्मा तो स्वस्थ है ही। एक स्वस्थ आत्मचित्त ही समाधि को उपलब्ध हो सकता है।

महर्षि पतंजलि एक महान चिकित्सक भी थे और इन्हें ही 'चरक संहिता' का प्रणेता माना जाता है। वह रसायनविद्या के विशिष्ट आचार्य भी थे। अभ्रक विंदास अनेक धातुयोग और लौहशास्त्र इनकी देन हैं। अत: वह योग के साथ-साथ आयुर्वेद पर भी बहुत बल देते थे इसलिए राजा भोज ने इन्हें तन के साथ मन का भी चिकित्सक कहा है।

महर्षि पतंजलि के जीवन-दर्शन का आधार मुख्यत: योगदर्शन ही है और उन्होंने अष्टांग योग के आठों कर्म या अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को

अपने जीवन में स्थान दिया है। उन्होंने इन आठां अंगों को संपूर्ण मानवता के लिए श्रेष्ठ माना है।

जैसे बाहरी विज्ञान की दुनिया में आंइस्टीन का नाम सर्वोपरि है, वैसे ही भीतरी विज्ञान की दुनिया के आंइस्टीन है पतंजलि। जैसे पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है, वैसे ही समस्त दर्शनों, विधियों, नीतियों, नियमों, धर्मों और व्यवस्थाओं में योग श्रेष्ठ है।

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर तक, सत्य तक, स्वयं तक, मोक्ष तक या कहो कि पूर्ण स्वास्थ्य तक पहुँचने की आठ सीढ़ियाँ निर्मित की हैं। आप सिर्फ एक सीढ़ी चढ़ो तो दूसरी के लिए जोर नहीं लगाना होगा, सिर्फ पहली पर ही जोर है। पहल करो जान लो कि योग उस परम शक्ति की ओर क्रमशः बढ़ने की एक वैज्ञानिकता की प्रक्रिया है आप यदि चल पड़े हैं तो पहुँच ही जाएँगें। यही उनका जीवन दर्शन है।

महर्षि पतंजलि का कृतित्व–पतंजलि मुनि ने तीन ग्रंथों की रचना की है। योगसूत्र अष्टाध्यायी पर भाष्य और आयुर्वेद पर ग्रंथ। कुछ विद्वानों का मत है कि ये तीनों ग्रंथ एक ही व्यक्ति ने लिखे, अन्य की धारणा है कि ये विभिन्न व्यक्तियों की कृतियाँ हैं। पतंजलि ने पाणिनी के अष्टाध्यायी पर अपनी टीका लिखी जिसे महाभाष्य कहते हैं। पतंजलि 'योगसूत्र' के रचनाकार हैं जो हिंदुओं के छः दर्शनों–न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत) में से एक है।

पतंजलि मुनि महान चिकित्सक थे और इन्हें ही 'चरक संहिता' का प्रणेता माना जाता है। पतंजलि मुनि का महान अवदान है–'योगसूत्र'। पतंजलि मुनि रसायन विद्या के महान आचार्य थे-अभ्रक विंदास अनेक धातुयोग और लौहशास्त्र इनकी देन है। महर्षि पतंजलि संभवतः पुष्यमित्र शुंग के शायनकाल में थे। राजा भोज ने इन्हें तन व मन का भी चिकित्सक कहा है।

पतंजलि मुनि के समय निर्धारण के संबंध में पुष्यमित्र कण्व वंश के संस्थापक ब्राह्मण राजा के अश्वमेघ यज्ञों की घटना को लिया जा सकता है यह घटना ई॰पू॰ द्वितीय शताब्दी का मध्यकाल अथवा 150 ई॰पू॰ माना जा सकता है। पतंजलि मुनि के 'योगसूत्र' व 'महाभाष्य' रचनाओं को भारतीय साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त है। दर्शनशास्त्र में शंकराचार्य को जो स्थान 'शारीरिक भाष्य' के कारण प्राप्त है, वही स्थान पतंजलि मुनि को महाभाष्य के कारण व्याकरण शास्त्र में प्राप्त है। पतंजलि मुनि ने इस ग्रंथ की रचना कर पाणिनी के व्याकरण की प्रामाणिकता पर अंतिम मुहर लगा दी है।

महर्षि पतंजलि के योग का इतिहास–संसार की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद में कई स्थानों पर यौगिक क्रियाओं के विषय में उल्लेख मिलता है–

यस्माहते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितधन।
स धीनां योगभिवति।। (ऋक्संहिता, मंडल-1, सूक्त-1)

अर्थात् योग के बिना विद्वान का भी कोई यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। वह योग क्या है? योग निरोध है, वह कर्त्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है।

उपनिषद में इसके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। कठोपनिषद में इसके लक्षण को बताया गया है–'योगमित्तिमन्यन्ते स्थिरोमिन्डिय धारणम्।'

योगाभ्यास का प्रमाणिक चित्रण लगभग 3000 ई॰पू॰ सिंधु घाटी सभ्यता के समय की मोहरों और मूर्तियों में मिलता है। योग का प्रामाणिक ग्रंथ 'योगसूत्र' 200 ई॰पू॰ योग पर लिखा गया पहला सुव्यवस्थित ग्रंथ है।

हिंदू, जैन और बौद्धधर्म में योग का अलग-अलग तरीके से वर्गीकरण किया गया है। इन

सबका मूल वेद और उपनिषद ही रहा है।

वैदिककाल में यज्ञ और योग का बहुत महत्त्व था। इसके लिए उन्होंने चार आश्रमों की व्यवस्था निर्मित की थी। ब्रह्मचर्य आश्रम में वेदों की शिक्षा के साथ ही शस्त्र और योग की शिक्षा भी दी जाती थी। ऋग्वेद को 1500 ई॰पू॰ से 1000 ई॰पू॰ के बीच लिखा माना जाता है। 563 ई॰पू॰ से 200 ई॰पू॰ योग के तीन अंग तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान का प्रचलन था इसे क्रिया योग कहा जाता है।

भगवान शंकर के बाद वैदिक ऋषि-मुनियों से ही योग का प्रारंभ माना जाता है। बाद में कृष्ण, महावीर और बुद्ध ने इसे अपनी तरह से विस्तार दिया। इसके बाद महर्षि पतंजलि ने इसे सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैधकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवंरं मुनीनां पतज्जलिं प्राज्जलिरान्तोऽस्मि।।

महर्षि पतंजलि कृत योग का स्वरूप–योग शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता एवं पुराणों आदि में अति महत्त्वपूर्ण है और पुरातन काल से व्यवहृत है। आत्मदर्शन एवं समाधि से लेकर कर्मक्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है।

योगदर्शन के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि ने 'योग' शब्द का अर्थ 'चित्तवृत्ति का निरोध' करते हैं। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति ये पंचविध वृत्तियाँ जब अभ्यास एवं वैराग्यादि साधनों से मन में लय को प्राप्त हो जाती हैं और मन द्रष्टा (आत्मा) के स्वरूप में अव्यवस्थित हो जाता है, तब योग होता है।

महर्षि व्यास योग का अर्थ समाधि करते हैं। व्याकरण शास्त्र में (युज) धातु से भाव में प्रत्यय करने पर योग शब्द व्युत्पन्न होता है। योग शब्द के दो अर्थ हैं दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, पहला है–जोड़ और दूसरा है समाधि। जब तक हम स्वयं से नहीं जुड़ते, समाधि तक पहुँचना कठिन होगा। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संयमपूर्वक साधना करते हुए आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन ही योग है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार योग का तात्पर्य स्वचेतना और पराचेतना के मुख्य केंद्र परमचैतन्य प्रभु के साथ संयुक्त हो जाना है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है कि कर्मों में कुशलता ही योग है। गीता में कर्मयोग का विशेष महत्त्व है। जैनधर्म के अनुसार जिन साधनों से आत्मा की सिद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है, वह योग है। पुन: जैन दर्शन में मन, वाणी एवं शरीर की वृत्तियों को भी कर्मयोग कहा गया है। आधुनिकयुग के योगी श्री अरविंद ने परमदेव के साथ एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना व इसे प्राप्त करना ही सब योगों का स्वरूप है।

योग के प्रकार–महर्षि पतंजलि ने योग के चार प्रकार बतलाए हैं। दत्तात्रेय योगशास्त्र तथा योगराज उपनिषद् में मंत्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के रूप में योग के चार प्रकार माने गए हैं। योग तन्तवोपनिषद् में इन चतुर्विध योगों के लक्षण बतलाए गए हैं। जो इस प्रकार हैं–

1. मंत्रयोग–मातृकादियुक्त मंत्र को 12 वर्ष तक विधिपूर्वक जपने से अणिमा आदि सिद्धियाँ साधक को प्राप्त हो जाती है।
2. लययोग–दैनिक क्रियाओं को करते हुए सदैव ईश्वर का ध्यान करना लययोग है।
3. हठयोग–विभिन्न मुद्राओं, आसनों, प्राणायाम एवं बंधों के अभ्यास से शरीर निर्मल एवं मन को एकाग्र करना हठयोग कहलाता है।

4. राजयोग–यम-नियमादि के अभ्यास से चित्त को निर्मल कर ज्योतिर्मय आत्मा का साक्षात्कार करना राजयोग कहलाता है। 'राज' का अर्थ दीप्तिमान, ज्योतिर्मय तथा 'योग' का अर्थ समाधि तथा अनुभूति है।

पतंजलि मुनि प्रतिपादित योग अंतिम प्रकार का है क्योंकि यह मन को निश्चल करने तथा समाधि अवस्था प्राप्त करने की प्रक्रिया का विस्तार से प्रतिपादित करता है क्योंकि यह मन को निश्चल करने तथा समाधि अवस्था प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

योग का महत्त्व–भारतीय धर्मदर्शन में योग का अत्यधिक महत्त्व है। आध्यात्मिक उन्नति या शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यकता व महत्त्व को प्राय: सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक संप्रदायों ने एकमत व मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। वैदिक, जैन और बौद्धदर्शनों में योग का महत्त्व सर्वमान्य है। सविकल्प प्रज्ञा में परिणित करने हेतु योग-साधना का महत्त्व सर्वमान्य स्वीकृत है। सविकल्प और निर्विकल्प क्या होता है इसे 'योग दर्शन' में स्पष्ट किया गया है।

वर्तमान युग में योग का महत्त्व–आधुनिक युग में योग का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इसके बढ़ने का कारण आज की मनुष्य की भागमभाग जिंदगी की व्यस्तता और मन की व्यग्रता है। आधुनिक मनुष्य इसलिए ही योग की शरण में जाने की आवश्यकता समझने लगा क्योंकि व्यस्तता भरी जिंदगी से मनुष्य का मन व शरीर अत्यधिक तनाव, वायु प्रदूषण तथा भागमभाग के जीवन से रोगग्रस्त हो चला है।

आधुनिक मानव मन अपने केंद्र से भटक गया है उसके अंतर्मुखी और बहिर्मुखी होने में संतुलन नहीं रहा। अधिकतर अति-बहिर्मुख जीवन जीने में ही आनंद लेते हैं जिसका परिणाम संबंधों में तनाव और अव्यवस्थित जीवनचर्या के रूप में सामने आया है।

योग का महत्त्व इसलिए भी बढ़ गया है कि मनुष्य जाति को अब और आगे प्रगति करनी है तो योग सीखना ही होगा, अंतरिक्ष में जाना है, नए ग्रहों की खोज करना है। शरीर और मन को स्वस्थ और संतुलित रखते हुए अंतरिक्ष में लंबा समय बिताना है तो योग की महत्ता और महत्त्व को समझना होगा।

योग का महत्त्व बालकों के लिए भी बहुत आवश्यक है क्योंकि बालकों को ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ योग की शिक्षा भी प्रदान करनी चाहिए क्योंकि योग बालकों की धारणा शक्ति का विकास करने में सहायक होता है। जिसके द्वारा बालक के शारीरिक विकास के साथ-साथ बौद्धिक, आध्यात्मिक व मानसिक विकास करने में सहायता मिलती है।

पतंजलि योगपीठ हरिद्वार की स्थापना स्वामी रामदेव ने आजकल योग के महत्त्व को समझते हुए की है। उनके अनुसार आज की व्यस्त जिंदगी में मनुष्य व बालक के लिए योग बहुत ही आवश्यक है उन्होंने महर्षि पतंजलि के 'योगदर्शन' के अष्टांग योग को आधार बनाकर योगपीठ का लक्ष्य निर्धारित किया है। उन्होंने पतंजलि योगपीठ के माध्यम से योग, प्राणायाम, अध्यात्म आदि के साथ-साथ आयुर्वेद का भी प्रचार-प्रसार किया है।

उनके योग-संबंधी प्रवचन विभिन्न टी॰वी॰ चैनलों जैसे आस्था, जी-नेटवर्क, सहारा वन तथा इंडिया टी॰वी॰ पर प्रसारित होते हैं। उन्होंने विभिन्न ग्रंथों व पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी योग का संदेश जन-जन को प्रदान किया है। उनके अनुसार 'स्वस्थ नागरिक, स्वस्थ भारत' का संकल्प हर व्यक्ति को लेना चाहिए। उन्होंने योग को एक पूर्ण विज्ञान माना है। योग की लोकप्रियता का रहस्य यह है कि यह लिंग, जाति, वर्ग, संप्रदाय, क्षेत्र एवं भाषा-भेद की संकीर्णताओं से कभी

आबद्ध नहीं रहा है।

साधक, चिंतक, वैरागी, अभ्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ कोई भी इसका सान्निध्य प्राप्त कर लाभ उठा सकता है। व्यक्ति के निर्माण और उत्थान में ही नहीं, बल्कि परिवार, समाज राष्ट्र और विश्व के चहुँमुखी विकास में योग का बहुत महत्त्व है। योग मनुष्य को सकारात्मक चिंतन प्रदान करने की एक अद्‌भुत विद्या है।

संदर्भ

1. अभ्यानंद स्वामी, योग का मनोविज्ञान, रामकृष्ण वेदांत मठ, कलकत्ता, 1960
2. एनी बेसेंट, द सर्च आफ हैप्पीनेस, द थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, अड्यार, मद्रास, 1961
3. एन॰आर॰ स्वरूप सक्सेना, शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय सिद्धांत, 2007-08
4. विजेंद्र किशोर माहेश्वरी, भारतीय शिक्षादर्शन, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2007
5. रमनबिहारी लाल, शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ 1990
6. स्वामी करपात्री जी महाराज, मार्क्सवाद और रामराज्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1928
7. हाकिंग विलियम ई॰, दर्शन, दी बिजनेस आफ एवरीवन जर्नल आफ अमेरिकन एसोशिएशन आफ यूनिवर्सिटी वुमैन-1937
8. जे॰सी॰ फिक्टे, एड्रेसेज टू जर्मन नेशन; अनुवादित द्वारा जेनर, आर॰एफ॰ ओपन कोर्ट पब्लिशिंग कंपनी लंदन
9. जे॰पी॰ नायक, नुरूल्ला सैयद, भारतीय शिक्षा का इतिहास, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि॰, 1976
10. सरयूप्रसाद चौबे, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1985
11. महेशचंद्र सिंहल, भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, राजस्थान हिंदी ग्रंथ एकादमी, जयपुर, 1970
12. डॉ॰ भीष्मदत्त शर्मा, महान शिक्षा दार्शनिक के रूप में आद्य जगद्‌गुरु शंकराचार्य, अनु प्रकाशन, मेरठ, 1985
13. गिरीश पचौरी, शिक्षा सिद्धांत, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1992
14. हिमांशुभूषण मुखर्जी, एजूकेशन फार फुलनैस, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, बंबई, 1962
15. आर॰ए॰ मुखर्जी, डैसटिनी आफ सिविलाइजेशन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1964
16. लीन ई॰, व्हाज इज एेजुकेशन, बर्नस एंड फैब्स वासबोर्न लिमिटेड, द्वितीय संस्करण, 1945
17. कबीर हुमायूँ, इंडियन फिलासफी आफ एेजुकेशन, बांबे एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964
18. जान ड्यूबी, एक्सपेरिमेंट एंड एजूकेशन, मैकमिलन एंड कंपनी, न्यूयार्क, तृतीय संस्करण, 1952
19. जे॰ ड्यूबी, डेमोक्रेसी एंड एेजुकेशन, मैकमिलन एंड कंपनी इंडिया लिमिटेड, संस्करण, 1957

लोकतंत्र में जनता की भागीदारी

डॉ॰ संगीता कुमारी, यूजीसी नेट
राजनीति विज्ञान विभाग, पीएचडी टीएमबीयू, भागलपुर

भारत का संक्षिप्त आधुनिक इतिहास–इसका मतलब यह है कि मुगल साम्राज्य ने भारत पर लंबे समय तक शासन किया। 1527 में बाबर ने कुछ मंचूरियनों की मदद से भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। अकबर को व्यापक रूप से मुगल साम्राज्य के सबसे कुशल शासकों में से एक माना जाता था, लेकिन 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद, राजवंश अलग हो गया। 1610 में एक पुर्तगाली नौसैनिक बल को हराने के बाद, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने सूरत, गुजरात में एक व्यापारिक चौकी स्थापित की। हालाँकि यह 1857 में भारत पर उनके व्यावसायिक आक्रमण तक नहीं था कि भारतीयों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ना शुरू किया। स्वतंत्रता के लिए भारत की लगभग 150 साल लंबी लड़ाई में यह पहला कदम था, जिसकी परिणति 15 अगस्त, 1947 को भारत की स्वतंत्रता की घोषणा के साथ हुई।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था–भारत की सरकार की संरचना यूनाइटेड किंगडम में वेस्टमिंस्टर प्रणाली से प्रेरित है। कार्यकारी शाखा के प्रभारी प्रधानमंत्री के साथ शीर्ष पर एक राष्ट्रपति होता है; एक ऊपरी और निचले सदन (राज्य सभा और लोकसभा) से बनी संसद; और सर्वोच्च न्यायालय के नेतृत्व में एक न्यायिक प्रणाली। लोकसभा 543 सदस्यों से बनी है, जिन्हें हर पाँच साल में एक राष्ट्रीय चुनाव में फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट प्रणाली का उपयोग करके चुना जाता है। राज्यसभा के लिए राज्य के सांसदों को अप्रत्यक्ष रूप से राज्य विधानसभाओं द्वारा छह साल की अवधि के लिए चुना जाता है, इसलिए हर दो साल में लगभग एक तिहाई को बदल दिया जाता है। भारत का संविधान भारत की राजनीतिक प्रणाली, संघीय ढाँचे और सरकारी अधिकारियों के साथ-साथ सभी नागरिकों के अधिकारों को परिभाषित करता है, जिसमें अभिव्यक्ति, सभा और आंदोलन की स्वतंत्रता शामिल है। भारत की जाति व्यवस्था, एक पदानुक्रमित सामाजिक संरचना जो बहुसंख्यक हिंदू आबादी को शीर्ष पर 'ब्राह्मण' से नीचे 'दलित' तक समूहों में अलग करती है, स्थिति को और जटिल बनाती है। एक व्यक्ति का उपनाम उनकी जाति के लिए प्रॉक्सी के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। भले ही भारतीय संविधान जातिगत भेदभाव पर रोक लगाता है और प्रारंभिक प्रशासन ने यह सुनिश्चित करने के लिए कोटा स्थापित किया कि शिक्षा और रोजगार के अवसरों को निष्पक्ष रूप से वितरित किया गया था, जाति अभी भी भारतीय राजनीति में एक प्रमुख मुद्दा है। राजनीतिक दलों के लिए विशिष्ट जातियों को निशाना बनाना एक आम बात है, क्योंकि एक ही जाति के सदस्य एक साथ मतदान करना पसंद करते हैं।

भारत में धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र–1975 के आपातकाल के दौरान भारत की संवैधानिक भाषा को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में देश की नई स्थिति को दर्शाने के लिए बदल दिया गया था, और बाद के एक अदालत के फैसले ने पुष्टि की कि भारत आजादी के बाद से धर्मनिरपेक्ष रहा है। हालाँकि, भारत में धार्मिक रूप से विविध और पर्यवेक्षक राष्ट्र होने की प्रतिष्ठा

 ISSN 0975-735X

है। संविधान धर्मनिरपेक्ष है क्योंकि यह राज्य के हस्तक्षेप के बिना लोगों के अपने धर्म का अभ्यास करने के अधिकार की रक्षा करता है, लेकिन यह संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह चर्च और राज्य के सख्त अलगाव के लिए प्रदान नहीं करता है। भारत में राजनेता अक्सर अपना वोट हासिल करने की कोशिश करते हुए अपनी जाति या धर्म के आधार पर अपने घटकों से अपील करते हैं। लगभग एक सदी से हिंदू राष्ट्रवादियों ने माँग की है कि भारत को एक हिंदू राष्ट्र के रूप में पुनर्गठित किया जाए।

संविधान सभा की बहस चली : एक इतिहास–1939 में 'हरिजन' में प्रकाशित 'द ओनली वे' नामक एक निबंध में, गांधीजी ने कहा, 'एक ऐसे संविधान के लिए जो 'पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए शुद्ध वयस्क मताधिकार' और 'राष्ट्र के लिए मूल' लिखा जाए, संविधान सभा आवश्यक है। जब ब्रिटेन के लोगों ने 1939 में एक संविधान सभा की माँग की, तो साम्राज्यवादी ब्रिटेन ने अंततः 1945 में उनकी माँगों को मान लिया। 1946 के जुलाई में मतदान हुआ। 1946 के अगस्त में, संविधान सभा ने एक प्रस्तावित प्रस्ताव सुना भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की विशेषज्ञ समिति द्वारा। इस दस्तावेज ने भारत के सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक निष्पक्षता का वादा किया और शपथ ली कि भारत एक गणतंत्र बन जाएगा। इस बात पर बहस छिड़ गई कि राज्य को अनिवार्य सरकारी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए या नहीं। सामाजिक न्याय के लिए काम का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा, भूमि सुधार, संपत्ति के अधिकार और पंचायतों की स्थापना सभी चर्चा के लिए थे। चर्चाओं के कई अंश हैं निम्नलिखितानुसार।

प्रतिस्पर्धी हित: संविधान और सामाजिक परिवर्तन–भारत बहुआयामी देश है और इसे कई अलग-अलग स्तरों पर समझा जा सकता है। बहुलवाद की एक अभिव्यक्ति जनसंख्या की विषम धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और कई आदिवासी सांस्कृतिक धाराएँ हैं जो पूरे क्षेत्र में चलती हैं। भारतीय लोग कई रेखाओं में बँटे हुए हैं। संस्कृति, धर्म और जाति सभी का शहरी और ग्रामीण आबादी के बीच, अमीर और गरीब के बीच, साक्षर और गैर-साक्षर के बीच की खाई पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण गरीबों को जाति और सामाजिक, आर्थिक स्थिति जैसे कारकों के आधार पर समूहों और उपसमूहों में अत्यधिक अलग किया जाता है। लोगों का एक विशाल स्पेक्ट्रम शहरी श्रमिक वर्ग बनाता है और फिर उच्च-संगठित शहर में रहने वाले पेशेवरों और व्यापारियों के वर्ग के अलावा, उच्च-संगठित घर-आधारित कंपनी मालिकों का वर्ग है। शहरी पेशेवरों की एक मजबूत आवाज है। भारत में विभिन्न समूह देश के बुनियादी ढाँचे और अर्थव्यवस्था पर सत्ता के लिए होड़ करते हैं। हालाँकि, संविधान में कई मूलभूत लक्ष्य शामिल हैं जिन्हें भारत के राजनीतिक प्रतिष्ठान के भीतर व्यापक समर्थन प्राप्त है और अक्सर स्पष्ट रूप से उचित रूप में देखा जाता है। इस तरह के उपायों में जाति और भेदभाव के अन्य रूपों को समाप्त करना और गरीबों और हाशिए पर रहने वालों को सशक्त बनाना शामिल होगा। जब प्रतिस्पर्धी हितों की बात आती है तो आमतौर पर कोई स्पष्ट वर्ग विभाजन नहीं होता है। एक उदाहरण के रूप में, एक संयंत्र को बंद करने के निर्णय पर विचार करें क्योंकि इससे उत्पन्न होने वाले खतरनाक कचरे से स्वास्थ्य-संबंधी जोखिम होते हैं। संविधान सुरक्षा प्रदान करता है क्योंकि इसमें मानव जीवन शामिल है। नकारात्मक पक्ष यह है कि शटडाउन के परिणामस्वरूप बहुत से लोग अपनी नौकरी खो देंगे। संविधान लोगों की आजीविका कमाने की क्षमता की भी रक्षा करता है। संविधान सभा भले ही

संविधान की जटिलता और विविधता से वाकिफ थी, लेकिन वे दस्तावेज में सामाजिक न्याय की गारंटी शामिल करने पर अड़ी थीं।

भारतीय संसद और इसकी संरचना—देश के संविधान में निर्धारित भारतीय संसद की संरचना द्विसदनीय है प्रकृति, राष्ट्रपति और दो सदनों राज्यसभा (उच्च सदन या राज्यों की परिषद) और लोकसभा (निचले सदन या लोगों के सदन) से मिलकर।

राज्य सभा—राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला, या सामाजिक सेवाओं जैसे क्षेत्रों में उनकी विशेषज्ञता के आधार पर राज्यसभा में 12 सदस्यों की नियुक्ति करते हैं; शेष 200 सदस्य भारत के राज्यों और क्षेत्रों के लोगों द्वारा उनकी संबंधित आबादी के अनुसार चुने जाते हैं; और हर राज्य और क्षेत्र में कम-से-कम एक प्रतिनिधि की गारंटी है। राज्य के प्रतिनिधियों का चुनाव विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा एकल संक्रमणीय मत प्रणाली के माध्यम से किया जाता है।

लोकसभा—जैसा कि ऊपर बताया गया है, लोकसभा को संसद के निचले सदन या लोगों के सदन के रूप में भी जाना जाता है, जिसमें अधिकतम 552 सदस्य होते हैं, जिनमें से 530 राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, 20 केंद्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही, एंग्लो-इंडियन समुदाय के दो से अधिक सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत नहीं किया जाता है, यदि समुदाय का सदन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

संवैधानिक मानदंड और सामाजिक न्याय: व्याख्या सहायता सामाजिक न्याय—कानून और न्याय के बीच के अंतर को जानने से आपको बेहतर निर्णय लेने में मदद मिल सकती है। कानून की परम शक्ति इसका मूल है। अनुपालन के लिए मजबूर करने की अपनी शक्ति के परिणामस्वरूप, कानून वही है जो वह है। इसे राज्य के शक्तिशाली तंत्र का समर्थन प्राप्त है। निष्पक्ष होना न्याय की अवधारणा के केंद्र में है। प्रत्येक कानूनी ढाँचे के शीर्ष पर नियम-निर्माताओं का एक समूह होना चाहिए। संविधान वह मूलभूत नियम है जिससे अन्य सभी नियम और प्राधिकार प्राप्त होते हैं। यह मार्गदर्शक दस्तावेज है कि कोई देश कैसे संचालित होता है। भारतीय संविधान देश के मौलिक कानून के रूप में कार्य करता है। संविधान निर्धारित करता है कि किसी अन्य प्रकार के कानून बनाने के लिए प्रक्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए। संविधान इन कानूनों को बनाने और लागू करने के लिए जिम्मेदार अधिकारियों की स्थापना करता है। जब कानून की व्याख्या के सवाल उठते हैं, तो उन्हें अदालतों की एक प्रणाली (संविधान द्वारा स्थापित अधिकारियों) के लिए स्थगित कर दिया जाता है जो एक पदानुक्रमित ढाँचे के भीतर काम करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय भूमि का सर्वोच्च न्यायालय है और संविधान के अर्थ का एकमात्र मध्यस्थ है।

पंचायतीराज के आदर्श—भारतीय उपमहाद्वीप की मूल भाषा में पंचायतीराज शब्द का अर्थ है—'पाँच व्यक्तियों द्वारा सरकार'। इसका लक्ष्य गाँव से शुरुआत करते हुए नीचे से ऊपर तक एक स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना करना है। जबकि जमीनी स्तर पर लोकतंत्र की अवधारणा हमारे देश के लिए विदेशी नहीं है, लिंग, जाति और वर्ग के कारण हमारे लोकतंत्र में शामिल होने में महत्त्वपूर्ण बाधाएँ हैं। इसके अलावा जाति पंचायतें लंबे समय से ग्रामीण जीवन का एक हिस्सा रही हैं। हालाँकि, वे अक्सर विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के लिए खड़े हुए हैं। उनके पास रूढ़िवादी विचार रखने और लोकतांत्रिक मानदंडों और प्रक्रियाओं के विपरीत विकल्प चुनने की भी प्रवृत्ति थी। विशेष रूप से, संविधान के प्रारूपण के दौरान पंचायतों को कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। कई लोगों ने पहले ही इस स्थिति पर दुख, आक्रोश और निराशा व्यक्त की है। डॉ॰ अंबेडकर ने

अपने स्वयं के ग्रामीण अनुभव से बोलते हुए कहा कि स्थानीय अभिजात वर्ग और उच्च जातियाँ समाज में इस तरह स्थापित हैं कि स्थानीय स्वशासन केवल भारतीय समाज के गरीब लोगों के निरंतर शोषण की आवश्यकता होगी। उच्च वर्ग, निश्चित रूप से, इस जनसांख्यिकीय उपसमुच्चय को बोलने से रोकने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। गांधीजी ने भी समुदाय आधारित प्रशासन के विचार को बहुत महत्त्व दिया। उनके लिए, स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भी ग्राम-स्वराज्य गाँवों के लिए स्वायत्त इकाइयों के रूप में कार्य करना जारी रखने के लिए आदर्श प्रतिमान था। 1992 में 73वाँ संविधान संशोधन पारित होने के बाद जमीनी लोकतंत्र या विकेंद्रीकृत सरकार आदर्श बन गई। इस कानून (पीआरआई) द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई थी। हर पाँच साल में स्थानीय स्वशासन निकायों का चुनाव करना अब कानून है, चाहे ग्रामीण और शहरी समुदायों में। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में स्थानीय प्राधिकरणों के सभी निर्वाचित पदों में से एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होनी चाहिए, जैसा कि संवैधानिक संशोधन 73 और 74 द्वारा अनिवार्य है। इनमें से 17% अनुसूचित जाति/जनजाति पृष्ठभूमि की महिलाओं के लिए अलग रखी गई हैं। इस संशोधन के परिणामस्वरूप, महिलाओं के पास अब सरकार में एक आवाज और एक वोट है। राष्ट्रीय स्तर से नीचे सरकार के सभी स्तरों में, महिलाओं को उपलब्ध सीटों के न्यूनतम एक तिहाई की गारंटी दी जाती है। इसमें ग्राम पंचायत, ग्राम पंचायत, नगरपालिका, नगर निगम और जिला बोर्ड शामिल हैं। 73वें संशोधन के पारित होने के तुरंत बाद, 1993-1994 के चुनाव चक्र में, 800,000 महिलाओं ने मतपत्र डाले। महिलाओं को मतदान का अधिकार देने की प्रक्रिया में यह एक बड़ा कदम था।

लोकतंत्रीकरण और असमानता–आप देखेंगे कि जाति, समुदाय या लिंग के आधार पर असमानता के लंबे इतिहास वाले देश में लोकतंत्रीकरण मुश्किल है। आपके पिछले प्रकाशन में असमानता के विभिन्न रूपों पर चर्चा की गई थी। अध्याय 4 आपको ग्रामीण भारत में दैनिक जीवन की अधिक संपूर्ण तस्वीर देगा। यह अप्रत्याशित नहीं है कि जब गाँव की सामाजिक संरचना असमान और गैर-लोकतांत्रिक है तो कुछ ग्रामीण अन्य समूहों, समुदायों या जातियों के सदस्यों को शामिल या सूचित नहीं करते हैं। धनी जमींदारों का एक छोटा समूह, ज्यादातर उच्च जातियों या भूमिहीन किसानों से, ग्राम सभा के सदस्यों पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है। वे विकास पहलों पर निर्णय लेते हैं और धन वितरित करते हैं, जबकि हममें से बाकी लोग असहाय होकर देखते हैं।

निष्कर्ष–वर्तमान में, अधिकांश राज्य किसी प्रकार की लोकतांत्रिक सरकार के अधीन कार्य करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, भारत ने तुरंत शासन के अधिक लोकतांत्रिक स्वरूप में संक्रमण की प्रक्रिया शुरू की। आजादी के 73 साल बाद भी हम भ्रष्टाचार, धर्म, संघवाद, क्षेत्रवाद और निरक्षरता जैसे कारकों के कारण एक वास्तविक लोकतंत्र स्थापित करने में असमर्थ रहे हैं। चूँकि सभी निर्णय राष्ट्रीय स्तर पर किए जाते हैं, जहाँ स्थानीय संगठनों का बहुत कम या कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, भारत में जमीनी स्तर पर जुड़ाव बहुत कम होता है। हालाँकि कुछ समुदायों ने सक्रिय रूप से विकास प्रक्रिया में जमीनी जुड़ाव को बढ़ावा दिया है, जिन लोगों को ऐसा करने में जबरदस्त सफलता मिली है, वे सभी सहमत हैं कि यह महत्त्वपूर्ण है; लोगों को उनके सामने आने वाली कठिनाइयों के बारे में सबसे अधिक जागरूकता है और उन्हें कैसे सँभालना है, इसके लिए सबसे नवीन सुझाव हैं। सहयोग का अधिक प्रभावी साधन और विकास के लिए अधिक संसाधनों की वास्तव में आवश्यकता है। संघीय सरकार और अलग-अलग राज्यों के बीच एक ठोस

संबंध होने की आवश्यकता है, और विकास प्रक्रिया के दौरान राज्यों को अधिक अधिकार सौंपे जाने चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक राज्य की अपनी अनूठी समस्याएँ हैं जिन्हें वाशिंगटन में नौकरशाहों के एक छोटे समूह द्वारा हल नहीं किया जा सकता है। किसी देश के प्रशासन में प्राधिकरण के विकेंद्रीकरण के कई फायदे हो सकते हैं, जिसमें भ्रष्टाचार को कम करना या उसका उन्मूलन और वित्तीय संसाधनों का मुक्त प्रवाह शामिल है।

संदर्भ

1. मुकेश कुमार मिश्रा, री-थिंकिंग गवर्नेंस, डिसेंट्रलाइजेशन एंड पार्टिसिपेटरी डेमोक्रेसी इन इंडिया
2. जी॰ पलानीथुराई, पार्टिसिपेटरी डेमोक्रेसी इन इंडियन पोलिटिकल सिस्टम
3. भागीदारी लोकतंत्र : देश को पारिस्थितिक और राजनीतिक रूप से हरित बनाने की दिशा में इंडिया ग्रींस पार्टी
4. स्पर्श मेहरा, भारत में भागीदारी लोकतंत्र को मजबूत करने वाली रणनीतियाँ
5. विग्नेशी कार्तिक के॰आर॰, स्ट्रेंथिंग ग्रासरूट्स डेमोक्रेसी
6. सुधा मेनन, ग्रासरूट डेमोक्रेसी एंड एंपावरमेंट ऑफ पीपल इवैल्यूएशन ऑफ पंचायतराज इन इंडिया
7. ज्योतिप्रकाश सामंत्रे, भारत में जमीनी स्तर का लोकतंत्र : एक सिंहावलोकन
8. भारत में नागरिक समाज, स्थानीय सरकार और जमीनी लोकतंत्र के लिए केंद्र

ऑनलाइन कक्षाओं का छात्रों के जीवन पर प्रभाव

डॉ॰ राजू सीताराम पवार
सहयोगी अध्यापक, संरक्षणशास्त्र विभाग
आर॰सी॰ पटेल कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, शिरपूर (धुलिया)

परिचय–ऑनलाइन शिक्षा ने Covid-19 महामारी में एक अभूतपूर्व भूमिका निभाई है। करोना संक्रमण के दौरान दुनिया के कार्यों और शिक्षार्थियों के सीखने के तरीके को बदल दिया है। कोरोना संक्रमण के दौरान दुनियाभर के स्कूलों में शिक्षा सत्र ऑनलाइन रहा। लंबे समय तक ऑनलाइन माध्यम से पढ़ाई के कारण बच्चों की शिक्षा पर ही नहीं बल्कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व और सेहत पर भी इसका नकारात्मक असर पड़ा है। ऑनलाइन शिक्षा की देश में कोई तैयारी नहीं थी, यहाँ तक कि हमारे पास बुनियादी ढाँचा भी नहीं था और न ही प्रशिक्षित शिक्षक थे। छात्रों को ऑनलाइन कैसे बर्ताव करना है यह भी पता नहीं था लेकिन समय के साथ समस्याएँ हल होती गईं और हम उच्च स्तर में आ गए। ऑनलाइन कक्षाओं के कई फायदे और कई नुकसान हैं।

ऑनलाइन कक्षाओं के फायदे–ऑनलाइन कक्षाएँ दूरी की बाधा को दूर करती हैं। कोई भी छात्र जिसके पास इंटरनेट तक पहुँच है, वह व्याख्यान में भाग ले सकता है। ऑनलाइन कक्षाएँ पारंपरिक कक्षाओं की तुलना में उन्हें अधिक लचीलापन प्रदान करती हैं। यह उन व्यस्त लोगों के लिए बहुत अच्छा है जो सीखना चाहते हैं लेकिन उन्हें पर्याप्त समय नहीं मिलता है। ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान छात्र अधिक आरामदायक होते है। वे निर्णय की भावना के बिना अधिक प्रश्न पूछते हैं। बच्चों या उनके माता-पिता तक सूचनाएँ पहुँचाने के लिए शिक्षकों ने अलग-अलग कक्षाओं के व्हाट्सएप ग्रुप बनाए हुए हैं। माता-पिता खुश हैं कि स्कूल बंद होने पर भी बच्चों की पढ़ाई हो रही है। ऑनलाइन कक्षाओं में बच्चों के साथ-साथ उनके माता-पिता भी जुड़ गए हैं। विदेश एवं विभिन्न प्रदेशों में डिजिटल लाईब्रेरीज शुरू की गई।

ऑनलाइन कक्षा के नुकसान–ऑनलाइन कक्षा जहाँ बच्चों के लिए फायदेमंद साबित ही रही है वहीं इससे कुछ नुकसान भी नजर आ रहे हैं। बच्चों के माता-पिता को यह चिंता है कि बच्चे को चार से पाँच घंटे मोबाइल लेकर बैठना पड़ता है। ऑनलाइन कक्षाओं ने छात्रों की पढ़ाई नहीं बल्कि मन पर भी नकारात्मक प्रभाव डाला है। कंप्यूटर और मोबाइल स्क्रीन पर पढ़ाई के कारण छात्रों का मन ऑफलाइन कक्षाओं से भटक गया है। अक्सर, छात्रों को नियम तोड़ने और यहाँ तक कि शिक्षकों को बेवकूफ बनाने के रूप में देखा जा सकता है। लर्निंग के तीन तरीके होते हैं। पहला शिक्षक से मिली लर्निंग, दूसरा पियर लर्निंग जो अपने सहपाठीयों से सीखते हैं, और तीसरा सेल्फ लर्निंग, जिसमें छात्र नेट पर सर्फिंग करते हैं, लाइब्रेरी जाते हैं, लैब जाते हैं। शिक्षक लर्निंग तो ऑनलाइन हो गई लेकिन पियर लर्निंग और सर्फिंग जीरो हो गई। कोविड-19 के चलते लगे लॉकडाउन के बाद अधिकांश घरों में बालिकाएँ सबसे ज्यादा प्रभावित हुई हैं उन्होंने न सिर्फ घरेलू काम किए बल्कि अपने भाइयों की खातिर अपनी पढ़ाई से भी समझौता किया। तकनीकी अभी इतनी स्मार्ट नहीं हुई है कि एक साथ सभी बच्चे कनेक्ट हो सकें। यह एक तरह की शारीरिक एवं

मानसिक प्रताड़ना भी है। वहीं ऑफलाइन कक्षाओं में बच्चों को ध्यान केंद्रित कर एक जगह पर बैठना पड़ता है। वही ऑफलाइन कक्षा में बच्चों के पास मानसिक एवं शारीरिक स्वतंत्रता होती है। प्रयोगात्मक पढ़ाई के लिए ऑनलाइन कक्षाएँ सफल साबित नहीं हो रही हैं। ऑनलाइन क्लास में एक जगह पर बैठे-बैठे अक्सर हाथ में या गर्दन में दर्द होता है। कई बार आँखों से आँसू भी आते हैं। सबसे ज्यादा दिक्कत बीच क्लास में नेटवर्क की समस्या आने से कनेक्टीविटी की होती है। ऑनलाइन क्लास में सभी बच्चे जब एक साथ कनेक्शन पुटअप करते हैं तो समझने में भी दिक्कत आती है।

सुझाव–

1. बच्चों के व्यवहार एवं मानसिक स्थिति में होने वाले बदलाव पर नजर रखें।
2. स्कूल को छोटी उम्र के बच्चों पर पढ़ाई का बोझ कम करना चाहिए।
3. बच्चों का समग्र विकास ऑनलाइन कैसे बने पेडागोजी लेवल पर समग्रता की दृष्टि को लागू किया जा सकता है।
4. बच्चों की स्वास्थ्य-संबंधी समस्याओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।
5. शिक्षक दो कक्षाओं के बीच अंतराल रखें।
6. ऑनलाइन कक्षाओं से शिक्षकों को भी पढ़ाई कराने का नया तरीका सीखना चाहिए।
7. शिक्षा प्रणाली की नई व्यवस्था पर बच्चे ऑनलाइन कक्षाओं के लिए खुद को ढलना चाहिए।
8. शिक्षकों को ऑनलाइन ट्रेनिंग की जरूरत है।
9. पढ़ाने और पढ़ने से पहले शिक्षक एवं छात्र दोनों तैयार होकर ऑनलाइन हों।
10. ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के पास यह सुविधा दी जाएँ।
11. बच्चों के स्वास्थ्य-संबंधी समस्याओं को भी ध्यान रखना आवश्यक है।

निष्कर्ष–जहाँ चुनौतियाँ होती हैं वहाँ अवसर होता है और चुनौतियों को अवसर में बदलना ही मनुष्य के जीवन की सार्थकता है। ऑनलाइन एजूकेशन कोरोना महामारी की देन है। कोरोना महामारी से पूर्व हम गौरवान्वित महसूस कर रहे थे कि हम इतना ऑनलाइन कार्य करने लगेंगे लेकिन आज एक सहज प्रक्रिया धीरे-धीरे देश में आरंभ हो गई। आज हम सभी ऑनलाइन माध्यम से कम संप्रेषण कर पा रहे हैं। आपस में ज्ञान का आदान-प्रदान कर रहे हैं। कोरोना महामारी की विदाई के बाद भी हमें बहुत सी बातों को ध्यान में रखना होगा और कोरोना से जो अच्छे अनुभव प्राप्त हुए हैं, उन्हें हमें आगे के जीवन में उपयोग करना होगा। भारतीय शिक्षा नीति के जो परिप्रेक्ष्यों का उद्देश्य भारत को विश्वगुरु बनाना है। जब समस्याएँ आती हैं तो उसके निवारण के लिए प्रयत्न होना चाहिए। हम भारतीयों में क्षमता है हम पर जितने प्रहार होते जाएँगे हमारी स्वच्छता निर्मलता उज्ज्वलता उतनी ही बढ़ती और निखरती जाएगी। अभी भी ऑनलाइन शिक्षा को बहुत से फैकल्टी कमतर मानते हैं। खासतौर से किसी को दोनों में से एक को चुनने का विकल्प दिया जाए। हमें एक साथ पूरी शिक्षा ऑफलाइन न करके मिक्सड शिक्षण प्रक्रिया का इस्तेमाल करना चाहिए। बड़े आनंद की बात है कि नई शिक्षा नीति में भी ऑनलाइन शिक्षा को स्वीकार किया गया है, शिक्षा नीति में समग्रता की दृष्टि की बात कही गई है। इसमें बहुत सी समस्याओं का समाधान और बहुत सी बातों का समावेश कर सकते हैं। अत: ऑनलाइन शिक्षण प्रत्यक्ष शिक्षा का विकल्प नहीं हो सकता लेकिन हम मिश्रित प्रणाली को विकसित कर सकते हैं।

संदर्भ

1. पी॰डी॰ पाठक, शिक्षण के सिद्धांत एवं विधियाँ, पृ॰ 14
2. पी॰डी॰ पाठक, शिक्षण एवं अधिगम के मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 08
3. पी॰डी॰ पाठक, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशात्रीय परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 13
4. गुरसरनदास त्यागी, आधुनिक भारत एवं शिक्षा, पृ॰ 23
5. के॰सी॰ मलैय, जनसंख्या शिक्षा एवं पर्यावरण शिक्षा, पृ॰ 37
6. बाबूलाल पारीख, सगर्भावस्था और आपका बालक, पृ॰ 97
7. श्रेया अग्रवाल, आप और आपका बालक, पृ॰ 17

Raju Sitaram Pawar
45- B, Vidyavihar Society Bhag-I ,
Shirpur , Dist.-Dhule -425405 Maharashtra
Mob. 9822651742, 7620223035
rspawar1742@gmail.com

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में छत्तीसगढ़ की भूमिका

मिथिलेश साहू, अतिथि सहा० प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यालय, गुरूर, जिला-बालोद (छ०ग०)
डॉ० योगेंद्र कुमार धुर्वे, सहा० प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यालय गुरूर, जिला बालोद (छ०ग०)

छत्तीसगढ़ में स्वतंत्रता-आंदोलन का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है और भारत की आजादी में छत्तीसगढ़ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सन् 1857 के पहले स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर 1947 के आजादी तक यहाँ भी अँग्रेजों के खिलाफ लगातार संघर्षों का दौर चलता रहा। आदिवासियों ने तो इससे पहले ही अँग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूँक दिया था। अतीत से ही भारतीय इतिहास राजतंत्र एवं सामंती व्यवस्था से प्रभावित रहा है सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उनकी नीतियाँ व्यवस्थित रही हैं। नीति शास्त्रों में राजा-प्रजा के संबंध में पिता पुत्र के समकक्ष माना गया जिससे जनजीवन प्रभावित होता रहा है। देश के मध्य में अवस्थित दक्षिणकौशल या छत्तीसगढ़ प्रारंभ से ही 19वीं शताब्दी के मध्य तक सामंतवाद एवं राजतंत्र की नीतियों से प्रेरित रहा। सामान्य तौर पर भारत में अँग्रेजी सत्ता के दो कालखंड नजर आते हैं। पहला ईस्ट इंडिया कंपनी जिसका शासन 1765 से 1858 तक रहा और दूसरा ब्रिटिश सरकार 1858 से 1947 तक रहा जिसमें ब्रिटिश संसद के माध्यम से वहाँ की सरकार महारानी के नाम से शासन करती थी इन दोनों कालखंडों में भारतीय अपने स्वाधीनता के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे और दोनों ही काल में छत्तीसगढ़ के रजवाड़ों या समाज के वीर योद्धाओं ने अपना योगदान दिया संघर्ष का चरित्र छत्तीसगढ़ के दो क्षेत्रों में जनजाति व गैरजनजाति क्षेत्रों में भिन्न प्रकार से देखने को मिलता हैं। छत्तीसगढ़ में कंपनी ने यहाँ का प्रशासन भले ही 1818 को अपने हाथ में ले लिया किंतु उनके पहले ही अँग्रेजों विरुद्ध यहाँ का जनजाति समाज संघर्ष में कूद चुका था इस प्रकार स्वाधीनता संघर्ष में छत्तीसगढ़ के योगदान में जनजातीय समाज हमेशा अग्रणी रहा तीर कमान लेकर अँग्रेजों की स्वचालित आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से मुकाबला करने का साहस उनमें अद्‌भुत था वे अँग्रेजी सत्ता और उनके अधीनस्थ राजाओं जमींदारों की दमनकारी नीतियों के खिलाफ मुखर रहे कहा जा सकता है कि पूरे भारत में अँग्रेजों ने अपने मन मुताबिक शासन चलाया लेकिन वे जनजातीय क्षेत्रों में असहाय रहे।

छत्तीसगढ़ में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास—पहले चरण में वनक्षेत्रों में संघर्ष प्रारंभ हुआ जब बंगाल को जीतकर कंपनी ने क्षेत्रों का विस्तार करना चाहा तो बस्तर में हल्बा जनजाति से सशस्त्र संघर्ष हुआ इसमें अँग्रेजों ने बर्बरता से सैकड़ों हल्बा वनवासियों की हत्या कर दी। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में अँग्रेजी काल में 14 प्रमुख सशस्त्र संघर्ष विभिन्न जनजातियों ने किए इनमें से कुछ तो रियासतों के कुशासन के कारण थे किंतु अनेक संघर्ष वन संस्कृति पर अँग्रेजी हस्तक्षेप से उपजे थे। 1857 तक ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध एक वातावरण बन चुका था। छत्तीसगढ़ इससे अछूता नहीं था। 1856 से 1860 के बीच कई सशस्त्र संघर्ष हुए इसमें बस्तर के धुर्वा राव का विद्रोह हो

 ISSN 0975-735X

या सोनाखान में बिंझवार जनजाति के जमींदार वीरनारायण सिंह दोनों को गिरफ्तार कर लिया और अंतत: फाँसी पर लटका दिए गए। 1857 में जब राजे-रजवाड़े कंपनी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्षरत थे सरगुजा में भी स्थानीय कोल जनजातियों की मदद से रीवा राज्य के नेतृत्व में एक विद्रोह हुआ था भोज और भगत के नेतृत्व में समूचे सरगुजा में अँग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया था। यहीं पर उदय में राजा के भाई ने विद्रोह का नेतृत्व किया जिसे कालापानी की सजा मिली। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष के फलस्वरूप सारंगढ़ रियासत में कमलसिंह के नेतृत्व में बगावत हुई जिसे बड़ी निर्ममता से कुचला गया कमलसिंह को फाँसी दे दी गई। रायपुर में अँग्रेजी सेना का मैगजीन लश्कर हनुमान सिंह ने 18 जनवरी को अपने अधिकारी सार्जेंट मेजर सिडवेल की हत्या कर दी। यह घटना एकाएक नहीं हुई इस दौर में अँग्रेजी हुकूमत जिस प्रकार विद्रोह को कुचलने क्रूरता दिखा रहे थे उसे एक देशभक्त सहन नहीं कर सका। सोनाखान के जमींदार वीरनारायण सिंह अकाल से जनता की पीड़ा से व्यथित थे। जब व्यापारियों तथा अँग्रेजी सत्ता से कोई मदद नहीं मिली तब उन्होंने व्यापारियों के अनाज के गोदामों को लूटकर गरीब लोगों में बँटवा दिया। इस प्रकार अँग्रेजों से उनकी ठन गई। संक्षिप्त संघर्ष के बाद वे गिरफ्तार कर लिए गए। 1857 के संग्राम का समाचार मिला तो उन्होंने जेल से भागकर अँग्रेजों के खिलाफ संघर्ष जारी रखा। वे फिर से पकड़े गए और सार्वजनिक तौर पर 10 दिसंबर 1958 को रायपुर जेल में वीरनारायण सिंह को फाँसी दी गई थी। हनुमानसिंह इस निर्णय से दुखी थे। हनुमानसिंह के 17 साथियों को फाँसी पर लटकाया गया। इस प्रकार 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 1858 में कंपनी शासन समाप्त हुआ और ब्रिटिश सरकार ने भारत की सत्ता अपने हाथों में ले ली इसके बाद भी छत्तीसगढ़ के वन क्षेत्रों मे अँग्रेजी के खिलाफ विरोध और विद्रोह नहीं थमा। अब ब्रिटिश सरकार की वन नीतियों, ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों से जनजातीय संस्कृति पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव के कारण विद्रोह हुए। दक्षिण बस्तर में वनवासियों के लिए साल वृक्ष एक आस्था का प्रतीक है। अँग्रेजी हुकूमत ने बस्तर में पेड़ कटाई करने का काम ठेकेदारों को सौंपा था उन्होंने सागौन के पेड़ों को काटने के साथ साल की पेड़ों पर भी आरी चलाना शुरू कर दिया। 1859 में इससे वहाँ निवासरत दोरला और दंड़ामी माड़िया जनजातियों ने विरोध करने का निर्णय किया। इससे हैदराबाद के ब्रिटिश ठेकेदार घबरा गए उन्होंने जब अँग्रेज अधिकारियों को वनवासियों का निर्णय बताया तो अँग्रेजों ने इसे अपनी प्रभुसत्ता को चुनौती मानते हुए एक सैनिक सशस्त टुकड़ी भेज दी। इससे भड़के जनजातीय ने हाथों में मशाल लेकर लकड़ी के टालों को आग के हवाले कर दिया। वनवासियों ने नारा दिया था 'एक साल वृक्ष के लिए एक सर' इस नारे का इतना व्यापक असर हुआ कि हैदराबाद के निजाम को पेड़ों को काटने का निर्णय वापस लेना पड़ा। यह स्वतंत्र भारत का वन बचाव चिपको आंदोलन था। बस्तर के राजमुरिया लोगों के बीच सरकार के खिलाफ असंतोष की एक घटना 1876 ईसवी में घटित हुई थी। यह घटना बताती है कि वनवासी समुदायों में अँग्रेजों को लेकर कितना आक्रोश था। 28 फरवरी 1876 को बस्तर के राजा भैरमदेव वेल्स के युवराज से भेंट के प्रयोजन से जगदलपुर से रवाना हुए। मारेंगा नामक स्थान पर राजा की पालकी ढोने वाले भारवाहकों और कहारों ने सिर कंधों से बोझ उतारकर आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। क्योंकि राजा अँग्रेजी राजकुमार से मिलने क्यों जा रहे हैं? इसके लिए उन्हें गिरफ्तार कर जगदलपुर जेल में बंद करने ले जा रहे थे। लेकिन इसके पूर्व ही क्रूर आदिवासी किसानों की टोली ने घात लगाकर गैरद के कब्जे से बंदियों को छुड़ा लिया और गैरद को खदेड़ दिया। आखिरकार राजा को

उल्टे पाँव लौटना पड़ा। यह असंतोष अँग्रेजी नीतियों दमन और शोषण के कारण था। बस्तर में एक और विरोध हुआ। यह बस्तर की सामाजिक परंपरा पर हस्तक्षेप करने का कारण हुआ। 1878 में राजा भैरमदेव ने ब्रिटिश सरकार के आदेश पर मुस्लिम महिला नवाबाई से विवाह किया जो सामाजिक परंपरा के विरुद्ध था। राजा की पटरानी जुगराज कुँवरदेवी ने इस विवाह का विरोध किया जिसमें बस्तर की महिलाओं ने बड़ी संख्या में रानी का साथ दिया। अँग्रेजों ने इसे रानी का विद्रोह माना था और नाम दिया रानी चोरिस। आखिरकार राजा को झुकना पड़ा। अँग्रेजों के खिलाफ अंतिम सशस्त्र संघर्ष 1910 में भूमकाल के नाम से हुआ। इस विरोध के अनेक कारण थे। जिसमें ईसाई मिशनरियों का धर्मांतरण भी एक कारण था। लाला कालेंद्रसिंह, रानी सुवरन कुँवर और गुंडाधुर ने इस संघर्ष का नेतृत्व करते हुए फरवरी 1910 में सरकारी दफ्तरों को आग लगा दी, लूटमार की गई। अँग्रेजों ने कठोरता से इस विद्रोह को कुचलने का प्रयास किया। बड़ी संख्या में जनजातीय पुलिस गोली के शिकार हुए। सभी महत्त्वपूर्ण नेता गिरफ्तार हुए उन्हें देश निकाला दे दिया।

राष्टीय आंदोलनों का छत्तीसगढ़ में निम्नलिखित प्रभाव देखने को मिलता है–

1. असहयोग आंदोलन का प्रभाव
2. भारत छोड़ो आंदोलन का प्रभाव
3. सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रभाव
4. सांप्रदायिक दंगों का प्रभाव
5. होमरुल आंदोलन का प्रभाव
6. प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन का प्रभाव
7. रौलेक्ट एक्ट का विरोध तथा प्रभाव
8. जालियावाला बाग हत्याकांड का प्रभाव
9. खिलाफत आंदोलन का प्रभाव
10. गांधीजी के प्रथम आगमन का प्रभाव

1. **असहयोग आंदोलन का प्रभाव**–छत्तीसगढ़ में असहयोग आंदोलन का प्रभाव निम्नलिखित रूपों में हुआ–

(क) छत्तीसगढ़ में असहयोग आंदोलन का शुभारंभ वकालत परित्याग से हुआ छत्तीसगढ़ अंचल के 8 वकीलों ने वकालत छोड़ दिया।

(ख) असहयोग आंदोलन के कार्यक्रमों में गांधीजी ने मद्यपान निषेध को अत्यधिक प्रमुखता दी थी जिसका छत्तीसगढ़ के रायपुर में भी प्रभाव पड़ा और 07 फरवरी 1921 के रायपुर नगर में गांधी चौक पर एक आम सभा आयोजित की गई। जिसमें पंडित सुंदरलाल शर्मा ने मतदान बहिष्कार करने तथा शराब दुकानों को बंद करने की सलाह दी।

(ग) असहयोग आंदोलन के कार्यक्रमों में सरकारी पदवी की उपाधियों का त्याग भी प्रारंभ कर दिया जिसका प्रभाव छत्तीसगढ़ के अनेक क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा।

(घ) असहयोग आंदोलन के दौरान ब्रिटिश शासन ने कांउसलिंग और जिला परिषदों के चुनाव कराने की घोषणा की लेकिन इसका छत्तीसगढ़ के अनेक जिलों में बहिष्कार किया गया।

(ङ) विद्यार्थियों ने असहयोग आंदोलन को अपना सक्रिय सहयोग देने के लिए स्कूल व कॉलेजों का बहिष्कार करना शुरू कर दिया कर्मवीर साप्ताहिक समाचारपत्र के संपादक ने समाचारपत्र के माध्यम से विद्यार्थियों को स्कूल और कॉलेज का बहिष्कार करने की प्रेरणा दी।

2. **भारत छोड़ो आंदोलन का प्रभाव**–छत्तीसगढ़ में भारत छोड़ो आंदोलन का प्रभाव इस प्रकार हुआ–

(अ) ब्रिटिश शासन ने काँग्रेस की एक नहीं सुनी और गांधीजी की मासिक अपीलों की उपेक्षा की। तब विवश होकर अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने मुंबई में बैठक बुलाई और 7 से 8 अगस्त को मुंबई में इस बैठक के दौरान भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत की गई। इसकी शुरुआत 8 अगस्त 1942 को हो गई जिसका छत्तीसगढ़ के अनेक जिलों पर प्रभाव पड़ा जिसमें रायपुर नगर प्रमुख था।

(आ) रायपुर के अलावा बिलासपुर नगर तथा जिले में भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत 9 अगस्त 1942 को देखने को मिली जिसमें गुप्त रूप से लोगों ने सूचना प्राप्त होने के बाद विशाल सभाएँ कीं जिसमें प्रमुख रूप से काँग्रेस के नेताओं ने भारत छोड़ो के नारे लगाते हुए आंदोलन शुरू कर दिया जिसमें विद्यार्थियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था।

(इ) दुर्ग जिले में भी भारत छोड़ो आंदोलन का बोलबाला रहा। यहाँ पर काँग्रेस कमेटी को ब्रिटिश प्रशासन ने अवैध घोषित कर दिया लेकिन फिर भी आंदोलनकारियों नवयुवकों किसानों तथा सतनाम पंथी लोगों ने इस में बढ़-चढ़कर भाग लिया गिरफ्तारियाँ भी हुईं।

3. **सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रभाव**–काँग्रेस कार्यसमिति की महत्त्वपूर्ण बैठक 14 से 16 फरवरी 1930 तक साबरमती आश्रम में हुई। इसमें समिति कार्य समिति ने गांधीजी को ब्रिटिश सरकार की गलत नीतियों व दमन के खिलाफ सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ करने के लिए अधिकृत किया। इसका प्रभाव छत्तीसगढ़ के महाकौशल राजनीतिक परिषद् के सम्मेलन में 1930 में देखने को मिलता है। छत्तीसगढ़ में ही नमक सत्याग्रह का विस्तार हुआ। अप्रैल 1930 में जहाँ पर सत्याग्रहीयों ने रायपुर में स्थित भाटापारा के सत्याग्रही कुंभा खान की मिट्टी लाकर उसे एक कढ़ाई में डालकर पानी में खौला कर नमक तैयार किया इसके अलावा क्रमश: धमतरी में सत्याग्रही आश्रम की स्थापना 1 मई 1930 में की गई तथा बिलासपुर महासमुंद में राष्ट्रीय सप्ताह के रूप में मनाया गया जिसमें झंडा दिवस, धरना दिवस व महिला दिवस आदि प्रमुख थे।

4. **सांप्रदायिक दंगों का प्रभाव**–मई 1924 में अँग्रेजों के कुचक्रों से हिंदू और मुसलमानों में वैमनस्य पैदा हो गया। खिलाफत आंदोलन के समय दोनों के बीच में स्थापित एकता समाप्त हो गई जिसका छत्तीसगढ़ में भी प्रभाव देखने को मिला। रायपुर तथा धमतरी जिले में मस्जिदों के सामने बाजा बजाने के कारण हिंदू और मुसलमानों के बीच दंगा भड़क गया जिसमें अनेक लोग घायल हुए लेकिन उस समय छत्तीसगढ़ के लोगों ने इसको बड़ी शांति से सुलझा लिया और हिंदू मुस्लिम एकता परिचय दिया।

5. **छत्तीसगढ़ में होमरुल आंदोलन का प्रभाव**–लोकमान्य तिलक एवं एनीबेसेंट ने होमरूल लीग की स्थापना कर होमरूल आंदोलन का सूत्रपात किया। जिसका प्रभाव छत्तीसगढ़ में भी देखने को मिला। इनमें कार्यकर्ताओं और नवयुवकों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया रायपुर में इसकी स्थापना पंडित सुंदरलाल शर्मा ने उनके सहयोगी लक्ष्मणराव तथा मूलचंद व माधवराव सप्रे ने किया। बिलासपुर शाखा में भी यह सक्रिय रूप से आगे बढ़ा और देखते-ही-देखते छत्तीसगढ़ के अन्य भागों में भी इसका प्रभाव देखने को मिला। प्रशासन का कठोर दमनात्मक रवैया होने के बावजूद यह आंदोलन और उग्र होता गया।

6. **प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन का प्रभाव**–प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन में छत्तीसगढ़ के

विभिन्न क्षेत्रों से प्रतिनिधियों ने भाग लिया। पं॰ सुंदरलाल शर्मा, माधवराव सप्रे, नारायण राव मेघावाले ने इसको आगे बढ़ाया। जिसमें होमरूल लीग का गाँव और कस्बों में विस्तार करने तथा स्वराज फंड में धनराशि इकट्ठा करने आदि प्रमुख मुद्दे थे।

7. **रौलेक्ट एक्ट का विरोध तथा प्रभाव**–सन् 1919 में रौलेक्ट एक्ट के विरोध में देशव्यापी हड़ताल हुई। छत्तीसगढ़ में भी इस हड़ताल का प्रभाव पड़ा। रायपुर, धमतरी, बिलासपुर, दुर्ग व राजनंदगाँव में स्थानीय काँग्रेसियों ने जनसभा आयोजित की और दैत्य रूपी काले कानून का विरोध किया और जुलूस निकाला।

8. **जालियांवाला बाग हत्याकांड का प्रभाव**–रौलेक्ट एक्ट का विरोध संपूर्ण भारत में किया गया। इस एक्ट के विरोध में 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक आमसभा रखी गई जिसमें 20000 से अधिक लोग शामिल हुए और इसमें जनरल डायर ने ब्रिटिश फौज से 1600 कारतूस चलवा दिए परिणामस्वरूप 400 से अधिक लोग मारे गए और 1200 लोग घायल हो गए। इस भीषण नरसंहार के विरोध में छत्तीसगढ़ में पं॰ सुंदरलाल शर्मा, पं॰ रविशंकर शुक्ल और राघवेंद्र राव ने भाग लिया। पं॰ सुंदरलाल शर्मा और रविशंकर शुक्ल ने जलियांवाला बाग हत्याकांड की घोर निंदा की।

9. **खिलाफत आंदोलन का प्रभाव**–प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैंड और उसके मित्र राष्ट्रों में युद्ध के उपरांत पराजित राष्टों के साथ मनमानी की और टर्की को पराजित कर दिया उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया। टर्की के सुल्तान समस्त मुसलमानों के खलीफा थे। मुसलमानों के नेता मोहम्मद अली और शौकतअली ने गांधीजी से परामर्श कर खलीफा के सम्मान और रक्षार्थ आंदोलन चलाया। इसका छत्तीसगढ़ में भी प्रभाव देखने को मिला क्योंकि मुस्लिम समुदाय के लोगों ने इसका विरोध किया। हिंदुओं ने भी इसका समर्थन किया उस समय पं॰ रविशंकर शुक्ल ने हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया और उन्होंने खिलाफत आंदोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया।

10. **गांधीजी के प्रथम आगमन का प्रभाव**–20 दिसंबर 1920 को पं॰ सुंदरलाल शर्मा के साथ गांधीजी अपनी प्रथम यात्रा के दौरान छत्तीसगढ़ के रायपुर पधारे। उन्होंने अपनी लोकप्रियता के साथ जनता के सहयोग की माँग की। अपने भाषण के दौरान उन्होंने अँग्रेजी हुकूमत को हटाने तथा उनके अत्याचारों को न सहने की बात की। उन्होंने महिलाओं से भी स्वराज के लिए बढ़-चढ़कर लड़ने का आह्वान किया।

निष्कर्ष–इस प्रकार स्वतंत्रता-आंदोलन के दौर में पं॰ सुंदरलाल शर्मा, पं॰ नारायणराव मेघावाले, ठाकुर प्यारेलाल सिंह, पं॰ माधवराव सप्रे, बेरिस्टर छेदीलाल, बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव, नत्थूजी जगताप, यति यतनलाल महंत, लक्ष्मीनारायण दास, गुरु अगमदास, मगनलाल बागड़ी, डॉ॰ खूबचंद बघेल जैसे जननेता हुए थे जिनके नेतृत्व में छत्तीसगढ़ की जनता ने स्वतंत्रता-आंदोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी दी एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा हम जनजाति समाज के योगदान को नकार नहीं सकते। उन्होंने हमेशा स्वाधीनता संघर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। तीर कमान लेकर अँग्रेजों की स्वचालित आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से मुकाबला करने का साहस उनमें अदभुत था। उन्होंने अँग्रेजी सत्ता और उनके अधीनस्थ राजाओं जमींदारों की दमनकारी नीतियों के खिलाफ डटकर मुकाबला किया। इसीलिए आज ऐसे वीर सपूतों का नाम बड़े आदर और सम्मान से लिया जाता है जिनके कारण आज हम स्वतंत्र भारत में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और ऐसे वीर सपूतों को पाकर छत्तीसगढ़ की मिट्टी पवित्र हो गई है।

संदर्भ

1. छत्तीसगढ़ राज्य अलंकरण, 2022
2. निर्मलकांत श्रीवास्तव, छत्तीसगढ़ की रियासतों में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, छत्तीसगढ़ राज्य ग्रंथ अकादमी रायपुर 2019, पृ॰ 29
3. शशांक शर्मा पत्रकार का लेख-2021
4. कौशल टुडे 26 जनवरी 2021
5. डॉ॰ घनाराम साहू, रायपुर छत्तीसगढ़ी संस्कृति एवं इतिहास के अध्ययन लेख, 2021
6. डॉ सुरेंद्रचंद्र शुक्ला, छत्तीसगढ़ का नामकरण एवं इतिहास, मातोश्री पब्लिकेशन रायपुर, 2020, पृ॰ 109-110
7. वही, पृ॰ 183-185
8. डॉ॰ अंबिकाप्रसाद वर्मा, छत्तीसगढ़ का शासन एवं राजनीति पंचशील पुस्तक मंदिर, दौसा राजस्थान-2023 पृ॰ 23-24
9. डॉ सुरेंद्रचंद्र शुक्ला, छत्तीसगढ़ का नामकरण एवं इतिहास, पृ॰ 124
10. वही, पृ॰ 98
11. डॉ॰ अंबिकाप्रसाद वर्मा, छत्तीसगढ़ का शासन एवं राजनीति, पृ॰ 98
12. डॉ॰ सुरेंद्रचंद्र शुक्ला, छत्तीसगढ़ का नामकरण एवं इतिहास, पृ॰ 99
13. वही, पृ॰ 101
14. डॉ॰ सुरेंद्रचंद्र शुक्ला, छत्तीसगढ़ का नामकरण एवं इतिहास, पृ॰ 101-102
15. वही, पृ॰ 108

भारत में नगरीय ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति : एक समीक्षा

डॉ॰ हरीश चंद्र जोशी, सहा॰ आचार्य, वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखंड
डॉ॰ शालिनी चौधरी, सहा॰ आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखंड
डॉ॰ कृष्ण कमार टम्टा एवं डॉ॰ बीना तिवारी 'फुलारा'
वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखंड

वैश्विक स्तर पर आज बढ़ते नगरीकरण, तीव्र गति से फैलते हुए उद्योगों एवं बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण पर्यावरण में ठोस अपशिष्ट के जमाव ने गंभीर समस्या का रूप धारण कर लिया है। ठोस अपशिष्ट से अभिप्राय ऐसे ठोस पदार्थों एवं वस्तुओं से है जो प्राथमिक उपयोग के पश्चात उपभोक्ता के लिए उपयोगहीन हो जाते हैं। हमारे वातावरण में ऐसे अपशिष्ट पदार्थों का जमाव धीरे-धीरे बढ़ता चला जाता है जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र प्रभावित होता है और मुख्य रूप से विविध प्रकार की मानव-स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का जन्म होता है। जनसंख्या विस्फोट एवं उपभोक्तावाद के कारण हमारे पर्यावरण में ठोस अपशिष्ट की मात्रा में निरंतर वृद्धि होती जाती है जिसके समुचित प्रबंधन के अभाव में इसने एक वृहद वैश्विक समस्या का रूप ले लिया है। इस प्रकार उत्पन्न ठोस अपशिष्ट में सामान्य कचरे से लेकर हानिकारक अपशिष्ट भी मौजूद रहते हैं जो हमारे पर्यावरण के साथ-साथ विभिन्न जल संसाधन, यहाँ तक कि भूमिगत जल के लिए भी गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं।[1]

भारत तेजी से कृषि आधारित राष्ट्र से औद्योगिक और सेवा उन्मुख देश के रूप में उभर रहा है। तीव्र औद्योगिक विकास एवं बढ़ते नगरीकरण के कारण उत्पादन एवं उपभोग की प्रक्रिया में भी अत्यधिक तीव्र गति से वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप ठोस अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। भारत में विभिन्न भौगोलिक और जलवायु क्षेत्र (ऊष्ण-कटिबंधीय आर्द्र, ऊष्ण-कटिबंधीय शुष्क, ऊपोष्ण-कटिबंधीय आर्द्र जलवायु और पर्वतीय जलवायु) और चार मौसम (सर्दी, गर्मी, बरसात और पतझड़) पाए जाते हैं तदनुसार इन क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों के उपभोग और अपशिष्ट उत्पादन स्वरूप में भी विविधता पाई जाती है।[2]

किसी भी देश की जनसंख्या में हुई वृद्धि के परिणामस्वरूप उस देश के विकसित मानव संसाधन को उपयोग में लेने और रोजगार के सृजन हेतु वहाँ तीव्र गति से उद्योगों का फैलाव होने लगता है। रोजगार सृजन के फलस्वरूप प्रतिव्यक्ति क्रय-शक्ति में हुई बढ़ोतरी से लोगों के जीवन-स्तर में सुधार होने लगता है। इस प्रकार शहरों के तीव्र विकास एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नगरीय ठोस अपशिष्ट उत्पाद की दर में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।[3]

अब भारत में कुल जनसंख्या में से लगभग 31.2 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में निवास कर रही है।[4] नगरीकरण, पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं से आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में

 ISSN 0975-735X

परिवर्तन का सूचकांक है। यह जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र की ओर प्रगतिशील संकेंद्रण है।[5] भारत में तीव्र औद्योगीकरण और जनसंख्या विस्फोट के कारण लोगों का गाँवों से नगरों की ओर पलायन हुआ है। जो रोजाना हजारों टन ठोस अपशिष्ट उत्पन्न करता है।[6] बढ़ती हुई जनसंख्या, नगरीकरण, औद्योगीकरण के कारण भारत में ठोस अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में भी वृद्धि हुई है और इस प्रकार भारत में ठोस अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की समस्या भी गहराई है।

योजना आयोग की वर्ष 2014 की रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्तमान में नगरीय क्षेत्रों में रहने वाले 377 मिलियन लोग प्रति वर्ष 62 मिलियन टन ठोस अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं और यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2031 तक ये नगरीय क्षेत्र प्रति वर्ष 165 मिलियन टन ठोस अपशिष्ट उत्पन्न करेंगे और 2050 तक यह आँकड़ा 436 मिलियन टन तक पहुँच सकता है।[7] इसी प्रकार ठोस अपशिष्ट का जमाव न केवल हमारे देश में बल्कि पूरी दुनिया में एक वैश्विक समस्या के रूप में उभरा है। वैश्विक स्तर पर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर नीतियाँ एवं परियोजनाएँ प्रगति पर हैं और भारत में भी इस समस्या के निस्तारण हेतु केंद्र सरकार द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के माध्यम से प्रयास किए गए हैं।

ठोस अपशिष्ट, बेकार और कभी-कभी कम तरल वाली खतरनाक सामग्री है। ठोस अपशिष्ट में नगरीय अपशिष्ट, औद्योगिक और वाणिज्यिक अपशिष्ट, वाहित मल, कृषि और पशुपालन संचालन और अन्य संबंधित गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट, विध्वंसीकरण अपशिष्ट और खनन अवशेष शामिल हैं।[8] भारत में ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की समस्या से निपटने के लिए सन् 2016 में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर एक नियमावली बनाई गई थी। इस नियमावली का मुख्य उद्देश्य संपूर्ण देश में ठोस अपशिष्ट का विभिन्न राज्यों के द्वारा समुचित प्रबंधन किया जाना सुनिश्चित करना था। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत में ठोस अपशिष्ट नियमावली 2016[9] के लागू होने के उपरांत विभिन्न राज्यों द्वारा वर्ष 2016-17 से वर्ष 2020-21 तक इस ओर किए गए प्रयासों की समीक्षा करना है।

शोध पद्धति प्राविधि–प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति समीक्षात्मक है। अतः निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पूर्व में किए गए अध्ययनों एवं कार्यों की रिपोर्ट का संकलन किया गया है। इस अध्ययन के लिए मुख्यतः केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) की वेबसाइट पर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के उपलब्ध आँकड़ों (2016-17 से 2020-21)[10] का उपयोग किया गया है। नगरीय स्थानीय निकायों से संबंधित आँकड़े सन् 2019 और 2020 की रिपोर्ट में उपलब्ध हुए हैं, इससे पूर्व की रिपोर्ट में इनकी संख्या का विवरण उपलब्ध नहीं है।

परिणाम एवं विवेचना–नगरीय ठोस अपशिष्ट का निस्तारण महत्त्वपूर्ण वैश्विक मुद्दों में से एक है जो कि विकासशील देशों में अधिक स्पष्ट रूप से नजर आता है।[11] जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण एवं बढ़ते हुए नगरीकरण के कारण भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं रहा है। भारत में ठोस अपशिष्ट उत्पादन की मात्रा में निरंतर वृद्धि दर्ज हुई है। भारत में जहाँ प्रतिदिन अपशिष्ट उत्पादन की मात्रा वर्ष 2016-17 में 11940.90 टन थी वहीं वर्ष 2021-22 में यह बढ़कर 160038.90 टन हो गई थी जो कि वर्ष 2016-17 की तुलना में 34.33 प्रतिशत अधिक थी। अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में हो रही यह वृद्धि भारत के लिए चिंता का विषय है। इस समस्या की गंभीरता को समझते हुए ही भारत के नीति निर्माताओं के द्वारा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियमावली (2016) का निर्माण कर इसे संपूर्ण देश में लागू किया गया। इस नीति के लागू किए जाने के साथ ही विभिन्न राज्यों ने ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र में समुचित कार्य करना आरंभ किया। ठोस

अपशिष्ट प्रबंधन नियम (2016) के लागू होने के बाद भारत के विभिन्न राज्यों ने नगरीय ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र में अपने यहाँ स्थापित स्थानीय निकायों के माध्यम से प्रयास किए हैं। यहाँ इन प्रयासों का एक तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

नगरीय क्षेत्रों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का उत्तरदायित्व नगरीय स्थानीय निकायों का होता है और प्रत्येक नगरीय स्थानीय निकाय (ULBs) का दायित्व है कि वह पर्यावरण मानकों के अनुरूप ठोस अपशिष्टों का प्रबंधन करना सुनिश्चित करें ताकि शहरों, कस्बों एवं विभिन्न जल स्रोतों को स्वच्छ एवं निर्मल बनाया जा सके। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) की वर्ष 2019-20 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में कुल 4369 नगरीय स्थानीय निकाय (यू॰एल॰बी॰) एवं 3948 कस्बे एवं शहरों का अस्तित्व था जोकि वर्ष 2020-21 में बढ़कर क्रमश: 4437 एवं 4011 हो गए। तमिलनाडु राज्य में सर्वाधिक नगरीय स्थानीय निकायों (664) की स्थापना हुई हैं, उसके बाद क्रमश: उत्तर प्रदेश (651), महाराष्ट्र (403), मध्य प्रदेश (383) एवं कर्नाटक (316) का स्थान आता है। इन नगरीय स्थानीय निकायों के माध्यम से ठोस अपशिष्ट प्रबंधन हेतु संस्थाओं का क्षमता विकास, मानव संसाधन विकास, तकनीकी क्षमता विकास, वित्तीय क्षमता एवं वित्तीय व्यवस्था, सामुदायिक सहभागिता, कानूनी ढाँचा एवं प्रवर्तन-तंत्र इत्यादि जैसे विभिन्न विषयों को सम्मिलित करके समुचित परियोजना का विकास करना है, और इस प्रकार एक कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन योजना के विकास द्वारा ठोस अपशिष्ट पदार्थों का अधिकतम पुन: उपयोग करके वैज्ञानिक निस्तारण किया जाना है। इन स्थानीय निकायों के माध्यम से कुल उत्पादित नगरीय ठोस अपशिष्ट का 95% से अधिक मात्रा का अपशिष्ट एकत्र किया गया था। हालाँकि वर्ष 2016-17 में जहाँ कुल संकलित ठोस अपशिष्ट में से केवल 20.61% का उपचार किया गया था वह वर्ष 2020-21 में बढ़कर 52.34% हो गया। यह एक सकारात्मक दशा को दर्शाता है, तथापि उपचारित ठोस अपशिष्ट के प्रतिशत में और अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसी प्रकार वर्ष 2016-17 में जहाँ 42.71% ठोस अपशिष्ट लैंडफिल क्षेत्रों में जाता था, वहीं वर्ष 2020-21 में यह घटकर 19.27% रह गया।

स्रोत स्तर पर प्रदूषण न्यूनीकरण—ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम (2016) में स्रोत स्तर पर ही अपशिष्ट न्यूनीकरण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है ताकि स्रोत स्तर पर ही कम मात्रा में अपशिष्ट उत्पादित हो और इस प्रकार ठोस अपशिष्ट के निस्तारण में न्यूनतम आर्थिक हानि हो और साथ ही पर्यावरण को भी कम से कम क्षति पहुँचे। इसके लिए इस नियम में प्रावधान है कि किसी 'उत्पाद' के 'उपभोग' के बाद उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट के उचित निस्तारण की जिम्मेदारी भी 'उपभोक्ता' की ही होगी। हालाँकि, इसका पालन मुख्य रूप से खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों जैसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण और बैटरी आदि के लिए किया जाता है, जिनका सुरक्षित निस्तारण पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अपशिष्ट न्यूनीकरण में जन-जागरूकता एवं जन-सहभागिता का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। किसी भी क्षेत्र का अपशिष्ट मानव गतिविधियों का ही परिणाम होता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपशिष्ट प्रबंधन की समुचित समझ हो, इसके अभाव में अच्छे-से-अच्छे अपशिष्ट प्रबंधन योजना में प्रश्नचिह्न लग सकता है और इसमें विद्यालयों, महाविद्यालयों, गैरसरकारी संगठनों और स्थानीय निकायों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है ताकि स्रोत स्तर पर ही ठोस अपशिष्ट का न्यूनीकरण किया जा सके। सतत् विकास लक्ष्य 2030 के लक्ष्य 6 एवं 11 में भी स्वच्छता को महत्त्व दिया गया है जिसके अंतर्गत अपशिष्ट प्रबंधन एवं शून्य अपशिष्ट की

संकल्पना को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।[12]

स्रोत स्तर पर ही अपशिष्ट न्यूनीकरण के संदर्भ में भारत में अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्ष 2016-17 में जहाँ 132.78 ग्राम (प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति) था वह वर्ष 2020-21 में घटकर 119.07 ग्राम प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति दर्ज हुआ। इस प्रकार ठोस अपशिष्ट नियमावली लागू होने वाले वर्ष 2016-17 के पश्चात पाँच वर्षों में प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति अपशिष्ट उत्पादन में 10 प्रतिशत की कमी तो आई लेकिन यह आँकड़े बहुत उत्साहवर्धक स्थिति को व्यक्त नहीं करते हैं। हालाँकि इस बात से यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि अपशिष्ट पदार्थों के न्यूनीकरण में स्थानीय निकायों के जागरूकता अभियानों से जन-सहभागिता में वृद्धि हुई है। राज्यवार स्थिति के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष 2020-21 में अपशिष्ट पदार्थों के प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति अपशिष्ट उत्पादन में क्रमश: दिल्ली, लक्षद्वीप, एवं मिजोरम का स्थान सबसे ऊपर रहा।

अपशिष्ट पदार्थों का पुनरुपयोग एवं अपशिष्ट से ऊर्जा उत्पादन–अपशिष्ट पदार्थों के प्रसंस्करण से पूर्व जहाँ तक संभव हो सके, अपशिष्ट के पुनरुपयोग की संभावनाएँ तलाश करना और उसका उपयुक्त उपयोग करना ही एक बेहतरीन विकल्प हो सकता है। अत: अपशिष्ठ न्यूनीकरण के पश्चात सबसे अधिक महत्त्व उनके पुन: उपयोग को दिया गया है। पुनरुपयोग के अलावा, अपशिष्ट पदार्थों से ऊर्जा का उत्पादन सबसे अच्छा विकल्प है, जो न केवल ऊर्जा की कमी को पूरा करने का प्रयास कर सकता है, बल्कि अपशिष्ट पदार्थों से हमारे पर्यावरण को होने वाली हानि को भी कम कर सकता है। इस प्रकार अपशिष्ट पदार्थों से ऊर्जा उत्पन्न करने का विकल्प अपशिष्ट प्रबंधन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आँकड़ों के अनुसार इस दिशा में अभी तक भारत में मात्र 8 ऊर्जा संयंत्रों की ही स्थापना हुई है, जिसमें से दिल्ली में 3, आंध्र प्रदेश में 2, उत्तर प्रदेश में 2 तथा गोवा, हरियाणा, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र में एक-एक ऊर्जा संयंत्र की ही स्थापना हुई है। इस प्रकार के ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना शेष राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों में भी होनी चाहिए ताकि भारत में अधिकाधिक निष्प्रयोज्य अपशिष्ट को ऊर्जा में परिवर्तित करके एक ओर ऊर्जा के क्षेत्र में ऊर्जा की कमी को पूरा करने में योगदान होगा साथ ही पर्यावरण को होने वाली क्षति में भी कमी आएगी और इस प्रकार अपशिष्ट पदार्थों का अधिकतम पुन: उपयोग सुनिश्चित हो सकेगा।

अपशिष्ट प्रसंस्करण एवं उपचार की स्थिति–केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2016-17 की तुलना में वर्ष 2020-21 में ठोस अपशिष्ट के प्रसंस्करण में ढाई गुना से अधिक वृद्धि हुई है। ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रसंस्करण में सबसे अधिक योगदान क्रमश: छत्तीसगढ़ (100%), दादरा नागर हवेली (87.04%), गोवा (87.04%), अंडमान निकोबार द्वीप समूह (84.7%) तथा मध्य प्रदेश (80.67%) का था।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियमावली 2016 के नियम संख्या 15 (ल) के अनुसार नगरीय स्थानीय निकायों के लिए यह आवश्यक है कि वह अपशिष्ट प्रसंस्करण, उपचार एवं समुचित निस्तारण के लिए प्राधिकार प्राप्त करें। वर्ष 2020-21 तक कुल 540 नगरीय स्थानीय निकायों द्वारा इस संबंध में आवेदन किया था जिनमें से 456 नगरीय स्थानीय निकायों को इस संबंध में प्राधिकार प्राप्त हो गए थे। कुछ राज्य ऐसे भी थे जिनके एक भी नगरीय स्थानीय निकाय द्वारा आवेदन प्रेषित ही नहीं किया गया था। इनमें हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, झारखंड, मिजोरम, तेलंगाना, पश्चिम बंगाल, अंडमान निकोबार, दादरा नागर हवेली एवं लक्षद्वीप आदि राज्यों एवं केंद्र

शासित प्रदेशों का नाम शामिल है। जहाँ तक अपशिष्ट पदार्थों के संग्रहण का संबंध है, मात्र 14 राज्यों द्वारा ही शत-प्रतिशत अपशिष्ट संग्रहण का कार्य किया जा रहा है और केवल एक राज्य एवं एक संघ शासित प्रदेश (छत्तीसगढ़ एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूह) ही ऐसे हैं जिनके यहाँ अपशिष्ट पृथक्करण कर संग्रहण किया जा रहा है, जबकि सात राज्यों (छतीसगढ़, अंडमान निकोबार द्वीप समूह, सिक्किम, महाराष्ट, चंडीगढ़, झारखंड, गोवा) में पृथक्कृत अपशिष्ट पदार्थ को बंद गाड़ियों में रखकर प्रसंस्करण एवं निस्तारण क्षेत्र तक स्थानांतरित किया जाता है।

अपशिष्ट का वैज्ञानिक निस्तारण–प्रसंस्करण के पश्चात भी कुछ ठोस अपशिष्ट शेष रह जाता है। ऐसे अपशिष्ट के अंतिम निस्तारण के लिए भी समुचित वैज्ञानिक प्रबंध किया जाना आवश्यक होता है। ठोस अपशिष्ट पदार्थों का एक बहुत बड़ा हिस्सा लैंडफिल (Landfill) में चला जाता है और जहाँ से हमारे पर्यावरण के लिए हानिकारक बहुत सी गैसों का रिसाव होता है। इसमें से मुख्य हैं–कार्बनडाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन एवं सल्फर के ऑक्साइड इत्यादि। इसके अतिरिक्त लैंडफिल से होने वाले रिसाव जिसे अपशिष्ट तरल (लिचेट) कहा जाता है, के कारण जल स्रोतों की गुणवत्ता में गिरावट आती है। जैसे-जैसे लिचेट लैंडफिल के निचले भाग में प्रवेश करता है, अपशिष्ट तरल का सांद्रण बढ़ता चला जाता है और इसमें मुख्यत: अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थ शामिल होते हैं। इस अपशिष्ट तरल में जल को प्रदूषित करने की अत्यधिक क्षमता होती है। एक बार जब यह तरल जलाशयों और जलस्रोतों में पहुँच जाता है, तो यह जलस्रोतों में अत्यधिक दुष्प्रभाव पैदा करता है। अपशिष्ट तरल में विषाक्त अवयवों जैसे लेड, आर्सेनिक, मरकरी, इत्यादि विषैले रसायनों के होने पर संपूर्ण खाद्य-शृंखला में इनका जैव-आवर्धन होता चला जाता है जिसके व्यापक दुष्परिणाम होते हैं।

वैज्ञानिक मानदंडों से लैंडफिल साइट्स को चिह्नीकृत कर प्रसंस्करित अपशिष्ट का वैज्ञानिक निस्तारण भी ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। भारत में अभी तक 1924 लैंडफिल साइट्स का चिह्नीकरण किया गया है जिनमें से केवल 341 साइट्स ही सक्रिय अवस्था में कार्य कर रही हैं। सबसे अधिक लैंडफिल साइट्स महाराष्ट्र (382), मध्य प्रदेश (341) एवं कर्नाटक (221) में हैं। भारत में अभी भी अपशिष्ट पदार्थों के बहुत बड़े हिस्से को अवैज्ञानिक तरीके से डंपिंग (dumping) साइट्स में निस्तारित किया जाता है। हमारे देश में अभी भी ऐसे डंपिंग साइट्स की संख्या बहुतायत में उपलब्ध है। यह डंपिंग क्षेत्र बहुत ही दयनीय स्थिति में हैं। इसके आसपास मीलों दूर तक अवस्थित घरों के लिए अत्यधिक हानिकारक स्थिति पैदा करते हैं। इन क्षेत्रों में जहरीले पदार्थों के रिसाव के कारण भूमिगत जल भी प्रभावित हो जाता है। इन क्षेत्रों में रह रहे हमारे देश के नागरिकों द्वारा भूमिगत जल का उपयोग किए जाने से उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की वर्ष 2020-21 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में अभी भी कुल 3184 डंपिंग साइट्स हैं। सबसे अधिक डंपिंग साइट्स वाले राज्यों में उत्तर प्रदेश का सर्वोपरि स्थान है जहाँ पर कुल 609 डंपिंग साइट्स हैं तत्पश्चात क्रमश: मध्य प्रदेश (326) एवं महाराष्ट्र (237) का स्थान आता है। लैंडफिल एवं डंपिंग साइट्स के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि केवल सिक्किम राज्य में ही लैंडफिल साइट्स की संख्या डंपिंग साइट की संख्या से अधिक थी तथा शेष राज्यों में डंपिंग साइट्स बहुतायत में हैं।

अपशिष्ट प्रसंस्करण के क्षेत्र में ऐसे 16 राज्य थे जोकि 50% से अधिक ठोस अपशिष्ट का प्रसंस्करण कर रहे हैं। इसमें शामिल राज्यों के नाम हैं–अंडमान निकोबार द्वीप समूह, छत्तीसगढ़,

दादरा नगर हवेली, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मिजोरम, तमिलनाडु, तेलंगाना, त्रिपुरा, एवं उत्तराखंड थे जबकि शेष राज्यों में प्रसंस्करण का प्रतिशत 50% से कम रहा। केंदीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के द्वारा विभिन्न ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर किए गए कार्यों के आधार पर शामिल राज्यों एवं केंद्र शासित राज्यों की रैंकिग की गई थी। सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाला राज्य मध्य प्रदेश था जिसने 76.75 अंक प्राप्त कर प्रथम स्थान हासिल किया। तत्पश्चात गोवा, चंडीगढ़, छत्तीसगढ़, अंडमान निकोबार एवं महाराष्ट्र का स्थान आता है। अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, पश्चिम बंगाल आदि ऐसे राज्य हैं जिनके अंक संतोषजनक भी नहीं कहे जा सकते।

सुझाव–

1. ठोस अपशिष्ट पदार्थों के समुचित प्रबंधन हेतु प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने ढाँचागत विकास की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया है। अत: प्रत्येक राज्य एवं नगर पालिका क्षेत्र में समुचित ढाँचागत सुविधा उपलब्ध होने से अपशिष्ट पदार्थों का समुचित निस्तारण संभव हो सकेगा।

2. पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थलों पर अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। प्राय: यह देखा गया है कि पर्यटक विभिन्न पर्यटन स्थलों पर भ्रमण के दौरान तैयार भोज्य सामग्री का उपयोग करते है और ऐसी भोजन सामग्री को पैक करने के लिए प्राय: सिंगल यूस (एकल प्रयोग) प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है, जिसे वह पर्यटन स्थलों पर ही निस्तारित कर देते हैं। इस कारण पर्यटन स्थलों पर अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में निरंतर बढ़ोतरी होती चली जाती है। इन अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी उस राज्य को वहन करनी पड़ती है। इस संबंध में पर्यटकों के लिए समुचित दिशा-निर्देश प्रसारित एवं प्रचारित किए जाने से इसमें काफी हद तक कमी लाई जा सकती है।

3. प्राकृतिक क्षेत्रों को पहले के जैसा नैसर्गिक बनाने एवं बनाए रखने के लिए पहाड़ी क्षेत्रों और राज्यों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि राष्ट्र के जल संसाधनों एवं नागरिकों के लिए बेहतर विकल्प उपलब्ध हो सके। प्राय: देखा गया है की डंपिंग और लैंडफिल साइट्स नदियों के किनारे बना दिए जाते हैं और डंपिंग साइट्स से निकालने वाला विषाक्त रिसाव नदी, नालों और तालाबों में मिलकर उन्हें प्रदूषित करता है और इस प्रकार संबंधित पारिस्थितिक तंत्रों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। यह विषाक्त रिसाव नदियों के द्वारा सुदूर प्रदेशों तक चला जाता है। अत: नदियों के आसपास स्थित डंपिंग साइट्स को शीघ्रातिशीघ्र स्वच्छ बनाकर उस पर पौधारोपण या पार्क स्थलों का विकास किया जाना चाहिए।

4. ठोस अपशिष्ट की समस्या से निपटने हेतु प्रत्येक राज्य का योगदान आवश्यक है। हमारे देश में समुद्रतल सें ऊँचाई में बसे राज्यों मुख्य रूप से हिमालयी राज्यों में ठोस अपशिष्ट का समुचित प्रबंधन तुलनात्मक रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इन राज्यों की भौगोलिक स्थिति के कारण निम्न ऊँचाई वाले शहरों एवं राज्यों के जल संसाधन की माँग की आपूर्ति इन्हीं राज्यों से निकली हुई नदियों से होती है। इसरो (2016) की रिपोर्ट के अनुसार उच्च हिमालय से निकलने वाली सभी नदियों में ग्लेशियर के पिघलने से 30-50 प्रतिशत वार्षिक प्रवाह होता है। हिमपोषित पर्वतीय जलधाराएँ उत्तर भारतीय नदियों के जल का प्रमुख स्रोत हैं।[13] जल संसाधनों के महत्त्वपूर्ण उद्‌गम स्थल इन राज्यों में अवस्थित होने के कारण यहाँ पर ठोस अपशिष्ट का बेहतर तरीके से प्रबंधन आवश्यक है। अन्यथा की स्थिति में तुलनात्मक रूप से पहाड़ों के निर्मल जल के साथ-साथ ठोस अपशिष्ट एवं तरल

अपशिष्ट पदार्थ जल के साथ नीचे अवस्थित राज्यों या शहरों में खतरे का कारण बन सकते हैं।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिमालयी राज्यों में अभी भी ठोस प्रबंधन की स्थिति अन्य राज्यों की तुलना में संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। इस ओर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम (2016) के लागू होने के पश्चात राज्य स्तर पर इस दिशा में काफी प्रयास हुए हैं लेकिन अभी भी बहुत कार्य होने शेष हैं मुख्य रूप से पर्वतीय राज्यों में और अधिक कार्य किए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. Dahiya, R., (2015) Projections for the Population Growth and its Impact on Solid Waste Generation of a Medium Sized North Indian City, International Journal of Technical Research and Applications, Vol.- 3, Issue 6, 57-61.
2. Joshi, Rajkumar and Ahmed, Sirajuddin., (2016) Status and challenges of municipal solid waste management in India: A review Cogent Environmental Science, 2: 1139434. Available at: https://home.iitk.ac.in/~anubha/H13.pdf
3. Nandan, Abhishek, Yadav, Bikarama Prasad, Baks, Soumyadeep and Bose, Debajyoti, (2017) 'Recent Scenario of Solid Waste Management in India'. World Scientific News 66, 56-74
4. Census 2011, Registrar general of India
5. Davis K., (1965) The urbanization of the human population, Scientific American, 213 (3), 41-53
6. Sahu Sonam, Nair, Sindhu J. and Sharma, Pankaj Kumar (2014) 'Review on Solid Waste Management Practice in India: A State of Art', International Journal of Innovative Research & Development, Vol.- 3 Issue 3, 261-264.
7. Planning Commission Report (2014) Reports of the task force on waste to energy, (Vol-I) (in the context of Integrated MSW management).
8. https://stats.oecd.org/glossary/detail.asp?ID=2508
9. GOI 2016. The Solid Waste Management Rules, 2016, Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Govt. of India. P.41
10. CPCB 2017. Annual Report on Solid Waste Management (2016-17), CPCB, Delhi. P.50
    CPCB 2018. Annual Report on Solid Waste Management (2017-18), CPCB, Delhi. P.54
    CPCB 2019. Annual Report on Solid Waste Management (2018-19), CPCB, Delhi. P.63
    CPCB 2020. Annual Report on Solid Waste Management (2019-20), CPCB, Delhi. P.143
    CPCB 2021. Annual Report on Solid Waste Management (2020-21), CPCB, Delhi. P.159
11. Katiyar Manoj, (2016) Solid Waste Management, Journal of Construction and Building Materials Engineering Volume 3 Issue 2, DOI:10.5958/2395-3381.2016.00015.0
12. The sustainable development Goals Reports 2021; United Nationas, P.38-48
    Available at: http://unstats.un.org./sdgs/report/2021/The-Sustainable-Development-Goals-report-2021.pdf
13. ISRO report (2016). Indian space research organisation (ISRO). Monitoring snow and glaciers of himalayan region Available at: https://vedas.sac.gov.in/vedas/downloads/SAC_Snow_Glacier_Book.pdf

कोइलवर स्थित बालू उत्खनन में अप्रवासित मजदूरों की सामाजिक आर्थिक स्थिति: एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ॰ सद्दाम हुसैन, सहा॰ प्रोफेसर, भूगोल विभाग
सहजानंद ब्रह्मर्षि कॉलेज, आरा, भोजपुर
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

अप्रवासन का सामान्य अर्थ है एक भौगोलिक क्षेत्र में अधिवासित लोगों का नए क्षेत्र में जीवनयापन अथवा गुणवत्तापूर्ण जीवन की तलाश में गमनागमन। किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक समूह का स्थाई अथवा अस्थाई रूप में आवास के किसी निश्चित दूरी में परिवर्तन को सामान्यत: प्रवसन के रूप में परिभाषित किया जाता है। प्रवास के लिए सामान्यत: दो कारक उत्तरदायी माने जाते हैं–प्रतिकर्ष कारक, अपकर्ष कारक।

1. **प्रतिकर्ष कारक**–वह कारक जो किसी मूल स्थान पर अधिवासित व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को अपने मूल स्थान को छोड़ने एवं किसी अन्य स्थान पर प्रवास करने के लिए बाध्य करते है । जैसे आर्थिक सामाजिक पिछड़ापन, भौगोलिक दुर्गमता आदि।

2. **अपकर्ष कारक**–जो प्रवासियों को किसी क्षेत्र विशेष की ओर आकर्षित करते हैं। यथा–रोजगार के अवसर, बेहतर आवासन व्यवस्था, आधारभूत संरचनाओं का बेहतर होना, उच्च स्तरीय सुविधाओं की उपलब्धता, राजनीतिक स्थिरता।

बालू खनन प्राथमिक आर्थिक गतिविधि में शामिल श्रमगहन कार्य है जिसमें सामान्यत: अकुशल श्रमिकों की संलग्नता होती है। यह अकुशल श्रमिक सामाजिक आर्थिक तौर पर सामान्यत: पिछड़े वर्ग के होते हैं। इन श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी अत्यंत कम होती है जिसके कारण इनका जीवन स्तर निम्न होता है। यह सामाजिक आर्थिक एवं पर्यावरणीय तौर पर सर्वाधिक सुभेद्य होते हैं। इन श्रमिकों को प्राय: सुरक्षा उपकरणों के बिना ही काम करना पड़ता है जिसके कारण घातक दुर्घटना एवं डूबने से मृत्यु तक हो जाती है। साथ-ही-साथ कामगारों को धूल-संबंधी फेफड़े के संक्रमण, स्थाई शोरगुल के कारण बहरेपन का जोखिम और आँख-संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। बालू खनन में संलग्न श्रमिकों के लिए मशीनीकरण एक अन्य गंभीर चुनौती है जो उनके समक्ष रोजगार का संकट उत्पन्न कर रहा है। बालू खनन में संलग्न बालू माफियाओं द्वारा प्राय: नियम को दरकिनार करते हुए बड़ी-बड़ी मशीनों एवं यांत्रिक उपकरणों का उपयोग करके तय सीमा से अधिक गहराई तक बालू खनन का कार्य किया जाता है। बड़ी-बड़ी मशीनों एवं यांत्रिक उपकरणों द्वारा कम समय में सस्ते दर पर वृहद पैमाने पर खनन का कार्य संभव है। यही कारण है कि बालू खनन में संलग्न श्रमिकों को इस यांत्रिक मशीनों ने प्रतिस्थापित कर श्रमिकों के अस्तित्व के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया है। सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े इन श्रमिकों का शोषण बालू माफियाओं द्वारा किया जाता रहा है। अपनी कमजोर स्थिति के कारण इनकी लॉबिंग क्षमता नगण्य होती है। परिणामस्वरूप ये हर प्रकार के शोषण से अभिशप्त होते हैं। ये अपने

शोषण के विरुद्ध आवाज नहीं उठा पाते हैं। कई बार इन श्रमिकों द्वारा शोषण का विरोध करने पर हिंसा, धमकी एवं अपनी जान तक गँवानी पड़ जाती है।

विधि तंत्र—प्रस्तुत शोधपत्र मुख्यत: प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। ये आँकड़े अनुसूची, प्रश्नावली, इंटरव्यू, सर्वेक्षण आदि से एकत्रित किए जाएँगे। इसके अलावा तथ्यों के विश्लेषण एवं निष्कर्ष हेतु मानचित्र, आलेख, भौगोलिक सूचना प्रणाली, सुदूर संवेदन तकनीक को व्यवहार में लाया जाएगा। सरकार की नीतियाँ, बालू खनन में संलग्न श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए सरकारी योजनाओं एवं उसके आँकड़े भी यथा स्थान प्रयुक्त होंगे।

उद्देश्य—बालू खनन में संलग्न श्रमिक प्राय: निकटवर्ती क्षेत्रों से अप्रवासित होते हैं। यह सामान्यत: अकुशल होते हैं, जिन्हें न्यूनतम पारिश्रमिकी दी जाती है। सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े होने के कारण यह प्राय: शोषण का शिकार होते हैं। कार्य की खराब दशा सुरक्षा उपकरणों की अनुपलब्धता, तय समय सीमा से अधिक काम लेना, वायु में निलंबित बालू के कणों से स्वास्थ्य-संबंधी समस्या, सिलिकोसिस जैसी समस्याएँ श्रमिकों के लिए घातक होती है। शोधपत्र का मुख्य उद्देश कोइलवर में बालू खनन में संलग्न श्रमिकों की समस्याओं का पता लगाना एवं श्रमिकों में जागरूकता लाना है। कोइलवर में बालू खनन में संलग्न श्रमिकों की समस्याओं, शोषण एवं दयनीय परिस्थितियों के बारे में स्थानीय प्रशासन, जनप्रतिनिधियों एवं श्रम संगठनों को अवगत कराना है। साथ ही श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार लाने के उपायों का पता लगाना है।

अध्ययन क्षेत्र—कोइलवर भोजपुर जिला का एक प्रखंड मुख्यालय है। पटना से 32 किलोमीटर पश्चिम में अवस्थित पूर्व मध्य रेलवे का स्टेशन भी है। सोन नदी के तट पर अवस्थित कोइलवर का भौगोलिक विस्तार 25.4' उत्तरी अक्षांश एवं 84.25' पूर्वी देशांतर के मध्य है। यह कोसी संभाग का हिस्सा है। यहाँ ऊष्णकटिबंधीय आर्द जलवायु पाई जाती है। पूरे प्रदेश में ऊष्णकटिबंधीय पर्णपाती वनस्पति पाई जाती है। नदीय बालू का खनन, अधिवासित क्षेत्र एवं पेड़ों के बगीचे इस क्षेत्र के मुख्य लैंडमार्क हैं। अध्ययन क्षेत्र की समुद्र तल से ऊँचाई 232 मीटर है। इस क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर है।

व्याख्या—बालू आधारभूत संरचना के निर्माण में उपर्युक्त मुख्य सामग्री है। बालू की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बिहार में सोन बालू सर्वाधिक लोकप्रिय है क्योंकि यह सीमेंट के साथ मिलकर मजबूत कंक्रीट का निर्माण करती है। यही कारण है कि सोन नदी बेसिन में बालू खनन का कार्य मुख्य रूप से हो रहा है। कोईलवर सोन नदी बेसिन में बालू खनन के मुख्य केंद्रों में से एक है। यहाँ आसपास के क्षेत्रों से प्राय: अकुशल श्रमिक खनन कार्यों में संलग्न है। इन श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक दशा अत्यंत दयनीय है। यह श्रमिक शारीरिक श्रम के द्वारा बालू खनन का कार्य करते हैं। शारीरिक श्रम द्वारा खनन में नदी तल से हाथ से बालू का खनन एवं ट्रकों द्वारा निर्माण स्थल पर पहुँचाया जाता है। इस काम में देसी नाव एवं हस्त उपकरणों का प्रयोग, नौकायन, पानी की सतह के नीचे गोता लगाना, खनन एवं हाथ के द्वारा ही बालू सामग्री का प्रबंधन कार्य से संबंधित जोखिम को कई गुना बढ़ा देता है। श्रमिकों नदी जल में एवं बालू में काम करना पड़ता है जहाँ हमेशा घातक एवं खतरनाक पदार्थों के प्रति श्रमिक उदभेदित रहते हैं। इन सबके अलावा व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों एवं सामाजिक सुरक्षा उपायों की अनुपलब्धता कार्य संबंधी जोखिम को बढ़ा देता है। बालू की उच्च माँग, मशीनों के उपयोग में कानूनी बाधा एवं कार्य की खराब दशा बालू खनन में श्रमिकों के कार्य-संबंधी विकारों एवं समस्याओं को बढ़ा देता है।

कोइलवर बालू खनन क्षेत्र में संलग्न श्रमिकों की मुख्य चुनौतियाँ एवं समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

1. बालू के संग्रहण एवं लोडिंग के अंतर्गत नावों को नदी के मध्य तक खेना, गोता लगाना, नदी तल पर स्थित बालू को खोदकर निकालना एवं नाव पर लादना शामिल है। यह एक खतरनाक काम है जिसमें श्रमिकों को जान का खतरा बना रहता है।

2. बालू की माँग का उच्च स्तर सीमित समयावधि एवं कार्य के पृथक्करण का न होने से कामगारों को लगातार कार्य करना पड़ता है। अत: कामगारों को आराम करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है।

3. श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी तय सीमा से भी कम दी जाती है। जिसके कारण उनका जीवनयापन अत्यंत दुष्कर होता है।

4. यह श्रमिक समाज के अत्यंत पिछड़ी जाति एवं वर्ग से आते हैं। सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ापन इनके लॉबिंग क्षमता को कमजोर कर देता है। यही कारण है कि शोषण के बावजूद यह लोग अपना विरोध दर्ज नहीं कर पाते हैं।

5. बालू खनन सरकारी टेंडरों के अतिरिक्त अवैध रूप से भी की जाती है। बालू माफियाओं का अवैध खनन एवं वर्चस्व की लड़ाई में व्यापक हिंसा होती है। यह सामाजिक तनाव को बढ़ा देते हैं। कई बार इस हिंसा का शिकार खनन कार्य में संलग्न श्रमिक भी होते हैं।

6. बालू खनन में संलग्न श्रमिकों में स्वास्थ्य-संबंधी समस्या पाई जाती है। इन समस्याओं में फाइब्रोमायलजिया, सिलकोलीसिस, जीवाणविक मध्यकर्णशोथ, धूल-संबंधी फेफड़ों के संक्रमण, स्थायी शोरगुल के कारण बहरेपन का जोखिम, आँख में जलन एवं अन्य समस्याएँ प्रमुख हैं।

7. खनन के दौरान इन श्रमिकों को प्राय: घातक दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता है। यह श्रमिक सुरक्षा उपकरणों के बिना ही खनन में संलग्न होते हैं। सुरक्षा उपकरणों का सर्वथा अभाव इन श्रमिकों को गंभीर नुकसान पहुँचाता है जिसमें स्वास्थ-संबंधी समस्याओं के साथ-साथ स्थाई या अस्थाई विकलांगता एवं मृत्यु तक शामिल है।

8. इन श्रमिकों में शिक्षा एवं जागरूकता का सर्वथा अभाव होता है। यही कारण है कि सरकार द्वारा संचालित श्रमिकों के कल्याण हेतु योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

बालू खनन में संलग्न श्रमिकों के समस्याओं के समाधान हेतु उपाय निम्नवत् हैं–

1. श्रमिक द्वारा बालू खनन के समय नदी के मध्य जाकर गोता लगाकर नदी तल से बालू खोदना पड़ता है जो कि अत्यंत जोखिम भरा कार्य है। इस जोखिम से श्रमिकों को बचाने के लिए लाइफ जैकेट जैसी सुरक्षा उपकरणों की उपलब्धता आवश्यक है। ऐसे उपकरणों का विकास करना चाहिए जिससे कि श्रमिकों को गोता लगाए बिना ही नदी तल से बालू प्राप्त हो जाए।

2. कोइलवर समेत संपूर्ण भारत में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के आदेशानुसार मानसून की अवधि में बालू खनन प्रतिबंधित होता है। अत: सीमित समय में बालू की विशाल माँग को पूरा करना एक दुष्कर काम है। इस माँग को पूरा करने के लिए खनन में संलग्न श्रमिक लगातार परिश्रम करते हैं। जिससे उन्हें पर्याप्त आराम करने का समय नहीं मिल पाता है। अत: श्रमिकों को काम की अवधि में आराम करने का पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

3. श्रमिकों को तय की गई न्यूनतम पारिश्रमिक की सुनिश्चित करनी चाहिए। यदि उन्हें बेहतर पारिश्रमिकी मिलती है तो उनका जीवन स्तर सुधरेगा और वह गरीबी के दुष्चक्र से निकल

पाएँगे।

4. आर्थिक एवं सामाजिक रूप से कमजोर होने के कारण यह खनन मालिकों के शोषण का विरोध नहीं कर पाते हैं। अत: आवश्यकता है मजबूत श्रमिक संगठनों की जो इन श्रमिकों के हितों को सुनिश्चित कर सके।

5. अवैध बालू खनन ने कोइलवर क्षेत्र में व्यापक हिंसा को जन्म दिया है। प्राय: इस हिंसा का शिकार खनन में संलग्न निर्धन श्रमिक भी होते हैं। अत: कुशल प्रशासन के द्वारा अवैध खनन एवं हिंसा पर रोक लगानी चाहिए।

6. खनन कार्य में संलग्न श्रमिकों को मास्क हेलमेट एवं अन्य सुरक्षा उपकरणों विशेषकर व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए ताकि उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को रोका जा सके।

7. इन श्रमिकों में शिक्षा एवं जागरूकता का सर्वथा अभाव होने से श्रमिकों के कल्याण हेतु सरकार द्वारा संचालित योजनाओं के लाभों से वंचित रह जाते हैं। अत: इन्हें इन योजनाओं के प्रति जागरूक करना चाहिए।

8. इन श्रमिकों के कल्याण हेतु सरकार द्वारा संचालित पीएम स्वनिधि योजना, यूनिवर्सल हेल्थ केयर, मनरेगा, प्रधानमंत्री श्रम योगी मानधन योजना श्रम सुधार, प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना, पीएम स्वनिधि: स्ट्रीट वेंडर्स के लिए योजना, आत्मनिर्भर भारत अभियान, दीनदयाल अंत्योदय योजना, राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन, पीएम गरीब कल्याण योजना, वन नेशन बन राशन कार्ड, आत्मनिर्भर भारत रोजगार योजना, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, भारत के अनौपचारिक श्रमिक वर्ग को विश्व बैंक की सहायता आदि योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन होने से इन श्रमिकों का कल्याण सुनिश्चित होगा और वे भी खुशहाल जिंदगी जी सकेंगे।

निष्कर्ष–कोइलवर स्थित बालू उत्खनन केंद्रों में संलग्न मजदूरों के समक्ष विकराल समस्याएँ हैं। उन समस्याओं का समाधान बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था एवं सरकार द्वारा खनन में संलग्न श्रमिकों के लिए विशेष योजनाओं के निर्माण एवं उनके बेहतर क्रियान्वयन से ही संभव है। चूँकि यह श्रमिक सामाजिक-आर्थिक रूप से अत्यंत पिछड़े होने के कारण शोषण समेत अन्य जोखिमों यथा–पर्यावरणीय आपदा, स्वास्थ्य आदि के प्रति सर्वाधिक सुभेद्य होते हैं। अत: इनके लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का सुदृढ़ीकरण एवं क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। इन श्रमिकों के स्वास्थ्य की नियमित जाँच होनी चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उचित एवं निशुल्क इलाज, दवा की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए। इन सबके अतिरिक्त बालू खनन में श्रमिकों के लिए वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था एवं कौशल विकास किए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. माजिद हुसैन, मानव भूगोल, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2012
2. डी० गोह, लेश्प्लिटेशन आर्टिसानेल डीश्लोर एन कोटे डीश्वोर : ला पर्सिस्टेंस डीश्यून एक्टिविटिश् अवैध। यूरोपीय वैज्ञानिक पत्रिका 12(3), 1857.788, 2016
3. मेलिसा मार्शके, जीन रूसो, फ्रेंकोइस, एशिया में रेत पारिस्थितिकी, आजीविका और शासन : एक व्यवस्थित स्कोपिंग समीक्षा, एल्सेवियर, संसाधन नीति, वॉल्यूम 77, अगस्त 2022, 10267
4. अंशुल रेगे, नॉट बाइटिंग द डस्ट : भारत के रेत माफिया की जाँच के लिए संगठित अपराध के त्रिपक्षीय मॉडल का उपयोग, तुलनात्मक और लागू आपराधिक न्याय के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल

5. पद्मलाल डी॰ माया के॰, सैंड माइनिंग एनवायरनमेंट इम्पैक्ट्स एंड सेलेक्टेड केस स्टडीज, लंदनय स्प्रिंगर, 2014
6. के॰ पार्क, पार्क टेक्स्टबुक प्रिवेंटिव एंड सोशल मेडिसिन, 23वाँ संस्करण, जबलपुर : भनोट, 2015
7. जी॰ तिवारी, पी॰के॰ गंगोपाध्याय, निर्माण उद्योग में असंगठित श्रमिकों के व्यावसायिक स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा पर एक समीक्षा, इंडिया जे ऑक्युप एनवायरन मेड (2011) पीएमसी मुक्त लेख
8. एस॰ महमूद, भारत में असंगठित क्षेत्र के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ : एक महत्त्वपूर्ण विश्लेषण, मैनेज लेबर स्टड, 2010, 35(1):117.28
9. https://state.bihar.gov.in
10. https://labour.gov.in
11. https://bhojpur.nic.in
12. https://pib.gov.in

जीवन-शैली की समस्या में आयुर्वेद और योग का महत्त्व

मोनिका आनंद, पीएचडी स्कॉलर
गुरुकुल काँगड़ी डीम्ड यूनिवर्सिटी, हरिद्वार
डॉ॰ राकेश गिरी, शोध निर्देशक
(पूर्व प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय)
डॉ॰ उधम सिंह, शोध निर्देशक एवं सहा॰ प्रोफेसर
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जीवन-शैली और इसके मूल सिद्धांतों के बारे में गलत जानकारी के कारण पूरी दुनिया जीवन-शैली से जुड़ी समस्या का सामना कर रही है। कोविड-19 महामारी में जीवन-शैली से संबंधित समस्याओं में तेजी से वृद्धि दर्ज की गई। यह दिखाता है कि लोग अपना जीवन जटिलताओं के साथ जीते हैं, स्वतंत्रता के साथ नहीं। गलत जीवन-शैली बीमारियों का कारण बनती है और बीमारी स्वास्थ्य, कल्याण और जीवन का नाश करने वाली होती है। इस आलेख का मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद और योग के बुनियादी सिद्धांतों की मदद से स्वस्थ रहने और अपनी जीवन-शैली का प्रबंधन करने के लिए जीवन का एक समग्र तरीका प्रस्तुत करना है जो प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आयुर्वेद मूल रूप से प्रकृति में एक एहतियाती दवा है, दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृता और विरुद्धाहार के माध्यम से जीवन-शैली का प्रबंधन करता है। योग के माध्यम से, हम योगिक जीवन-शैली के बारे में चर्चा करते हैं—आहार, विहार, विचार और आचार। ये जीवन जीने के बुनियादी नियम हैं जो हमारे शिलालेखों में वर्णित हैं लेकिन कुछ कारणों और बुरी आदतों के कारण ये जीवन का हिस्सा नहीं हैं।

परिचय—विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, गैर-संचारी रोग हर साल 41 मिलियन लोगों को मारते हैं, जो वैश्विक स्तर पर होने वाली सभी मौतों के 74% के बराबर है। डब्ल्यूएचओ ने उल्लेख किया कि दुनिया में सबसे अधिक हत्याओं की जीवन-शैली विकार हृदयरोग हैं, जिनमें सालाना 17.9 मिलियन लोगों की मौत होती है, इसके बाद कैंसर 9.3 मिलियन, पुरानी साँस की बीमारी 4.1 बिलियन, मधुमेह 2.0 मिलियन गुर्दे की बीमारी सहित होती है।

जीवन-शैली से जुड़ी बीमारियाँ, उन बीमारियों की विशेषता होती हैं जिनकी घटना मुख्य रूप से लोगों की दैनिक आदतों पर आधारित होती हैं और लोगों के अपने पर्यावरण के साथ अनुचित संबंध का परिणाम होती हैं।

आज की दुनिया में, 'जीवन-शैली' प्रकृति या भोजन के प्रभावों से बिना किसी प्रतिबंध के जीने का एक तरीका है, जो हम दैनिक आधार पर करते हैं। मनुष्य यह भूल जाता है कि हम जिस भी संसाधन का उपयोग करते हैं, वह प्रकृति का हिस्सा है। प्रकृति के अपने दिव्य मौसम हैं। कुछ मौसम में हमारे शरीर पर इसका प्रभाव आसानी से पड़ जाता है तो कुछ लोगों का वजन कम होने लगता है। जीवन-शैली की बीमारियाँ अन्य बीमारियों से अलग हैं क्योंकि वे संभावित रूप से रोकी जा सकती हैं और आहार, जीवन-शैली और पर्यावरण में संतुलन के साथ कम की जा सकती हैं।

 ISSN 0975-735X

लेकिन आधुनिक दुनिया में हम सिर्फ आदर्श दैनिक शासन को खराब या रोग शासन में स्थानांतरित कर रहे हैं।

एनएचएफएस-5 के अनुसार ज्यादातर राज्यों में मोटापे के मामले तेजी से बढ़े हैं। राष्ट्रीय स्तर पर यह महिलाओं में 21% से 24% और पुरुषों में 19% से 23% तक बढ़ जाता है। शारीरिक निष्क्रियता, अनियमित खान-पान की आदत, अस्वास्थ्यकर आहार, शराब और तंबाकू जैसे हानिकारक उत्पाद का सेवन। शराब का सेवन भी बढ़ गया है जिससे जीवन-शैली से जुड़ी बीमारियाँ हुई हैं। यह सभी मानव-सभ्यता के लिए अपने स्वास्थ्य की ओर देखना शुरू करने का हॉर्न है। हालाँकि, दुनिया स्वच्छता टीकाकरण और एंटीबायोटिक पर निर्भर है।

अपर्याप्त शारीरिक गतिविधि के कारण, खराब भोजन और बुरी आदतों जैसे गलत शरीर मुद्रा के कारण जैविक घड़ी में गड़बड़ी होती है, यह शरीर के अन्य भागों को प्रभावित करता है और शरीर के कार्य को बाधित करता है। (मुकेश शर्मा और अन्य, 2009)

आयुर्वेद और योग में जीवन-शैली की अवधारणा

आयुर्वेद कुछ बीमारियों के महत्त्व और प्रबंधन को खूबसूरती से विस्तृत करता है। दिनचर्या, ऋतुचर्या, सदवृता के मार्ग में। जीवन-शैली का संबंध करो और न करो से है, जीने के सही तरीके के बारे में जानना बहुत आवश्यक है, वैज्ञानिक अनुसंधान भी जीवन-शैली की बीमारियों पर जोर देते हैं और बात करते हैं। यह दवा के रूप में प्रभावी हो सकता है लेकिन जोखिम और साइड इफेक्ट के बिना सुरक्षित माना जाता है। आयुर्वेद में 'बीज और मिट्टी चिकित्सा' के अनुसार (ब्रह्मानंद त्रिपाठी, 2006) रोग की अभिव्यक्ति तब होती है जब बीमारी के लिए अनुकूल स्थिति होती है जो गलत आचरणों जैसे दिन में सोना, रात में जागना, अनियमित भोजन की आदतों से निर्मित होती है। योग हर किसी को अचंभित करता है और इसके बारे में अधिक जानने पर जोर देता है। यदि आप योग करना शुरू करते हैं तो आपको स्वस्थ मन, स्वस्थ शरीर, सकारात्मक विचार, सकारात्मक ऊर्जा, आत्मजागरूकता आदि जैसे कई आयामी लाभ मिलते हैं।

दिनचर्या

ब्रह्ममुहूर्त–ब्रह्ममुहूर्त का समय क्षेत्र दर क्षेत्र पर निर्भर करता है सूर्योदय का समय पूरे विश्व में एक समान नहीं है। उस क्षेत्र में सूर्योदय से लगभग 96 मिनट पहले। (आदर्श जीवन-शैली)

आचमन–जहरीले कचरे को खत्म करने के लिए सुबह पानी पिएँ।

दंतध्वन और जिह्वा निर्लेखना–दाँतों की सफाई के लिए खदिरा, करंज, अपामार्ग आदि की टहनियों का उपयोग करें और पौधे की टहनी के लंबे लचीले डंडे से जीभ साफ करें। यह भूख और पाचन को उत्तेजित करता है।

गंडुशा और कवला–यह मौखिक स्वच्छता बनाए रखने और जबड़े को टोन-अप करने का सबसे अच्छा तरीका है, चेहरे की मांसपेशियाँ दंत गुहा या मुँह की दुर्गंध से बचाती हैं।

अंजना–आँखों की बीमारी को रोकने और दृष्टि को बढ़ावा देने के लिए ताजे पानी से आँख साफ करें।

अभ्यंग–दैनिक तेल मालिश परिधीय परिसंचरण को बढ़ावा देती है और यह तंत्रिका उत्तेजना को बढ़ाती है। बालों, त्वचा को पोषण, मांसपेशियों को टोन-अप (12)

व्यायाम–यह कार्यक्षमता, लचीलापन, पाचन और वसा जलाने में सुधार करता है। अपनी आधी शक्ति (अर्ध शक्ति) तक व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम उन्हें अनिवार्य रूप से करना चाहिए

जो पूरी ताकत से युक्त हों और जो तैलीय खाद्य पदार्थों का सेवन करते हों।

स्नान –स्नान से भूख, उत्साह, शक्ति बढ़ती है, आयु बढ़ती है, त्वचा की मैल दूर होती है।

ऋतुचर्या–बारह महीनों को 6 ऋतुओं में विभाजित किया गया है और इस ऋतु के लिए विस्तृत व्यवस्था निर्धारित की गई है। वसंत ऋतु में कटु, उष्ण, कषाय (गेहूँ, जौ, शहद, फल) खाने की सलाह दी जाती है, जबकि नमकीन, खट्टा और मीठा खाने से परहेज किया जाता है। गर्मियों में गर्म जलवायु के कारण पित्त की वृद्धि होती है। इसलिए ठंडे, तरल, मीठे और तैलीय आहार को निर्दिष्ट करने की सलाह दी जाती है। अत्यधिक गर्म, मसालेदार, नमकीन आहार से बचना चाहिए। चावल, दूध, चीनी, अंगूर, नारियल पानी का सेवन करने की सलाह दी जाती है। बरसात के मौसम में वात की वृद्धि होती है, इसलिए वात समका मीठे, खट्टे और नमकीन खाद्य पेय को प्राथमिकता दी जाती है, भोजन गर्म, सूखा वसायुक्त और आसानी से पचने वाला होना चाहिए। सर्दी से पहले और सर्दियों के मौसम में ठंड, लाल मिर्च के वातावरण के कारण वात दोष बढ़ जाता है। गर्म, मीठा, नमकीन और नमकीन भोजन दूध, गन्ना, चावल, तेल वसा की सलाह दी जाती है और शरद ऋतु में पित्त दोष की वृद्धि होती है।

सदवृता

* हमेशा सच बोलें और किसी भी परिस्थिति में आपा न खोएँ।
* किसी का अहित न करें।
* ऐंद्रिक सुखों के आदी न हों।
* धैर्य रखें और आत्मनियंत्रण रखें।
* दूसरों को ज्ञान बाँटें, अच्छी सलाह दें और मदद करें।
* दैनिक गतिविधियों में अनियमितता से बचें। सीधे आगे और दयालु रहो।
* अधिक खाने से बचें, बहुत अधिक यौन क्रिया, बहुत अधिक या बहुत कम नींद लेने से बचें।

योग–अच्छा स्वास्थ्य दीर्घकालिक प्रतिबद्धता है और इसके लिए चार महत्त्वपूर्ण स्तंभों पर नींव रखने की आवश्यकता है।

विहार–नियमित योगाभ्यास और भोजन एक केंद्रित और यथार्थवादी, ताजा दिमाग, एक तनावमुक्त और ऊर्जा से भरे शरीर के लिए आवश्यक हैं। स्वस्थ दिनचर्या का पालन करने के लिए सूर्योदय के समय उठने में सक्षम होने के लिए आदर्श रूप से उनके सोने का समय निर्धारित करें। आसन के दिन-प्रतिदिन के अभ्यास से मन को स्थिरता, शक्ति, शांति मिलती है और ध्यान के अभ्यास से आप अपनी अत्यधिक सोच को सीमित विचारों में बदल सकते हैं, अपने शरीर और भावनाओं के बारे में गहरी जागरूकता प्राप्त कर सकते हैं। ताकि आप उन्हें बेहतर तरीके से रेगुलेट कर सकें। यह आपकी रचनात्मकता, उत्पादकता और खुशी को बढ़ाता है। योग के प्रमुख लाभ इसके जीवन शैली घटकों (स्वस्थ आहार, योगिक व्यायाम, विश्राम और सकारात्मक दृष्टिकोण) के साथ-साथ प्राणायाम और योग विश्राम के मनोदैहिक सद्भाव प्रभावों के कारण हो सकते हैं।[11]

आहार–आहार का अर्थ है खाली पेट भरने या स्वाद के लिए अधिक से अधिक भोजन करने के बजाय संतुलित आहार खाना। भोजन का समय और मात्रा भी एक चिंता का विषय है। योग के अनुसार पेट इस प्रकार भरें; दो चौथाई ठोस भोजन के साथ, एक चौथाई द्रव के साथ, और अंतिम चौथाई भगवान शिव के लिए मुक्त रखा जाना चाहिए, जिसे शिव ऊर्जा का प्राकृतिक प्रवाह

कहा जाता है। ऊर्जा प्रवाह को रोकने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक रूप से, इसका मतलब आहार-संबंधी आदतों में भारी बदलाव है। भरपेट खाना खत्म हो गया है। यह जीवन-शैली की कई समस्याओं को जन्म देता है।

विचार–विचार सीधे मन पर प्रभाव डालते हैं। हमारे विचार हमारे दिमाग के लिए भोजन हैं। बुद्ध कहते हैं: 'अपनी सोच के आधार पर आप वह व्यक्ति बन जाते हैं जो आप हैं।' यदि आप सोचते हैं कि आप कमजोर हैं, तो आप कमजोर होंगे। यदि आप सोचते हैं कि आप स्वस्थ हैं, तो आप स्वस्थ रहेंगे। प्रबंधक ने अच्छे रवैये के साथ प्रक्रिया को सही ढंग से सोचा। अच्छा मानसिक स्वास्थ्य और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण तंदुरुस्ती के लिए आवश्यक हैं। हमारे जीवन में ध्यान का स्थान विचारों पर नियंत्रण और जीवन में प्राकृतिक दृष्टिकोण रखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आचार–आचार का अर्थ है आचरण जिसमें भावना, इच्छा, दृष्टिकोण और आदतें शामिल हैं। स्वस्थ दिमाग और फिट शरीर के लिए अच्छा व्यवहार जरूरी है। सकारात्मक भावना, सकारात्मक आदतें और इच्छा पर नियंत्रण हमें व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से मजबूत बनाने में मदद करता है। यहाँ, यम और नियम के योग सिद्धांत इच्छाओं और भावनाओं पर नियंत्रण विकसित करने और शांति और सद्भाव लाने में मदद करते हैं।

निष्कर्ष–योग और आयुर्वेद में जीवन-शैली संबंधी विकारों और बीमारियों को रोकने और प्रबंधित करने की काफी क्षमता है, और योगिक जीवन-शैली हमारे लोगों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए उपयुक्त योगदान दे सकती है। यह बहुत ही अनोखा, साक्ष्य आधारित है और इसका उद्देश्य शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक कल्याण है, जो सभी के लिए व्यावहारिक है।

संदर्भ

1. ब्रह्मानंद त्रिपाठी, (2006), चरक संहिता, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान द्वारा संपादित पुनर्मुद्रण संस्करण, वाराणसी
2. हिंदी टीका के साथ सूत्रस्थान, (अध्याय 5,6,7)
3. मुकेश शर्मा और पी०के० मजूमदार, (2009), ऑक्यूपेशनल लाइफस्टाइल डिजीज: एन इमर्जिंग इश्यू, इंडियन जे ऑक्युप एनवायरनमेंट, 13(3): 109-112
4. सायली देशमुख, महेश व्यास, (2015), आयुर्वेद क्लासिक्स में लीस्टाइल का कॉन्सेट: 30-37; 2277-4289
5. भवानी एबी, जीवनशैली विकारों की रोकथाम और प्रबंधन में योग की भूमिका, योग मीमांसा (2017); 49:42-7
6. विनया टी एम, आइडियल लाइफस्टाइल: द आयुर्वेदिक वे। आईजेआरएपी, (2012)
7. आचार्य वाई टी, (5वाँ संस्करण)। अग्निवेश की चरक संहिता। सूत्र स्थान, 2007
8. योग सूत्र, (2013), गीता प्रेस गोरखपुर
9. https://www.who.int/data/gho/data/themes/noncommunicable-diseases#:~:text=Noncommunicable%20diseases%20(NCDs)%2C%20such,economic
10. ठक्कर जे, चौधरी एस० (2011) ऋतुचर्या: लाइफस्टाइल डिसऑर्डर का जवाब। आयु :32;466-471

मो० 7905911402

sunilyogi1988@gmail.com

संगीत व योग में संबंध

डॉ० अंजना बंसल
विभागाध्यक्ष संगीत विभाग (वादन)
वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक

मानव-जीवन की आवश्यकताओं में पहला सुख निरोगी काया माना जाता है जिस प्रकार संगीत एक उपासना का सेतु माना जाता है उसी प्रकार योग जीवन का मित्र है। संगीत और योग दोनों में नाद का विशेष महत्त्व है। नाद दो प्रकार का होता है—आहत नाद, अनाहत नाद। संगीत का संबंध आहत नाद से माना जाता है और योग का संबंध अनाहत नाद से है। आहत नाद जो दो वस्तुओं की रगड़ से उत्पन्न होता है। संगीत में इसी नाद का प्रयोग किया जाता है। अनाहत नाद की उत्पति मानव के शरीर में होती है। इस प्रयोग ध्यान, भक्ति व योग के लिए किया जाता है।

एक दूसरे के पूरक—संगीत व योग सेहत के दो पहलू हैं। संगीत में रियाज के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है और योगशास्त्र हमारे शरीर को स्वस्थ रखता है। मन व मस्तिष्क की एकाग्रता योग की देन है। योग और संगीत में स्वर्णमुद्रा की श्रेष्ठता है जिसमें आनंद और स्वास्थ्य पाया जाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो दोनों शास्त्र एक-दूसरे के पूरक हैं।

उद्देश्य—संगीत को ईश्वर का दर्जा प्राप्त है, इसलिए इस विद्या में शुद्धता और शास्त्रीयता का विशेष महत्त्व है। सात शुद्ध व पाँच कोमल स्वरों के माध्यमों से मन को साधने का उपाय है संगीत। जहाँ योग मनुष्य के शरीर मन व मस्तिष्कि को साधता है, वहीं संगीत हमारी आत्मा को शुद्ध करता है। संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है। मीडिया में बने रहने के लिए कुछ संगीत प्रेमियों को छोड़ दिया जाए तो हर तरह का संगीत अपनी शुद्धता व पवित्रता लिए हुए है। स्वरों का रियाज, शुद्ध पद्धति द्वारा एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक समान है—आत्म-साक्षात्कार। योग और संगीत दोनों ही साधना हैं। संगीत सुनने या गुनगुनाने से आपकी मानसिक स्थिति बेहतर होती है जबकि योग शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य दोनों के लिए लाभकारी है।

21 जून अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस व विश्व संगीत दिवस दोनों मनाए जाते हैं दोनों मिलकर न केवल मानसिक शांति व सबलता प्रदान करते हैं बल्कि रोग प्रतिरोधक क्षमता को बेहतर बनाते हैं। योग और संगीत दोनों साधना ही संगीत सुनने या गुनगुनाने से आपकी मानसिक स्थिति बेहतर होती है जबकि योग शारीरिक व मानसिक स्वास्थय दोनों के लिए लाभकारी है। योग और संगीत एक दूसरे के पूरक हैं। संगीत और योग के मेल पर 'अनूप जलोटा' का कहना है कि कमजोर इंसान गाना नहीं गा सकता है। इसके लिए स्वस्थ शरीर व साँसों का साथ देना जरूरी है।

कैलाश खेर का कहना है कि संगीत योग ही है, जो पृथ्वी को बचाएँगे। दवाओं से शारीरिक रोग दूर होते हैं, लेकिन मानसिक रोग तो योग से ही दूर होंगे। संगीत एक मजबूत सहारा है सुख की घड़ी हो या दुख की संगीत हमारे जीवन का पूरक रहा है।

शारीरिक व मानसिक शुद्धता का स्रोत—संगीत की बात हो और उसमें भक्तिरस का जिक्र न हो, ऐसा संभव नहीं। उसके प्रति लगाव कम नहीं होता, उसी तरह से योग भी आपके तनाव

को दूर करता है। योग व संगीत के खूबसूरत सामंजस्य का उद्देश्य तन के साथ मन की शुद्धता को हासिल करना है। योग में हमें अपना मस्तिष्क एक जगह पर केंद्रित करना होता है। ठीक उसी तरह जैसे संगीत बनाते समय हमें ध्यान लगाना होता है। योग और संगीत एक साथ चलते हैं। ये दोनों ही एक संतुलित जीवन और मस्तिष्क के लिए काम आते हैं।

वेस्ट वर्जीनिया यूनिवर्सिटी की हेल्थ प्रोफेसर किम इंसने ने अपने शोध में कहा है कि जब बात संपूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाने की हो तो मेडिटेशन और म्यूजिक दोनों समान रूप से कार्य करते हैं। संगीत स्ट्रैस हारमोन्स के स्तर को कम करता है, जबकि योगासन के अंतर्गत ध्यान और प्राणायाम के जरिए तनाव, ब्लड प्रेशर, दिल की बीमारियों का खतरा कम होता है, मन प्रसन्न व निरोगी रहता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की मधुरता तो अतुलनीय है अब कई रोगों के निदान के लिए इसका प्राकृतिक चिकित्सा की तरह प्रयोग किया जा रहा है। स्वरों को धीरे-धीरे साधने की युक्ति, ध्यान, अवस्था सभी क्रियाएँ किसी योग से कम नहीं बल्कि योग का ही एक अंग हैं। योग क्रिया व संगीत आज की आधुनिक परिस्थिति का जीता-जागता उदाहरण है। कोरोनाकाल में जिस भी व्यक्ति को कोरोना हुआ या कोरोना से बचने का कोई साधन रहा तो वह था—योग व संगीत। योग द्वारा आक्सीजन लेबल को बढ़ाया गया तथा संगीत द्वारा कोरोनाकाल के स्ट्रैस को कम किया गया। निरोगी शरीर व मस्तिष्क हर किसी के लिए आवश्यक है। कई साधक बीमार शरीर के कारण प्रगति नहीं कर पाते हैं। जिस प्रकार संगीत एक उपासना का तरीका है, उसी प्रकार योगशास्त्र जीवन का मित्र है। यदि शरीर स्वस्थ रहे तो हम जीवन का आनंद ले सकते हैं।

संगीत व योग में सामंजस्य—संगीत में स्वरों की शुद्धता पर जोर दिया जाता है, योग शास्त्र में आसन व मुद्राओं पर जोर दिया जाता है। दोनों में ही स्वर व मुद्रा की श्रेष्ठता से आनंद व स्वास्थ्य पाया जाता है संगीत-साधना चाहे गायन हो या वादन हो, कलाकार को एक ही मुद्रा में घंटों बैठे रहना पड़ता है। उसी प्रकार से योग में भी एक अवस्था में बैठना आवश्यक है। संगीत में एक ही स्थान पर साधना करने के लिए शरीर मन व मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए और इसके लिए योग सर्वश्रेष्ठ है। योग से शरीर मन मस्तिष्क स्वस्थ रहता है।

संगीत एवं योग का वैज्ञानिक स्वरूप—विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत-साधना व योग-साधना दोनों से मनुष्य के जीवन में शक्ति का विकास होता है। अत: कहा जा सकता है शरीर व मन को स्वस्थ रखने के लिए योगशास्त्र व संगीतशास्त्र दोनों समान रूप से आवश्यक है। भारत में भी इस प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं कि उचित समय उचित राग को एक दिन में 30 मिनट तक गाने से पौधों के बढ़ने में शीघ्रता आती है। इसका परीक्षण डॉ॰ टी॰एन॰ सिंह ने विभिन्न रागों की ध्वनियों का पौधों पर परीक्षण किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि बहार राग को बॉयलन पर बजाने से पौधों पर प्रभाव पड़ता है। पौधे भी खिल उठते हैं। उसी प्रकार संगीत लगाकर योग किया जाए तो मनुष्य शारीरिक रूप से स्वस्थ हो जाता है और योग करने में मन लगता है।

संगीत द्वारा योग एक्सरसाइज—योग व संगीत का संबंध सारी दुनिया मानती है। योग करते समय संगीत के साथ शरीर और आत्मा का जुड़ाव तेजी से होता है। संगीत का मनुष्य जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है और मनुष्य में बौद्धिक विकास होता है। संगीत व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में संतुलित रखता है। योग द्वारा हमारा ध्यान एकाग्र होता है। इस अर्थ में मन व शरीर दोनों पर प्रभाव पड़ता है। मन संगीत की ओर जल्दी आकर्षित हो जाता है और योग द्वारा शरीर अपने आप स्वस्थ रहता है। योग में ध्यान, प्रणायाम, अनुलोम-विलोम, ओम उच्चरण जो संगीत के जरिये आसानी से

व आनंदित होकर किए जा सकते हैं। रियाज में श्वास का सबसे ज्यादा महत्त्व है। योग द्वारा साँस रोकने की शक्ति को बढ़ाकर संगीत के स्वरों पर ठहराव अधिक देर तक किया जा सकता है। प्रो॰ किरण देशपांडे जो शास्त्रीय गायक और तबला वादक हैं कहते हैं कि क्लासिकल गायन में ब्रह्मनाद एक स्थिति होती है जो नादयोग से प्राप्त होती है। नादयोग संगीत की दुनिया की योगक्रिया है। संगीत में कई स्वर नाभि से भी लगाए जाते हैं इन स्वरों को लगाने से नाभि पर जो असर पड़ता है उससे सच्चा स्वर निकलता है। इस प्रक्रिया में कपालभाति योगक्रिया का बहुत महत्त्व है। ओंकार की साधना के लिए नाभि से स्वर निकालना कपालभाति की तरह योग करना ही है। साँस रोकने की शक्ति से ऑक्सीजन लेवल तो बढ़ता ही है, साथ ही साथ स्वरों पर ठहराव भी किया जा सकता है। योग का उद्देश्य एकाग्रता है। संगीत के माध्यम से भी यही एकाग्रता प्राप्त होती है।

1009/24, **निकट प्रभुतानंद आश्रम**
जगदीश कालोनी, रोहतक
मो॰ 9896051605
anjanabansal05@gmail.com

वाल्मीकि रामायण में कृषि व्यवस्था

डॉ॰ गौरव कुमार, प्रवक्ता संस्कृत
झम्मन लाल पी॰जी॰ कालेज, हसनपुर, अमरोहा (उ॰प्र॰)

वैदिकयुग के भ्रमणशील आर्य रामायणकाल से बहुत पहले जीवनचर्या को स्थायी रूप दे चुके थे। वैदिक वाङ्मय में 'भूयोभूय' प्रयुक्त 'कृष्' धातु से वैदिककाल के प्रमुख आजीविका साधन कृषि पर प्रकाश पड़ता है। रामायणकालीन समाज अब सुव्यवस्थित हो चला था एक सुशासित राज्य ही आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार माना जाता था तथा अर्थ का मुख्य स्रोत कृषि पर आधारित था अर्थात् रामायणकालीन समाज में आजीविका के रूप में कृषि की विशेष महत्ता थी।

वार्ता शब्द का अर्थ—वत्तशास्त्र को प्राचीन भारत में वार्ता की संज्ञा दी जाती थी। वार्ता शब्द का प्रयोग वैश्यों के तीन प्रमुख धंधों-कृषि, गो-चारण और व्यापार के लिए किया जाता था। कौटिल्य ने वार्ता के अंतर्गत कृषि पशुपालन और वाणिज्य को स्थान दिया है।[1] महाभारत में उल्लेख है कि वार्ता से संसार का पालन पोषण होता है, इसलिए वह लोक का मूल है।[2] मनु ने वार्ता के महत्त्व को व्यावहारिक ज्ञान के लिए अनिवार्य माना है।[3]

रामायण काल में वार्ता-शास्त्र का महत्त्व इतना बढ़ गया प्रतीत होता है कि उसे 'तिस्र: विद्या:' के अंतर्गत त्रयी (तीनों वेद) और दंडनीति के समक्ष गिना जाने लगा।[4] इससे यह अनुमान होता है कि वार्ता का शास्त्रीय अध्ययन प्रारंभ होने से पहले कृषि आदि उद्योगों का नियमित दंग से विकास होता रहा होगा। वार्ता-विद्या के शास्त्रीय स्तर पर पहुँचने के बाद कृषि, गौ-पालन और व्यापार के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।[5] दशरथ की मृत्यु के बाद चित्रकूट पर राम ने भरत से निम्नलिखित प्रश्न पूछकर इसी ओर संकेत किया—

कच्चित्ते दयिता: सर्वे कृषि गोरक्षजीविन:।
वार्तायां साम्प्रतं तात लोकोऽयं सुख मेधते।।

—वाल्मीकि रामायण 2/100/47

अत: स्पष्ट होता है कि 'वार्ता' में कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य का ही स्थान था और इन तीनों में कृषि को विशेष महत्त्व प्रदान करते हुए प्रथम स्थान प्रदान किया गया। क्योंकि कृषि ही जीविका का प्रथम साधन था। इसलिए विद्वानों ने कृषि को प्रथम स्थान पर रखा।

रामायणकाल से बहुत पूर्व ही कृषि आर्यों द्वारा की जाने लगी थी। ऋग्वेद के दसवें मंडल में जंगलों को साफ करने तथा खेत जोतने के उपरांत बीज बोने के उल्लेख आए हैं।[6] सबसे पहले अश्विन देवों ने मनु को जौं की खेती करना सिखाया था।[7] वेद में केवल यव[8] और धान्य[9] के उल्लेख मिलते हैं। यव, जौं के लिए और धान्य अनाज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[10]

रामायणयुग आते-आते कृषि मनुष्य की अजीविका का प्रमुख साधन बन चुकी थी। दशरथ की मृत्यु के बाद अयोध्या में एकत्र होने वाले वैश्यों को 'कृषिगोरक्षजीविन:[11] कहा गया है। अर्थात् अपनी जीविका खेती और पशुपालन द्वारा चलाते थे। वाल्मीकि ने कोसल राज्य की संपत्ति में खेतों, लता-गुल्मों और गाँवो के रूप में,[12] तथा अयोध्या के नागरिकों की समृद्धि के रूप में उद्यानों, खेतों,

भवनों और धन-धान्य के रूप में गिनाई है।[13]

कृषि उद्योग को राज्य की ओर से संरक्षण प्राप्त था 'अष्टवर्ग' में कृषि का भी समावेश था।[14] राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह कृषकों को और गौ-पालकों के कष्टों का निवारण करे तथा उसकी सुख समृद्धि के साधन जुटाये।[15]

दशरथ और राम के शासनकाल में भारत कृषि की दृष्टि से समृद्ध और सुखी था। कोसल राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण था।[16] वत्स-राज्य सुखी, संपन्न और धान्य की लहलहाती पंक्तियों से सुशोभित था।[17] मागधी नदी हरी-भरी फसल वाले खेतों के बीच से बहती थी।[18] 'सुक्षेत्रा सस्यमालिनी' लंका की जलवायु समुद्री हवाओं से प्रभावित होने के कारण समशीतोष्ण था और वहाँ की भूमि पर्याप्त वर्षा के कारण बड़ी उपजाऊ थी।[19]

रामायणकालीन समय में वर्षा समय पर और आवश्यक मात्रा में होती थी, खेत अनाज से भरे-पूरे थे, नगर धनधान्य-पूरित थे तथा पृथ्वी पके धान से युक्त और सभी प्रकार की औषधियों से संपन्न थी।[20] शरद ऋतु के अंत में पृथ्वी सस्य मालिनी (पके हुए धान की मालाएँ पहने) जान पड़ती थी और देश की खाद्य आवश्यकताएँ परिपूर्ण हो जाती थीं। इस समय देहातों की छटा निराली हो जाती थी। सुख-समृद्धि का का सर्वत्र प्रसार दीख पड़ता था। 'शिशिर ऋतु में' ज्वार और गेंहू के कोहरे के छाए हुए खेत, तो कहीं चावल के पौधे, जिनकी धान भरी सुनहरी बालें, खजूर के फूलों की तरह जान पड़ती थी।[21] वन जाते समय राम रथ में बैठकर जिस प्रदेश में से होकर गए उसका वर्णन इस बात का सूचक है कि उस समय देहातों की जनता कितनी सुसंपन्न, सुखी और समृद्ध थी।[22]

कृषिप्रधान देहात ग्राम कहलाते थे तथा बड़े शहर, जहाँ ग्रामों की कृषि-संपत्ति जाकर बिकती थी, नगर कहलाते थे। वन जाते समय राम ने ग्रामों के पास जुते हुए खेत देखे थे।[23] प्रतीत होता है कि अयोध्या के नागरिकों के खेत नगर के बाहर या पास ही थे। तभी तो राम के वनागमन के समय उन्होंने कहा कि हम अपने खेतों, घरों और बगीचों को छोड़कर राम का अनुगमन करेंगे।[24]

उपयोग की दृष्टि से भूमि चार भागों में विभक्त थी।[25] (1) निवासभूमि, (2) कृषिभूमि,[26] (3) गोचर भूमि अथवा चरागाह (शाद्वल)[27], (4) वनप्रदेश या ऊषर या ईरिण भूमि।[28] सारी भूमि का स्वामी राजा होता था।[29]

खेत को क्षेत्र[30] या केदार[31] कहते थे। खेतीयोग्य भूमि दो प्रकार की थी। जो खेत कृत्रिम साधनों से सींचे जाते थे, वे अदेवमातृक' कहलाते थे। जबकि वर्षा पर निर्भर रहने वाले खेत 'देवमातृक' कहलाते थे।[32], खेत के झाड़-झंकाड़ों की सफाई के बाद जुताई की जाती थी। बुबाई के लिए बीज मुट्ठी में भर-भरकर खेत में फेंके जाते थे।[33] हल से जुती हुई पंक्ति को 'सीता'[34] कहा जाता था। राज्य की ओर से अन्न के सरकारी गोदाम थे, जो, धान्यकोष कहे जाते थे।[35]

खेती की बुबाई का उपयुक्त समय वर्षाऋतु था। उपजाऊ खेत में वर्षा काल में बोया हुआ बीज, फलीभूत होता है।[36] हवा व घाम से नष्ट हुए बीज पुनः हरे-भरे हो जाते थे।[37] सामयिक और अच्छी वर्षा खेती के लिए विशेष लाभदायक थी।[38] कर्म-फल की भांति धान्य के पकने में भी समय लगता है।[39] आधे उगे हुए धान्यवाली भूमि में वर्षा बड़ी हितकारी होती थी।[40]

चावल के खेत को 'कमल-क्षेत्र' कहते थे। किष्किंधाकांड में एक ऐसे कमल-क्षेत्र का उल्लेख कि गया है, जिसमें वर्षा के कारण कोपले फूट रही हैं।[41] चावल की दो फसलें होती थीं, एक तो शरद ऋतु की ब्रीहि फसल जो लगभग कार्तिक मास में काटी जाती थी, और दूसरी हेमंत

ऋतु की फसल जो लगभग फाल्गुन माह में काटी जाती थी। शरद और शिशिर ऋतुओं के वर्णन में राम ने पके हुए धान की बालों और फसलों की पंक्ति से युक्त पृथ्वी की ओर संकेत किया है।[42]

रामायण के समय में गेंहू, धान तथा जौं[43] के अतिरिक्त व्यापारिक फसलों के रूप में चना, मूँग,[44] तिल,[45] अजवाइन,[46] मिर्च,[47] तथा दालें,[48] व जीरा,[49] उड़द[50] आदि की खेती भी होती थी।

रामायण के समय फलों के बागों एवं वाटिकाओं का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। आम्रवन,[51] मधुवन,[52] कदलीवन,[53] नारिकेल वन,[54] प्रमदवन[55] आदि। इन बागों में कुछ तो ऐसे थे जो सामान्य जनता के उपयोग के लिए थे जैसे आम्रवन[56] और मधुवन[57]। कुछ व्यक्तिगत बाग थे जैसे प्रमदवन[58]। इन बागों में अनेक प्रकार के वृक्ष थे जो फल देते होंगे जैसे आम,[59] नारियल,[60] केला,[61] बेर,[62] कटहल,[63] खजूर[64] आदि प्रमुख थे।

वाल्मीकि रामायण में फूलों के उद्यानों का वर्णन भी अनेक स्थलों पर मिलता है। जब राम कोसल जनपद से गुजर रहे थे तो उन्होंने वहाँ बहुत से उद्यान देखे थे।[65] गंगा-नदी के किनारे देवताओं के अनेकों उद्यान थे जो अनेक प्रकार के फूलों से सुशोभित थे।[66] इन उद्यानों में फूलदार वृक्ष भी होते थे। रावण की अशोक वाटिका में पुनांग, छितवन, चंपा, और बहुवार आदि बहुत से सुंदर पुष्प वाले वृक्ष शोभा पा रहे थे।[67]

कृषि उपयोगी यंत्र—रामायणकालीन समय में अनेक प्रकार के कृषि-यंत्रों का प्रयोग किया जाता था। बालकांड में इंद्र के द्वारा राजा सगर के यज्ञ-संबंधी अश्व का अपहरण कर लेने के बाद सगर के पुत्रों ने शूलों और हलों[68] के द्वारा सारी पृथ्वी को विदीर्ण कर दिया।

सगर पुत्रों ने कपिल मुनि को यज्ञ में विघ्न डालने वाला जानकार क्रोध के कारण अपने हाथ में हल और खनित्र ले लिए थे।[69] राम-लक्ष्मण गमन संवाद में लक्ष्मण जी राम से कहते हैं कि प्रत्यंचा सहित धनुष लेकर खनित्र और पिटारी लिए मैं रास्ता दिखाते हुए आगे-आगे चलूँगा।[70]

अयोध्याकांड में त्रिजट नाम के एक गर्गगोत्रीय ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है, जिसके पास जीविका का कोई साधन नहीं था, वह सदा फाल, कुदाल, लागंल[71] लिए वन में फल-मूल की तालाश में घूमा करता था। जब भरत श्रीराम को वन से लौटाने के लिए निमित्त कार्य करते हैं, तब मंत्री की आज्ञा से कारीगर कुल्हाड़ों, टंको तथा दात्र[72] के द्वारा वृक्षों और घास को काटकर रास्ता साफ करते हैं।

सिंचाई के साधन—रामायणकाल में खेतों की सिंचाई मुख्यत: वर्षा के जल पर निर्भर करती थी, जैसा कि वर्षा की प्रतीक्षा करते हुए किसानों से संबोधित अनेक उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग से प्रकट हैं।[73] फिर भी अनावृष्टि और दुर्भिक्ष से बचने के लिए सिंचाई के कृत्रिम साधनों का उपयोग किया जाता था। कोसल राज्य में तालाबों की अधिकता थी।[74] नहरों, जलाशयों, कुओं, पुलों, बाधों आदि के निर्माण कर्ता 'यत्रक'[75] कहलाते थे। उनका निर्माण राज्य की ओर से किया जाता था। नहर या नाली को 'प्रणाली' और बाँध को 'रोधस्' कहते थे।[76] अयोध्या से श्रृंगवेरपुर तक के मार्ग-निर्माण के समय यत्रंक कारीगरों ने भरत के आदेशानुसार थोड़े ही समय में अल्प जल वाले झरनों का जल रोकने के लिए बाँध बना दिए, जिससे वे विविध आकार वाले अगाध युक्त तालाबों में परिणत हो गए।[77]

जहाँ जल का अभाव था, वहाँ उन्होंने अनेक तालाब, कुएँ खोदे और उनके समीप लोगों के विश्राम के लिए चबूतरे बना दिए।[78] नदियों का जल संग्रह करने के लिए बाँधों से रोका जाता था, जैसे की टूटे हुए बाँधवली नदी के समान' जैसी उपमाओं से सूचित होता।[79] यदि खेत में कोई

क्यारी जल से पूर्ण हो, तो पहली क्यारी सान्निकटताजन्य जलीयता के प्रभाव से अपने पौधों को सींच लेती थी।[80] वर्षा में नदी की बाढ़ तटवर्ती प्रदेशों को उपजाऊ बना देती है।[81] गोमती नदी के किनारे अनेक जलीय स्थल थे, जो गौओं के चरागाहों के काम आते थे।[82] सरयू नदी के किनारे कोसल राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण था।[83]

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के विवरण सभी कालों के साक्ष्यों में मिलते हैं। वैदिक साहित्य में दुर्भिक्ष के कारणों में अनावृष्टि, अतिवृष्टि, ओले, जिली की तड़प, कीड़े-मकोड़े टिड्डियों, पशु-पक्षी आदि के विवरण है।[84]

रामराज्य में भारत अकाल के भय से मुक्त था: दुर्भिक्षभयवर्जित:,[85] किंतु खेती के छ: शत्रुओं की ओर जो संकेत हुआ है तथा राजा से उसके निवारण की जो अपेक्षा की गई है।[86] उससे प्रतीत होता है कि दुर्भिक्ष कोई असंभव या सवर्था अज्ञात घटना नहीं थी। वाल्मीकि ने अराजक स्थिति को देश में दुर्भिक्ष का एक कारण माना है। राम के पूर्ववर्ती युग के अकालों का वर्णन रामायण में उपलब्ध होता है इन दुर्भिक्षों का प्रधान कारण अनावृष्टि होता था जो खेती को नष्ट कर देता था। राजा दशरथ के समय में उनके पड़ोसी राजा रोमापाद के अंगराज्य में अनावृष्टि के कारण एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था, जिससे सारी प्रजा त्रस्त व व्यथित हो गई थी।[87] मुनिकुमार ऋष्यशृंग के आगमन से इंद्र ने अकस्मात् वर्षा करके सर्वत्र प्रसन्नता का संचार कर दिया। ऐसे ही एक दुर्भिक्ष का वृतांत ऋषि अत्रि ने राम को वन में सुनाया था, यह दुर्भिक्ष लगातार दस वर्ष तक पड़ा जिससे पृथ्वी जल गई थी।[88] उत्तरकांड के अनुसार इंद्र के अंतर्धान होने पर एक भीषण अकाल पड़ा जिसके कारण पृथ्वी सत्त्वा॰रा॰ न हो गई, उसकी उत्पादन शक्ति नष्ट हो गई, वन उजड़ गए, जलाशय सूख गए तथा समस्त प्राणी मृतप्राय हो गए।[89] अश्वमेघ यज्ञ के अनुष्ठान से ही पृथ्वी की श्री-संपत्ति पुन: लौटी थी।[90]

अत: उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रामायणकालीन समाज में कृषि व्यवस्था का उत्तम प्रबंध किया गया। जिसके कारण राज्य धन-धान्य तथा वैभव से परिपूर्ण थे।

संदर्भ

1. कृषि पशुपाया वाणिज्या च वार्ता। अर्थशास्त्र-1/4
2. वार्ता मूलोऽयं लोकस्य तथा वै धायर्त सदा।
   तत्सर्वम् वर्तते सम्यग्यथा रक्षति भूमिप:।। महाभारत-3/67/35
3. त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं, विद्याा दण्डनीति च शाश्वतीम्।
   आन्वीक्षिकीं चात्मविद्या वार्तास्तम्भांश्च लोकत:।। मनु॰। 7/43
4. वा॰रा॰ 2/100/68 तथा इसी की टीका देखें।
5. नरेंद्रनाथ लॉ, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर, पृ॰ 81
6. ऋग्वेद, 10/23, 10/94
7. वही, 1/117/21
8. वाल्मीकि रामायण 2/14/11
9. वा॰रा॰ 5/53/13
10. वा॰रा॰ 10/68/1
11. वा॰रा॰ 2/67/18
12. वा॰रा॰ 2/50/8-11
13. उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च ग्रहाणि च। वा॰रा॰ 2/33/17
14. वा॰रा॰ 2/100/68
15. तेषां गुप्तिपरीहारै: कच्चित्ते भरणं कृतम्। वा॰रा॰ 2/100/48
16. ततो धान्यधनोपेतान् दानशीलजनाञ्शिवान्। अकुतश्चिदभ्यान् रम्यांश्चौत्ययूपसमावृतान्। वा॰रा॰ 2/50/8
17. तत् समृद्धान् शुभसस्यमालिन: क्षणेन वात्सान् मुदितामुपागमत्। वा॰रा॰ 2/52/101
18. वा॰रा॰ 1/32/10
19. वा॰रा॰ 5/3/3: 5/2/12-14

 ISSN 0975-735X

20. वा॰रा॰ 7/41/20, 7/99/12, 6/128/1-2, 7/70/10, 3/16/5, 3/35/25-26
21. वाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः।।
खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किंचिदालांबाः शालयः कनकप्रभाः।। वा॰रा॰ 3/16/16-17
22. वा॰रा॰ 2/49/2-4, 9-13
23. ग्रामान्विक्रष्टसीमान्तान् पुष्पितानि वनानि च। पश्चन्नतिययौ शीघ्रं शनैरिव हयोत्तमैः। वा॰रा॰ 2/49/3
24. उद्यानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च। वा॰रा॰ 2/33/17
25. नानूराम व्यास, रामायणकालीन समाज, पृ॰ 218
26. वा॰रा॰ 2/19/13
27. वा॰रा॰ 3/42/21, 3/44/9
28. वा॰रा॰ 1/55/24/, 3/40/3
29. इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवन कानना। वा॰रा॰ 4/18/6
30. वा॰रा॰ 2/33/17
31. वा॰रा॰ 6/5/11
32. अदेवमातृको रम्यः श्राव्पदैः परिवर्जितः। परित्यक्तो भयैः सर्वेः खनिभिश्चोपशोभितः।। वा॰रा॰ 2/100/48
33. बीजमुष्टिः प्रकीर्यते, वा॰रा॰ 2/67/10
34. ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते।। वा॰रा॰ 3/16/14
35. वा॰रा॰ 2/36/7
36. वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते तव। वा॰रा॰ 4/7/20
37. वातातपक्लान्तमिव प्रणष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष।। वा॰रा॰ 5/29/6
38. अभ्युपैष्यति धर्मात्मा सुवर्ष (त्रिवर्ष) इव लालयन्। वा॰रा॰ 2/43/16
39. न तु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम्।
कालोऽप्यङगी भवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये।। वा॰रा॰ 3/49/27
40. त्वां दृष्टवा प्रियवक्तारं संप्रहृष्यामिवानर। अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुंधरा।। वा॰रा॰ 5/40/2
41. प्रसूतं कमलक्षेत्रं वर्षेणेव शतक्रतुः। वा॰रा॰ 4/14/16
42. विपक्कशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारूपंक्ति। वा॰रा॰ 4/30/47
43. यवगोधूमवन्ति च, वा॰रा॰ 3/16/16
44. शालिवाहसहस्रं च द्वे शते भद्रकांस्तथा। वा॰रा॰ 2/32/20
45. वा॰रा॰ 5/46/37
46. अजैश्चापि, वा॰रा॰ 2/91/67
47. वा॰रा॰ 3/35/23
48. वा॰रा॰ 2/91/67
49. वा॰रा॰ 2/91/73
50. शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम्। अयुतं तिलमुदगस्य प्रयात्वग्रे महाबल।।
चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च।। वा॰रा॰ 7/91/19-20
51. वा॰रा॰ 2/50/9
52. यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्। वा॰रा॰ 5/61/8
53. कदल्यटविसंशोभ, वा॰रा॰ 3/35/13
54. नारिकेलवनेषु, वा॰रा॰ 4/42/11
55. ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः। तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम्।। वा॰रा॰ 5/18/27
56. वा॰रा॰ 2/50/9
57. वा॰रा॰ 5/61/8
58. वा॰रा॰ 5/18/27
59. वा॰रा॰ 2/50/9, 3/15/16
60. वा॰रा॰ 3/35/13, 3/42/11
61. वा॰रा॰ 3/35/13, 4/13/14
62. वा॰रा॰ 2/103/29
63. वा॰रा॰ 3/15/16
64. वा॰रा॰ 3/15/16
65. वा॰रा॰ 2/50/9-10

66. वा॰रा॰ 2/67/12 67. वा॰रा॰ 5/15/19

68. शूलैरशनिफल्पैश्च हलैश्चापि सुदारूणैः। भिद्यमाना बसुमति ननाद रघुनन्दन।। 1/39/19

69. ते तं यज्ञहनं ज्ञात्वा क्रोधपर्याकुलेक्षणाः। खनित्रलांगलधरा नानावृक्षक्षिला धराः।। वा॰रा॰ 1/40/27

70. धनुरादाय सगुणं खनित्रपिटकाधरः। अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन्।। वा॰रा॰ 2/31/25

71. क्षतवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललांगलीं।। वा॰रा॰ 2/32/29

72. अवृक्षेषु च देशेषु केचिह वृक्षानरोपयन्।
केचित् कुटारैष्टकेंश्च दात्रैश्छिन्दन् कचित् केचित्।। वा॰रा॰ 2/80/7

73. त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः। वा॰रा॰ 2/112/12

74. तटाकेश्चोपशोभितः, वा॰रा॰ 2/100/43

75. यत्रका, वा॰रा॰ 2/80/1 76. वा॰रा॰ 5/19/16

77. अचिरेण तु कालेन परीवाहान्बहूदकान्। चक्रविविधाकारान्सागर प्रतिमान्बहून्।। वा॰रा॰ 2/80/11

78. निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरूत्तमान्। उदपानान्बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान्।। वा॰रा॰ 2/80/12

79. विस्रावितां रोधोभंगादिना अननिर्गमितजलामित्यर्थः। वा॰रा॰ 15/19/16

80. केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः। उपस्नेहेन जीवामि ....।। वा॰रा॰ 6/5/11

81. तुलना करो, प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टकूलं नावाम्भसा। वा॰रा॰ 2/20/49

82. गोमती गोयुतानूपाम् (गोयुक्तजलप्रदेशविशिष्टम्) वा॰रा॰ 2/49/10

83. कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्। निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधन धान्यवान्।। वा॰रा॰ 1/5/5

84. ऋग्वेद, 10/68/1, अ॰वेद 6/50/142

85. वा॰रा॰ 1/1/90

86. प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सव शोभितः।सुकृष्टसीमापशुमान् हिंसाभिरभिवर्जित।। वा॰रा॰ 2/100/44

87. तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञः भविष्यति सुदारुणा। अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहाँ। वा॰रा॰ 1/9/8

88. दश वर्षाण्यनावृष्टया दग्धे लोके निरन्तरम्। वा॰रा॰ 2/117/9

89. अथ नष्टे सहस्राक्षे उद्विगन्मभवज्जगत्। भूमिश्च ध्वस्तसंकाशा निःस्नेहा शुष्ककानना।।
निःस्रोतसस्ते सर्वे तु हृदाश्च सरितस्तथा। संक्षोभश्चौव सत्त्वानामनावृष्टि कृतोऽभवत।। वा॰रा॰ 7/85/4-'5

90. वा॰रा॰ 7/85/19

TOWN SAID NAGLI
TEHSIL HASANPUR
DISTRICT AMROHA 244242 U.P.
Mob. 9837673805
Gauravkgupta77@gmail.com

औरैया जनपद के अजीतमल के कार्तिक मेले का अध्ययन

पदमनारायण पांडेय, शोधार्थी
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

अजीतमल तहसील सांस्कृतिक रूप से अत्यंत समृद्ध है और यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक मेले का आयोजन किया जाता है। मेले का आयोजन प्रतिवर्ष मेला कमेटी द्वारा किया जाता है जिसका उद्घाटन नगर पंचायत बाबरपुर-अजीतमल की चेयरमैन द्वारा किया जाता है। मेला आसपास के बृहद एवं व्यापक क्षेत्र को जोड़ता है अपनी प्राचीन संस्कृति से लोगों को अभिभूत करता है। मेला स्थानीय स्तर पर महिलाओं और ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों को विशेष रूप से लाभान्वित करता है। यह मेला सामाजिक रूप से कस्बे के सभी वर्गों को जोड़ता है इस मेले के आयोजन में कस्बे के सभी लोग एकजुट होकर सहयोग करते हैं। यह मेला 15 दिनों तक चलता है लेकिन कभी-कभी तिथि आगे-पीछे घट बढ़ भी जाती है। इस मेले का कोई बड़ा धार्मिक प्रयोजन नहीं रहता लेकिन मेले में अक्सर रात को जागरण पार्टी, श्रीकृष्ण लीला व रामलीला कराई जाती है जिसमें लोग बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। हिंदूधर्म में कार्तिक माह का विशेष महत्त्व है इसे पवित्र माह के रूप में देखा जाता है। इस महीने में महिलाएँ प्रात: उठकर ईश्वर की पूजा आराधना करती हैं कार्तिक मास में गंगास्नान का विशेष महत्त्व है और विशेषकर कार्तिक पूर्णिमा को गंगास्नान काफी पुण्य फलदायक माना जाता है इसी कारण कार्तिक पूर्णिमा को विभिन्न स्थानों पर गंगास्नान व दान पुण्य किया जाता है। अजीतमल कस्बे में कार्तिक पूर्णिमा के इसी महत्त्व को समझते हुए मेले का आयोजन किया जाता है मेले से जुड़े हुए दुकानदार भी किसी विशेष धर्म को मानने वाले नहीं है इसमें मुख्यतत: हिंदू, मुस्लिम व अनुसूचित जनजाति के लोग भाग लेते हैं। अजीतमल की तुलना में कस्बा बाबरपुर में मुस्लिम आबादी अधिक है जो मेले की व्यवस्थाओं में अपना सहयोग करती है।

अध्ययन के उद्देश्य

* स्थानीय स्तर पर मेले की आर्थिक भूमिका का अध्ययन करना।
* मेले में प्रतिवर्ष होने वाली वृद्धि का अध्ययन करना।
* मेले में महिलाओं द्वारा खरीदारी के प्रारूप का अध्ययन करना।

मेले की भौगोलिक स्थिति–अजीतमल उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से 163 किलोमीटर दूर स्थित एक तहसील है अजीतमल औरैया जनपद की 3 तहसीलों में से है। अजीतमल-बाबरपुर संयुक्त कस्बे हैं यह औरैया जिला मुख्यालय से लगभग 22 किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। इसी अजीतमल कस्बे के गांधीनगर नामक स्थान पर मेला ग्राउंड में मेले का आयोजन किया जाता है। यह मेला ग्राउंड पूरे वर्ष खाली पड़ा रहता है और इसको केवल मेले के प्रयोजन में ही इस्तेमाल किया जाता है।

उत्तरदाताओं की सामाजिक शैक्षणिक पृष्ठभूमि–अजीतमल बाबरपुर संयुक्त कस्बे की कुल आबादी 29284 है, जिसमें 15583 पुरुष व 17701 महिलाएँ हैं अजीतमल का लिंगानुपात 879 है। 2011 की जनगणना के अनुसार अजीतमल कस्बे की साक्षरता दर 84.50% है जिसमें

पुरुषों की संख्या 89.43% जबकि महिलाओं की 78.86% है। अजीतमल की कुल आबादी में 24973 लोग हिंदू व 4200 लोग मुस्लिम हैं जबकि 70 लोग जैन समुदाय के हैं।'(स्रोत-www-censusindia.gov.in)

संबद्ध साहित्य का अध्ययन

रॉबर्ट रेड फील्ड (1960) ने अपनी पुस्तक लिटिल कम्युनिटी (एस०ए० होल) में लघु समुदाय का वर्णन संपूर्णता के आधार पर किया है, इसी अध्ययन को आधार मानकर यदि विचार किया जाए कि ग्रामीण स्तर पर मेला ग्रामीण मनोरंजन, जनसंपर्क व लोगों के मध्य पारस्परिक संबंधों को बढ़ाने का काम करता है जो स्थानीय स्तर पर संपूर्णता का बोध कराता है।

सी०एच० बक (2005) ने अपनी पुस्तक 'फेथ्स, फेयर्स एंड फेस्टिवल्स ऑफ इंडिया' में कार्तिक पूर्णिमा का महत्त्व बताया बताते हुए लिखा है कि इसी दिन भगवान शिव द्वारा त्रिपुरासुर का अंत किया था। अत: इसे विजय दिवस के पर्व के रूप में मनाया जाता है और ऐसा माना जाता है कि भगवान विष्णु अपनी 4 महीना की निद्रा से बाहर निकलकर आते हैं। लाक्षणिक रूप से इसका अर्थ यह हुआ कि 4 महीने बाद सूर्य प्रकट होते हैं और बारिश का मौसम समाप्त हो जाता है।

श्याम बहादुर वर्मा (2009) ने अपनी पुस्तक भारत के मेले में बताया है कि भारत में उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक मेले लगते हैं जिसमें कार्तिक पूर्णिमा पर लगने वाले मेलों की संख्या अधिक होती है कार्तिक पूर्णिमा पर सबसे बड़ा मेला गढ़मुक्तेश्वर में लगता है इसमें लगभग 5 लाख लोग गंगा नदी में स्नान करते हैं। कार्तिक पूर्णिमा को गंगा किनारे अनेक जनपदों में मेले का आयोजन किया जाता है। मेरठ के हस्तिनापुर में भी एक वृहद मेले का आयोजन किया जाता है फर्रूखाबाद के शृंगी रामपुर व कानपुर के बिठूर में भी कार्तिक मेले का आयोजन किया जाता है। इसी के साथ-साथ बलिया में ददरी के मेले का आयोजन किया जाता है यह ऋषि भृगु का क्षेत्र रहा है इसलिए इसे भृगु क्षेत्र का मेला भी कहा जाता है कार्तिक पूर्णिमा पर लोग गंगा नदी में स्नान व दान करके पुण्य कमाते हैं।

पीयूष शर्मा व अन्य ने वर्ष (1917) में प्रकाशित अपने शोध पत्र में जिसका शीर्षक 'एथेनिक फेयर्स एंड टूरिज्म डेवलपमेंट ए केस स्टडी ऑफ सूरजकुंड क्राफ्ट मेला' है के अंतर्गत बताया कि किस प्रकार सूरजकुंड मेला छोटे शिल्पकारों को रोजगार के विभिन्न अवसर मुहैया कराता है। मेले की भव्यता व इसके प्रयोजन से छोटे हस्तशिल्प व ग्रामीण कुटीर उद्योग को बढ़ावा मिलता है। इस रिसर्च पेपर में यह भी बताया गया है कि किस प्रकार कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प व दस्तकारी का काम ग्रामीण स्तर पर अनेक लोगों को रोजगार मुहैया कराता है जिसके लिए किसी बड़े निवेश की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार यह ग्रामीण रोजगार सृजन का एक प्रमुख माध्यम है।

संजय कृष्णा (2021) ने अपनी पुस्तक झारखंड के मेले में मेले को हमारी पहचान के रूप में बताया है आशय यह है कि कोई भी मेला अपने स्थान विशेष का प्रतिबिंब होता है जिससे उसकी अस्मिता और पहचान का पता चलता है। झारखंड में मेलों को जतरा कहते हैं और मेलों की परंपरा यहाँ काफी पुरानी है। झारखंड में मेले लगभग दो हजार सालों से लग रहे हैं जिसमें देवधर का श्रावणी मेला काफी प्रसिद्ध है। झारखंड में आदिवासी मेले भी खूब लगते हैं जिसमें मुड़मा मेला, मागे पर्व, हिजला मेला आदि प्रमुख है झारखंड के मेले यहाँ की विविधता पूर्ण संस्कृति को आपस में जोड़ने का काम करते हैं।

कुरुक्षेत्र पत्रिका सितंबर (2022)में सुशील त्रिवेदी ने प्रस्तुत आलेख 'जनजाति विरासत को उजागर करते हुए वन क्षेत्र के मेले' में बताया कि भारत में मेलों के लगने का समय सीधे-सीधे

किसानों से जुड़ा होता है भारत में तब मेले बहुतायत में लगते हैं जब किसानों के पास पर्याप्त समय होता है और वह कृषि कार्यों में संलग्न नहीं होते हैं। अधिकांश मेले मार्च अप्रैल के महीने में लगते हैं क्योंकि इस समय किसान कृषि कार्यों में व्यस्त नहीं होते जबकि सावन में मेलों की संख्या बहुत कम होती है क्योंकि उस समय किसान अपनी खेती-किसानी के कार्य से जुड़े होते हैं। इस प्रकार इन्होंने मेलों के लगने का कृषकों के साथ सीधा संबंध बताया है।

अजीतमल मेले के मुख्य आकर्षण—यह मेला मुख्यत: अपने झूलों के लिए प्रसिद्ध है। मेले का अन्य आकर्षण यहाँ मिलने वाली घरेलू स्तर की छोटी-मोटी चीजें जो पूरे वर्ष के लिए कस्बा अजीतमल के लोग बहुत ही सस्ते दामों पर खरीदते हैं और इससे सर्वाधिक लाभ ग्रामीणों को मिलता है। इसके अतिरिक्त मेले का अन्य आकर्षण यहाँ मिलने वाला एक विशेष भोज्य खाजा व घेवर मिठाई रहती जिसे लोग बड़े चाव के साथ खाते हैं और पूरे वर्ष इस मिठाई का इंतजार करते हैं।

प्रकल्पना

* कार्तिक मेले से कस्बे के लोगों को कम व सस्ते दामों पर वस्तुएँ मिलती हैं।
* मेले में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है।
* मेले से महिलाएँ घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करती हैं।

अध्ययन हेतु प्रयुक्त पद्धतिशास्त्र—अध्ययन हेतु व्याख्यात्मक-विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। प्राकल्पना की जाँच हेतु 50 लोगों को सुविधापरक निदर्शन व साक्षात्कार अनुसूची के लिए चुना गया है। इनसे संरचित साक्षात्कार अनुसूची के आधार पर प्रश्न किए गए हैं जिनसे प्राप्त उत्तरों को सारणीबद्ध किया गया है व इनके आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं।

तालिका-1

अजीतमल मेले से प्राप्त वस्तुओं की तुलनात्मक कीमत

क्र॰ सं॰	बाजार की तुलना में कीमत	मत प्रतिशत
1.	बाजार से काफी अधिक	0
2.	बाजार से अधिक	7
3.	कोई अंतर नहीं	17
4.	बाजार से कम	72
5.	बाजार से काफी कम	4

उपर्युक्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि अजीतमल की मेले में अधिकांश वस्तुएँ बाजार की तुलना में काफी कम है और गुणवत्ता में भी ठीक है इस प्रकार अजीतमल का कार्तिक मेला लोगों को काफी कम व सस्ते दामों पर वस्तुएँ मुहैया कराता है

तालिका-2

क्र॰सं॰	वर्ष	दुकानों की संख्या	सहभागिता जनसंख्या
1.	1971	60	3600*
2.	1981	84	7560*
3.	1991	86	7740*
4.	2001	94	8460*
5.	2011	98	8820*
6.	2021	102	9180*

स्रोत : नगर पंचायत बाबरपुर-अजीतमल से प्राप्त आँकड़े

उपर्युक्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि मेले में दुकानों की संख्या व जन सहभागिता वर्ष दर वर्ष बढ़ती जा रही है इससे यह बात सिद्ध होती है कि मेला न केवल निरंतर बढ़ रहा है बल्कि लोगों को दुकानों के साथ अधिक खरीददारी व जुड़ने का अवसर भी दे रहा है वर्ष 2021 का कार्तिक मेला विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था क्योंकि यह कोरोना के बाद लगने वाला पहला मेला था जिसमें लोगों का काफी जन सहयोग मिला था।

तालिका-3

महिलाओं द्वारा खरीददारी का प्रारूप (प्रथम वरीयता)

क्र॰सं॰	खरीददारी की वस्तुएँ	खरीददारी का प्रतिशत
1.	वस्त्र आभूषण	08
2.	साज-सज्जा	20
3.	घरेलू सामान	32
4.	मनोरंजन	26
5.	कोई क्रय नहीं	14

उपर्युक्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि मेले में घरेलू सामान की खरीददारी का प्रतिशत सर्वाधिक है। महिलाओं द्वारा खरीददारी में घरेलू सामान प्रथम वरीयता पर है। घरेलू सामान के अंतर्गत प्लास्टिक से बने हुए बर्तन, मिट्टी से बने हुए बर्तन व पत्थर से बनी हुए घरेलू उपयोग की वस्तुएँ आती हैं जो सामान्यता निम्न व मध्यम वर्गीय परिवारों में विशेष रूप से प्रयोग की जाती है विगत कुछ वर्षों में प्लास्टिक से बने हुए बर्तनों का चलन बड़ी तेजी से बढ़ा है जो कम दामों पर अधिक सुविधाजनक होती हैं दूसरा स्थान मनोरंजन का है। मेले में झूले, फास्ट फूड, सॉफ्टी की दुकानें, निशानेबाजी का खेल व इनाम जीतो प्रतियोगिता आदि मनोरंजन का प्रमुख साधन है।

साज-सज्जा तीसरे स्थान पर है। साज-सज्जा के अंतर्गत महिलाओं द्वारा दैनिक जीवन में साज-सज्जा हेतु प्रयुक्त सामानों को शामिल किया गया है। वस्त्र, आभूषण चौथे स्थान पर हैं। वस्त्र के अंतर्गत दैनिक जीवन में प्रयोग किए जाने वाले वे वस्त्र आते हैं जो बहुत अधिक महँगे नहीं होते। यह मेले में बहुतायत में मिलते हैं आभूषण के अंतर्गत सस्ती धातुओं द्वारा बने हुए वे आभूषण आते हैं जो दिखने में महँगे प्रतीत होते हैं जबकि वास्तविकता में वह बहुत सस्ते होते हैं।[14] ऐसे लोग हैं जो किसी भी प्रकार की वस्तुएं नहीं खरीदते हैं वे मेले में अन्य लोगों के साथ आते हैं इसलिए इनकी खरीददारी में कोई सक्रिय भागीदारी नहीं रहती है।

निष्कर्ष–प्रत्येक मेले अपने समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर हमें किसी स्थान का सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिदृश्य समझना है तो मेले इसमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ठीक इसी प्रकार अजीतमल में कार्तिक मेले का आयोजन बहुत हद तक अजीतमल की आर्थिक स्थिति को बताता है। अजीतमल मेले की प्रासंगिकता उस वक्त और बढ़ जाती है जब यह मेला महिलाओं के लिए खरीददारी के अवसर खोलता है। अजीतमल कस्बे के अधिकांश लोग ग्रामीण क्षेत्रों से जुड़े हैं और जहाँ महिलाओं को बाजार में खरीददारी के अवसर कम हैं इसलिए मेला घरेलू खरीददारी के अवसर को बढ़ा देता है। महिलाएँ इससे अत्यधिक लाभान्वित होती हैं और पूरे वर्ष मेले का इंतजार करती हैं।

मेला कस्बे के लोगों का मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है मेले के दिनों में यहाँ काफी

रौनक हो जाती है और लोग नाना प्रकार की खरीददारी, झूले और अन्य साधनों से मनोरंजन प्राप्त करते हैं जो लगभग पंद्रह दिनों तक सकता है।

अजीतमल में आयोजित यह मेला सभी वर्गों में आपसी भाईचारा व सौहार्द को बढ़ाता है यह मेला अजीतमल के विभिन्न धार्मिक समुदायों में सौहार्द बढ़ाने का काम करता है हिंदू व मुस्लिम समुदायों के मध्य इस मेले के माध्यम से आपसी सौहार्द बढ़ता है और लोग मेले में एक-दूसरे के साथ जुड़ते हैं जिससे प्रेम स्नेह बढ़ता है। मेला लोगों की आर्थिक जरूरतों को भी पूरा करता है और छोटे-छोटे व्यापारी जो अजीतमल परिक्षेत्र के विभिन्न गाँव में निवास करते हैं उन्हें मेले के माध्यम से रोजगार प्राप्त होता है। इस प्रकार यह मेला न केवल सामाजिक सांस्कृतिक रूप से महत्त्व रखता है बल्कि आर्थिक आधार पर भी लोगों की बहुत मदद करता है व आपसी सामंजस्य व प्रेम स्नेह को बढ़ाता है।

संदर्भ

1. Redfield Robert (1960), Little community as a whole , The University press Chicago, Chicago, P.18-19
2. C.H.Buck,Faiths (2005), Faiths,Fairs and festivals of India , Winsom book india ,New Delhi, P. 103-104
3. श्याम बहादुर वर्मा (2009) भारत के मेले, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ॰ 15
4. Sharma Piyush, Uniyal Mahesh c and sajnani m (2017) (issue 2) (July-December) (volume 2) Ethnic fairs and tourism development- a case study of Surajkund craft Mela Haryana India. Amity research journal of tourism, aviation and hospitality.
5. कृष्णा संजय (2021) झारखंड के मेले, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 21-22
6. सुशील त्रिवेदी, सितंबर (2022), कुरुक्षेत्र पत्रिका, जनजाति विरासत को उजागर करते हुए वन क्षेत्र के मेले, पृ॰ 45-46
7. अमर उजाला, औरैया, 24 नवंबर 2021

माधव हाउस, सेंट्रल बैंक चौबेपुर,
कानपुर (उ॰प्र॰)
मो॰ 9935991266
pandeygrml@gmail.com

योग और स्वास्थ्य

डॉ॰ दीपा गुप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
कन्या गुरुकुल परिसर गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार (उत्तराखंड)

भारतीय वाङ्मय में आध्यात्मिक और धार्मिक संदर्भ में योग शब्द विशेष महत्त्व रखता है। महर्षि पतंजलि के योग का लक्ष्य है–चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं।[1] यही समाधि की अवस्था है। 'योग' शब्द का वास्तविक अर्थ समझने के लिए समाधि शब्द का अर्थ भी समझना होगा। समाधि शब्द का अर्थ है–भगवान के साथ जुड़ जाना या संयुक्त हो जाना। इस प्रकार ब्रह्म एवं जीव का एक हो जाना ही योग है।

महर्षि पतंजलि के द्वारा आविष्कृत और परिष्कृत योगाभ्यास का मार्ग सर्वदेश, सर्वकाल और सर्वजनों के लिए मंगलकारी एवं कल्याणकारी है। योग साधना किसी एक विशेष समाज, वर्ग, जाति राष्ट्र या विशेष काल के लिए ही नहीं है। अपितु यह परम शाश्वत कल्याण का मार्ग है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए समान रूप से उपयोगी है। प्राचीनकाल में योगसाधना जितनी महत्त्वपूर्ण थी इससे कहीं अधिक आज इसका महत्त्व आधुनिक संदर्भ में देखा जा रहा है। आज के मनुष्य का स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गिरता जा रहा है जिससे उसके संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास समुचित नहीं हो पाता और जिसके लिए उसको आज योग साधना की अत्यंत आवश्यकता है। यह बड़े संतोष का विषय है कि आज मनुष्य योग साधना की ओर पुनः प्रवृत्त हो रहा है। काफी समय बाद मनुष्य योग के महत्त्व को पुनः पहचानने लगा है। आज भारत में ही नहीं अपितु विश्व में भी योग का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है।

योग और स्वास्थ्य का एक घनिष्ठ एवं अनूठा संबंध है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जब भी या जहाँ कहीं भी स्वस्थ्य एवं निरोगी शरीर के संदर्भ में बात होती है तो वहाँ तुरंत योग की चर्चा प्रारंभ हो जाती है। वास्तव में यह सही भी है यदि देखा जाए तो मनुष्य के उत्तम स्वास्थ्य और उसके संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने में योग ने एक अहम भूमिका का निर्वाह किया है। उत्तम स्वास्थ्य का तात्पर्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक विकास से ही है। शारीरिक विकास के लिए सुगठित सुंदर एवं मजबूत शरीर होना चाहिए। मानसिक विकास हेतु एकाग्रता, इंद्रिय-नियंत्रण एवं दृढ़ संकल्पशक्ति आवश्यक है। बौद्धिक विकास के लिए सकारात्मक विश्लेषण क्षमता की जरूरत है तथा आध्यात्मिक विकास के लिए मनोविकारों या मनोवृत्तियों को नैतिक बनाने की आवश्यकता है। योग इन सभी के विकास के लिए एक उत्तम एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।

अष्टांग योग–यम-नियम-आसन प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि रूप आठ आंगों वाला योग अष्टांग योग के नाम से जाना जाता है।[2] योग का यह अष्टांग मार्ग ऐसा है जिसका पालन सर्वांश में तो नहीं किंतु अंशिक रूप में सभी कर सकते हैं। इस अष्टांग योग में मूलतः यम-नियम से मनुष्य के सृदृढ़ एवं संपूर्ण व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास होता है। अर्थात् उसकी वैयक्तिक तथा

 ISSN 0975-735X

सामाजिक उन्नति संभव है। आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान समाधि से उसके उत्तम एवं हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ शरीर का निर्माण होता है। ये मनुष्य को शारीरिक एवं मानसिक रोगों से छुटकारा दिलाकर उसको पूर्ण स्वस्थ्यता की ओर ले जाते हैं।

योग के यम–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम का अर्थ है–आत्म अनुशासन यही कारण है यम के ये पाँच नियम मनुष्य को अनुशासन में रखते हैं। उनके माध्यम से मनुष्य में अहिंसा की भावना जाग्रत होती है। वह सभी प्रकार की हिंसा का पूर्णत: परित्याग करता है। अहिंसा के पालन करने से समस्त प्राणी बैरभाव त्यागकर मैत्रीपूर्वक रहते हैं।[3]

दूसरे मनुष्य में सत्यवादिता जन्म लेती हैं। वह असत्य से दूर होकर हमेशा अपने जीवन में सत्य के आचरण को अपनाता है। यथार्थ का अनुसरण और आचरण करना ही सत्य को परिभाषित करता है। तीसरे मनुष्य में मन, वाणी, शरीर द्वारा किसी प्रकार के भी किसी भी स्वत्व (हक) को न चुराने को भावना आती है।[4] चौथे ब्रह्मचर्य के माध्यम से वह अपनी पाँचों इंद्रियों को वशीभूत करने में सफल होता है। ऐसा आचरण करने से वह ब्रह्म के अधिक-से-अधिक समीप होता है। पाँचवें, अपरिग्रह के अनुसरण करने से वह निलोर्भी बनता है। धन-संपति के लालच, संचय तथा माया-मोह इत्यादि से दूर रहता है। इस प्रकार योग का यम-मार्ग मनुष्य को सत्यवादी, अहिंसक निर्लोभी, तपस्वी तथा त्यागी उदारमान बनाता है।

नियम[5]–शौच, संतोष, तप स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान व्यक्तिगत रूप से अचारणीय तत्त्व हैं। इन पाँचों नियमों के विधान से मनुष्य में पवित्रता, संतुष्टि धीरता, अध्ययनशीलता और ईश्वर भक्ति के गुण स्वत: आ जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त योग के यम नियम मार्ग के प्रतिपालन से मनुष्य की बौद्धिक मानसिक आध्यात्मिक उन्नति पूर्णत: संभव है। ऐसा मनुष्य सदैव ही लोक में यश का भागी बनता है।

शुचिता की भावना से वह अपने शरीर की अशुद्धि को जानकर सर्वदा शुद्ध उस परम चेतन तत्त्व के प्रति आसक्त हो जाएगा[6] तथा संसार में दु:ख का आधिक्य जान लेने पर इससे विरक्ति हो जायेगी।[7] सदा सर्वदा संतुष्ट प्रसन्नचित्त रहने का नाम ही संतोष हैं। जहाँ सत्य-न्याय है वहीं संतोष रूपी धन है। मनुष्य इन धन को प्राप्त कर सदा सुखी होगा।[8] स्वाध्यायशील मनुष्य ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँचेगा तथा लोक में पंडित, विद्वान, तत्त्ववेत्ता के रूप में ख्याति प्राप्त करेगा। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है ईश्वर की विशेष भक्ति करना मनुष्य जब अपने समस्त कर्मों और उनके फलों को समग्रता से ईश्वर को समर्पित कर देगा तभी उसको ईश्वर की विशेष अनुभूति की प्राप्ति होगी[9] जिससे उसको समाधि में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होगी। कठोर तपश्चर्या के जीवन से गुजरकर मनुष्य दोषरहित स्वर्ण की तरह दमकेगा। वह विषम परिस्थितियों में भी अडिग रहकर अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होता रहेगा।[10]

योग के पांच अन्य अंग–योग के अन्य पांच अंगों के प्रतिपालन से मनुष्य एक उत्तम एवं स्वस्थ निरोगी काया प्राप्त करने में सक्षम होता है। जिनका विवेचनात्मक वर्णन अतुलनीय है।

आसन–पतंजलि ने स्थिरता एव सुखपूर्वक बैठने को आसन कहा है।[11] आसनों से शरीर दृढ़ होता है[12] तथा सभी प्रकार के रोगों से बचा जा सकता है।[13] प्राणायाम, ध्यान आदि क्रियाओं के करने के लिए स्थिर भाव से रहना पड़ता है, जिसके लिए आसन की आवश्यकता पड़ती है। जिस अवस्था में शरीर बिना हिले-डुले स्थिरतापूर्वक तथा सुखपूर्वक रह सके उसे ही आसन कहते हैं।[14] गीता के अनुसार मेरुदंड पर जोर न देकर गर्दन और सिर को सीधा रखने की स्थिति में रहने का

नाम ही आसन है।

वैसे तो आसनों की संख्या की कोई सीमा नहीं है। लेकिन फिर भी शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए एवं रोग निवृत्ति हेतु कतिपय आसनों का अविष्कार किया गया। उदाहरणार्थ शरीर के विभिन्न अंगों के लिए उपयोगी एवं रोगी निवारक प्रमुख आसन–

1. **पश्चिमोत्तानासन**–कब्ज, स्नायु, कमर तथ पेट की नस नाड़ियों का शुद्धिकारक है।
2. **शीर्षासन**–यह आसनों का राजा है। शरीर तथा मांसपेशियों को सुदृढ़ रखता है।
3. **मकरासन**–स्नायु व ग्रंथियाँ दृढ़ होती है।
4. **वज्रासन**–इसमें स्नायु तथा मसल शक्तिशाली होते हैं। गठिया दूर होती है भोजन के पश्चात करने से भोजन शीघ्र ही पचता है।
5. **मयूरासन**–जिगर तिल्ली के रोगों में लाभप्रद।
6. **भुजंगासन**–पेट, कमर, छाती के लिए हितकारी।
7. **पद्मासन**–ध्यान के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसे सभी व्याधियों का नाशक कहा गया है।[15]
8. **सर्वांगासन**–इसके नियमित अभ्यास, अपचन, जिगर एवं तिल्ली के रोग नहीं होते।
9. **मत्स्यासन**–सर्वांगासन के बाद इस आसन का अभ्यास करने से थाइरॉइड एवं पैरा थाइराइड ग्रंथियाँ पुष्ट होती हैं।

शरीर के विभिन्न अवयवों के लिए चुने हुए आसन

1. रीढ़ की हड्डी का लचकीला रखने हेतु–पश्चिमोत्तानासन, हलासन, भुजंगासन तथा अर्धचक्रासन।
2. पेट की स्नायु तथा मांसपेशियों के लिए–अर्धचक्रासन, मकरासन, हलासन, धनुरासन, त्रिकोणासन।
3. शरीर के नीचे के भाग की स्नायु एवं मांसपेशियों के लिए–गोमुखासन पादहस्तासन
4. शरीर के उपरी भाग की स्नायु एवं मांसपेशियों के लिए–भुजंगासन, धनुरासन, पद्मासन तथा अर्धचक्रासन।
5. थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड, ग्रंथियों के लिए–सर्वांगासन, वृश्चिकासन तथा मत्स्यासन।
6. कमर का दर्द–पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन।
7. पेट की खराबी–हलासन, भुजंगासन।
8. कब्ज–मयूरासन, चक्रासन, भुजंगासन।
9. गैस–धनुरासन, चक्रासन, मयूरासन, वज्रासन।
10. उच्चरक्तचाप–भुजंगासन, पश्चिमोत्तानासन नाड़ीशोधन तथा उज्जायी प्राणायाम।
11. मोटापा कम करने के लिए–अर्गिसार, सूर्यनमस्कार, चक्रासन आदि।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी आसनों के उचित प्रयोग से मनुष्य एक स्वस्थ्य एवं निरोगी शरीर को प्राप्त करने में पूर्णत समर्थ हो सकता है।

प्राणायाम–प्राणायाम का अर्थ है–प्राणों का आयाम अर्थात् विस्तार। बात विपरीत सी प्रतीत होती है क्योंकि प्राणायाम में तो प्राणों को रोका जाता है। रोककर ही प्राणों का विस्तार होता है। इससे मनुष्य शक्तिशाली बनता है। प्राणायाम से चित्त की चंचलता नष्ट होती है। दैनिक जीवन में अनियमित गति से श्वास चलते रहने से प्राण क्षीण होता है तथा विस्तार को प्राप्त नहीं कर सकता। इसको रोककर ही शक्तिशाली बनाया जा सकता है तथा उसका विस्तार किया जाता है। यह

प्राणों को रोकना अंदर तथा बाहर दोनों प्रकार से होता है। अंदर रोकने को 'आभ्यंतर कुंभक' तथा बाहर रोकने को 'वाह्य कुंभक' कहते हैं। प्राणायाम को बिना किसी से सीखे अपने आप ही नहीं कर लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में आसन के लिए सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वांस की गति का विच्छेद करना ही प्राणायाम कहलाता है।[16]

प्राणायाम के द्वारा इंद्रियों के संपूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं। इसके द्वारा साधक प्राण पर विजय प्राप्त करता है। इससे ज्ञान के ऊपर पड़ा आवरण नष्ट हो जाता है।[17] मनुष्य में प्राणायाम करने से धारणा की योग्यता आती है।[18]

प्राणायाम करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसको नियमपूर्वक करने से फेफड़े बलवान तथा कार्य करने में समर्थ रहते हैं जिससे शुद्ध रक्त हमारे शरीर को रोगमुक्त करके बल तथा तेज को प्रदान करता है। इससे आयु भी दीर्घ होती है।

प्राणायाम हेतु सावधानियाँ

1. प्राणायाम करते समय पेट भरा न हो।
2. वायु शुद्ध हो जगह पर धूल एवं धुआँ नहीं हो।
3. प्राणायाम के तुरंत बाद स्नान न करे। न ही कुछ खाएँ।
4. शीघ्रता की आवश्यकता नहीं धीरे-धीरे करें। इसका अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाएँ।
5. यदि प्राणायाम करने से किसी प्रकार की कोई परेशानी दिखाई दे तो प्राणायाम बंद कर देना चाहिए।

प्रत्याहार—इंद्रियों द्वारा चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना ही प्रत्याहार कहलाता है।[19] इसका अभिप्राय है कि इंद्रियाँ चित्त की ओर खिंची जाकर चित्त के साथ ही एकरूप जैसी हो जाती हैं। अर्थात् इंद्रियाँ अपना अस्तित्व तो रखती है किंतु अपना कार्य विषय के अनुरूप करने में असमर्थ हो गई है क्योंकि अब वे चित्त की ओर खींची जा रही है। इससे पूर्व विषयों के द्वारा अपनी ओर खिंची जा रही थी। प्रत्याहार से इंद्रियाँ अत्यंत वश में हो जाती है।[20] योग के आगे के अंगों की सफलता तभी संभव हो सकेगी। जब इंद्रियों पर पूर्णत: अधिकार हो जाएगा। अत: प्रत्याहार की सिद्धि अत्यंत आवश्यक है। प्रत्याहार के लिए कुछ साधन उपयोगी है जैसे—वैराग्य, अभ्यास, विषयों से दूर रहना, प्राणायाम इत्यादि। इनके द्वारा ही प्रत्याहार की सिद्धि आसानीपूर्वक प्राप्त की जा सकती है।

धारणा—चित्त को किसी एक देश विशेष में स्थिर करने का नाम ही धारणा है।[21] अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म ब्राह्य आभ्यान्तर किसी एक ध्येय स्थान में चित्त को बांध देना, स्थिरता देना, धारणा कहलाता है। धारणा के तुरन्त पश्चात् ध्यान की स्थिति हैं धारणा की परिपक्व अवस्था का नाम ही ध्यान है। किंतु ये धारणा ध्यान तभी सिद्ध हो सकते है जबकि इनसे पूर्व योग के 5 अंगों का अभ्यास कर लिया गया है। धारणा की सिद्धि में प्राणायाम अति सहायक है। पतंजलि स्वयं कहते हैं 'प्राणायाम के द्वारा मन में धारणा की योग्यता जन्म लेती है।'[22] धारणा से दिव्य एवं आलौकिक ज्ञान की अनुभूति होती हैं। चित्त की चंचलता नष्ट होती है। मन एकाग्र होकर शांत रहता है। धैर्य—संयम जैसे सद्गुणों का मनुष्य में विकास होता है।

ध्यान—जिस ध्येय के ध्यान में चित्त लगा है उसके बीच में अन्य कोई वृत्ति न आने पाए, यही ध्यान की चरमावस्था है।[23] ध्यान करते समय, समय एवं स्थान उचित रूप में होने चाहिए। ध्यान करते समय जिस आसन में भी सुखपूर्वक बैठा जा सके, उसमें बैठकर ही ध्यान करना

चाहिए।

मन भ्रमित न हो यदि मन इधर उधर भाग रहा हो तो किसी मंत्र का जप किया जा सकता है। उस समय परमात्मा के निराकार, सर्वशक्तिमान स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान द्वारा मनुष्य अपने मनोविकारों को नियंत्रित करने में समर्थ होता है। यही ध्यान आजकल पाश्चात्य पद्धति एवं नाम को धारण करके 'Meditaion' के रूप में आया है। ध्यान करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस धारणा तथा ध्यान के अभ्यास से मन स्वत: ही शनै: शनै: नियंत्रित होता चला जाएगा।

समाधि—वह ध्यान ही समाधि हो जाता जिस समय केवल ध्येय स्वरूप का ही भान रहे तथा अपने स्वरूप के भान का अभाव सा रहता है।[24] ध्यान में ध्याता, ध्यान, ध्येय यह त्रिपुटी रहती है। परंतु समाधि में केवल अर्थमात्र वस्तु अर्थात् ध्येय वस्तु ही रहती हैं। ध्याता, ध्यान, और ध्येय तीनों की एकता सी हो जाती है। समाधि का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह ईश्वर विषयक होने से मुक्ति प्रदान करती है। समाधिस्थ होकर ही व्यक्ति परमात्मा से साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। समाधि में मनुष्य के समस्त क्लेशों का नाश होने से उसको परम आनंद की प्राप्ति होती है। समाधि के माध्यम से मनुष्य उस चिर आनंद की प्रप्ति करता है जिसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है उसको तो केवल अंत:करण से ही अनुभव किया जा सकता है। सत्य ही कहा गया है कि ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। इसमें कदापि संदह नहीं है।[25]

उपसंहार—इस प्रकार अंतत: यही कहा जा सकता है कि योग भारत की एक अमूल्य निधि है। उपर्युक्त समग्र विवेचन को अंगीकृत करते हुए यही कहना होगा कि इस अमूल्य निधि योग-साधना के द्वारा मनुष्य अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास समुचित ढंग से कर सकेगा तथा एक उत्तम एवं निरोगी काया या एक स्वस्थ शरीर को प्राप्त करने में पूर्णरूपेण सक्षम सिद्ध हो सकेगा। आज विश्व में अनेकानेक वैज्ञानिक पद्धतियाँ चरम सीमा पर है लेकिन इन सभी ने मानव-जीवन को अधिकाधिक भौतिकवादी और सुविधा-संपन्न बना दिया है, जिससे कि मनुष्य अपने जीवन में शांति और संतोष प्राप्त नहीं कर सका है। आज उसको हर दृष्टिकोण से शांति एवं संतोषरूपी धन की आवश्यकता है और जिसकी पूर्ति वह भोगों से निवृत्त मार्ग योग-साधना रूपी धन से प्राप्त कर सकता है तभी आज का मानव सुख एवं खुशहाली पूर्वक अपना जीवनयापन कर सकेगा।

संदर्भ

1. योगश्चित्तवृतिनिरोध (यो॰सू॰ 1/2)
2. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोअष्टावंगानि (यो॰सू॰ 2/29)
3. अहिंसा सत्य अस्तये ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा: (यो॰सू॰ 2/30)
4. यो॰सू॰ 2/37
5. यो॰सू॰ 2/32, शौच, संतोष, तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा:।
6. यो॰सू॰ 2/40
7. यो॰सू॰ 2/15
8. यो॰सू॰ 2/42
9. भगवद्गीता 5/10
10. योगसूत्र (व्यासभाष्य) 2/32
11. योगसूत्र- 2/46-47

 ISSN 0975-735X

12. आसनेन भवेद् दृढ़म्, घरेण्ड संहिता 1/10
13. आसनेन रूजो हन्ति, गोरक्ष संहिता 2/11
14. योग सूत्र 2/46
15. दत्तात्रेय योगशास्त्र, श्लोक-74
16. योग सूत्र 2/49
17. योग सूत्र 2/52
18. योग सूत्र 2/53
19. योग सूत्र 2/54
20. योग सूत्र 2/55
21. योग सूत्र 3/1 देशबन्धश्चित्तस्य धारणा
22. योग सूत्र 2/53
23. योग सूत्र 3/2
24. योग सूत्र 3/3
25. योग सूत्र 2/45 समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्

मुगल राजपूत संबंध : मारवाड़ शासक मोटाराजा उदयसिंह (1583-1595) के संदर्भ में

ममतेश अग्रवाल, शोधकर्ता
डॉ॰ शरद राठौड़, पर्यवेक्षक

मुगल सम्राट अकबर एक राजनीतिज्ञ की सच्ची सूझ तथा उदार दृष्टिकोण से युक्त था। उसे भली-भाँति ज्ञात था कि भारत के विस्तारित प्रांत पर विशाल साम्राज्य की स्थापना सैनिक शक्ति से की जा सकती थी परंतु इसकी नींव गहरी नहीं हो सकती थी, वह कभी भी जन स्वातंत्र्य विस्फोट में लुप्त हो सकती थी। ऐसा साम्राज्य भारत की हिंदू जनता के साहचर्य एवं स्वीकृति से ही स्थापित हो सकता था और मध्ययुग में हिंदू जनता के राजनीतिक सूत्रधार राजपूत थे। अत: सफल साम्राज्यवादी नीति के लिए राजपूत वर्ग को विजित या मित्र बनाना अनिवार्य था। उसने अपनी राजनीतिक तीक्ष्णता, चातुर्य एवं दूरदर्शिता से राजस्थान के भौगोलिक-राजनीतिक दृष्टि से सामरिक महत्त्व को भली-भाँति समझ लिया था। गुजरात, मालवा, सिंध और दक्षिण भारत के लिए जाने वाले प्रमुख मार्ग राजस्थान क्षेत्र से ही होकर जाते थे। इसके अतिरिक्त राजपूतों की शत्रुता मुगलों के अन्य क्षेत्रों पर विजय एवं नियंत्रण के प्रयासों को विफल कर देगी। वह इन तथ्यों से अवगत था, इसलिए उसने राजपूत राजाओं को इस रूप में एकत्रित करने का सूत्रपात किया, जिससे उनका मुगल साम्राज्य के राजनीतिक नियंत्रण में व्यक्तिगत अस्तित्व बना रहे और अपने क्षेत्राधिकारों में स्वायत्तशासी राज्य बने रहे।

अकबर ने राजपूतों को मिलाने तथा अपने लगभग सभी कार्यों में उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त करने और स्थिर रखने का यथासंभव प्रयास किया एवं अधिकांश के दिल इस हद तक जीत लिए कि उन्होंने उसके साम्राज्य के लिए बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान कीं और इसके लिए अपना रक्त तक बहाया। वास्तव में उसका साम्राज्य मुगल पराक्रम एवं कूटनीति तथा राजपूत वीरता एवं सेवा के एकीकरण का परिणाम था।[1]

मुगल-राजपूत संबंधों का राजस्थान में वास्तविक प्रारंभ मुगल बादशाह अकबर के काल से प्रारंभ हुआ। उसके समय में मुख्य रूप से 6 राजपूत रियासतें मारवाड़ (शासक-राव चंद्रसेन, महाराजा उदयसिंह, सूरसिंह), मेवाड़ (शासक-महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप, महाराणा अमरसिंह), आमेर (शासक-राव भारमल, राव भगवान दास, महाराजा मानसिंह), बीकानेर (शासक-राव कल्याणमल, राव रायसिंह), जैसलमेर (शासक-राव हरराय भाटी), बूँदी (शासक-राव सुर्जन सिंह हाड़ा) थी।

अकबर की राजपूत नीति के प्रकारों में वैवाहिक संबंध (आमेर, मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर के साथ), मित्रतापूर्ण संबंध (बूँदी रियासत के साथ), आक्रमण की नीति (मेवाड़ के साथ, जिसके महाराणा प्रताप ने आजीवन मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की) थे।

अकबर ने राजपूत राज्यों को अधीन करने के लिए स्नेह तथा दंड की नीति अपनाई थी।

 ISSN 0975-735X

मालदेव की मृत्यु (1562 ई०) के बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार विवाद होने पर मालदेव का छोटा पुत्र चंद्रसेन मारवाड़ की गद्दी पर बैठा। मुगलों के दबाव के कारण उसको पट्टे के रूप में अपने राज्य के कुछ भाग अपने भाईयों को देने पड़े जिससे राव चंद्रसेन बहुत दु:खी हुआ और उसने विद्रोह कर दिया। इस अवसर का लाभ उठाकर अकबर ने मारवाड़ को सीधे मुगल प्रशासन में लेकर खालसा घोषित कर दिया।

कुछ वर्षों बाद 1570 ई० में जब अकबर ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की यात्रार्थ अजमेर आया और वहाँ से नागौर पहुँचने पर उसने मुगल वर्चस्व का प्रसार करने तथा अकाल राहत पहुँचाने के उद्देश्य से 3 नवंबर 1570 ई० को नागौर दरबार लगाया तो उस समय जोधपुर राज्य प्राप्त करने की आशा से राव चंद्रसेन, मोटाराजा उदयसिंह और राव मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र राम अकबर के पास हाजिर हुए। राव चंद्रसेन जी ने तो अकबर की सेवा करना अस्वीकार किया और वहाँ से चले गए परंतु मोटाराजा उदयसिंह ने अकबर की सेवा स्वीकार की और उसके साथ रहने लगे।

बादशाह अकबर की सेवा में रहते इनको कुछ समय होने पर जब विक्रम संवत् 1635 में बुंदेलखंड में ओरछा के स्वामी बुंदेला मधुकर शाह ने बुंदेलखंड में उपद्रव किया तो उसको दंड देने के लिए अकबर ने अपने सेनानायक सादिक खाँ और मोटाराजा उदयसिंह को सेना सहित बुंदेलखंड भेजा। मोटाराजा ने अपने बल और पराक्रम से शत्रुओं को पराजित कर नरवर का किला जीता जो लंबे समय से विजित नहीं हुआ था। उनकी वीरता को देखकर अकबर जहाँ कहीं भी कठिन काम पड़ता इन्हीं को भेज देता था। ग्वालियर प्रांत के समावली प्रदेश में गुर्जरों का विद्रोह भी मोटाराजा ने अकबर की आज्ञा के शांत किया और समावली प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इनकी वीरता से प्रसन्न होकर अकबर ने 6000 रुपए की जागीर का परगना समावली मोटाराजा उदयसिंह को दे दिया।[2] 1583 ईसवीं को अकबर ने गुजरात के बागी मुजफ्फर शाह का उपद्रव शांत करने के लिए बैरम खाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना को भेजा तथा मोटाराजा उदयसिंह को उसकी सहायतार्थ जाने की आज्ञा के साथ ही राजा की पदवी और एक हजारी जात व सवार का मनसब देकर जोधपुर दे दिया तथा उसके साथ ही मारवाड़ के 4 परगने दिए–1. सोजत 2. सिवाणा 3. जैतारण 4. हाड़ौती का कोटा व चनारी।

मोटाराजा उदयसिंह अकबर का मनसबदार बन, उससे आज्ञा पाकर जोधपुर आए और संवत् 1640 के भाद्रपद मास की वदी 12 (15 अगस्त, 1583 ई.) को अपने पितृ सिंहासन पर विराजमान हुए।

विक्रम संवत् 1640 के मार्गशीर्ष में अब्दुर्रहीम खानखाना को गुजरात के मुजफ्फर शाह का उपद्रव शांत करने के लिए भेजा गया। जब वह सोजत पहुँचा तो मोटाराजा उदयसिंह भी उसके साथ सम्मिलित हुए और गुजरात पर आक्रमण किया। राजपीपली स्थान पर दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। जिसमें मुजफ्फर भाग गया।[3] और अब्दुर्रहीम खानखाना व मोटाराजा की फतेह हुई।

विक्रम संवत 1641 में मोटाराजा उदयसिंह अपने भतीजे रायसिंह तथा राठौर सरदारों के दत्तानी के युद्ध में राव सुरताण के हाथों मारे जाने का बदला लेने हेतु अकबर के दरबार में पहुँचे तथा अपना बदला लेने का दावा प्रस्तुत किया।[4] इस पर अकबर ने मोटाराजा उदयसिंह को सिरोही पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अकबर द्वारा भेजे जाने पर मोटाराजा उदयसिंह ने सिरोही के राव सुरताण पर चढ़ाई की और जालोर के शासक जामबेग की सहायता प्राप्ति हेतु अकबर से आज्ञा माँगी। आज्ञा प्राप्ति पर जामबेग तथा मोटाराजा ने मिलकर सिरोही पर चढ़ाई की। राव सुरताण ने इस

समय उनसे मुकाबला करने में कल्याण न समझकर युद्ध हर्जाना देना स्वीकार किया। उसने दो लाख फीरोजी और 13 घोड़े युद्ध हर्जाने के रूप में दिए।[5] और दो आसामी ओल (बदले/एवज) में दी। एक तो देवड़ा सोवतसी तोगा की माता राठौड़ किसना बाई तथा दूसरा देवड़ा सूजा का पुत्र सामदास जो देवड़ा पृथ्वीराज का भाई था। इन ओल आसामियों को मोटाराजा ने अपने विश्वासपात्र ऊहड़ गोपालदास और राठौड़ पता के पुत्र भोपत के साथ जोधपुर भेज दिया था।

विक्रम संवत 1643 में मोटाराजा उदयसिंह ने अपनी पुत्री मानबाई का विवाह बादशाह अकबर के बड़े पुत्र शाहजादा सलीम (जहाँगीर) से कर मुगलों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। दूसरी ओर विक्रम संवत 1644 में बादशाह अकबर के कहने पर कछवाहा दुर्जनसाल ने अपनी पुत्री सौभाग्य देवी का विवाह मोटाराजा उदयसिंह के पुत्र सूरसिंह से कर दिया।

विक्रम संवत 1644 को बादशाह अकबर ने देवड़ा वीजा को सिरोही देने का फरमान लिखा और उसकी सहायतार्थ मोटाराजा उदयसिंह और जालोर के शासक जामबेग को भेजा। ये दल बल सहित सिरोही गए तथा इन्होंने नीतोडा गाँव लूटा। एक मास तक उन्होंने वही मुकाम किया। राव सुरताण इनका प्रबल आक्रमण और दृढ़ विश्वास देखकर सिरोही छोड़कर पहाड़ों में चले गए और उन्होंने मोटाराजा से संधि करने के लिए उनके पास अपने सरदारों को भेजने का निश्चय किया। दोनों पक्षों में बातचीत कराने की जिम्मेदारी बगड़ी ठाकुर राठौड़ वैरसल पृथ्वीराजोत (यह राव सुरताण के मामा का पुत्र था और मोटाराजा की सेवा में था) को सौंपी गई। बगड़ी ठाकुर ने राव सुरताण को वचन दिया कि बातचीत हेतु जो सरदार जाएँगे, उनके साथ किसी प्रकार का छल-कपट नहीं होगा।[6] उसके द्वारा देवड़ा सामंतसिंह सूरसिंहोत को अपने साथ मोटाराजा के पास बातचीत करने के लिए ले जाने हेतु विशेष आग्रह करने पर सुरताण ने कहा कि 'देवड़ा सामंतसिंह मेरे कलेजे के बराबर है जिसे मैं तुझे सुपुर्द करता हूँ।' जिसके बारे में एक कवि ने उल्लेख करते हुए कहा है कि–

सोढ पयंपे वैरसल, सूणजे मायावत।
देऊ सामंत सिंह देवड़ों, मो कालज तो हाथ।।

राठौड़ वैरसल ने वचन दिया कि इनके साथ कुछ भी धोखा हुआ हो तो उसके बदले में वह अपना कलेजा देगा। इस पर राव सुरताण की तरफ से सामंतसिंह, सूरसिंहोत, देवड़ा पत्ता सूरावत, राइबरा हमीर कुंभावत, राडबरा बीदा सिकरावत, चीबा जेता और देवड़ा तोगा सूरावत वार्ता के लिए आबू से नीचे आए किंतु इनको धोखे से शाही सेना के सरदार राम रतनसिंहोत ने मार डाला। जब राठौड़ वैरसल को सामंतसिंह आदि देवड़ा सरदारों के मारे जाने और अपने वचन भंग होने का पता चला तो पहले तो वह मोटाराजा उदयसिंह के डेरे पर गया और उनके सामने ही राम रतनसिंहोत को मार डाला तथा फिर अपने हाथ से स्वयं को भी मार डाला। कहा जाता है कि वचनबद्धता निभाने की खातिर उसका कलेजा एक सुवर्ण थाल में रखकर उसके आदमी ने राव सुरताण के पास भेजा।

इस प्रकार जब उनका षड्यंत्र सफल नहीं हुआ तो वीजा देवड़ा और जामबेग एक सेना को साथ लेकर वास्थानजी की तरफ गए जहाँ से आबू चढ़कर राव सुरताण पर आक्रमण किया जा सके। वीजा के सेना सहित वास्थानजी की तरफ आने की खबर मिलने पर राव सुरताण भी वास्थानजी के निकट आ पहुँचे। यहीं पर दोनों पक्षों में युद्ध हुआ, जिसमें वीजा मारा गया, जामबेग का भाई घायल हुआ और उनकी सेना भाग निकली।[7]

वास्थानजी के युद्ध में हार के बाद मोटाराजा उदयसिंह राव कल्ला को सिरोही की गद्दी पर

बैठाकर शाही सेना के साथ वापस आ गए। मोटाराजा उदयसिंह के वापस जाने पर राव सुरताण आबू से वापस सिरोही आए। उनके आने की खबर मिलने पर राव कल्ला बिना लड़े ही सिरोही छोड़कर चले गए। सिरोही पर राव सुरताण का पुनः अधिकार हो गया।

मोटाराजा उदयसिंह के शासनकाल में मारवाड़ पर मुसलमानों का आंतरिक प्रभाव पड़ा इस कारण से सिवाणा के कल्याण दास (कल्ला) रायमलोत अप्रसन्न थे। वह राव मालदेव के पुत्र रायसिंह के पुत्र थे। अपने पिता रायसिंह की जागीर नागौर पर शासनाधिकृत थे और नागौर छिन जाने पर बादशाह अकबर की सेवा में आ गए थे। अकबर ने उन्हें लाहौर के प्रबंध के लिए नियुक्त किया। लाहौर के यवन मनसबदार द्वारा कल्ला को दुर्वचन कहे जाने पर क्रुद्ध होकर कल्ला ने उसे मार डाला[8] और वहाँ से सिवाणा आ गए। बादशाह अकबर ने घटना की जानकारी के बाद मोटाराजा उदयसिंह को कल्ला को मारकर सिवाणा खाली कराने की आज्ञा दी। मोटाराजा उदयसिंह ने पहले अपने वीर राजपूत सरदारों को सिवाणा पर अधिकार के लिए भेजा परंतु कल्ला द्वारा अचानक आक्रमण किए जाने से उनकी पराजय हुई। इस पर मोटाराजा ने स्वयं सेना लेकर सिवाणा पर चढ़ाई की तथा एक नाई की मदद से किले तक पहुँच गए। कल्ला ने कुछ देर तक तो उनका सामना किया, अंत में वह मारे गए तथा मोटाराजा उदयसिंह की विजय हुई।

24 जुलाई 1592 को कश्मीर जाते समय अकबर ने मोटाराजा उदयसिंह की स्वामी भक्ति और विश्वसनीयता से प्रभावित होकर उन्हें लाहोर का प्रबंध करने के लिए नियुक्त किया।[9]

24 जून 1594 ईसवीं को अकबर ने मोटाराजा उदयसिंह को पुनः राव सुरताण पर आक्रमण करने भेजा, ताकि वह उसे अधीन बनावे अथवा दंड दे।[10] मोटाराजा के आक्रमण करने पर राव सुरताण पहाड़ों में चले गए और उन्होंने मोटाराजा उदयसिंह के वापस लौटते ही पुनः सिरोही पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार राव सुरताण को पूर्ण रूप से अकबर अपने अधीन नहीं कर सका।

19 दिसबर 1594 को मोटाराजा उदयसिंह जोधपुर से चलकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए।[11] फिर वह लाहौर गए जहाँ रहते हुए वे अस्वस्थ हो गए। 5 जुलाई 1595 को मोटाराजा ने मानबाई तथा शाहजादा खुर्रम को 5 घोड़े तथा 8 ऊँट भेंट किए।[12] 12 जुलाई 1595 ईस्वीं को मोटाराजा उदयसिंह का पूर्व श्वास रोग से लाहौर की हवेली में देहवसान हो गया।[13]

वृद्धावस्था में मोटाराजा उदयसिंह का शरीर बहुत मोटा हो गया था फिर भी वे बादशाह की सेवा करने को तत्पर रहते थे। मोटाराजा उदयसिंह जीवनपर्यंत मुगल सम्राट अकबर के समर्थक तथा चाकर बने रहे। इन्होंनें सहयोग काल में मुगल साम्राज्य की प्रशंसनीय सेवा की थी। परिणामतः मारवाड़ के राठौड़ राजाओं की प्रतिष्ठा में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुई। सहयोग के काल में मारवाड़ के राठौड़ राज्य पर मुगल प्रभाव पड़े जिन्हें राठौड़ों ने आत्मसात कर लिया।

संदर्भ

1. आर॰सी॰ मजूमदार, भारत का वृहत इतिहास, मैकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली 2005, पृ॰ 168
2. हुकमसिंह भाटी (सं॰), राठौडां री ख्यात, भाग-1, इतिहास अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, पृ॰ 119
3. विक्रमसिंह भाटी (सं॰), मुरारीदान की ख्यात, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर 2014, पृ॰ 90
4. रामनारायण दुग्गड़ (सं॰), मुंहणौत नैणसी री ख्यात (भाग-1), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पृ॰ 142
5. हुकमसिंह भाटी (सं॰), राठौडां री ख्यात, भाग-1, इतिहास अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, पृ॰ 121
6. जी॰एच॰ ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2018, पृ॰ 137
7. जगदीशसिंह गहलौत, मारवाड़ राज्य का इतिहास, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, पृ॰ 168

8. श्यामलदास, वीर विनोद, भाग-2, नरेंद्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1886, पृ० 815
9. तबकाते अकबरी, इलियट, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द-5, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता-1873, पृ० 462
10. अबुल फजल, अकबरनामा-बैबरीज कृत अनुवाद, जिल्द-3, पृ० 985
11. अकबरनामा, बैबरीज कृत अनुवाद, जिल्द-3, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता-1902, पृ० 1015
12. हुकमसिंह भाटी (सं०), राठौडां री ख्यात, भाग-1, इतिहास अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, पृ० 124
13. अबुल फजल, अकबरनामा-बैबरीज कृत अनुवाद, जिल्द-3, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता-1902, पृ० 1027

एस-35, **महावीरनगर, टोंक रोड, जयपुर**-302018
मो॰ 97833 07221
sharad.rathore@iisuniv-.ac.in
मो॰ 75976 48155
mamtesh.agarwal26@gmail.com

पीलीभीत जनपद में कृषि-विपणन की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

सचिन यादव, शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग
बी॰जी॰आर कैंपस, पौड़ी

प्रस्तावना

किसानों की आर्थिक समृद्धि कृषि-उपज की समुचित बिक्रय-व्यवस्था पर भी निर्भर करती है। (S.A.K Hussain)

भारत गाँव का देश है। यहाँ 2011 जनगणना के अनुसार 69 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं और अपनी मुख्य आय के लिए कृषि पर निर्भर हैं। कृषि विकास हेतु आवश्यक है कि कृषि उत्पादन के साथ ही कृषि विपणन पर भी समान रूप से ध्यान दिया जाए, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि 'देश की समृद्धि के लिए जहाँ कृषि उपज में उत्तरोत्तर वृद्धि होते रहना आवश्यक है वहीं कृषि उपज के सुचारू क्रय-विक्रय के लिए स्वस्थ विपणन व्यवस्था का होना अति आवश्यक है।' (अरोरा विजय पाल,1993) यदि हम कृषि विपणन को कृषि अर्थव्यवस्था की नींव कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक स्वस्थ्य एवं प्रभावशाली कृषि विपणन खाद्यान्नों की कमी या अधिकता की स्थिति में संतुलन रखता है क्योंकि देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्नताएँ हैं। देश की कृषि विपणन व्यवस्था स्वस्थ होने से कृषकों को उत्पादित फसलों का उचित मूल्य प्राप्त होता है एवं उनकी आय में वृद्धि होती है तथा कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। कृषि एवं कृषि विपणन सुधार के लिए सरकार द्वारा स्वतंत्रता पूर्व भी कई प्रयास किए गए, जिसमें देश के विभिन्न राज्यों में कृषि विपणन अधिनियम, विपणन बोर्डों, समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया जिसमें शाही कृषि आयोग प्रमुख था। इन समितियों एवं आयोगों से कृषि विपणन में व्याप्त अव्यवस्थाओं को कुछ सीमा तक सुधार किया गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात भी भारत में कृषि एवं कृषि विपणन की समस्याओं का समाधान के लिए समय-समय पर बोर्डों, अधिनियमों एवं समितियों का गठन किया गया, इसमें कृषि उपज विपणन अधिनियम, (सिंह, गजेंद्र, 2019) कृषि लागत एवं मूल्य आयोग,न्यूनतम समर्थन मूल्य, राष्ट्रीय किसान आयोग एवं राष्ट्रीय कृषि बाजार प्रमुख हैं। (सिरोही, नरेश, 2019) जिसके द्वारा कृषि विपणन में नियमित मंडियों की स्थापना हुई जिससे कृषकों को उत्पादित फसलों का उचित मूल्य प्राप्त हो सका तथा उनकी आय में बढ़ोतरी हुई। तदोपरांत कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि दर्ज की गई। परंतु कृषि विपणन में सरकार के अनेक प्रयास के बाद भी कुछ समस्या अभी भी विद्यमान हैं, सभी फसलों एवं सभी कृषकों को न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त न होना, (शांताकुमार, रिपोर्ट,2015) स्थानीय स्तर पर फसलों के भंडारण की सुविधा उपलब्ध न होना, सरकारी क्रय केंद्र एवं मंडियों का दूर होना, कृषि विपणन में बिचौलियों का होना, श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण का अभाव, परिवहन सुविधाओं की कमी, मूल्य-संबंधी सूचनाओं का अभाव, सौदा करने की क्षमता में कमी आदि समस्याओं से भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था ग्रस्त होने के कारण किसान उत्पादित फसलों को कम मूल्य पर बेचने को

मजबूर हो जाते है एवं उनकी आय नहीं बढ़ पाती तथा वे और अधिक उत्पादन बढ़ाने के प्रति उत्साहित भी नहीं होते हैं। भारतीय किसान कृषि को निम्न कार्य समझकर इससे दूर होते जा रहे हैं।

अत: आज के परिप्रेक्ष्य में कृषि विपणन व्यवस्था तथा मूल्य निर्धारण प्रणाली को दक्ष बनाना हमारे देश के कृषि के विकास के लिए अति आवश्यक हो गया है।

पीलीभीत जनपद का सामान्य परिचय–पीलीभीत भारत के उत्तर प्रदेश प्रांत का एक जिला है, जिसका मुख्यालय पीलीभीत है। पीलीभीत जिले का उत्तर-पूर्वी खंड सबसे ज्यादा रोहिलखंड में है जो नेपाल की सीमा पर हिमालय के उप बेल्ट में स्थित है। यह 2806' और 28053' उत्तर अक्षांश और 79057'और 80027' पूर्वी देशांतर की परिधि के समानांतर के बीच है। हिमालय के समीप स्थित होने के बावजूद इसकी भूमि समतल है। उत्तर में जिला उधमसिंह नगर और नेपाल का क्षेत्र है, दक्षिण में शाहजहाँपुर जिला है, पूर्व के जिलों में कम दूरी पर जिला खीरी और शेष थोड़ी दूरी पर शाहजहाँपुर जिला और पश्चिम की ओर बरेली जिला है। पीलीभीत जिले का मुख्य भाग घने जंगल से ढका है। कुल 78478 हेक्टेयर वन है। शारदा नहर जिले की मुख्य नहर है, अन्य इसकी शाखाएँ हैं जिले में कुल नहरों की लंबाई 938 किलोमीटर है। यद्यपि पीलीभीत जिला उद्योग के क्षेत्र में थोड़ा पीछे है तथा पीलीभीत की अर्थ व्यवस्था कृषि पर आधारित है। इस क्षेत्र में मुख्य फसल धान, गेहूँ एवं गन्ना है इसलिए मझोला, पूरनपुर, बीसलपुर और पीलीभीत में चार चीनी मिले हैं। अन्य प्रमुख इकाइयाँ तीन विलायक संयंत्र, एक आटा मिल, एक इस्पात संयंत्र और एक अल्कोहल आसवनी हैं। यहाँ के उद्योगों में चीनी, कागज, चावल और आटा मिलों की प्रमुखता है। कुटीर उद्योग में बाँस और जरदोजी, ईंट किंलस, मोमबत्तियों का काम प्रसिद्ध है। पीलीभीत में मुख्य रूप से बाँसुरी निर्माण का कार्य 'एक जनपद एक उत्पाद' के रूप में किया जाता है।

समंकों का संग्रहण एवं विश्लेषण–आदर्श शोध प्रबंधन किसी भी शोधकार्य के अपेक्षित तथ्यों की प्राप्ति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इस शोधकार्य में व्यक्तिगत साक्षात्कार अनुसूची के आधार पर समंकों को एकत्र किया गया। अध्ययन का समग्र पीलीभीत जनपद है। वर्तमान में पीलीभीत जनपद में 5 तहसीलें–पूरनपुर, पीलीभीत, कलीनगर, बीसलपुर, अमरिया हैं तथा पीलीभीत जनपद में 7 विकासखंड–पूरनपुर, ललौरीखेड़ा, अमरिया, मरौरी, बररवेड़ा, बीसलपुर, और बिलसंडा हैं। पीलीभीत जनपद में 7 विकासखंडों के ग्रामों का चयन दैव-न्यादर्श पद्धति के आधार पर किया गया। प्रत्येक विकासखंड में से 5-5 गाँव का चयन किया गया और प्रत्येक गाँव से 10-10 कृषकों का दैव-न्यादर्श पद्धति के द्वारा चयन किया गया। इस प्रकार कुल 350 किसानों से व्यक्तिगत साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से समंकों को एकत्र किया गया। अध्ययन में शोध हेतु आँकड़ों के संग्रहण हेतु प्राथमिक व द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण जनपद पीलीभीत के सभी विकासखंडों में क्षेत्रीय सर्वेक्षण के माध्यम से किया गया है तथा द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग सरकारी एवं गैर-सरकारी स्रोतों के माध्यम से प्राप्त किया गया है। तदुपरांत समंकों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया गया तथा एस॰पी॰एस॰एस॰ व एम॰एस॰ एक्सेल के द्वारा समंकों को सारणी एवं हिस्ट्रोग्राम से समंकों को सरल बनाया गया।

पीलीभीत जनपद में वर्तमान समय में कृषि विपणन व्यवस्था की स्थिति–पीलीभीत जनपद की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है। यहाँ के किसान कृषि पर अधिक ध्यान देते हैं। जनपद में फसलों की उत्पादकता एवं उत्पादन उच्च है। उत्पादित फसलों को किसान सहकारी क्रय केंद्र, मंडियों, मिलों एवं गाँव में बेचते हैं। 40.9% किसान फसलों को (आंशिक या पूर्णतया) गाँव में बेच

 ISSN 0975-735X

देते हैं। 63.1% किसान फसलों को (आंशिक या पूर्णतया) मंडियों में बेचते हैं। 4.3% किसान फसलों को (आंशिक या पूर्णया) मिलों पर बेचते हैं। 8.3% किसान फसलों को आंशिक या पूर्णया) सहकारी क्रय केंद्रों पर बेचते हैं। ई-कृषि बाजार में कोई भी किसान नहीं बेचता है। जबकि 2.9% किसान (आंशिक या पूर्णतया) उपर्युक्त से अन्य स्थान पर बेचते हैं। इन केंद्रों का विस्तृत अध्ययन अग्रलिखित तालिका में किया गया है।

1. **पीलीभीत जनपद में किसानों द्वारा गाँव में उपज विक्रय**—अध्ययन क्षेत्र में 40.9% किसान उत्पादित फसलों को आंशिक या पूर्ण रूप से गाँव में ही बेच देते हैं। इसमें गाँव के बड़े किसान, महाजन या साहूकार, गाँव के व्यापारी, बाहरी व्यापारी आते हैं, यह गाँव से उपज खरीदकर मंडियों में या सरकारी क्रय केंद्रों पर बेचकर मुनाफा कमाते हैं ऐसे किसान ही गाँव में उपज को बेचते हैं जिनके पास संसाधनों की कमी होती है, जैसे—परिवहन का साधन न होना, स्थानीय स्तर पर भंडारण की सुविधा न होना, कम आधिक्य उपज का होना इन्हीं वजह से ये किसान उपज को गाँव में ही किसी को कम दाम पर ही बेच देते हैं और ये बिचौलिया गाँव से खरीदकर बाहर मंडी या सहकारी क्रय केंद्रों पर मुनाफा के साथ बेच देते हैं।

गाँव के बड़े किसान—ये ऐसे किसान होते हैं, जिनके पास कृषिकार्य के लिए अधिक भूमि होती है और कृषि कार्य के लिए सभी संसाधन भी उपलब्ध होते हैं यह स्वयं की उपज को मंडी में या सहकारी क्रय केंद्रों पर बेचते ही हैं साथ ही यह छोटे-छोटे किसानों भी उपज खरीदकर मंडी में या सरकारी क्रय केंद्रों पर बेचकर मुनाफा कमाते हैं। यह उन किसानों की खरीद करते हैं जिनको इन्होंने कर्ज दिया था या जो छोटे किसान होते हैं यह भी मुनाफा कमाने के उद्देश्य से यह कार्य करते हैं।

साहूकार या महाजन—यह धनी व्यक्ति होता है जो किसानों को जरूरत पर उच्च ब्याज दर पर कर्ज देता है तथा फसल पकने पर कर्ज की उगायी शुरू कर देता है। इसमें कुछ किसान कर्ज वापस कर देते हैं तथा कुछ किसान कर्ज वापस नहीं कर पाते हैं तो ये कर्ज के बदले में उन गरीब किसानों की फसल ही खरीद लेते हैं और मंडियों में अधिक मूल्य पर बेचकर दोगुना मुनाफा कमाते हैं।

गाँव के व्यापारी—ये ऐसे लोग होते हैं जिनके पास परिवहन के संसाधन उपलब्ध होते हैं। फसल कटाई के समय यह गाँव के छोटे-छोटे किसानों से उपज खरीदकर मंडियों में अधिक कीमत पर बेचकर मुनाफा कमाने के मकसद से यह कार्य करते हैं। जब तक इनको मुनाफा होता रहता है तब तक यह गाँव से फसल खरीदकर मंडियों में बेचते रहते हैं।

बाहरी व्यापारी—यह व्यापारी बाहर से आते हैं। यह व्यापारी कम या ज्यादा सभी प्रकार की उपज को खरीद सकते हैं और खरीदकर ये व्यापारी उपजों को बाहर ले जाते हैं। यह अन्य जिलों से आते हैं या उसी जिले के भी होते हैं। ये व्यापारी उपज खरीदकर स्वयं की मिलों में प्रसंस्करण का कार्य करते हैं या फिर अन्य मिलों को भी बेच सकते हैं। यह बड़े व्यापारी होते हैं गाँव के व्यापारी, साहूकार, एवं गाँव के बड़े किसान इन सभी से अधिक मूल्य पर उपज को खरीदते हैं।

तालिका संख्या-1

अध्ययन क्षेत्र में उत्पादित फसलों को गाँव में बेचने पर किसानों की प्रतिक्रियाएँ

प्रतिक्रिया	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
हाँ	144	41.1
नहीं	206	58.9
कुल	350	100.0

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2022

उपर्युक्त तालिका संख्या-1 में यह देखा जा सकता है कि कुल 350 किसानों में से 143 (40.9%) किसान उत्पादित फसलों को आंशिक या पूर्णतया गाँव में (गाँव के व्यापारी, बाहरी व्यापारी, गाँव के बड़े किसान एवं गाँव के महाजन) बेच देते हैं जबकि 207 (59.1%) किसान उत्पादित फसलों को गाँव में नहीं बेचते हैं। यह बिचौलिया बाहर मंडियों में या सरकारी क्रय केंद्र पर मुनाफे में फसल को बेच देते हैं।

2. **अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा मंडियों में उपज विक्रय**–अध्ययन क्षेत्र पीलीभीत जनपद में 3 मंडियाँ हैं। 1 पीलीभीत मुख्यालय में मुख्य मंडी तथा 2 उपमंडियाँ पूरनपुर एवं बीसलपुर में हैं। पूरनपुर उपमंडी पूरनपुर विकासखंड क्षेत्र में आती है तथा बीसलपुर उपमंडी बीसलपुर, बरखेड़ा एवं बिलसंडा विकासखंड क्षेत्र में हैं। पीलीभीत मुख्य मंडी अमरिया, ललौरीखेड़ा एवं मरौरी विकास खंड क्षेत्र में आती है। अपने-अपने विकासखंड के किसान क्षेत्रीय मंडियों में उपज को बेचते हैं लेकिन संपूर्ण जिला के किसान अधिकतर जिला मुख्यालय मुख्य मंडी पीलीभीत जनपद पीलीभीत में आते हैं उत्पादित उपज को बेचकर चले जाते हैं। पीलीभीत मंडी में धान, गेहूँ, गुड़, सब्जियाँ एवं फल आदि का क्रय-विक्रय होता है। इन मंडियों में धान एवं गेहूँ की उपज खरीदने के लिए सरकारी क्रय केंद्र भी लगाए जाते हैं इन सहकारी क्रय केंद्रों पर न्यूनतम समर्थित मूल्य पर खरीद की जाती है इन मंडियों में किसान उत्पादित उपज को कमीशन आढ़तियों को बेचते हैं। यह कमीशन आढ़ती व्यापारियों को उपज बिकवा देते हैं और बीच में कमीशन ले लेते हैं ये आढ़ती स्वयं भी कुछ उपज को खरीदकर भंडारण करते हैं तथा मूल्य में वृद्धि होने पर मिलों या बाहरी व्यापारियों को बेच देते हैं। यह आढ़ती किसानों को ब्याज पर कर्ज भी उपलब्ध कराते हैं जिससे किसानों की जरूरत पूरी होती है।

तालिका संख्या-2

अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा उत्पादित फसलों को मंडियों में बेचने के संबंध में किसानों की प्रतिक्रियाएँ

प्रतिक्रिया	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
हाँ	221	63.1
नहीं	129	36.9
कुल	350	100.0

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2022

उपर्युक्त तालिका संख्या-2 में यह देखा जा सकता है कि कुल 350 किसानों में से 221 (63.1%) किसानों ने उत्पादित (आंशिक या पूर्णतया) फसलों को मंडियों में बेचते हैं जबकि 129 (36.9%) किसान उत्पादित फसलों को मंडियों में नहीं बेचते हैं।

3. **अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा मिलों पर उपज विक्रय**–अध्ययन क्षेत्र पीलीभीत जनपद में 4.3% किसान मिलों पर उपजों को बेचते हैं यह मिलें शहरों एवं कस्बों के पास स्थित होती हैं इन मिलों के पास के किसान उपज को सीधे मिलों पर उपज बेच देते हैं इन मिलों पर उपज को प्रसंस्करण करके बाहर भेज दिया जाता है यहाँ पर किसान मंडियों में होने वाली कुछ समस्याओं से बच जाते हैं, जैसे-आढ़त का कमीशन और अन्य प्रकार की भी अनावश्यक समस्याओं से बच जाते हैं। यह मिल मालिक किसानों को जरूरत पर कर्ज भी उपलब्ध कराते हैं।

तालिका संख्या-3

अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा मिलों पर फसल बेचने पर प्रतिक्रियाएँ

प्रतिक्रिया	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
हाँ	15	4.3
नहीं	335	95.7
कुल	350	100.0

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2022

उपर्युक्त तालिका संख्या-3 में यह देखा जा सकता है कि कुल 350 किसानों में से 15 (4. 3%) किसान उत्पादित फसलों को मिलों पर बेचते हैं। कुछ किसान धान मिल व आटा मिलों पर सीधे फसलों को भी बेच देते हैं यह मिल मालिक किसानों की फसल मंडी के मूल्य के आस-पास फसलों पर खरीद लेते हैं यह मिल मालिक आढ़तियों की तरह किसानों के विश्वास पर ऋण भी देते हैं। 335 (95.7%) किसान उत्पादित फसलों को मिलों पर नहीं बेचते हैं।

4. **अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा सहकारी क्रय केंद्रों पर विक्रय**–उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सहकारी क्रय केंद्र स्थापित किए जाते हैं। यह क्रय केंद्र सहकारिता के आधार पर स्थापित किए जाते हैं और यह अस्थाई रूप से लगाए जाते हैं। यह केंद्र विभिन्न सहकारी समितियों, मंडियों में होते हैं इसके अलावा ज्यादा दूरी होने पर स्थानीय स्तर पर भी लगाए जाते हैं। 5 से 10 किमी॰ की दूरी पर सहकारी केंद्र स्थापित रहते हैं। पीलीभीत जनपद में प्रत्येक फसल सीजन में 100 से 120 सहकारी क्रय केंद्र स्थापित किए जाते हैं, इन सहकारी क्रय केंद्रों पर न्यूनतम समर्थित मूल्य पर खरीद होती है। सरकार खरीदकर उपज को भंडारण करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से गरीबों को अनाज उपलब्ध कराती है। इन सहकारी क्रय केंद्रों पर किसानों को प्रत्यक्ष स्थानांतरण के माध्यम से भुगतान किया जाता है अध्ययन क्षेत्र में 8.3% किसान उपज सरकारी केंद्रों पर बेचते हैं।

तालिका संख्या-4

अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा उत्पादित फसलों को सरकारी क्रय केंद्र पर बेचने पर किसानों की प्रतिक्रियाएँ

प्रतिक्रिया	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
हाँ	29	8.3
नहीं	321	91.7
कुल	350	100.0

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2022

उपर्युक्त तालिका में यह देखा जा सकता है कि कुल 350 किसानों में से 29 (8.3%) किसान ही सरकारी क्रय केंद्रों पर उत्पादित फसलों को बेचते हैं। 321 (91.7%) किसान सरकारी क्रय केंद्र पर नहीं बेचते हैं।

5. **अध्ययन क्षेत्र पीलीभीत जनपद में ई-राष्ट्रीय कृषि बाजार के माध्यम से विक्रय**– अध्ययन क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता द्वारा क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान ई-राष्ट्रीय कृषि बाजार के माध्यम से कोई भी किसान उत्पादित उपज को नहीं बेचता है।

6. **अध्ययन क्षेत्र पीलीभीत जनपद में उपर्युक्त से अन्य स्थान पर उपज का विक्रय**–

अध्ययन क्षेत्र में उपर्युक्त से अन्य स्थानों पर जैसे बीज के लिए, शहरी परिवारों के द्वारा प्रत्यक्ष किसानों से खरीदकर घर पर भंडारण कर लेना। उपर्युक्त से अधिक मूल्य प्राप्त होता है लेकिन यहाँ पर किसान सीमित मात्रा में ही उपज बेच सकता है।

तालिका संख्या-5

अध्ययन क्षेत्र में उपर्युक्त स्थान से अन्य स्थान पर फसल बेचने पर किसानों की प्रतिक्रियाएँ

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	10	2.9
बेचते नहीं	340	97.1
कुल	350	100.0

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2022

उपर्युक्त तालिका में यह देखा जा सकता है कि कुल 350 किसानों में से 26 (7.4%) किसान उत्पादित फसलों को उपर्युक्त स्थान से अलग अन्य स्थान को भी उत्पादित फसलों को बेचते हैं इसमें बीज के लिए, शहरी व्यक्ति को खाने के लिए, इन स्थानों पर भी किसान उत्पादित फसलों को बेचते हैं। यहाँ पर उपर्युक्त स्थानों से अधिक मूल्य पर फसल बिक जाती है लेकिन यहाँ पर कुछ ही फसल बिकती है पूरी फसल नहीं बेची जा सकती है।

निष्कर्ष–अध्ययन क्षेत्र पीलीभीत जनपद में मुख्यत: किसान धान व गेहूँ की फसलों को ही उत्पादन करते हैं। यहाँ के किसान उत्पादित फसलों को गाँव में बिचौलियों, मंडियों में आढ़तियों, मिलों, सहकारी क्रय केंद्रों आदि पर मुख्यत: उत्पादित फसलों को बेचते हैं। जनपद के 41% किसान गाँव में ही फसल को बेच देते हैं, इन किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम मूल्य प्राप्त होता है। 63.1% किसान उत्पादित फसलों (धान व गेहूँ) को मंडियों में (आंशिक या पूर्णतया) आढ़तियों को बेच देते हैं। मंडियों में किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम मूल्य प्राप्त होता है, आढ़त भी काटा जाता है और सभी किसानों को छायादार स्थान भी नहीं उपलब्ध हो पाता है। 4.3% किसान उत्पादित फसलों को सीधे मिलो पर बेचते हैं यहाँ भी किसानों को न्यूनतम समर्थित मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता है लेकिन मंडियों की अपेक्षा असुविधा कम होती है। 8.3% किसान सहकारी क्रय केंद्रों पर विक्रय करते हैं यहाँ पर किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त होता है लेकिन अन्य प्रकार की समस्याएँ भी होती हैं जैसे–खर्चा माँगना, करदा काटना, तौलाई में देरी होना, भुगतान देर से होना आादि। 2.9% किसान उपर्युक्त स्थान से अन्य स्थानों पर भी फसलों को बेचते हैं। जैसे–बीज के लिए, शहरी परिवार प्रत्यक्ष किसानों से फसल खरीदना आदि स्थानों पर भी किसानों की फसलों को बेचा जाता है। यहाँ पर किसान को मंडियों या गाँव के बिचौलियों से अधिक मूल्य प्राप्त होता है परंतु यहाँ पर किसान संपूर्ण फसल का कुछ भाग ही बेच सकता है।

सुझाव:

1. अध्ययन क्षेत्र में उत्पादित फसलों (धान व गेहूँ) को (आंशिक या पूर्णतया) 41% किसान गाँव में बेचते हैं। इन सभी को न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं प्राप्त होता है। इसमें सुधार के लिए सरकार द्वारा प्रत्येक ग्राम पंचायत में फसल के पकने के समय में सहकारी क्रय केंद्र स्थापित करना चाहिए। जिससे छोटे-छोटे किसानों की उपज को न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त हो सके।

2. अध्ययन क्षेत्र में 63.1% किसान (आंशिक या पूर्णतया) उत्पादित फसलों (धान व गेहूँ) को मंडियों में आढ़तियों को बेचते हैं। इन सभी किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त नहीं होता

है। न्यूनतम समर्थन मूल्य से जितना कम मूल्य प्राप्त होता है उसकी भरपाई सरकार द्वारा प्रत्यक्ष किसानों को सब्सिडी देकर की जानी चाहिए और छायादार स्थान को बढ़ाने के लिए टिन शेड और लगाए जाने चाहिए।

3. अध्ययन क्षेत्र में 4.3% किसान सीधे मिलों पर बेचते हैं सीधे मिलों पर फसलों को बेचना गैरकानूनी है फिर भी किसान चोरी-चुपके से शहर से दूर मिलों पर फसल को बेच देते हैं। इसमें सरकार को कानून बना देना चाहिए, जिससे किसानों को मंडियों में न जाना पड़े एवं मंडियों में शुल्क भी न अदा करना पड़े।

4. अध्ययन क्षेत्र में 8.3% किसान (आंशिक या पूर्णतया) उत्पादित फसलों (धान व गेहूँ) को सहकारी क्रय केंद्रों पर बेचते हैं इनका प्रतिशत और बढ़ाना चाहिए एवं यहाँ पर आने वाली समस्याओं जैसे–खर्चा माँगना, करदा काटना, तौलाई से मना करना, भुगतान देरी से होना, इन सभी समस्याओं का निराकरण भी सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

5. अध्ययन क्षेत्र में सहकारी क्रय केंद्र को छोड़कर किसी भी बाजार में न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं प्राप्त होता है इन सभी बाजारों में किसानों को जितना न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम प्राप्त होता है उनकी भरपाई राज्य व केंद्र सरकार को मिलकर किसानों को सब्सिडी देना चाहिए।

संदर्भ

1. S.S.Acharya (2006), Agricultural Marketing and Credit Strenghening India Agricultural, Assian Development Bank India Residend Mission (INRM) Chanakya puri, New Delhi, 110021, P.38
2. H.V. Basil, (2006), Agriculture in India. Issues and Challenges, Journal Of Global Economy Vol.2(2) P.19-33
3. के॰एन॰ जोशी, मंजुला मिश्रा (2007), कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धांत एवं भारत में कृषि का विकास, कॉलेज बुक डिपो, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, पृ॰ 1,118, 119
4. नरेश सिरोही (2018), कृषिक्षेत्र की उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, जून, 2018, योजना प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ॰ 21-24
5. सुभाष शर्मा (2018), राष्ट्रीय कृषि बाजार: एक राष्ट्, एक बाजार, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, फरवरी, 2018, योजना प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ॰ 15-19
6. देवाशीश उपाध्याय (2018), कृषिगत आधारभूत अवसंरचना, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, अगस्त, 2018, योजना प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ॰ 13-15
7. जगदीश सक्सेना (2018), किसान कल्याण और कृषि विकास से नवभारत का निर्माण, कुरुक्षेत्र मासिक, मार्च, 2018, योजना प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ॰ 10-14
8. Rajeev Kumar (2021), Study on Marketing efficiency Across rice Marketing Chanals in Uttar Pradesh, Sambodhi, Vol-44, P. 3-4
9. जेपी मिश्रा (2021), किसानों के लिए हितकारी नए कृषि विधेयक, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, जनवरी, 2021, योजना प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ॰ 18-22
10. S.A. Hussain (1937), Agricultural Marketing Northern India, Allen and Unwin Ltd. Londan, P.35
11. वार्षिक रिपोर्ट (2003-04) कृषि एवं सहकारिता विभाग कृषि मत्रालय, भारत सरकार, पृ॰ 139
12. आर्थिक समीक्षा (2002-03), आर्थिक कार्य विभाग, वित मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ॰ 90
13. Central Statistical Organisation (2002), Mannual on Cost of Cultivation Survey- CSO-M- Ag- 02, Government of India, New Delhi. P. 23

14. कृषि वार्षिक रिपोर्ट (2020-21), कृषि सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार, कृषि भवन, नई दिल्ली, पृ॰ 108-112
15. उमाशंकर (2016), किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, जून, 2016, योजना प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ॰ 11
16. विजयपाल अरोरा (1993), कृषि-विपणन एवं कीमत विश्लेषण, गोविंदबल्लव पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय प्रकाशन, पंतनगर, नैनीताल, 263146, पृ॰ 10
17. गजेंद्रसिंह (2019), कृषि-विपणन के क्षेत्र में डिजिटल पहल, योजना मासिक पत्रिका, जनवरी, 2018, योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ॰ 24
18. नरेश सिरोही (2019) कृषिक्षेत्र की उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ, योजना मासिक पत्रिका, जनवरी, 2018, योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ॰ 22

Room No. 32, Boy, s hostel,
B. G. R. Campus,
Pauri, uttarakhand 246001
Mob.919457845898
sachinyadav111993@gmail.com

राजस्थान के पाली जिले की कृषि पर सिंचाई साधनों का पर्यावरणीय प्रभावः एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ॰ ललित सिंह झाला (सहायक आचार्य)
सुखदेव मेघवाल (शोधार्थी, भूगोल विभाग)
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

प्रस्तावना–कृषि समस्त उद्योगों की जननी, मानव जीवन की पोषक प्रगति की सूचक तथा संपन्नता का प्रतीक समझी जाती है। तीव्र विकास की ओर उन्मुख वर्तमान गतिशील विश्व के समस्त एवं विकासशील देश अपने उपलब्ध संसाधनों को अपनी परिस्थितियों एवं संभव अनुकूलतम उपभोग कर कृषि उत्पादकों में परिमाणात्मक एवं गुणात्मक सुधार तथा प्रगतिशील एवं व्यावसायिक कृषि के विकास हेतु सचेत एवं सतत् प्रयासरत है।

भारत कृषिप्रधान देश है एवं कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 69% लोग ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं, जिनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है एक अध्ययन से पता चलता है कि कृषि देश की लगभग 60% लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मुहैया कराती है। रोजगार उपलब्ध कराने के साथ-साथ देश के सकल घरेलू उत्पाद में भी कृषि का लगभग 14% योगदान है। कृषि ही भारतवासियों का सबसे प्रमुख रोजगार एवं उद्यम है। भारतीय भूमि में निर्धनता के समापन, कृषि के सर्वांगीण विकास और भारतीय जन-जीवन की समृद्धि के लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद आर्थिक स्वतंत्रता के लिए योजनाओं में कृषि विकास के लिए यथासंभव प्रयत्न किए गए हैं और अब देश खाद्यानों में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। सन् 1966-67 में हरित क्रांति का उद्‌भव हुआ। हरित क्रांति में ग्रामीण जनजीवन को विविधतापूर्ण बनाने तथा उसकी समृद्धि के लिए पृष्ठभूमि तैयार की गई है। कृषि कार्य आधुनिक प्रविधियों द्वारा संपादित किया जाने लगा। यद्यपि हरित क्रांति से कृषि में तीव्र गति से विकास हुआ है, परंतु यह विकास देश के प्रत्येक भाग में एक समान न होकर अलग-अलग दिखाई पड़ता है। इसके पीछे कई कारण उत्तरदायी है। इन कारणों में क्षेत्र की जलवायु, धरातल, सिंचाई के साधनों का विकास एवं अनेक आर्थिक तथा सामाजिक कारण प्रमुखतः शामिल होते हैं। भारत की कृषि में हो रहे अनेक तीव्रगामी परिवर्तनों से राजस्थान के जिले भी अछूते नहीं रहे। भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुसार ही राजस्थान राज्य की अर्थव्यवस्था में भी कृषि की प्रधानता है, यहाँ की कृषि में न केवल यंत्रीकरण, सिंचाई, रासायनिक खादों का उपयोग, कीटनाशक दवाइयों के उपयोग एवं अधिक उत्पादन देने वाले बीजों में भारी वृद्धि हुई है वरन् कृषि की पद्धति एवं तकनीक में भी बहुत सुधार हुआ है, जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई है।

सिंचाई मिट्टी को कृत्रिम रूप से पानी देकर उसमें उपलब्ध जल की मात्रा में वृद्धि करने की क्रिया है और आमतौर पर इसका प्रयोग फसल उगाने के दौरान, शुष्क क्षेत्रों या पर्याप्त वर्षा न होने की स्थिति में पौधों की जल आवश्यकता पूरी करने के लिए किया जाता है। कृषि के क्षेत्र में इसका

प्रयोग इसके अतिरिक्त निम्न कारणों से भी किया जाता है। जैसे फसल को पाले से बचाने, मिट्टी को सूखकर कठोर बनने से रोकने और धान के खेतों में खरपतवार की वृद्धि पर लगाम लगाने आदि।

जो कृषि अपनी जलीय आवश्यकताओं के लिए पूरी तरह वर्षा पर निर्भर करती है उसे वर्षा आधारित कृषि कहते हैं। सिंचाई का अध्ययन अक्सर जल निकासी, जो पानी को प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से किसी क्षेत्र की पृष्ठ (सतह) या उपपृष्ट (उपसतह) से हटाने को कहते हैं के साथ किया जाता है।

सिंचाई सूखी जमीन को वर्षाजल के पूरक के तौर पर पानी आपूर्ति की तकनीक है। इसका मुख्य लक्ष्य कृषि है। भारत के अलग-अलग हिस्सों में सिंचाई की विभिन्न प्रकार की प्रणालियों को इस्तेमाल में लाया जाता है। देश में सिंचाई कुओं, जलाशयों, आप्लावन और बारहमासी नहरों तथा बहु-उद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं के जरिए की जाती हैं। सिंचाई प्रणाली में समुचित इस्तेमाल के लिए इससे संबंधित इंजीनियर को मिट्टी की प्रकृति, नमी, पानी की गुणवत्ता और सिंचाई की आवृत्ति के बारे में जानकारी होनी चाहिए। वहीं दूसरी ओर अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होने से कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ा। जैसे उत्पादन में कमी होना, मृदा प्रदूषण में वृद्धि होना आदि।

शोधकार्य के उद्देश्य—कृषि पर सिंचाई के प्रभाव का विश्लेषण करना ताकि इस अध्ययन के माध्यम से कृषि योजनाकर्ता, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासक एवं व्यक्ति जो इस क्षेत्र के कृषि विकास योजनाओं में संलग्न हैं, जो लाभान्वित होकर क्षेत्र के विकास के लिए उचित योजना बना सके। प्रस्तुत शोधपत्र में यह भी अनुमान लगाने का प्रयास किया गया कि कृषि के आधुनिक आदानों से कितना लाभ हुआ है और भविष्य में कृषि के विकास के लिए क्या-क्या संसाधन जुटाने के प्रयास किए जाएँ। आधुनिक कृषि आदानों का कृषि उत्पादन व कृषि उत्पादकता पर प्रभाव का अध्ययन करना। कृषि विकास संतुलन की पिछली प्रवृतियों के आधार पर वर्तमान में कृषि विकास के स्तर का मापन करना। आधुनिक कृषि आदानों के असंतुलित प्रयोग से बढ़ रही पर्यावरणीय समस्याओं के लिए कृषि पारिस्थितिकी एवं सिंचाई साधनों का अध्ययन करना।

विधि तंत्र—यह शोधकार्य मुख्य रूप से प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाओं पर आधारित है और इन्हीं सूचनाओं के आँकड़ों से ही निष्कर्ष निकाले गए। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक समंक कृषि विभाग, सिंचाई विभाग, भू-अभिलेख विभाग, परिवहन विभाग कार्यालय, विज्ञान एवं तकनीकि विभाग, राजस्थान से प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्री व स्रोतों से प्राप्त किए गए। इसके अलावा मौसम विभाग एवं सांख्यिकीय विभाग पाली से भी प्रकाशित सूचनाएँ तथा दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं से सूचनाएँ प्राप्त की गईं।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय—राजस्थान का पाली जिला भौगोलिक दृष्टि से अरावली के पश्चिम में तलहटी में बसा एक त्रिभुजाकार जिला है। जो राज्य के मध्य में बसा हुआ, आठ जिलों की सीमाओं को स्पर्श करने वाले इस जिले का ज्यामितीय विस्तार 24044'35.60'' व 26027''44. 54' उत्तरी अक्षांश तथा 72045'57.82'' व 74024'25.28'' पूर्वी देशांतर है। पाली जिला अपनी भौगोलिक स्थिति के अनुसार उत्तर में नागौर, उत्तर-पश्चिम में जोधपुर, पश्चिम में बाड़मेर, जालौर, दक्षिण-पश्चिम में सिरोही, दक्षिण-पूर्व में उदयपुर, पूर्व में राजसमंद व अजमेर की सीमाओं से आबद्ध है। इस जिले का कुल क्षेत्रफल 12387 वर्ग किलोमीटर है, जो राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग 3.619% है तथा समुद्र तल से औसत ऊँचाई 200 मीटर से 300 मीटर है।

पाली जिले की जलवायु सामान्य अर्द्ध शुष्क जलवायु ही कोपेन के जलवायु वर्गीकरण के

अंतर्गत यह जिला Bshw विभाजन में आता है। तथा ट्रिवार्थी के अनुसार Bsh जलवायु वर्गीकरण आता है तथा औसत तापमान 26.6 डिग्री सेल्सियस तथा औसत वार्षिक वर्षा 46.2 सेंटीमीटर होती है। सर्वाधिक वर्षा जुलाई अगस्त माह में होती है, शीतकाल में कभी कभी पश्चिमी विक्षोभों से वर्षा हो जाती है। जिसे मावठ कहा जाता है। इसके पूर्व में अरावली पहाड़ियाँ तथा पश्चिम में रेगिस्तानी भाग होने से इसकी जलवायु पर स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

पाली की अधिकतर नदियों पर बाँध बने होने के कारण इस क्षेत्र का भू-जल स्तर अच्छा है इसलिए सिंचाई के अनेक विकल्प हैं। इसलिए इस क्षेत्र में कृषि एवं उद्योगों का पर्याप्त विकास हुआ है। पाली जिले की 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या 20,34,573 थी, जिसमें 10,25,422 पुरुष, 10,12,151 महिलाएँ थीं। लिंगानुपात 987 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरुषों पर थीं। साक्षरता 62.39 प्रतिशत थी। प्रशासनिक दृष्टि से देखा जाए तो पाली जिले में 10 उपखंड, 9 तहसीलें, 8 नगरपालिका 1 नगर परिषद है। वहीं कुल गाँव 1041 कस्बे 11 हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण इस क्षेत्र में अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, जिससे कृषि की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

सिंचाई का साधनों का महत्त्व–जिले का कृषि व सिंचाई से संबंध बहुत पुराना है। प्राचीन काल से कृषि सिंचाई पर निर्भर रही है। यहाँ की जनसंख्या सिंचाई के साधनों में कुएँ, बावड़िया, तालाबों का प्रयोग करते आए हैं, परंतु आधुनिक काल में तकनीकी विकास के कारण नवीन सिंचाई के साधनों को विकास हुआ है। जैसे नलकूप, नहरें आदि। ये निम्न प्रकार होते हैं।

(क) **खुले कुएँ**–खुले कुएँ कम गहरे होते हैं। पानी की उपलब्धता सीमित होने के कारण इनसे छोटे क्षेत्र में ही सिंचाई हो सकती है। शुष्क मौसम में इसमें पानी का स्तर नीचे चला जाता है।

(ख) **ट्यूबवेल**–ट्यूबवेल गहरे और खेती के ज्यादा अनूकूल होते हैं जिनसे अधिक पानी निकाला जा सकता है। इनमें बारहों महीने पानी रहता है। किसी खुले कुएँ से आधा हेक्टेयर जमीन ही सिंचित हो सकती है। जबकि बिजली से चलने वाला एक गहरा ट्यूबवेल लगभग 400 हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई कर सकता है। हाल के वर्षों में ट्यूबवेलों की संख्या में वृद्धि हुई हैं। इनको खेत के नजदीक वैसी जगह लगाया व उपयोग किया जा सकता है जहाँ भूमिगत जल आसानी से उपलब्ध हो।

ट्यूबवेल का इस्तेमाल मुख्यतौर पर उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार और गुजरात में किया जाता है। राजस्थान और महाराष्ट्र में खेतों को अब उत्स्रुत कूपों से भी पानी दिया जा रहा है। इन कूपों में उच्च दबाव के कारण पानी के नैसर्गिक प्रवाह की वजह से जल स्तर हमेशा ऊँचा बना रहता है।

इनके अलावा तालाबों, नहरों, वाबड़ियों का भी प्रयोग सिंचाई साधनों में किया जाता है। इनके प्रयोग से कृषि उत्पादन के साथ-साथ यहाँ की जनसंख्या का आर्थिक व सामाजिक विकास संभव हो सका है। इस क्षेत्र के कई कृषि उत्पाद अन्य क्षेत्रों में अपनी अलग पहचान बनाए रखते हैं। जैसे मेहँदी।

पाली जिले का कुल कृषि क्षेत्र 8.49 लाख हेक्टयेर, शुद्ध बोया गया क्षेत्र 564 हजार हेक्टयेर, जिसमें खरीफ के अंतर्गत 580 हजार हेक्टयेर (68.31%) जबकि रबी के अंतर्गत 268 हजार हेक्टयेर (31.56%) हैं।

तालिका-1 **कुल कृषि क्षेत्र (** 2006-2021 **)**

फसल ऋतुएँ	2006-07	2010-11	2015-16	2020-21
खरीफ	437872	520882	545237	580519
रबी	238863	361025	235687	268645
कुल कृषिक्षेत्र (हेक्टयेर)	676735	881907	780924	849164

स्रोत: विज्ञान एवं तकनीकि विभाग (राज॰)

स्टेट रिमोट सेंसिंग एप्लीकेशन सेंटर से प्राप्त भू-उपयोग आँकड़े–पाली जिले का कुल सिंचित क्षेत्र 2824.02 वर्ग किमी जो कुल क्षेत्र का 22.79% है जिसमें तालाबों द्वारा 22%, नलकूपों द्वारा 13%, कुओं द्वारा 65% होती है। जिले में 92 कुल बाँध हैं जिसमें जवाई बाँध प्रमुख है। सिंचाई के साधनों के विकास के फलस्वरूप निरंतर कृषि क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। इस क्षेत्र में सिंचाई साधनों का कृषि पर प्रभाव स्पष्ट देखने को मिला है। स्टेट रिमोट सेंसिंग एप्लीकेशन सेंटर के द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह पता चलता है कि भूमि उपयोग में पिछले कुछ वर्षों में क्या परिवर्तन आया है। मुख्य रूप से सिंचित कृषि क्षेत्र, गैर कृषि क्षेत्र में वृद्धि और वन क्षेत्र, बंजर क्षेत्र में कमी देखी गई है।

तालिका-2 **सिंचाई के साधनों द्वारा सिंचित क्षेत्र** 2019-20

सिंचाई के साधन	**सिंचित क्षेत्र (प्रतिशत)**
कुएँ	65
तालाब	22
नलकूप	13
कुल	100

स्रोत: कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग, पाली (राज॰)

सिंचाई साधनों के विकास से इस क्षेत्र में अनेक खाद्यान्न फसलों के साथ व्यापारिक फसलों को भी लाभ पहुँचा है। मुख्य रूप से खाद्यान्न फसलों में गेहूँ, बाजरा, ज्वार, मक्का तथा दलहन व तिलहन फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। वहीं व्यापारिक फसलों में मेहँदी, सरसों, कपास आदि के उत्पादन व क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि से इस क्षेत्र के विकास को एक नई राह मिली है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास से यहाँ के लोगों के जीवन में भी में सुधार हुआ है। इसके साथ ही परिवहन साधनों का विकास भी हुआ है।

समस्याएँ–विश्व अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन वर्तमान समय में कृषि करना विश्व का सबसे जोखिम वाला व्यवसाय बनता जा रहा है क्योंकि प्राकृतिक तत्त्व जैसे तापमान, वर्षा, प्राकृतिक आपदा, कीटों आक्रमण, इत्यादि कारक कृषि उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। विगत वर्षों में मौसम में आए परिवर्तन, विशेषकर औसत तापमान में हुई वृद्धि तथा वर्षा की परिवर्तनीयता के कारण उत्पादन पर पड़े प्रतिकूल प्रभावों को देखा गया है। कृषि जलवायु विशेषज्ञों का मानना है कि मार्च-अप्रेल माह के औसत तापमान में 1 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि से 400 किग्रा॰ प्रति हैक्टेयर उत्पादन कम हो जाता है। साथ ही ये भी देखा गया बढ़ती जनसंख्या की माँग की पूर्ति के लिए संसाधनों का अधिक दोहन किया जाने लगा है। जिसका सीधा प्रभाव कृषि पर पड़ा है। तापमान, वर्षा आदि में परिर्वतन आने से सीधा प्रभाव मृदा क्षमता व कृषि की उत्पादकता पर पड़ता है। साथ ही कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होने लगती हैं।

अध्ययन-क्षेत्र में प्रकृतिजन्य, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है–

* जोत का आकार छोटा होना
* कृषि के आधारभूत ढाँचे का विकसित न होना

* कृषकों द्वारा नवीन कृषि पद्धतियों को न अपनाना
* वित्तीय स्रोतों की कमी
* कृषि उत्पाद के भंडारण की समस्या
* मानसून पर निर्भरता
* भूमिगत जल की उपलब्धता
* विद्युत आपूर्ति की समस्या
* उत्पादकता में कमी
* आर्थिक एवं सामाजिक रूढ़िवादिता

उक्त समस्याओं के अलावा कृषि के लिए सिंचित जल, पेयजल, यातायात, साक्षरता व रोजगार आदि की कमी, कृषि में हरी खाद के उपयोग की कमी, प्रति व्यक्ति आय में कमी, उचित प्रबन्धन का अभाव आदि समस्याएँ अध्ययन क्षेत्र में विद्यमान है जिसके कारण भी कृषि भूमि उपयोग प्रभावित हुआ है।

निष्कर्ष एवं सुझाव–भारत की तरह ही, अध्ययन क्षेत्र में भी कृषि के समक्ष तीन चुनौतियाँ हैं–भूमि, पानी और कृषि श्रम। आजादी के बाद कृषि क्षेत्र विकास पर लगातार ध्यान दिया गया किंतु कृषि योजनाओं का क्रियान्वयन सही ढंग से नहीं होने के कारण इनकी सफलता की दर कम रही है। जिले में कृषि भूमि उपयोग से संबंधित अनेक समस्याएँ हैं। इनके समाधान हेतु आवश्यक सुझाव इस प्रकार हैं–

1. **कृषि भूमि सुधार**–अध्ययन क्षेत्र में प्रतिवर्ष कुछ भूमि कृषि अयोग्य हो जाती है इसके लिए कृषि भूमि संरक्षण आवश्यक है। बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाकर, कृषि भूमि में वृद्धि की जानी चाहिए। कृषि भूमि में फसल एवं सिंचाई व्यवस्था कृषि अनुरूप की जानी चाहिए जिससे फसल उत्पादन लागत के अनुसार लाभप्रद हो सके।

2. **जोत का एकीकरण करना**–कृषि भूमि की चकबंदी करना जरूरी है क्योंकि यहाँ की कृषि भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी हुई है। जिले में कृषि जोत के आकार में निरन्तर कमी दर्ज की गई है। कृषि भूमि का औसत आकार छोटा हाने के कारण भूमि की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। छोटे-छोटे टुकडों में विभाजित कृषि भूमि का एकीकरण करने की महती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नीति बनाई जानी चाहिए जिससे भूमि एकीकरण संभव हो सके।

3. **कृषि के आधारभूत ढाँचे को विकसित करना**–यातायात के साधन व मार्गो का विकास, उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरकों, विद्युत, डीजल की उपलब्धता, कृषि औजारों तथा कृषि उत्पादन विक्रय हेतु मंडी के बिना कृषि उत्पादकता को बढ़ावा संभव नहीं है। अत: कृषि के आधारभूत ढाँचे को विकसित किए जाने की आवश्यकता है।

4. **शुष्क फसल पद्धति**–जिले में जल की कमी को ध्यान में रखते हुए शुष्क कृषि फसलों को अधिक महत्त्व देना चाहिए जिससे फसली क्षेत्र तथा उत्पादन की मात्रा बढ़ सके। इसके लिए कम सिंचाई वाली फसलों को अधिक से अधिक उत्पादित कर भूमि उपयोग प्रणाली को विकसित करने में अधिक से अधिक सहयोग कर सकते हैं। इस प्रकार के बीज परिष्कृत किए जाने चाहिए, जिनकों पानी की कम से कम आवश्यकता हो। इसके लिए मृदा के अनुसार शुष्क कृषि से भूमिगत जल की बचत, आर्थिक लाभ तथा अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

5. **कृषि प्रणाली में बदलाव हेतु सहायता**–यद्यपि कृषकों को आर्थिक सहायता देने की

अनेक योजनाएँ, क्रियान्वित की जा रही है किंतु कमजोर आर्थिक स्थिति वाले कृषकों को आधुनिक कृषि यंत्र एवं तकनीकी के उपयोग के लिए सरकारी सहायता उपलब्ध करवाना सुनिश्चित किया जाना चाहिए। कृषकों को ऋणदाता समितियों द्वारा उन्नत बीज, कीटनाशक तथा सुलभ ऋण सहायता उपलब्ध करवाने की व्यवस्था आवश्यक है। ऐसा स्वनियामक तंत्र विकसित किया जाना चाहिए जिससे वे ऋण व सहायता प्राप्त कर कृषि कार्य आसानी से करके उत्पादन को बढ़ाने में योगदान प्रदान कर सकें।

6. **पड़त भूमि को कृषि योग्य बनाना**—जनसंख्या दबाव के कारण खाद्य समस्या उत्पन्न होती है। इसके समाधान का एक पहलू यह है कि पड़त भूमि को कृषि योग्य बनाकर कृषि भूमि में वृद्धि की जा सकती है जिससे खाद्य समस्या का समाधान हो सकता है।

7. **कृषि उत्पाद के भंडारण की व्यवस्था करना**—कृषकों के सामने एक बड़ी समस्या यह है कि अच्छे उत्पादन के पश्चात् भी अधिकांश अनाज खराब हो जाता है जिसका मुख्य कारण है—भंडारण की सुविधाओं का अभाव। अत: सरकार को चाहिए कि वह कृषकों की सुलभ पहुँच के स्थान पर भंडारगृह बनाए। जहाँ कृषक न्यूनतम शुल्क पर अपने अनाज को भंडारित कर सकें।

8. **मृदा परीक्षण**—कृषकों को समय-समय पर उचित अंतराल के पश्चात खेतों की मृदा का परीक्षण करवाना चाहिए यद्यपि राज्य सरकार ने नि:शुल्क मृदा परीक्षण के लिए जिला स्तर पर केंद्र स्थापित किए हैं किंतु स्थिति के कारण उनकी उपादेयता कम है। अत: चल मृदा प्रयोगशाला के द्वारा समय-समय पर मृदापरीक्षण करना सुनिश्चित किया जाना चाहिए जिससे कृषकों को दीर्घकालिक लाभ प्राप्त होगा।

9. **रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक खाद का प्रयोग**—यद्यपि कुछ कृषक रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ जैविक खाद (गोबर की खाद) का प्रयोग करते हैं लेकिन अधिकांश कृषक उत्पादन के लिए केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और धीरे-धीरे भूमि ऊसर हो जाती है। अत: रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ जैविक खाद का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

10. **फसल चक्र पद्धति को अपनाना**—फसलों को बदल-बदलकर बोना ही फसल चक्र कहलाता है। इससे मृदा उपजाऊपन बना रहता है तथा उर्वरकों के उपयोग की भी कम आवश्यकता होती है। फसल चक्र में एकांतर क्रम में लेग्यूमिनेसी कुल की फसल बोनी चाहिए। लेग्यूमिनेसी कुल के पौधों की जड़ों में राइजोबियम जीवाणु पाया जाता है जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थरीकरण कर नाइट्रेट में बदल देता है जिससे मृदा उपजाऊपन में वृद्धि होती है।

11. **शिक्षा का प्रसार**—शिक्षा के प्रसार से सर्वांगीण विकास होता है। कृषकों का शैक्षणिक स्तर बढ़ने पर भूमि उपयोग पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। यद्यपि कृषकों के लिए सूचना केंद्र, कृषि विकास केंद्र एवं कृषि दर्शन आदि कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं किंतु स्थान विशेष की कृषि के लिए कार्यक्रमों के विस्तार की आवश्यकता है, जिससे कृषक अपनी कृषि का स्वयं ही विकास कर सकता है।

12. **जल का अनुकूलतम उपयोग**—जिले में कुएँ एवं नलकूप सिंचाई के मुख्य साधन है जिनके द्वारा पूर्ण सिंचाई का 99.82% भाग सिंचित किया जाता है जिसके कारण भूमिगत जल-स्तर में तेजी से गिरावट आई है। अत: कुएँ एवं नलकूपों द्वारा सिंचाई के दबाव को कम करने के लिए फुव्वारा सिंचाई को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। वर्षा के जल के उपयोग के लिए नदियों

पर छोटे-छोटे बाँध बनाए जाएँ, जिससे पर्यावरणीय अवक्रमण भी नहीं होगा और भूमिगत जल का उपयोग भी कम होगा। मेड़बंदी से वर्षा द्वारा प्राप्त जल की नमी को अधिक समय तक संरक्षित करके भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि की जा सकती है।

13. **कृषि आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन**—जिले के विकास स्तर को बनाये रखने के लिए कृषि आधारित उद्योगों जैसे डेयरी उद्योग, रस्सी उद्योग, दाल व आटा पिसाई उद्योग, खाद तेल उपयोग आदि विकसित किए जाने चाहिए इनसे रोजगार में वृद्धि होगी एवं जनसंख्या का कृषि पर भारत कम होगा।

14. स्थानीय स्तर पर कृषक प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना कृषकों को स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान कर प्रगतिशील कृषक बनाया जा सकता है। ताकि वे नई जानकारी, नई सोच व अन्य ऊर्जा के साथ कृषि कार्य कर सके।

15. यदि जनसंख्या वृद्वि को नियंत्रित कर दिया जाए तो अनके कृषि-संबंधी समस्याएँ स्वत: ही दूर हो जाएगी।

16. कृषि पर पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए खेतों में जल प्रबंधन करना, जैविक एवं मिश्रित खेती करना, फसल संयोजन में परिवर्तन लाना, कृषि वानिकी आदि उपायों को अपनाकर पर्यावरण के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

संदर्भ

1. बी॰सी॰ अश्विनी (2014), कर्नाटक के कावेरी नदी बेसिन में खेती की जाने वाली फसलों की सिंचाई के बुनियादी ढाँचे, फसल पैटर्न और लाभप्रदता का विकास
2. बी॰डब्ल्यू॰ बहेकर और बी॰डी॰ भोले (1997), अकोला जिले में सिंचाई का विकास और उपयोग: महाराष्ट्र, जर्नल कृषि अर्थशास्त्र खंड, 9 (12),10
3. पी॰के॰ तिवारी (2010), जनसंख्या परिवर्तन और सामाजिक-आर्थिक विकास नियमताबाद ब्लॉक, जिला चंदौली (यूपी), प्रकाशित पीएच॰डी॰ थीसिस, बीएचयू वाराणसी
4. रूपेश कुमार गुप्ता (2011), मॉनिटरिंग लैंड यूज एंड एनवायर्नमेंटल इफैक्ट्स इन जयपुर सिटी यूजिंग जियोइनफॉरमैटिक्स, अप्रकाशित पीएच॰डी॰, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. नेहा सेखरी (2011), पटियाला जिला पंजाब में कृषि विकास का पर्यावरण प्रभाव, अप्रकाशित पीएच॰डी॰ थीसिस, दिल्ली विश्वविद्यालय
6. श्वेता श्रीवास्तव (2013), आजमगढ़ जिले में नवाचारों और कृषि विकास को अपनाना, एक भौगोलिक विश्लेषण, प्रकाशित पीएच॰डी॰ थीसिस, बीएचयू वाराणसी
7. अजयकुमार गुर्जर (2014), राजस्थान 1950-2010 में जलवायु परिवर्तन के लिए कृषि भेद्यता, अप्रकाशित पीएच॰डी॰ थीसिस, दिल्ली विश्वविद्यालय

Dr. Lalit Singh Jhala
III/F-23, Sector-3, University Teachers Colony,
JNVU Campus , Jodhpur -342011Raj.
Mob. 09672751940
jsmeena2020@rediffmail.com

शिक्षण और अधिगम में सूचना संप्रेषण प्रौद्योगिकी का अभिनव उपयोग

डॉ॰ आदित्य प्रकाश, सहायक प्रोफेसर
एम॰टी॰एम॰ कॉलेज, जीरो, लोअर सुबनसिरी (अरुणाचल प्रदेश)
डॉ॰ सुमन, सहायक प्रोफेसर
भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय, सोनीपत (हरियाणा)

शिक्षा में शिक्षण और अधिगम के विशिष्ट कौशल शामिल हैं और कुछ कम मूर्त लेकिन अधिक गहन ज्ञान, सकारात्मक निर्णय और अच्छी तरह से विकसित ज्ञान प्रदान करना है। शिक्षा के मूलभूत पहलुओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कृति प्रदान करना है। शिक्षा का अर्थ है 'किसी व्यक्ति की आत्मक्षमता और प्रतिभा की प्राप्ति को सुगम बनाना।' यह शिक्षाशास्त्र का एक अनुप्रयोग है, शिक्षण और सीखने से संबंधित सैद्धांतिक और व्यावहारिक अनुसंधान का एक निकाय है, दुनिया अधिक परस्पर जुड़ी हुई है, पर्यावरण कम स्थिर होता जा रहा है, और प्रौद्योगिकी सूचना के साथ हमारे संबंधों को लगातार बदल रही है। बदलती वैश्विक परिस्थितियों की माँग है कि हम क्या, लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण, हम कैसे और कहाँ सीखते हैं, पर पुनर्विचार करें। हमें 21वीं सदी के लिए शिक्षा की जरूरत है जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिए बहुत हितकारी है।

सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी का अर्थ—सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी वह तकनीकी है जिसके द्वारा सूचनाओं को शुद्ध एवं प्रभावी रूप से प्राप्त करने, संग्रह करने, प्रयोग करने, निरूपित करने तथा स्थानांतरण में सहायता होती है। इसका उद्देश्य प्रयोगकर्ता के ज्ञान, संप्रेषण कौशल, निर्णय क्षमता तथा समस्या समाधान क्षमता को बढ़ाना है। सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी उस प्रकार की तकनीक है जो उपकरण, उपकरण और अनुप्रयोग समर्थन के रूप में नियोजित होती है, जो सूचना के संग्रह, भंडारण, पुनर्प्राप्ति उपयोग, संचरण, हेरफेर और प्रसार में यथासंभव सटीक और कुशलता से जानकारी को समृद्ध करने के उद्देश्य से मदद करती है। ज्ञान और संचार, निर्णय लेने के साथ-साथ उपयोगकर्ता की समस्या को हल करने की क्षमता विकसित करना। सूचना और संप्रेषण तकनीकी शिक्षण और अधिगम को अधिक प्रभावशाली बनाता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी का महत्त्व—प्रौद्योगिकी ने शिक्षार्थियों के पास विभिन्न शैलियों को पूरा करके शिक्षार्थी के सीखने की सुविधा प्रदान की है। शिक्षा में प्रौद्योगिकी को शामिल करने से पहले, शिक्षकों को पाठ में छात्रों के लिए त्रिआयामी (3-डी) दृश्य बनाने और कक्षा में दी गई अवधारणा को दोहराने में अपना हाथ आजमाने के लिए कई रातें बितानी पड़ती थीं। शिक्षक द्वारा कक्षा में प्रौद्योगिकी का उपयोग शिक्षक और छात्रों के बीच 'पीढ़ी के अंतर' को कम करता है क्योंकि छात्रों को लगेगा कि उनका शिक्षक समय के साथ आगे बढ़ रहा है और उन्हें 21वीं सदी के कौशल के लिए तैयार करने के लिए सुसज्जित है। सूचना

 ISSN 0975-735X

प्रौद्योगिकी का शिक्षा के क्षेत्र मे प्रयोग एक क्रांतिकारी कार्य रहा है छात्र कहीं से भी रहकर तकनीकी की सहायता लेकर कुछ भी सीख सकता है अब चारदीवारी वाले विद्यालय की हमेशा आवश्यकता नहीं है। सीखने के लिए कभी भी कहीं से भी शिक्षा और ज्ञान लीजिए।

शिक्षण-अधिगम में प्रौद्योगिकी रणनीतियों के उपयोग के आयाम–आज शिक्षक कक्षा में सिखाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का उपयोग करते हैं। प्रत्येक शिक्षक को अपनी अपनी सिखाने की रणनीति में सभी प्रकार की शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करना चाहिए। जो कि शिक्षण अधिगम मे बहुत सहायक सिद्ध होते हैं इनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार से हैं–

1. **इलेक्ट्रॉनिक लर्निंग**–इलेक्टॉनिक लर्निंग अर्थात इलेक्टॉनिक उपकरण और डिजिटल मीडिया के माध्यम से शिक्षा लेना ही इ-लर्निंग कहलाता है। ई-शिक्षा के विभिन्न रूप हैं, जिसमें वेब आधारित अधिगम, मोबाइल आधारित अधिगम या मोबाइल लर्निंग, कंप्यूटर आधारित अधिगम, अभाषी कक्षा और वेबिनर इत्यादि शामिल हैं। ई-लर्निंग में वेब का उपयोग करके सामग्री की प्रस्तुति और वितरण से कहीं अधिक शामिल है। ई-लर्निंग का फोकस शिक्षार्थी और सीखने की प्रक्रिया पर होना चाहिए। इसे ऑनलाइन लर्निंग के नाम से भी जाना जाता है।

2. **आभासी अधिगम**–आभासी अधिगम या वर्चुअल लर्निंग उन सभी सीखने की गतिविधियों को संदर्भित करता है जो गैर-सन्निहित शैक्षिक सेटिंग्स में होती हैं, जहाँ शिक्षार्थियों और उनके शिक्षकों को अस्थायी और स्थानिक रूप से अलग किया जाता है। अभाषी शिक्षा मे एक शिक्षक तकनीकी की सहायता से बहुत सारे शिक्षार्थी को विभिन्न स्थानों पर होते हुए भी सफलतापूर्वक पढ़ा और सीखा सकता है। इसका प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है, फिर यह सीखने को बहुत स्फूर्तिदायक, जीवंत और वास्तविक बनाकर पूरे शिक्षण और सीखने के अनुभव को बदल देता है।

3. **मिश्रित शिक्षा**–मिश्रित शिक्षा या ब्लेंडेड लर्निंग एक प्रकार से शिक्षा का औपचारिक कार्यक्रम है जिसमें विद्यार्थी पाठ्यक्रम का एक भाग कक्षा में पढ़ता है और दूसरा भाग ऑनलाइन संसाधानों का प्रयोग करके पढ़ता और सिद्ध करता है। मिश्रित शिक्षा में जगह, समय, विधि तथा गति का नियंत्रण विद्यार्थी के हाथ में होता है। ऑनलाइन लर्निंग के साथ आमने-सामने की बातचीत है। कभी-कभी इसे 'हाइब्रिड लर्निंग' भी कहा जाता है। इसमें आमने-सामने कक्षा, स्व-गति सीखने और ऑनलाइन कक्षा का मिश्रण शामिल है। केवल ऑनलाइन शिक्षा या केवल कक्षा में पढ़ाए गए पाठ से ब्लेंडेड शिक्षा का प्रभाव अधिक माना जाता है। ब्लेंडेड शिक्षा के समर्थकों का मानना है कि 'अतुल्यकालिक इंटरनेट संचार टेक्नालजी' को उच्चतर अध्ययन में शामिल करने से समकालिक, स्वतंत्र तथा सहयोगी शिक्षात्मक अनुभव मिलता है। इस संस्थापन का विद्यार्थियों के शिक्षात्मक रवैया, संतोष तथा सफलता में प्रमुख योगदान है। सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा अध्यापक और छात्र के बीच संचार बेहतर हो जाता है। छात्र अपनी शिक्षा की समझ का गुणात्मक तथा मात्रत्मक मूल्यांकन कंप्यूटर आधारित अंदाज में करते हैं।

4. **ब्लॉग: वेब**–ब्लॉग शब्द एक साधारण वेबपेज को संदर्भित करता है जिसमें राय, सूचना, व्यक्तिगत डायरी प्रविष्टियाँ या पोस्ट नामक लिंक के संक्षिप्त पैराग्राफ शामिल होते हैं। शिक्षण ब्लॉग शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया के लिए एक शक्तिशाली और प्रभावी प्रौद्योगिकी उपकरण हो सकता है ब्लॉग से भी शिक्षण अधिगम संभव है जिसका उपयोग संसार मे कहीं से भी किया जा सकता है बस आपके पास एक लैपटाप, स्मार्ट फोन के साथ इंटरनेट की सुविधा होनी चाहिए।

5. **विकी**–विकी एक वेब पेज या वेबपेज का सेट है जिसे किसी भी व्यक्ति द्वारा आसानी से संपादित किया जा सकता है जिसे एक्सेस की अनुमति है। विकी हमारे शिक्षण-अधिगम वातावरण में अधिक व्यापक रूप से सहयोगी, रचनात्मक सीखने की पेशकश करने का अवसर प्रदान करता है। सहयोगी अधिगम एक शैक्षणिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य कक्षा गतिविधियाँ को सैद्धांतिक और सामाजिक अधिगम अनुभव करना है। यह व्यक्ति के दृष्टिकोण, ज्ञान और कौशल का अधिग्रहण है जो सामूहिक अंत:क्रिया के परिणामस्वरूप होता है।

6. **मोबाइल लर्निंग**–यह वायरलेस तकनीकों में से एक है जिसका उपयोग कहीं भी, कभी भी और कोई भी कर सकता है। इसका अर्थ है 'चलते हुए सीखना'। वह अधिगम है जिसे मोबाइल उपकरणों का उपयोग करके कहीं भी और किसी भी समय किया जा सकता है। मोबाइल लर्निंग में एक स्मार्ट मोबाइल फोन, इंटरनेट सुविधा और कुछ उपयोगी एप्लिकेशन के उपयोग से विद्यार्थी कहीं से कभी भी सीख सकते हैं साथ ही शिक्षक सीख सकते हैं।

7. **ऑनलाइन कक्षा**–ऑनलाइन शिक्षा को सरल भाषा में इंटरनेट आधारित शिक्षा व्यवस्था कहते हैं। आज एक क्लिक पर आप सारी सूचना मिल जाती है। वैसे तो ऑनलाइन शिक्षा काफी समय हमारे बीच मौजूद है। पिछले कई सालों से अलग-अलग प्लेटफॉर्म के माध्यम की उपलब्ध्ता के कारण शिक्षा के क्षेत्र में इतनी गंभीरता से नहीं लिया जाता था। ऑनलाइन कक्षा आज की सदी मे अत्यंत आवश्यक शिक्षण प्रणाली है। वर्तमान 2022 में इसका प्रयोग खूब हुआ है जिसमें यू-ट्यूब चैनल बहुत प्रभावी सिद्ध हुए हैं। 2020 में जब तालाबंदी हुई तब ऑनलाइन कक्षा बहुत उपयोगी सिद्ध हुई विश्व में प्रत्येक देश ने ऑनलाइन कक्षा का आयोजन करवाया था जिसके लिए बहुत सारे सॉफ्टवेयर एप्लीकेशन का प्रयोग किया गया था जिसमें जूम, गूगल मीट प्रमुख रहे कोविड की महामारी में ऑनलाइन कक्षाएँ शिक्षा का एक बड़ा माध्यम साबित हुई हैं लॉकडाउन में भारत के 80 लाख विद्यालयों ने गूगल मीट, जूम जैसे एप्लीकेशन से शिक्षा प्रदान की है।

8. **ऑनलाइन परीक्षा और परिणाम**–वर्तमान में और कुछ सालों से ऑनलाइन परीक्षा का चलन चल रहा है अधिकतर परीक्षाएँ ऑनलाइन हो रही हैं जिनमे एनटीए नेट और सीटीईटी प्रमुख परीक्षा है ऑनलाइन परीक्षा के लिए एक कंप्यूटर सेंटर की आवश्यकता होती है साथ ही इंटरनेट की सुविधा रहती है सभी कैंडिडेट अपने दिए गए कंप्यूटर पर एक आई डी और पासवर्ड के साथ लॉगिन करते हैं और एक निश्चित समय पर परीक्षा संपन्न हो जाती है। परीक्षा का परिणाम तो पिछले दो दशक से ही ऑनलाइन आ रहा है जिसमें कैंडिडेट अपना अनुक्रमांक भरकर अपने परिणाम को डाउनलोड करते आए हैं विश्वविद्यालयों ने ऑनलाइन एडमिशन से लेकर छमाही और वार्षिक परीक्षा भी ऑनलाइन कारवाई थी। तालाबंदी के समय ऑनलाइन शिक्षा और ऑनलाइन कक्षा सकारात्मक रूप से शिक्षण प्रक्रिया में सहायक रहे।

9. **शैक्षिक प्रशासन**–वर्तमान शिक्षण प्रणाली में सूचना संप्रेषण प्रौद्योगिकी का उपयोग आँकड़ों के निर्माण रख रखाव में और प्रेषण के लिए बड़े पैमाने पर कंप्यूटर और अन्य उपकरणों से किया जा रहा है विश्वविद्यालय और अन्य शिक्षण संस्थानों में कंप्यूटर और उपकरण बहुत उपयोगी साबित हो रहे हैं। प्रवेश परीक्षा और अंक पत्र के निर्माण सभी में सूचना संप्रेषण प्रोद्योगिकी का उपयोग बेहतर अवसर परिणाम प्रदान कर रहे हैं।

10. **दूरस्थ शिक्षण प्रणाली**–सूचना और संप्रेषण तकनीकी का प्रयोग बेहतरीन तरीके से दूरस्थ शिक्षा प्रणाली मे किया जा रहा है जिसमें ऑनलाइन प्रवेश वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग शिक्षा की

 ISSN 0975-735X

प्रविधियों शिक्षण समाग्री दूरवर्ती कॉन्फ्रेंसिंग कंप्यूटर और इंटरनेट के साथ अत्यधिक उपयोगी साबित हो रही है इससे शिक्षण आसान हो गया है।

पारंपरिक शिक्षाशास्त्र पर सूचना और सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का लाभ

(1) पाठ में चित्र या वीडियो शामिल करके, शिक्षक छात्रों को नई अवधारणाओं को समझने के लिए आवश्यक प्रासंगिक संकेत प्रदान कर सकते हैं।

(2) दृश्य जानकारी रोजमर्रा की भाषा और अधिक कठिन शैक्षणिक भाषा के बीच आवश्यक सेतु या मचान प्रदान कर सकती है।

(3) इलेक्ट्रॉनिक रूप से उत्पन्न संसाधन पाठ्यपुस्तकों और सूचना के अन्य स्थिर स्रोतों से बेहतर हैं, क्योंकि उन्हें उपयोगकर्ताओं द्वारा सीधे संपादन या उपयोगकर्ता प्रतिक्रिया के आग्रह के माध्यम से सुधारा जा सकता है।

(4) प्रौद्योगिकी छात्रों को यह दिखाने की अनुमति देती है कि उन्होंने अपने विकास के बहु-मूल्यांकन में क्या सीखा है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी के लाभ–शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आई॰सी॰टी॰ के तरीकों से अत्यधिक लाभ हैं, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आईसीटी के लाभों का सारांश नीचे दिया गया है–

(1) सीखने और सिखाने दोनों की दक्षता में सुधार करता है।

(2) छात्रों की अभिप्रेरणा में वृद्धि।

(3) व्यक्तित्व विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

(4) छात्रों की सक्रिय भागीदारी।

(5) स्व-गति अधिगम को बढ़ावा देता है।

(6) बहु-संवेदी अधिगम का अनुभव।

(7) छात्रों के लिए जानकारी तक पहुँचने के लिए बहुत लचीला और समृद्ध माध्यम है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रति शिक्षकों की जिम्मेदारी:

(1) सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए ऑनलाइन संसाधनों की उपलब्धता जानने के लिए।

(2) छात्रों के समूह के अनुसार संसाधनों का सामग्री आधारित चयन और उपयुक्त गतिविधियों का विकास करना जो भाषा और डिजिटल कौशल दोनों को बढ़ाने के अवसर पैदा करेगा।

(3) डिजिटल पाठ पढ़ने और लिखने और ऑनलाइन संचार और प्रकाशन सहित डिजिटल युग में कार्य करने के लिए कौशल को ट्रैक करने की आवश्यकता है।

(4) डिजिटल साक्षरता निर्बाध और एकीकृत तरीके से की जाती है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना और सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी के उपयोग का प्रभाव

(1) सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी का उपयोग करने वाले शिक्षक पाठों की योजना को और अधिक कुशलतापूर्वक और अधिक प्रभावी और अधिक उपयोगी बना रहे हैं।

(2) शिक्षक बहु सुविधाकर्ता बनते हैं।

(3) यह अंत:विषय दृष्टिकोण को बढ़ावा देने में मदद करता है।

(4) शिक्षण अधिगम उद्यम अधिक परिणामोन्मुखी बन गया है।

(5) छात्रों की जरूरतों का मार्गदर्शन करने और सीखने की प्रक्रिया में अन्वेषण करने में शिक्षकों की सहायता करें।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी के उपयोग की सीमाएँ

(1) विद्यालय में आई॰सी॰टी॰ की अधिक सुविधा नहीं है।

(2) शिक्षकों, संस्थानों के प्रमुखों और शैक्षिक प्राधिकरणों द्वारा निकाले गए उपयोग, अनुप्रयोगों और लाभों के बारे में व्यापक अज्ञानता फैली हुई है।

(3) शिक्षण अधिगम की गतिविधियों पर अपना प्रभुत्व खोने के लिए शिक्षकों की ओर से भय और आशंका है।

(4) शिक्षक परिवर्तन नहीं करना चाहते हैं या नई पद्धतियों पर स्विच नहीं करना चाहते हैं।

(5) कई छात्र सक्रिय स्वतंत्र पूछताछ और ज्ञान के खोजकर्ता के लिए अपनी भूमिका के संक्रमण के पक्ष में नहीं हैं।

निष्कर्ष–हम कह सकते हैं कि सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी (आई॰सी॰टी॰) के उपयोग में छात्रों को विभिन्न चुनौतियों और उनके द्वारा पूरी की जाने वाली जिम्मेदारी का सामना करने के लिए तैयार करने की काफी क्षमता है। सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी का प्रयोग शिक्षण और अधिगम में छात्रों में नया जोश, ऊर्जा भर देता है साथ ही कक्षा अनुशाशन बनाने मे अत्यंत सहायक रहा है इसका प्रयोग छात्रों को हमेशा उत्साहित रखता है उनकी जिज्ञासा पूरे समय विषयवस्तु में बनी रहती है आज की शिक्षा व्यवस्था के परिदृश्य में संक्रमण, परिवहन और क्रांति। इसलिए, शिक्षकों को यह महसूस करना होगा कि यदि छात्रों को उच्चस्तर की योग्यता प्राप्त करनी है तो उनके पास शिक्षा के क्षेत्र में एक एकीकृत उपकरण के रूप में प्रौद्योगिकी को अपनाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

संदर्भ

1. ए॰ अग्रवाल (2000), वेब आधारित शिक्षण और शिक्षण प्रौद्योगीकियों के अवसर और चुनौतियाँ
2. एस॰के॰ मंगल, उमा मंगल (2014), सूचना संचार और शैक्षिक प्रौद्योगिकी, टोंडन पब्लिशिंग, लुधियाना
3. आई॰सी॰टी॰ का भविष्य और लर्निंग इन द नॉलेज सोसाइटी, आयोजित संयुक्त डीजी जे॰आर॰सी॰–डीजी, ईएसी कार्यशाला पर रिपोर्ट से विले में, 20–21 अक्टूबर 2005
4. एम॰आर॰ रावल (2014), अँग्रेजी भाषा शिक्षण में आई॰सी॰टी॰ का उपयोग
5. ए॰पी॰ राव (2021), इंफॉर्मेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलाजी मनीषा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
6. डी॰ गलानौली और वी॰ मैकनेयर (2001), शिक्षण प्लेसमेंट में आई॰सी॰टी॰ से संबंधित समर्थन के बारे में छात्रों की धारणा, जर्नल ऑफ कंप्यूटर असिस्टेंड लर्निंग, 17(4), पृ॰ 396–408
7. ए॰ नेवगी (2008), आई॰सी॰टी॰–सुगम शिक्षण के माध्यम से प्रदर्शित विश्वविद्यालय के शिक्षण कर्मचारियों की शैक्षणिक जागरूकता, इंटरएक्टिव लर्निंग एनवायरनमेंट, 16(2), पृ॰ 101–116
8. एस॰ प्रेसट्रिज (2010), ऑनलाइन मंचों में शिक्षकों के लिए आई॰सी॰टी॰ व्यावसायिक विकास: चर्चा की भूमिका का विश्लेषण शिक्षण और शिक्षक शिक्षा, 26(2), पृ॰ 252–258

वैश्वीकरण के युग में भारतीय संघवाद

मनदीप
एम०ए० राजनीति विज्ञान विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

परिचय–एक प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं सभ्यता लेकिन पिछले दो दशकों के दौरान ही इसे बहुत प्रमुखता मिली है। इसका दुनिया के सभी देशों विशेषकर विकासशील देशों की प्रशासनिक प्रणालियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भारत भी उस प्रक्रिया का हिस्सा बन गया जब हमने 1991 में इराक के साथ अमेरिका के युद्ध के कारण घरेलू वित्तीय संकट के बाद अपनी अर्थव्यवस्था को दुनिया के बाकी हिस्सों के लिए खोल दिया।

स्वतंत्र भारत की संघीय परियोजना उतनी ही अपनी औपनिवेशिक विरासत की उपज थी जितनी कि राष्ट्रीय निर्माण की अनिवार्यताओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया। संस्थापक पिताओं को उम्मीद थी कि उनका संस्थागत ढाँचा देश की जटिल विविधता और एक नए राष्ट्र के निर्माण के साथ-साथ संबोधित करेगा। बहुलवाद और विकेंद्रीकरण की ओर रुझान केंद्रीकरण सुविधाओं के साथ सह-अस्तित्व में हैं, जिससे कुछ भारतीय संघवाद को अर्ध-संघवाद के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं।

योजना आयोग के गठन और भारतीय राज्य के समाजवादी नियोजन आर्थिक विकास के पालन के साथ, केंद्र सरकार जबरदस्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आई थी। हालाँकि, भारतीय संविधान ने विविधता और सांस्कृतिक बहुलवाद को समायोजित करने का आधार भी रखा। संविधान ने अल्पसंख्यक अधिकारों को सुनिश्चित किया और प्रत्येक धर्म के समुदाय को अपने निजी क्षेत्र में स्वायत्तता प्रदान की।

पिछले पाँच दशकों में भारतीय संघवाद को भारतीय राष्ट्र की गैर-क्षेत्रीय आवश्यकताओं के साथ क्षेत्रीय संतुलन की चुनौती का सामना करना पड़ा है। केंद्रीकरण को क्षेत्रीय और सांस्कृतिक बहुलवादों के उत्तरोत्तर क्रिस्टलीकरण के साथ संघर्ष करना और सह-अस्तित्व रखना पड़ा है। विविध पहचानों को तेज करने में कई कारकों ने योगदान दिया है।

इसमें शामिल है–राज्यों का भाषाई पुनर्गठन सांस्कृतिक और शैक्षिक विशेषाधिकारों के संबंध में अल्पसंख्यकों को संवैधानिक अधिकार प्रदान करना, शिक्षा और कृषि के दो महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रीय सरकारों का अनन्य अधिकार क्षेत्रय अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए शिक्षा और रोजगार में सकारात्मक कार्रवाई नीतियों का विस्तार, स्थानीय जातीय अल्पसंख्यकों के लिए विशेष शैक्षिक प्रावधान और कश्मीर, पंजाब और उत्तर-पूर्व में स्वायत्तता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष।

हालाँकि वैश्वीकरण एक बहुत ही विवादित अवधारणा है, लेकिन आम सहमति है कि पिछले दो दशकों में, लोगों, पूँजी, माल और विचारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

अक्सर, यह सुझाव दिया गया है कि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, एक तरफ, राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता का ह्रास हुआ है और दूसरी ओर राजनीतिक शक्ति का एक अधोमुखी आंदोलन, 'वैश्वीकरण' की युग्मित ताकतों को जन्म दे रहा है।

भारतीय राजनीति पर वैश्वीकरण के अलग-अलग प्रभाव हैं और इन चुनौतियों के लिए भारतीय संघवाद की तीन अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हैं।

सबसे पहले, यह सुझाव दिया जाता है कि अर्थव्यवस्था के विनियमन का देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जबकि विकसित क्षेत्र तेजी से आगे बढ़ने पर अल्प विकसित और पिछड़े क्षेत्र पिछड़ जाएँगे। यदि भारतीय राज्य को समानता और संतुलित विकास के अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाना है, तो यह अनिवार्य है कि राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों को बढ़ाया जाए। उदाहरण: सरकार प्रतिस्पर्धात्मकता और बेहतर सेवा वितरण के लिए समान नीतियाँ रखने के लिए केंद्रीकरण की माँग क्यों करती है।

दूसरा, वैश्वीकरण एक वैधता शून्य पैदा करता है। जबकि राष्ट्र-राज्य आर्थिक संप्रभुता के अपने स्वयं के विघटन की अध्यक्षता करते हैं, यह अपने नियंत्रण या आंतरिक संप्रभुता को नहीं छोड़ता है। अपनी घरेलू संप्रभुता को बढ़ाने के लिए, उसे स्थानीय लोकतांत्रिक ढाँचे बनाने के लिए मजबूर किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप राज्य की वैधता को आगे बढ़ाया जाता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि भारतीय संघवाद की तीसरी परत, पंचायती व्यवस्था की संवैधानिक मान्यता, ठीक इसी चिंता का प्रतिबिंब है।

भारतीय संघवाद के सामने तीसरी चुनौती नागरिक समाज संगठनों का तेजी से उदय होना है। इनमें से कुछ संघ आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकतांत्रिक शासन के समानांतर और क्षैतिज ढाँचे का निर्माण करते हैं, जबकि अन्य लोकतंत्र के संचालन के लिए खतरा हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे नियंत्रण मुक्त होने के साथ, भारतीय राज्यों के बीच विशेष रूप से विदेशी स्रोतों से निवेश सुरक्षित करने के लिए स्वाभाविक रूप से प्रतिस्पर्धा उभरी है। इसका क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ाने में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, राज्यों के बीच की खाई में वृद्धि हुई है।

यदि भारतीय राज्य आर्थिक विकास के लिए प्रतिबद्ध है, तो वह प्रमुख, केंद्रीय रूप से प्रबंधित सुधारात्मक हस्तक्षेपों को शुरू किए बिना दो-स्तरीय प्रणाली का जोखिम नहीं उठा सकता है। जबकि राज्य अपने विकास में व्यापक प्रगति करते हैं, पिछड़े राज्यों को उनके सामाजिक और आर्थिक विकास में सहायता न केवल अपने लिए, बल्कि उनके शासन के लिए संभावित सकारात्मक प्रभावों के कारण भी करनी पड़ती है।

संघवाद आधुनिक संविधानवाद के सबसे महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक है। यह शायद पूरे विश्व में स्थापित है, राजनीतिक संगठन के एकमात्र रूप में, जो उद्देश्यों, रुचियों और परंपराओं के विविध पैटर्न वाले समुदायों के अनुकूल है, जो समान उद्देश्यों और हितों की खोज और सामान्य परंपरा की खेती में एक साथ शामिल होना चाहते हैं। संघवाद का मूल उद्देश्य अनेकता में एकता, सत्ता में अंतरण और प्रशासन में विकेंद्रीकरण है। संघवाद की मूल शर्त बहुलता है, इसकी मूल प्रवृत्ति सामंजस्य है और इसका नियामक सिद्धांत एकजुटता है। डेनियल जे॰ एलाजारा के अनुसार, 'संघीय व्यवस्था प्रत्येक को अपनी मौलिक राजनीतिक अखंडता बनाए रखने की अनुमति प्रदान करती है।'

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, संघवाद 'अनेकता में एकता' के सिद्धांत पर टिका है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैंड, कनाडा और भारत के मामले बताते हैं कि उनमें से प्रत्येक में प्रचलित विविधताएँ हैं जिन्हें संरक्षित करने की माँग की जाती है। हालाँकि लोगों के जीवन के विविध धार्मिक, जातीय और सांस्कृतिक पैटर्न हैं, लेकिन उन्होंने सामान्य पहचान की भावना भी विकसित की है जिसे वे खोना नहीं चाहते हैं। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इन सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद, विविध लोगों को एक साथ जोड़ने के लिए एकता की प्रबल भावना होनी चाहिए। संघीय राज्य, आवश्यक विशेषताओं में एकात्मक राज्य से भिन्न होने के कारण, कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें सरकारों के दो समूह हैं जिन्हें एक साथ और सद्भाव में काम करना चाहिए।

एकीकरण का तात्पर्य भारत में विभिन्न भाषाओं, धर्मों, नस्लों आदि के लोगों के सह-अस्तित्व से है। लेकिन कुछ विखंडनीय संघीय प्रवृत्तियाँ हैं जो राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरा हैं। वे भारत में संघीय व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करते हैं। यहाँ हम चुनौतियों के निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्रों पर अपनी चर्चा जारी रखेंगे–

इस तथ्य के बावजूद कि भारतीय संविधान एक संघीय ढाँचे की स्थापना करता है, भारतीय संविधान को एक सच्चे संघ की श्रेणी में रखना वास्तव में बहुत कठिन है। संविधान निर्माताओं ने इसमें कुछ गैर-संघीय विशेषताओं को शामिल करके भारतीय संघ के वास्तविक स्वरूप को संशोधित किया है। ये हैं: संविधान का अनुच्छेद i भारत को 'राज्यों के संघ' के रूप में वर्णित करता है, जिसका अर्थ है दो चीजें–पहला, यह राज्यों के बीच एक समझौते का परिणाम नहीं है और दूसरा, राज्यों को अलग होने या अलग होने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। इसके अलावा, संघ और राज्यों का संविधान एक एकल ढाँचा है जिससे न तो बाहर निकल सकता है और न ही जिसके भीतर उन्हें कार्य करना चाहिए। संघ एक संघ है क्योंकि यह अविनाशी है और देश की एकता को बनाए रखने में मदद करता है। केंद्र राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति करता है और राज्यपाल की सिफारिशों पर या अन्यथा राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में ले सकता है। दूसरे शब्दों में, राज्यपाल राज्यों में केंद्र का एजेंट होता है। भारतीय संघीय व्यवस्था के कामकाज से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राज्यपाल ने राज्य के मुखिया की तुलना में केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में अधिक कार्य किया है। यह केंद्र सरकार को राज्य पर नियंत्रण रखने में सक्षम बनाता है।

प्रशासन राष्ट्रीय आपातकाल लागू होने के बाद राज्यों पर संघ का नियंत्रण। एक संघ में इकाइयों की समानता की गारंटी संघीय विधायिका (संसद) के ऊपरी सदन में उनके समान प्रतिनिधित्व द्वारा दी जाती है। हालाँकि यह भारतीय राज्यों के मामले में लागू नहीं है। राज्यसभा में उनका असमान प्रतिनिधित्व है।

संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे एक सच्चे महासंघ में प्रत्येक राज्य, चाहे उसका क्षेत्रफल या जनसंख्या के मामले में उनका आकार कुछ भी हो, यह उच्च सदन यानी सीनेट में दो प्रतिनिधि भेजता है। इन सबके अलावा, मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक जैसी सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ केंद्र सरकार द्वारा की जाती हैं। इसके अलावा, एकल नागरिकता है। राज्यों के लिए अलग संविधान का कोई प्रावधान नहीं है। राज्य संविधान में संशोधन का प्रस्ताव नहीं दे सकते। इस तरह के संशोधन केवल केंद्रीय संसद द्वारा ही किए जा सकते हैं। प्रशासनिक प्रणाली की एकरूपता सुनिश्चित करने और संघीय व्यवस्था को बिगाड़े बिना न्यूनतम सामान्य प्रशासनिक मानकों को बनाए रखने के लिए। आईएएस और आईपीएस जैसी अखिल भारतीय सेवाएँ बनाई गई

हैं जिन्हें संघ के नियंत्रण में रखा गया है। वित्तीय मामलों में भी राज्य काफी हद तक संघ पर निर्भर करते हैं। राज्यों के पास अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं हैं। वित्तीय आपातकाल के दौरान, केंद्र राज्य के वित्त पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। किसी भी राज्य या उसके हिस्से में गड़बड़ी की स्थिति में, केंद्र सरकार को राज्य में या राज्य के अशांत हिस्से में केंद्रीय बल की प्रतिनियुक्ति करने का अधिकार है। साथ ही, संसद, कानून द्वारा, किसी भी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा या घटा सकती है और उसके नाम और सीमाओं को बदल सकती है। संघीय सिद्धांत में न्यायालयों की दोहरी प्रणाली की परिकल्पना की गई है। लेकिन, भारत में हमने सर्वोच्च न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय के साथ एकीकृत कर दिया है। भारत का संविधान संघ सूची के अनुसार सभी महत्वपूर्ण विषयों को केंद्र को सौंपकर एक मजबूत केंद्र की स्थापना करता है। राज्य सरकारों के पास बहुत सीमित शक्तियाँ हैं। आर्थिक रूप से राज्य केंद्र पर निर्भर हैं उपर्युक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि राज्यों की कीमत पर केंद्र के पक्ष में झुकाव है। राज्यों को केंद्र के साथ मिलकर काम करना होगा। इसने इस तर्क को समर्थन दिया है कि भारतीय संविधान रूप में संघीय है लेकिन भावना में एकात्मक है। संवैधानिक विशेषज्ञों ने इसे 'अर्ध संघीय' प्रणाली कहा है।

किसी भी संघवाद के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक यह है कि असमान राज्यों के पास समान शक्तियाँ होनी चाहिए। एक ओर क्षेत्रीय विषमताएँ एक-दूसरे के साथ-साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अभिनेताओं की तुलना में इकाइयों की सौदेबाजी की शक्ति पर प्रभाव डालती हैं। दूसरी ओर इन इकाइयों की आबादी की सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी पर उनका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद हमने केंद्र और राज्यों के साथ एक संघीय प्रणाली का विकल्प चुना, जिसमें उम्मीद की जाती थी कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में काम करें और कल्याण को अधिकतम करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे का सहयोग करें। जहाँ तक केंद्र-राज्य संबंधों की बात थी, देश का संविधान मार्गदर्शक सिद्धांत था।

वास्तविक व्यवहार में, प्रचलित राजनीतिक वातावरण के कारण भारत मूल रूप से 1967 तक सरकार का एकात्मक रूप था। उत्तर भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा राज्य स्तर पर सरकारों के गठन के साथ बड़ा परिवर्तन हुआ। इसने वित्तीय, प्रशासनिक और विधायी क्षेत्रों में केंद्र और राज्यों के बीच घर्षण को जन्म दिया। यह टकराव के संघवाद का दौर था और यह 80 के दशक के अंत तक जारी रहा।

1990 के दशक की शुरुआत में सहकारी संघवाद के साथ केंद्र-राज्य संबंधों की दिशा में एक बड़ा बदलाव आया, जो 1990 से पहले के पिछले दो दशकों के दौरान प्रचलित टकराव संघवाद की जगह ले रहा था। इस परिवर्तन के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारणों में से एक भारतीय में वैश्वीकरण का आगमन था।

गठबंधन युग के दौरान भारत में संघवाद का स्वभाव स्पष्ट रूप से बदल गया है। राजनीतिक विचार-विमर्श भारत में संघ-राज्य संबंधों के प्रशासनिक और वित्तीय पहलुओं को पार करता हुआ प्रतीत होता है। जिन राज्यों में उन दलों की सरकारें होती हैं जो केंद्रीय गठबंधन का हिस्सा होते हैं, वे यह आभास देते हैं कि केंद्र के साथ उनका कोई टकराव नहीं है। उनकी शिकायत विनम्र या वश में है और सामान्य जागरूकता यह है कि वे विशेष चिंतन करते हैं और केंद्र द्वारा अनुमोदित संसाधनों के मामलों में पकड़ रखते हैं। परिणामस्वरूप, यह कभी-कभी शोर मचा रहा है कि केंद्र

विपक्षी दलों की सरकारों वाले राज्यों के खिलाफ पक्षपात कर रहा है। हालाँकि, जब कोई योजना आयोग द्वारा वार्षिक आधार पर जारी केंद्रीय योजना निधि के आवंटन के बारे में जागरूक हो जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कोई पक्षपातपूर्ण भेदभाव नहीं है। समता और निष्पक्षता की अधिक व्यापक धारणा के लिए कहा जाता है।

निम्नलिखित बिंदु भारतीय संघवाद पर वैश्वीकरण के प्रभाव को दर्शाते हैं–

1. इससे राज्यों को शक्तियों का विकेंद्रीकरण हुआ केंद्र प्रशासनिक, वित्तीय और विधायी क्षेत्रों में राज्यों को अधिक अधिकार प्रदान करता है।

2. वैश्वीकरण की सफलता स्थानीय स्तर पर नीतियों के कार्यान्वयन पर निर्भर करती है। इसलिए फोकस योजना से हटकर क्रियान्वयन की ओर हो गया है। चूँकि निष्पादन केवल स्थानीय स्तर पर ही किया जा सकता है, इसलिए केंद्र ने राज्यों और स्थानीय स्व-सरकारों को स्थान दिया है।

3. विदेशी निवेश को आकर्षित करना वैश्वीकरण की सफलता की कुंजी है और यह पूरी तरह से केंद्र और राज्यों द्वारा समान नीतियों की शुरुआत और कार्यान्वयन पर निर्भर करता है। संघवाद के टकराव के चरण के परिणामस्वरूप केंद्र और राज्यों के बीच अलग-अलग नीतियाँ बनीं, जबकि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप नीतियों का अभिसरण हुआ है।

4. आर्थिक विकास राजनीतिक स्थिरता और शांति और सद्‌भाव पर बहुत अधिक निर्भर है। वैश्वीकरण के हिस्से के रूप में, केंद्र और राज्य दोनों उपरोक्त सुनिश्चित करने में सक्रिय भागीदार बन गए हैं। 1990 के दशक की शुरुआत के बाद से, कला 356 का उपयोग करने की संख्या पहले की अवधि की तुलना में काफी कम हो गई थी।

5. वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप अत्याधुनिक स्तर पर यानी स्थानीय स्तर पर विकास पर जोर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप न्यू लोकलिज्म, पीपल्स एंपावरमेंट आदि जैसी अवधारणाओं का उदय हुआ है।

6. वैश्वीकरण के प्रारंभिक वर्षों के दौरान, विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए राज्यों के बीच अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा थी। इसके परिणामस्वरूप राज्यों ने विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए कर दरों को कम करने जैसी अल्पकालिक नीतियों को अपनाया है। लेकिन समय के साथ, उन्होंने इस तथ्य को महसूस किया है कि उन अल्पकालिक उपायों के परिणामस्वरूप वांछित परिणाम लाए बिना ही वित्त में गिरावट आ सकती है। अब उन्होंने बुनियादी ढाँचे के विकास पर जोर देना शुरू कर दिया है क्योंकि यह केवल लंबे समय में समग्र विकास सुनिश्चित कर सकता है।

7. योजना आयोग जैसी संस्थाओं ने उदारीकरण से पहले के दिनों में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और कुछ मामलों में विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा शासित राज्यों ने केंद्र सरकार पर योजना आयोग का दुरुपयोग करने का आरोप लगाया है। लेकिन वैश्वीकरण के आगमन के साथ स्थिति बदल गई है क्योंकि राज्यों के साथ-साथ केंद्र ने इस तथ्य को महसूस किया है कि दोनों विकास प्रक्रिया में समान और सक्रिय भागीदार हैं।

निष्कर्ष–वैश्वीकरण एक सजातीय प्रक्रिया नहीं है। इसके कई प्रक्षेप पथ हैं। यद्यपि राज्य आर्थिक क्षेत्रों में अपनी संप्रभुता का परित्याग कर सकता है, वह अपनी घरेलू संप्रभुता को सुदृढ़ करने के लिए लगातार प्रयास करता है। इसप्रकार, एक राज्य की संप्रभुता को आंतरिक और बाहरी दृष्टिकोण से विभाजित और जाँचा जा सकता है। एक ओर, भारतीय राज्य के समानता और विकास के मौलिक उद्देश्यों को संरक्षित करने के लिए, भारतीय संघवाद को केंद्र सरकार की भूमिका को

बढ़ाने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए मजबूर किया जा सकता है।

यह बाजार आधारित विकास के परिणामस्वरूप तेजी से बढ़ रही अंतरक्षेत्रीय आर्थिक और सामाजिक असमानता का मुकाबला करने के लिए आवश्यक होगा। दूसरी ओर, स्थानीय सरकार के संवैधानिक रूप से स्वीकृत तीसरे स्तर की स्थापनाओं में विकेंद्रीकरण की ओर रुझान स्पष्ट है। स्वैच्छिक और गैर-सरकारी संगठनों की सक्रिय भागीदारी को समायोजित करने के लिए शक्तियों का विकेंद्रीकरण भी आवश्यक हो सकता है।

संदर्भ

1. एस॰ भटनागर और प्रदीप कुमार (सं॰), समकालीन भारतीय राजनीति, नई दिल्ली, निबंध प्रकाशक, 1997
2. पॉलब्रास, जातीयता और राष्ट्रवाद, सेज प्रकाशन, 1991
3. रोनाल्ड वाट्स, न्यू फेडरेशन : कॉमनवेल्थ में प्रयोग, ऑक्सफोर्ड क्लेरेंडन प्रेस, 1966
4. उर्सुला के हिक्स, संघवाद : विफलता और सफलता न्यूयार्क ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978
5. चौबे, शिबानी किंकर, भारत की संविधान सभा, नई दिल्ली, 1973
6. पी॰ पद्मनाभन, देसाई (संस्करण), मैकमिलन, नई दिल्ली में 'भारतीय संविधान का अलोकतांत्रिक हृदय', 1973

mandeepraperia14@gmail.com

 ISSN 0975-735X

अजमेर जिले में वर्षा की परिवर्तनशीलता और गिरता भू-जल स्तर

रेनू गौड़, शोधार्थी
डॉ॰ मिलन कुमार यादव, (पर्यवेक्षक)
एस॰पी॰सी॰जी॰ कॉलेज, अजमेर

अजमेर जिले के अधिकतर क्षेत्रों में सामान्यत: कम वर्षा तथा सीमित सतहीजल भंडारों के कारण जल माँग की अधिकांश आपूर्ति भू जल भंडारों पर निर्भर है। विकास की मंजिल को पार करते हुए हमने जल का दुरुपयोग और जलाशयों का अतिशोषण कर उन्हें समाप्ति की कगार पर ला दिया है। जल स्रोतों के सूखने या जल की मात्रा कम होने से और भू-जल स्तर गहरा हो गया। जनसंख्या में लगातार वृद्धि एवं पेयजल, कृषि एवं औद्योगिक उपयोग हेतु भू-जल की बढ़ती माँग के कारण भू-जल भंडारों से अत्यधिक दोहन हो रहा है इस स्थिति में जिले में जन भागीदारी व भू-जल प्रबंधन की नितांत आवश्यकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

* अजमेर जिले के गिरते भू जल स्तर की समस्या से अवगत कराना।
* जल के बढ़ते उपभोग से अवगत कराना।
* मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ भी बढ़ते जल उपभोग का कारण बन रही हैं, इससे अवगत कराना।
* जिले की तहसीलों में गिरते भू जल स्तर की स्थिति का दर्शाना।
* जिले की वर्षा परिवर्तन शीलता को दर्शाना।

(विधितंत्र) सामग्री एवं एकत्रीकरण

* आँकड़ों को संबंधित विभागों, इंटरनेट व संबंधित वेबसाइट के माध्यम से एकत्रित किया गया है।
* भाषा साहित्य का चयन विभिन्न पुस्तकों, लेखों व इंटरनेट की सहायता ली गई है।
* वर्षा की डेटा सिंचाई विभाग अजमेर से लिया गया है।

परिकल्पना–किसी शोध कार्य के अंतर्गत विषय की जाँच सामान्य नियमों के तहत प्रयोगात्मक परीक्षण द्वारा किया जाना परिकल्पना कहलाती है।

* मनुष्य की प्राथमिक क्रियाएँ भी गिरते भू-जल स्तर का एक कारण हैं।
* मानव की उपभोगवाद की प्रवृति और जल का व्यर्थ इस्तेमाल भी इसका कारण है।
* आर्थिक क्रियाओं में जल का अधिक उपयोग भी गिरते जल स्तर का एक कारण है।
* वर्षा की कमी व परिवर्तनशीलता भी गिरते जल स्तर का कारण है।

अध्ययन क्षेत्र–अजमेर जिला राज्य के मध्य 25038' व 26058' तक उत्तरी अक्षांश तथा 73054' से 75022' पूर्वी देशान्तर के बीच 8841 वर्ग किलोमीटर के साथ तिकोने आकार के रूप

में फैला है।

भू-जलीय स्रोतों का कारण

कृषि–जल का अधिक उपयोग ट्यूबवेल के माध्यम द्वारा भूजलीय स्रोतों का अधिक दोहन।

उद्योग–औद्योगिक क्रियाओं में जल का अधिक उपयोग। रासायनिक उद्योगों में जल का अधिक खपत।

घरेलू उपयोग–नलकूप के माध्यम से भू-जल का दोहन। घरेलू उपयोग में जल का दुरुपयोग।

जल का उपयोग का क्षेत्र एवं उसकी मात्रा

क्र॰सं॰	जल उपयोग	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन	क्र॰सं॰	जल उपयोग	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन
1.	पीने के लिए	02.03	8.	अस्पताल	255.00
2.	भोजन पकाने	04.05	9.	अस्पताल वार्ड	135.00
3.	धार्मिक कार्यों	18.05	10.	विद्यालय	180.00
4.	वस्त्र प्रच्छालन	13.06	11.	होटल	180.00
5.	कमरों की स्वच्छता	27.03	12.	सीवर स्वच्छता	05.00
6.	स्नान	27.03	13.	कारखाना	30.00
7.	स्वच्छता	13.05			

स्रोत : विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र (C.S.E., 2010)

मनुष्य की आर्थिक व औद्योगिक क्रियाएँ भी अधिक जल का दोहन करती है। इसके अधिक दोहन से जल की अधिक खपत होती है।

वर्ष 2010 के लिए विभिन्न औद्योगिक इकाइयों द्वारा जल की खपत

औद्योगिक इकाइयाँ	उद्योगों में जल की खपत (प्रतिशत में)	उद्योगों द्वारा निकाला गया अपशिष्ट जल (मिलियन घन मीटर)
थर्मल पॉवर एवं ऊर्जा उद्योग	87.87	27000.9
इंजीनियरिंग उद्योग	05.08	1591.3
कागज उद्योग	02.26	695.7
कपड़ा उद्योग	02.07	637.3
इस्पात उद्योग	01.29	396.8
चीनी उद्योग	00.49	149.7
उर्वरक उद्योग	00.18	56.4
अन्य उद्योग	00.78	241.3
कुल	100	30729.2

स्रोत: विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र (C.S.E., 2010)

Mean rain Fall

Mean Annual Raifnall = Total Raifnall
(माध्यम वार्षिक वर्षण) Number fo years

Standard Deviation (SD) मानक विचलन

SÕ= $\frac{\Sigma(\sqrt{(x-x)2}}{n-1}$

x = Raifnall

x = Mean Raifnall

n= Number fo year

Cofeficient fo variation (गुणांक का परिवर्तन)

$$CV\% = \frac{\text{Standard Deviation}}{\text{Mean}} \times 100$$

Decadal Raifnall Variability in Ajmer District

अजमेर जिले में दशकीय वर्षा परिवर्तनशीलता

जिला	**वर्ष**	**1986-1995**	**1996-2005**	**2006-2016**
अजमेर	main rainFall	519.89	513.78	546.16
		CV	CV	CV
		37.01	44.88	23.79

अजमेर जिले में दक्षिण पश्चिम मानसून की परिवर्तनशीलता

महीना	**जिला-अजमेर**
जून	46.6
जुलाई	188.3
अगस्त	215.2
सितंबर	66.7
कुल	516.8
SD	84.88
CV	65.69

अजमेर जिले में उत्तरी-पूर्वी मानसून की परिवर्तनशीलता

महीना	**जिला-अजमेर**
अक्टूबर	17.2
नवंबर	3.4
दिसंबर	2
कुल	22.6
SD	8.4
CV	111.55

वर्षा की परिवर्तन शीलता जिले में अधिक है।

ब्लॉक वाइज मानसून पूर्व व पश्चात् (2017-19) अजमेर जिले का औसत जल स्तर

		2017			2018			2019		
क्र.सं॰	**ब्लॉक**	**मानसून पूर्व जल स्तर**	**मानसून पश्चात स्तर**	**औसत**	**मानसून पूर्व जल स्तर**	**मानसून पश्चात स्तर**	**औसत**	**मानसून पूर्व जल स्तर**	**मानसून पश्चात स्तर**	**औसत**
1.	आसीन	09.98	08.39	1.59	11.23	07.79	3.44	10.66	06.64	04.02

2.	भिनाय	10.40	07.48	2.93	10.03	07.25	2.78	09.46	04.20	05.26
3.	जवाजा	12.02	06.50	5.51	13.99	07.38	6.61	12.06	05.22	06.84
4.	केकडी	07.43	06.35	1.09	08.47	06.39	2.08	08.36	04.08	04.27
5.	मसूदा	16.29	11.61	4.68	16.42	12.87	3.56	18.53	08.73	09.80
6.	पीसागंन	21.96	19.33	2.64	22.73	25.96	3.24	30.10	18.83	11.27
7.	सरवाड	07.95	05.96	1.99	08.98	06.82	2.16	08.58	03.61	04.97
8.	सिलोरा	22.07	19.10	2.97	23.24	20.72	2.52	24.47	14.77	09.70
9.	श्रीनगर	15.82	13.33	2.50	16.44	14.51	1.94	18.28	08.08	10.22
	कुल	**13.77**	**10.89**	**2.88**	**14.62**	**12.19**	**2.43**	**15.61**	**08.24**	**07.37**

स्रोत: भू-जल संसाधन एवं प्रबंधन विभाग, अजमेर

अजमेर जिले में औसत कुओं की संख्या/1000 **किमी॰** 2 (1956-2000)

जिला	**1956-57**	**1961-62**	**1971-72**	**1981-82**	**1991-2000**
अजमेर	3,336	4,919	5,363	5903	8,860

स्रोत: केंद्रीय व राज्य भू-जल बोर्ड रिपोर्ट विभिन्न वर्षा की राजस्थान सरकार व भारतीय सरकार

मानसून पूर्व जल स्तर के परिवर्तन (1984-2001)

जिला	**औसत बढ़ना/घटना**			**वार्षिक औसत बढ़ना/घटना**			
	1984-2001	**1998-2001**	**1984-1998**	**1984-2001**	**1984-1998**	**1998-2001**	**2001**
अजमेर	-6.29	-5.59	-0.7	-0.37	-0.05	-1.86	-0.7

जिले में भू-जल स्तर में गिरावट का मुख्य कारण कृषि भूमि में भू-जल का अनियंत्रित दोहन है।

वर्ष	**कुओं की संख्या**	**सिंचित क्षेत्र (हैक्टेयर में)**
1984-85	50,045	61,987
2002-03	56,323	87,698

स्रोत: भू-जल संसाधन एवं प्रबन्ध विभाग, अजमेर

औसत वर्षा के दिनों की संख्या (1977-2001)

जिला	**1997**	**1998**	**1999**	**2000**	**2001**	**2011**
अजमेर	31	20	16	17	24	-

स्रोत: भू-जल विभाग, जयपुर

घटते भू-जल संसाधन के कारण

* बढ़ती हुई जनसंख्या
* भू-जल की मशीनी एवं विद्युत यंत्रों द्वारा अंधाधुंध दोहन
* वर्षा की घटती मात्रा एवं वर्ष में वर्षा के दिनों का निरंतर घटना
* अधिक जल उपयोग वाली फसलों का उत्पादन
* परंपरागत जल स्रोतों का उपयोग नहीं होना, जैसे बावड़ी, टांका आदि

उपर्युक्त समस्याओं से भू-जल का स्तर घटता है, पर इस अनियोजित भू-दोहन से कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं–

* गिरता हुआ भू-जल स्तर

* भू-जल संसाधनों में निरंतर कमी
* भू-जल की गुणवत्ता में गिरावट
* नलकूपों की जलदाय क्षमता में कमी
* भू-जल दोहन में ऊर्जा खपत में बढ़ोतरी
* कुओं और नलकूपों का सूख जाना

भारत में सतही जल तेजी से सूखता जा रहा है। जो जल बचा है वह भी प्रदूषित हो रहा है। जिले में अति दोहन के कारण तालाब नहीं नजर आते हैं। सिंचाई के लिए अति दोहन से बोरवेल भी अति दयनीय स्थिति में हैं।

सुझाव–घटते भू-जल स्तर को रोकने का महत्त्वपूर्ण सुझाव जल संरक्षण ही है जिससे जल के स्तर का बढ़ाया जा सकता है। जलसंरक्षण से–

1. जल की उपलब्धता बढ़ती है।
2. गिरते भू-जल के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।
3. पर्यावरण को शुद्ध बनाया जा सकता है।
4. भू-क्षरण को रोका जा सकता है।

जलसंरक्षण हेतु उपाय–

* बाँधों, जलाशयों के माध्यम से जल संग्रहण का प्रयास किया गया है।
* भू-जल का भरण वर्षा के जल को रोककर किया जा सकता है।
* जंगलों के प्रतिशत को बढ़ाया जाए, जिससे वन, वर्षा के प्रहार को कम करके उस जल को भूमि में प्रवेश करने का मौका देते हैं।
* पौधों व कृषि हेतु जल की माँग को कम करना भी जल संरक्षण का उत्तम उपाय है।
* प्राचीन व नवीन जल संरक्षण तकनीकों का समन्वय।
* पानी की आपूर्ति क्षमता में सुधार–नए भौतिक बुनियादी ढाँचे के प्रावधान उचित जल कर से राजस्व-संग्रह, रिसाव में कमी और पानी की चोरी पर कुशल निगरानी करके।
* जल संरक्षण एवं जल के इष्टतम उपयोग के बारे में लोगों को आधुनिक संचार माध्यमों के उपयोग द्वारा शिक्षित करने हेतु जनसंचार कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाना चाहिए।
* जिले में भू-जल की वृद्धि के लिए समुचित नियोजन एवं भू-जल योजनाओं का कार्यान्वयन आवश्यक है।

निष्कर्ष–जल-संसाधनों के विषय में सार्वजनिक नीतियों का संचालन, कतिपय बुनियादी नियमों द्वारा करने की आवश्यकता है ताकि जल संसाधनों की आयोजना, विकास और प्रबंधन के दृष्टिकोण में कुछ साझापन हो, जल व नए व भिन्न प्रकार के उपयोग के लिए जल का इष्टतम उपयोग किया जाना चाहिए तथा जल का एक दुर्लभ संसाधन मानने के लिए जागरूकता फैलानी चाहिए। जल संरक्षण एवं जल का इष्टतम उपयोग के बारे में लोगों को आधुनिक संचार के माध्यमों के उपयोग द्वारा शिक्षित करने हेतु जनसंचार कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जाना चाहिए। उन्नत जल प्रबंधन एवं अति दोहन क्षेत्र में भू-जल दोहन नियंत्रण पर बल दिया जाना चाहिए। जल विषयों पर सामुदायिक शिक्षा दी जानी चाहिए। बड़ी जल संरचनाओं के प्रबंधन एवं उत्तरदायित्व निभाते हुए जल उपभोक्ता समूहों को जल संसाधन विभाग द्वारा तकनीकी सहायता प्रदान की जानी चाहिए। जल

संरक्षण-संबंधी कार्यों के डिजाइन, संरचना, प्रबंधन हेतु योजना के निर्माण में (एनजीओ) गैर सरकारी संगठनों की सहायता ली जानी चाहिए।

संदर्भ

1· Census of India (2001) - (2011), district census handbook-Ajmer, Director of consus operation, Rajasthan, Jaipur

2· State Environment Policy 2010, Department of Environment Govt. of Rajasthan.

3. रतन जोशी, नगरीय भूगोल, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2009

4· Kothari, C.R. (1988), Reserach Methodology Methods and Techniques, Wilely Eastern Ltd. New Delhi.

5· Sing, R.M. (1987) Human Geography Gyanodaya Prakashan. Gorakhpur.

6· Brief Industrial Profile of Ajmer district Micro, Small & Medium Enterprises Ministry of MSME. Govt. of India.

7. राष्ट्रीय जल नीति, 2012

8. राज्य जल नीति, 2010

9· Ajmer Master Plan 2001-2003

10· National Small Industries Corporation Ltd., Nehru Place, Tonk Road, Jaipur.

11· Small Industry Development, Bank of India, M.I. Road, Jaipur.

12· Rajasthan Small Industries Corporation, Udhyog Bhawan, Tilak Marg, Jaipur-302005

13· Rajasthan State Industries Development and Investment Corporation Ltd., Udhyog Bhawan, Jaipur.

14· District Industries Centre, Ajmer

15· Agriculture and Processed Food Export Development Authority, New Delhi-110001

16· Rajasthan Financial Corporation, Udhyog Bhawan, Tilak Marg, Jaipur.

17· Maiti. S.K. (2001) Hand book of Methods in Enviromental Studies Vol. 1 Water and Waste Water Anlysis, B.D. Publisher, Jaipur INDIA

18· Kalff. Jacob (2003) Limnology Island water ecosystems Prentice – Hall Inc N.J.

19· HO.2005, International Standard drinking Water, World Health Organisation, Geneva

20· Marathi Devi, CH Environment and Pollution Technology.

21· Ground water department Jaipur.

22· Ground water resources and Management Department Ajmer.

23· Central & State Ground water board report.

24· C.S.E report.

रेनू गौड़

म॰नं॰ 568 **ए/3 जवाहर नगर**

लोहगल रोड, अजमेर 305001 **(राज॰)**

मो॰ 9636773637

gaurrenu4@gmail.com

स्वातंत्र्योत्तर काल में रचित संगीत के प्रमुख ग्रंथ

डॉ॰ राधा रानी, असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग
शहीद मंगल पांडे राज॰ महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी गई है जिसमें सामवेद ग्रंथ में संगीत का गहन अध्ययन किया गया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत आध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है इसलिए इसका आरंभ मनुष्य के अंतिम जीवन के लक्ष्य मोक्षप्राप्ति के साधन के रूप में हुई है। यह भारतीय शास्त्रीय संगीत अध्यात्म से परे नहीं है। यह अध्यात्मिकता हमें वैदिक व प्राचीन ग्रंथों में दृष्टिगत होती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का सबसे प्राचीन ग्रंथ भरत का नाट्यशास्त्र है क्योंकि इस ग्रंथ में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति और ताल आदि का विशद विवेचन किया गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की जड़ों को सहस्राब्दी तक खोजा जा सकता है इसे 2 स्कूलों में वर्गीकृत किया गया था, हिंदुस्तानी व कर्नाटकी या दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय, जिससे भरत के नाट्यशास्त्र अनुसार आधारित किया गया था। जिसे 200 ईसा पूर्व 400 ईसवी से बीच संकलित ग्रंथ माना गया है। हमारे यह ग्रंथ हमारी युग-युगीन परंपरा व सांगीतिक धरोहर को सुरक्षित रखने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इतिहास के जिस युग में संगीत के ग्रंथों की उपलब्धता नहीं है उस युग को 'अंधायुग' के नाम से अभिहित किया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जिस युग में संगीत का प्रचार-प्रसार नहीं हो रहा तो भावी युग उससे शत-प्रतिशत वंचित रह जाएगा। आने वाले युग में भूतकाल के समस्त संगीत सिद्धांतों व अन्य संगीत एक सामग्री का अनुमान इन्हीं ग्रंथों से लगाकर उस युग का स्तर निश्चित करने के बाद ही उसका महत्त्व लगाया जाता है।

संगीत के सैद्धांतिक पक्ष को महत्त्व देने के उद्देश्य से ग्रंथों की रचना का यह कार्य एक बार फिर पंडित भातखंडे जी द्वारा आरंभ हुआ। इन्होंने कठिन परिश्रम द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों व पुस्तकों की रचना की। इसके पश्चात विभिन्न भाषाओं में अनेक संगीत ग्रंथों की रचना प्रारंभ हो गई। स्वतंत्रता के पश्चात भी सैद्धांतिक व व्यवहारिक पक्ष से संबंधित ग्रंथों व संगीतक्षेत्र में हो रहे शोधकार्यों का तेजी से प्रकाशन हो रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक संगीत ग्रंथों व पुस्तकों की रचना से संगीत के भंडार में वृद्धि हुई है, वहाँ इस काल का एक महत्त्वपूर्ण कार्य प्राचीन या मध्यकालीन संस्कृत भाषा के ग्रंथों का प्रकाशन या उनका मातृभाषा हिंदी में अनुवाद हुआ है। इनका सर्वाधिक लाभ उन लोगों को हुआ है जो संस्कृत भाषा नहीं जानते और अब उन्हें इन प्राचीन ग्रंथों के शब्दों पर स्वतंत्र रूप से विचार करने का अवसर मिला है। इस कड़ी के कई ग्रंथों के नाम लिए जा सकते हैं उदाहरणार्थ-

पंडित सारंगदेव द्वारा तेरहवीं शताब्दी में रचित संगीत रत्नाकर के सप्त अध्याय स्वर्गतध्याय, रागविवेकध्याय, प्रकिर्णका अध्याय, प्रबंधाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय व सातवाँ नृत्याध्याय का अनुवाद संगीत कार्यालय हाथरस के लक्ष्मीनारायण गर्ग द्वारा प्रथम संस्करण सन् 1964 में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात पंडित आहोबल 'संगीत पारिजात' इन्होंने सर्वप्रथम वीणा के बजाने वाले तार

की लंबाई पर भिन्न-भिन्न नाप से अपने शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना की। पारिजात का फारसी अनुवाद 1724 ईस्वी में श्री दीनानाथ द्वारा किया गया व हिंदी अनुवाद श्री कलिंद द्वारा 1941 ईस्वी में होकर संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित किया गया। पंडित दामोदर द्वारा रचित 'संगीत दर्पण' (17वीं शताब्दी) हिंदीभाषा की टीका इसमें संगीत रत्नाकर के बहुत सारे श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ परिलक्षित होते हैं। राग-रागनियों के ध्यान शीर्षक से लेकर देव रूप भी इसमें उपस्थित किए गए हैं जो कि बहुत ही आकर्षक प्रतीत होते हैं। इसमें स्वराध्याय व रागाध्याय का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। नारद रचित 'संगीत मकरंद' जो 16वीं शताब्दी के आसपास का ग्रंथ है, संस्कृत में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में राग-रागनियों की कल्पना पुरुष व स्त्री रागों के रूप में प्रथम बार की गई। कहा जाता है कि इसी ग्रंथ के आधार पर आगामी ग्रंथकारों ने राग-रागिनी वर्गीकरण की रचना की।

संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा दक्षिण पद्धति का ग्रंथ 'स्वरमेल कलानिधि' की टीका का प्रकाशन किया गया। यह ग्रंथ रामामात्य द्वारा लिखित है जिसमें विभिन्न प्रकार की रागों का बहुत सुंदर वर्गीकरण किया गया है यह ग्रंथ संगीतजिज्ञासु के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ द्वारा देव द्वारा रचित 'भारत भाष्यम्' का प्रकाशन दो भागों में किया गया जिसका अनुवाद हिंदी सरल भाषा में किया गया है।

भारतीय संगीत भारत में वर्ष 1947 में स्वतंत्रता के पश्चात जबसे अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई तबसे देश में संगीत का प्रचार-प्रसार बढ़ा है। स्कूल एवं कॉलेज के संगीत पाठ्यक्रमों में संगीत विषय सम्मिलित किए जाते रहे हैं। कुछ संगीत महाविद्यालयों में एम॰ए॰ परीक्षा में भी संगीत विषय के रूप में सम्मिलित किया गया। संगीत विषय में पीएच॰डी॰ की उपाधि भी प्राप्त हो रही है।

भारत के शिक्षा मंत्रालय द्वारा ललित कलाओं के विकास हेतु नई दिल्ली केंद्रीय सरकार ने संगीत नाटक अकादमी की स्थापना 1953 में की। इस संस्था का कार्य भारत के राज्यों के साथ केंद्र द्वारा 158 संगीत नृत्य एवं नाट्य का प्रचार करना है। इस संस्था का उद्देश्य कलाकारों को प्रोत्साहित करना एवं कला का विकास करना है।

संगीत प्रचार का काल 1900 **ई॰ से** 1950 **ई॰**

आधुनिककाल में संगीत के उद्धार व प्रचार-प्रसार का मुख्य श्रेय संगीत की दो विभूतियों को जाता है—पहला पंडित विष्णुनारायण भातखंडे व दूसरा विष्णुदिगंबर पलुस्कर। इन दोनों विभूतियों ने भारत के प्रत्येक हिस्से में जाकर संगीत की विभिन्न चीजों का संकलन कर संगीत कला का उद्धार किया। जगह-जगह कई महाविद्यालयों व विद्यालयों की स्थापना की, विभिन्न संगीत सम्मेलनों द्वारा संगीत विषय पर विचार विनिमय किया गया, जिसके फलस्वरूप जनसाधारण में संगीत के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। पंडित विष्णुनारायण भातखंडे ने 1604 ई॰ में अपनी पहली ऐतिहासिक यात्रा प्रारंभ की, जिसमें उन्होंने संपूर्ण भारत का भ्रमण कर संबंधित साहित्य की खोज की। बड़े-बड़े कलाकारों का संगीत सुनकर उनकी स्वर लिपियाँ तैयार कर क्रमिक पुस्तक मालिका पुस्तक की रचना की, जो छह भागों में प्रकाशित हैं तथा सैद्धांतिक पक्ष के लिए संगीतशास्त्र 6 भागों में प्रकाशित की। आपने संस्कृत भाषा में 'लक्ष्य संगीत' और 'अभिनव रागमंजरी' पुस्तक लिखकर प्राचीन संगीत में फैली हुई भ्रांतियों को उजागर किया। पंडित भातखंडे ने अपना शुद्ध थाट बिलावल मानकर थाट पद्धति स्वीकार करते हुए 10 थाटों में से विभिन्न रागों का वर्गीकरण किया।

ISSN 0975-735X

भातखंडे जी ने उर्दूभाषा में एक बहुत ही खूबसूरत पुस्तक की रचना की, जिसका नाम 'मरीफ्फुन्नगामत' है । यह पुस्तक काफी प्रसिद्ध हुई और और संगीत विद्यार्थियों को अधिक लाभ हुआ। इसके अतिरिक्त आपने बहुत सारी पुस्तकों का प्रकाशन किया जैसे संगीत बालबोध, संगीत बाल प्रकार, स्वालपलाप गायन, संगीत तत्त्व दर्शक, राग प्रवेश व भजनामृत लहरी इत्यादि।

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ संगीत पत्रिकाओं का भी प्रकाशन प्रारंभ हो गया है। यह समस्त पत्रिकाएँ संगीत के व्यावहारिक व सैद्धांतिक पक्षों को उजागर करने में सफल साबित हुई हैं। इन पत्रिकाओं में प्राचीन से लेकर आधुनिकयुग के संगीत का अथाह भंडार समाहित है। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन कराकर हजारों लाखों संगीत शुभेच्छु की निधि बनाने में कलाकारों व लेखकों का अमूल योगदान रहा है। संगीतप्रेमियों के लिए संगीत के विकास के लिए वह संगीत कला के प्रचार व प्रसार कार्य के लिए समाचारपत्र, मासिक पत्रिकाएँ, त्रैमासिक पत्रिकाएँ व वार्षिक रूप में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा है, जिनसे संगीत से संबंधित लेख, स्वर लिपियाँ, शोध पत्र एवं समाचारपत्र प्रकाशित होते रहते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है–

1. **संगीत**–संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित यह संगीत पत्रिका अत्यधिक पुरानी पत्रिका है जिसका प्रारंभ 1935 से हो गया था। यह मासिक पत्रिका अपनी स्वर्ण जयंती 1984 ईस्वी में मना चुकी है। इसके संस्थापक काका हाथरसी के पुत्र पंडित लक्ष्मीनारायण गर्ग ने लंबे समय तक इसका संपादन किया। म्यूजिक मिरर भी इन्हीं के द्वारा संपादित की गई है।

2. **संगीत कला विहार**–यह पत्रिका 1948 ई॰ से संगीत कला के क्षेत्र में सक्रिय है। यह पत्रिका राष्ट्रभाषा हिंदी में ही प्रकाशित की जाती है महाराष्ट्र से प्रकाशित पत्रिका है। इन पत्रिकाओं में अभ्यासक्रम, वाद्य, नृत्य, सम्मेलन, नाट्य-संबंधी समाचार प्राप्त होते हैं।

3. **संगीत नाटक**–यह तमाशे पत्रिका संगीत नाटक एकेडमी दिल्ली से अँग्रेजी भाषा में प्रकाशित होती है जिसके अंतर्गत संगीत के साथ-साथ नाटक शैली की भी भरपूर जानकारी प्राप्त होती है।

4. **विश्व वीणा**–विष्णु मीणा रविंद्र संगीत परिषद कोलकाता द्वारा प्रकाशित हिंदी भाषा की पर मासिक पत्रिका है।

5. **म्यूजिक मिरर**–लक्ष्मीनारायण गर्ग द्वारा संपादित पुस्तक म्यूजिक मिरर संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा अँग्रेजी भाषा में प्रकाशित मासिक पत्रिका है। म्यूजिक मिरर कुछ समय तक प्रकाशित होने के पश्चात इसका प्रकाशन बंद हो गया।

6. **जर्नल ऑफ म्यूजिक एकेडमी**–1955 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जनरल ऑफ म्यूजिक एकेडमी की आधारशिला रखी। जो मायलापुर के टीटीके में स्थित है। दक्षिण भारत में स्थित यह पहली म्यूजिक अकेडमी है। यह जनरल मद्रास से प्रकाशित होता है।

7. **श्रुति एवं बागेश्वरी**–इस नाम से दिल्ली विश्वविद्यालय से दो नियमित पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं।

8. **भैरवी**–संगीत शोध पत्रिका मिथिलांचल संगीत परिषद स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वर नगर दरभंगा बिहार से प्रकाशित पत्रिका है। यह शोध पत्रिका 2009 से निरंतर प्रकाशित हो रही है जोकि यूजीसी केयर लिस्ट में भी शामिल है।

इन सभी साप्ताहिक मासिक एवं वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से विभिन्न

जानकारी प्राप्त होती है जो शोधार्थियों के लिए एक निधि का कार्य करती है। इन सभी पत्रिकाओं के प्रकाशक व अन्य कार्यकर्ता संगीतप्रेमियों के लिए प्रशंसा व सम्मान के पात्र हैं।

संदर्भ

1. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस
2. डॉ॰ अशोककुमार 'यमन', रेडियो और संगीत, कृष्णा पब्लिशर्स
3. डॉ॰ सुचिस्मिता, आकाशवाणी एवं हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स, डिसटीब्यूटर्स
4. नीलम बाला महेंद्रू, आधुनिक अंतरराष्ट्रीयकरण में भारतीय शास्त्रीय संगीत की भूमिका, कनिष्क पब्लिशर्स
5. भारतीय संगीत और वैश्वीकरण, डॉ॰ कुमारी आकांक्षी, कनिष्का पब्लिशर्स
6. आधुनिककाल में शास्त्रीय संगीत, डॉ॰ हुकुमचंद, ईस्टर्न बुक लिंकर्स
7. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी
8. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ॰ शरदचंद श्रीधर परांजपे चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी

Mob. 9412791527
rrani930@gmail.com

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन

ज्योति यादव, प्रज्ञा शर्मा एवं जगतराज पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग, आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़

1. **प्रस्तावना**–किसी भी देश के आर्थिक विकास में वैज्ञानिक प्रगति व तकनीकी विकास का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। परंतु देश के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा सबसे आवश्यक है और इसे चरितार्थ करने के लिए प्रबुद्ध, समर्थ व दक्ष शिक्षकों का सक्रिय योगदान अपेक्षित होता है। अत: कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों को उचित महत्त्व तथा सम्मान देने के साथ ही सतत् रूप से ऐसी योजनाओं व परिस्थितियों को बनाने के लिए तत्पर रहता है जो शिक्षकों को निर्माण व सृजन की प्रेरणा प्रदान करें क्योंकि वे भावी राष्ट्र व समाज के निर्माता हैं। इसलिए शिक्षकों में उत्कृष्ट गुणवत्ता नितांत आवश्यक है।

शिक्षा का उद्देश्य प्राप्तकर्ता को मात्र ज्ञान प्रदान करना और कौशल संपन्न बनाना ही नहीं है, बल्कि उसे उसके जीवन की सार्थकता को समझाना भी है। शिक्षा जहाँ एक ओर प्राप्तकर्ता के व्यक्तित्व को निखारती है, वहीं दूसरी ओर उसके श्रेष्ठतम अंश का संपर्क अन्य व्यक्तियों से कराती है। शिक्षा ही मनुष्य को जीवन में सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य दायित्वों के सफलतापूर्वक निर्वहन के लिए तैयार करती है।

शिक्षा के चिर-परिचित स्तंभों में शिक्षाशास्त्र, वस्तु-परकता, शिक्षक-प्रशिक्षण एवं प्रतिबद्धता को शामिल किया जाता है। इनमें से शिक्षक-प्रशिक्षण का सर्वोपरि है। एक प्रशिक्षित शिक्षक, शिक्षा की पूँजी है, जबकि अप्रशिक्षित शिक्षक पूर्ण रूप से पाठ्य-प्रक्रिया को एक खतरा है। शैक्षिक प्रभावशीलता के साहित्य में 'श्रेष्ठ शिक्षकों' की पहचान करने पर जोर दिया गया है, (काल्डवेल, (1985) डोयेल (1985) स्पार्क-लिपिका (1985) जैंबाल्ट, (1985) बर्क-लिंडे, (1987)। श्रेष्ठ शिक्षकों की पहचान करने का मुख्य तर्क है कि कक्षा शिक्षण को सुधार करके अपनी शिक्षा प्रणाली में सुधार करने से है। जब शिक्षा जगत से जुड़े लोगों को श्रेष्ठ शिक्षकों की पहचान करने का कहा गया तो पाया गया कि इस संदर्भ में लोगों की अलग-अलग विश्वास प्रणालियाँ हैं, अलग-अलग प्रत्यक्षीकरण है तो मुख्यत: दो विश्वास प्रणालियाँ श्रेष्ठ शिक्षकों की पहचान में उभरकर आईं–पहला, शिक्षकों की व्यक्तिगत विशेषता व दूसरा, प्रबंधन कौशल, जो शिक्षण के तकनीकी ज्ञान को प्रदर्शित करता है।

शिक्षक की तुलना उस जलते हुए दीपक से की जाती है, जो अपनी लौ से विद्यार्थी रूपी दीपक को प्रकाशित करता है, किंतु स्वयं के प्रकाश में कमी नहीं होने देता है। वह उस बर्तन बनाने

वाले के समान है, जो एक ही प्रकार की मिट्टी से स्वेच्छानुसार विभिन्न प्रकार के बर्तन बना देता है तथा उन बर्तनों को सजाकर ऐसा बना देता है कि उस मिट्टी के बने बर्तन की तरफ प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित होता है, परंतु जिस प्रकार मिट्टी के बर्तन बनाना एक कला है, उसी प्रकार शिक्षण कार्य और अध्यापन भी एक कला है। महज पढ़ाना जानने मात्र से कोई व्यक्ति अध्यापक नहीं हो सकता है, उसमें कुछ अन्य गुणों का होना भी अति आवश्यक है और यह सभी गुण शिक्षण कला को सीखने से आते हैं और यही कार्य प्रशिक्षुओं के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में संपन्न कराया जाता है। शिक्षक किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की धुरी होता है। बेहतर शिक्षकों के निर्माण हेतु शिक्षक शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है। शिक्षण एक कौशलपूर्ण कार्य इसमें निपुणता एवं सफलता प्राप्त करने हेतु उत्तम तैयारी की आवश्यकता होती है। यह कार्य शिक्षक शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा आयोजित किया जाता है। इस दृष्टि से-'शिक्षक शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा भावी शिक्षकों को शिक्षण-संबंधी आवश्यक कौशल एवं सिद्धांत सिखाकर एवं अभ्यास कराकर उन्हें निपुणता प्रदान की जाती है।'

आज के समय में प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं, प्रबंधन की समस्या, साधनों एवं संसाधनों की समस्या, कौशल युक्त प्रशिक्षकों की समस्या और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षुओं का प्रशिक्षण में रुचि नहीं लेना। यदि बी॰एड॰ पाठ्यक्रमानुसार प्रशिक्षण की बात करें तो वर्तमान में छात्र महज शिक्षा में डिग्री या डिप्लोमा लेने के लिए ही प्रवेश लेते हैं। उन्हें पाठ्यक्रम से संबंधित कौशलों को सीखने और प्रशिक्षण की गंभीरता से कोई लेना-देना नहीं होता है। यही कारण है कि आज डिग्रीधारी शिक्षकों को संख्या तो लाखों-करोड़ों है लेकिन बेहतर और कौशल युक्त प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या काफी कम है।

2. **समस्या शीर्षक**–शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन।

3. **अध्ययन की आवश्यकता**–आज के समय में प्रशिक्षण एवं प्रशिक्षुता कार्यक्रम में अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं, प्रबंधन की समस्या, साधनों एवं संसाधनों की समस्या, कौशल युक्त प्रशिक्षकों की समस्या और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षुओं का प्रशिक्षण में रुचि नहीं लेना। यदि बी॰एड॰ पाठ्यक्रमानुसार प्रशिक्षण की बात करें तो वर्तमान में छात्र महज शिक्षा में डिग्री या डिप्लोमा लेने के लिए ही प्रवेश लेते हैं। उन्हें पाठ्यक्रम से संबंधित कौशलों को सीखने और प्रशिक्षण की गंभीरता से कोई लेना-देना नहीं होता है। यही कारण है कि आज डिग्रीधारी शिक्षकों को संख्या तो लाखों-करोड़ों है लेकिन बेहतर और कौशल युक्त प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या काफी कम है।

4. **शोध उद्देश्य**

* शासकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

* अशासकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5. **शोध परिकल्पना**–शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं में सार्थक अंतर पाया जा सकता है।

6. **कार्य परिसीमन**–प्रस्तुत अध्ययन जिला जबलपुर के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे 25 पुरुष एवं 25 महिला प्रशिक्षणार्थियों के द्वारा परिसीमित किया गया है।

7. **शोध अभिकल्प**–शोध प्रारूप, शोध की सम्पूर्ण रूपरेखा तैयार करने की एक प्रविधि है, जिसमें शोध उद्देश्यों, प्रविधियों, प्रदत्त संकलन की विधियों, उनके विश्लेषण तथा सांख्यिकीय गणना की विधियों का प्रारूप तैयार किया जाता है। शोध की प्रकृति के अनुसार प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधियों के अंतर्गत मध्यमान, मानक-विचलन एवं टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक- 1

शासकीय एवं अशासकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र॰	**विवरण**	**N**	**M**	**Sd**	**SEM**	**SED**	**t-value**
1.	पुरुष प्रशिक्षणार्थी	25	7.84	1.46	0.29	0.448	18.1327
2.	महिला प्रशिक्षणार्थी	25	15.96	1.70	0.34		

Df= N1+N2-2=48

p<.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

निष्कर्ष–सारणी क्रमांक 1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि शासकीय एवं अशासकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं के सांख्यिकीय विश्लेषण में पुरुष प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 7.84 माध्य त्रुटि 1.46 तथा माध्य मानक विचलन 0.29 पाया गया है जबकि महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 15.96 माध्य त्रुटि 1.70 तथा माध्य मानक विचलन 0.34 पाया गया है। शासकीय एवं अशासकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं से संबंधित प्राप्तांकों में माध्य मानक त्रुटि 0.448 तथा टी-मूल्य 18.1327 पाया गया है। जो p<.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–सारणी क्रमांक 1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि शासकीय एवं अशासकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं के अंतर्गत, महिला प्रशिक्षणार्थियों को पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक समस्याएँ हैं। यह समस्याएँ प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए आवागमन, परिवार की आर्थिक स्थिति के चलते महिलाओं के नौकरी संबंधित तथा परिवार के सदस्यों की देखभाल के कारण पाई गई है। इस प्रकार प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं में महिला प्रशिक्षणर्थियों को अधिक समस्याओं का सामना करना पाया गया है, अतएव पूर्व निर्मित परिकल्पना शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों को आने वाली समस्याओं में सार्थक अंतर पाया जा सकता है, को स्वीकृत किया जाता है।

संदर्भ

1. गुड एंड हैट, सामाजिक अनुसंधान का प्रणाली विज्ञान, डॉ॰ धर्मवीर महाजन, 2005, पृ॰ 129
2. कपिल, एच. के., सांख्यिकी के मूलतत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. शर्मा, आर.ए., (1995) शिक्षा अनुसंधान, सूर्या पब्लिकेशंस, मेरठ
4. वाड्रा-सुल्ताना अख्तर (1989): ए क्रीटिकल एनालिसिस ऑफ स्ट्रेस फेस्ट बाई टीचिंग shod ganga.iflibmed. ac. inèkbitstream

झारखंड के खुँटी जिले में मुंडा जनजाति की आर्थिक पृष्ठभूमि

पाटला कुमारी, शोधार्थी
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

खुँटी जिले के जनजातियों की आर्थिक पृष्ठभूमि जल, जंगल और जमीन पर आधारित है। मुंडा जनजातियों का निवास स्थल प्राकृतिक वस्तुओं से सटे हुए क्षेत्रों में अर्थात् जंगल एवं पठार, नदियों के किनारे स्थित है। जल, जंगल एवं जमीन से मुंडा जनजातियों का गहरा संबंध पाया जाता है। इनकी दिनचर्या जंगल के बीच ही संपन्न होती है। अर्थव्यवस्था का आधार हमेशा से जंगल एवं जंगल से जुड़ी हुई क्रियाकलापों से रहा है। इनके आर्थिक क्रियाकलापों में जंगल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुबह से लेकर शाम तक सारी क्रियाकलाप पर्यावरण के बीच पर्यावरण सुरक्षा को ध्यान में रखकर पूर्ण होता है। मुंडा जनजातीय समाज का आर्थिक कार्य एवं जीवनशैली में जमीन का उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान है जितना की हमारे जीवन में जल का स्थान है। मुंडा जनजाति के लोगों ने हमेशा जल, जंगल और जमीन से जुड़कर रहने का काम किया है तथा इससे जुड़े आर्थिक कार्यों को संपन्न करते रहे हैं। कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है परंतु कृषि कार्यों में पर्यावरण संरक्षण का विशेष ध्यान रखा जाता है। पर्यावरण संरक्षण एवं मुंडा जनजाति के बीच अन्योन्याश्रय संबंध मिलता है। दूसरे शब्दों में कहें तो खुँटी जिले के जनजाति तथा पर्यावरण को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। पूरे समाज का यह कर्त्तव्य होता है कि सभी पर्यावरण संरक्षण एवं विकास में अपनी बहुमूल्य भूमिका निभाएँ।

जनजातीय समाज के लोगों की अर्थव्यवस्था के कई आधार हैं परंतु जल, जंगल एवं जमीन का स्थान कोई दूसरा नहीं ले पाया है। वर्तमान समय में समाज के कई परिवार के लोग आर्थिक रूप से संपन्न हो चुके हैं परंतु अपने परंपरागत पेशे को नहीं छोड़ पाए हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जंगल से इन लोगों का गहरा संबंध रहा है तथा जमीन और जल इसके साथ कड़ी का कार्य करते हैं। हम सभी जानते हैं कि जल के माध्यम से हम विभिन्न प्रकार के कृषि कार्य कर सकते हैं लेकिन इसके लिए जमीन भी अति आवश्यक है। जल और जमीन को अलग करके आर्थिक पृष्ठभूमि के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। साथ ही इसके संरक्षण एवं विकास को दरकिनार करके मानव जीवन को सुरक्षित नहीं किया जा सकता है।

विषय प्रवेश—खुँटी जिला में मुंडा जनजाति की आर्थिक पृष्ठभूमि हमेशा से संघर्षपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण रही है। जीवन जीने का सबसे बड़ा आधार जल, जंगल एवं जमीन है। जमीन से जुड़े क्रिया-कलापों को आधार मानकर सभी कार्य शैलियों को संपादित करते हैं। दिन की शुरुआत कृषि तथा कृषि कार्यों पर आधारित होती है इसके अलावा कृषि उत्पादों को सर्वप्रथम खाद्य सामाग्री के रूप में प्रयोग किया जाता है, तत्पश्चात वस्तु विनिमय प्रणाली लागू होती है। वस्तु विनिमय वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से आपसी रिश्तेदारों तथा आस-पास के लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध

 ISSN 0975-735X

को प्रदर्शित किया जाता है। इस व्यवस्था के तहत यदि किसी परिवार की फसल का उत्पादन नहीं होता है तो ऐसी परिस्थिति में उसके पड़ोसी अथवा रिश्तेदार खाद्य सामाग्री पहुँचाते हैं। वस्तु विनिमय का सामान्य अर्थ सामान के बदले-सामान का आदान-प्रदान करना होता है। मुंडा जनजातीय समाज में आर्थिक पृष्ठभूमि को निम्नलिखित आधारों पर बाँटा जा सकता है—

खाद्य संकलन अर्थव्यवस्था—प्रारंभिक काल में मुंडा जनजाति के लोग अपने जीवनयापन के लिए खाद्य संकलन अर्थव्यवस्था पर निर्भर थे। जंगल एवं पहाड़ों के किनारे निवास करने वाले मुंडा जनजाति के लोग जंगल से जुड़ी खाद्य सामाग्री की प्राप्ति के लिए पूर्णतः जंगल पर आश्रित रहते थे। घर के पुरुष सदस्य खाद्य सामाग्री के संकलन के लिए सुबह-सुबह जंगल में चले जाते थे। जंगल से कंद-मूल, फल-फूल लाकर अपना जीवन बसर करते थे। इसके अलावा शिकार इनका प्रमुख कार्य था। पुरुष सदस्य भोजन इकट्ठा करने एवं शिकार करने पर अपना बहुमूल्य योगदान देते थे परंतु महिलाएँ घर की देख-रेख एवं बच्चों के लालन-पालन पर अत्यधिक समय व्यतीत करती थीं।

जनजातीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं एवं पुरुषों का समान योगदान रहता है। अधिकांश परिवारों की महिलाएँ घरेलु कार्यों को संपादित करती हैं तथा पुरुष घर के बाहर के कार्यों को करने में रुचि दिखाते हैं। प्राचीनकाल में मुंडा जनजाति की महिलाएँ घरेलु कार्यों में खाना बनाना, घर की साफ-सफाई तथा बच्चों के लालन-पालन इत्यादि में समय व्यतीत करती हैं दूसरी तरफ पुरुष जंगल से भोजन इकट्ठा करने तथा शिकार करने का कार्य करते थे। कभी-कभी शिकार की व्यवस्था में दूर-दूर तक भी निकल जाना पड़ता था।

पशुपालन अर्थव्यवस्था—खुँटी जिले के मुंडा जनजाति के लोगों ने अपनी अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधारों में पशुपालन को भी शामिल किया है। पशुपालन से सामान्यतः लोगों को दो लाभ होते हैं। समय के अनुरूप पशुओं को काटकर खाने में भी उपयोग किया जाता है तथा पशुओं की संख्या अधिक होने पर इसे बेचकर धन की प्राप्ति भी की जाती है। मुंडा जनजाति के लोग शुरू से ही जंगल एवं पहाड़ों के नजदीक निवास करते थे। इसके कारण पशुओं का चारागाह आसानी से उपलब्ध हो जाता है। पशुओं को पौष्टिक आहार मिल जाने से बहुत जल्द ही छोटे पशु तैयार हो जाते हैं जिसका लाभ मुंडा जनजाति के लोगों को मिलता है।

खूँटी के मदगड़ा गाँव में पशुपालन—खुँटी जिले में लोग मुख्य रूप से गाय, बैल, भेड़, बकरी, मुर्गी, सुअर इत्यादि का पालन करते हैं। बैल का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता है तथा गाय से लोगों को आसानी से दूध की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार देखा जाए तो गाय और बैल से एक तरफ कृषि कार्य एवं दूध की प्राप्ति होती है दूसरे तरफ गोबर भी मिलता है जिसे कृषि योग्य भूमि में डाल कर उपजाऊ बनाया जाता है। भेड़ एवं बकरी से मांस की प्राप्ति होती है साथ भेड़, बकरियों को बेचकर धन की भी प्राप्ति हो जाती है। ठीक इसी प्रकार मुर्गी तथा सुअर को खाने में उपयोग किया जाता है और अधिक हो जाने पर उसे बेचकर धन की प्राप्ति की जाती है तथा इससे मुंडा जनजाति के लोगों की अर्थव्यवस्था में भी सुधार होता है।

कृषि अर्थव्यवस्था—खुँटी जिले के जनजातियों के लिए कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। मुंडा कुशल कृषक हैं। कृषि पद्धति का रूप वैसा ही जो कि समतल भूमि पर ग्रामीण किसानों का है। खेती के उपकरण में हल-बैल, हसुआ, कुदाल, खुरपी आदि आते हैं।[1] खुँटी जिले की जनजातियों का आर्थिक जीवन मुख्यतः खेती-बाड़ी पर आधारित है लेकिन आजकल इसके

अतिरिक्त नौकरी, मजदूरी, हाट-बाजार वनोपजों द्वारा ये अपनी आर्थिक दुनिया में काफी तेजी से परिवर्तन लाने में सफल रहे हैं।[2]

प्रारंभिक काल में मुंडा जनजाति के लोग स्थानांतरित कृषि करते थे। इस कृषि व्यवस्था में लोग एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते रहते थे। स्थानांतरित कृषि में अपने निवास स्थान के आस-पास के जंगलों एवं झाड़ियों को काटकर आग लगा दी जाती थी। पुनः इस जमीन पर फसल लगाई जाती थी जिससे उत्पादन अच्छा होता था। जंगली एवं पठारी क्षेत्र में रहने के कारण जंगल खरपतवार वर्षा के समय उतरता था। जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ जाती थी। यह प्रक्रिया एक दो वर्ष चलने के पश्चात् बंद हो जाती थी अर्थात् उत्पादन घट जाने के कारण ये लोग दूसरे स्थान की ओर चले जाते थे।

वर्तमान समय में खुँटी जिले की मुंडा जनजाति के लोगों ने स्थायी कृषि को आधुनिक तकनीकों के माध्यम से करना शुरू कर दिया है। इससे फसल का उत्पादन भी अधिक होता है तथा इसे बेचकर धन की प्राप्ति भी की जाती है। आधुनिक तकनीकों में उत्तम बीज, कीटनाशक दवाई, उर्वरक इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। नए-नए तकनीकों के प्रयोग होने से पहले की तुलना में फसलों का उत्पादन दो गुना हो गया है। उत्पादन बढ़ने से लोग आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हुए हैं तथा अकाल एवं सूखे की स्थिति में भी खाने के लिए भोजन उपलब्ध हो जाता है। मुंडा जनजाति के लोग सिंचाई के लिए प्रारंभ में कुआँ, तालाब एवं नदी-नालों पर निर्भर रहते थे परंतु वर्तमान समय में अधिकांश लोगों की फसलों की सिंचाई नलकूपों के माध्यम से होने लगी है। सरकार के सकारात्मक एवं जनजातीय विकास योजनाओं का लाभ मुंडा जनजाति को भी मिला है। कृषि कार्य के लिए महिलाओं का योगदान और अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। मुंडा मांसाहार के साथ-साथ सब्जियों के शौकीन होते हैं।[3]

मजदूरी अर्थव्यवस्था—खुँटी जिले में जनजातियों की प्रमुख आर्थिक पृष्ठभूमियों में मजदूरी अर्थव्यवस्था का अद्वितीय स्थान है। मजदूरी अर्थव्यवस्था के माध्यम से इन लोगों के जीवनयापन में काफी सुधार आया है तथा जीवनशैली में परिवर्तन देखने को मिलता है। वहाँ की जनजाति के लोग प्रतिदिन मजदूरी करने के लिए खुँटी जिले के आस-पास के क्षेत्रों में जाते हैं तथा कुछ लोग झारखंड के राजधानी रांची के नजदीकी क्षेत्रों में भी मजदूरी करने के लिए जाते हैं। शहरों का विकास होने के कारण तरह-तरह के कार्यों की उपलब्धता हो जाती है। मुंडा जनजाति के अधिकांश पुरुष सुबह-सुबह अपने घरेलु कार्यों को संपादित करने के पश्चात मजदूरी करने के लिए निकल जाते हैं।

मुंडा जनजाति के लोग मजदूरी को एक अहम रोजगार मानकर कार्य करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में महिलाएँ अपने गाँव के आस-पास में ही मजदूरी कार्य करना पंसद करती हैं परंतु काम नहीं मिलने की स्थिति में शहरों की ओर जाना मजबूरी हो जाती है। महिलाएँ कृषि मजदूर के रूप में वर्तमान समय कार्य करने लगी हैं। खुँटी क्षेत्र में कृषि फार्मों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जिसके कारण महिलाओं को काम आसानी से मिल जाता है। गाँव के नजदीक काम तो मिल जाता है लेकिन कम कृषि मजदूरी मिलने की बात भी सामने आ रही है। इस प्रकार अपने शोध में हम पाते हैं कि पुरुष मुंडाओं के साथ कंधा से कंधा मिलाकर चलने में महिलाएँ पीछे नहीं हटती हैं। मुंडा जनजाति में जिस रफ्तार से जनसंख्या बढ़ रही है। उसके कारण कृषियोग्य भूमि की कमी होने लगी है तथा वे लोग भूमिहीन होने लगे हैं वैसे परिवार के सदस्य दूसरे की भूमि में अस्थाई

रूप से कृषक मजदूर के रूप में भी काम करने लगे हैं।[4]

नौकरी पेशा अर्थव्यवस्था–खूँटी जिले की जनजातियों की सबसे महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्था के रूप में नौकरी पेशा को शामिल किया जाता है। खुँटी जिले में मुंडा जनजाति के कई लोग सरकार के विभिन्न विभागों में पदाधिकारी के रूप में कार्यरत हैं। जिसे देखकर गाँव एवं समाज के लोग नौकरी पेशा की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं। मुंडा जनजातीय समाज के लोग चतुर्थवर्गीय कर्मचारी से लेकर प्रथम वर्गीय पदाधिकारी के रूप में आसीन हैं। झारखंड राज्य अलग होने के पश्चात् मुंडा जनजाति के लोगों का झुकाव सरकारी नौकरी के प्रति बढ़ा है तथा राज्य के विभिन्न विभागों में नौकरी कर रहे हैं। मुंडा महिलाएँ भी नौकरी के क्षेत्र में पीछे नहीं रही हैं क्योंकि वर्तमान परिदृश्य को देखने से मालूम होता है कि मुंडा महिलाएँ किसी भी स्थिति में पुरुष से पीछे नहीं हैं।

मुंडा जनजाति के लोग सरकारी एवं गैरसरकारी कार्यालयों में नौकरी करते हुए देखे गए हैं। इससे यह साबित होता है कि मुंडा महिलाओं एवं पुरुषों के बीच नौकरी के प्रति जागरूकता बढ़ी है। बहुत से लोग प्रारंभिककाल में निजी कंपनियों में कार्य करते रहे हैं। इसी बीच सरकारी नौकरी की तलाश लगे रहते हैं। समय एवं परिस्थिति को ध्यान में रखकर चलने में मुंडा जनजाति के लोग ज्यादा विश्वास करते हैं। वर्तमान समय में देखा जाए तो झारखंड राज्य के अन्य जिलों में निवास करने वाले मुंडा जनजाति की तुलना में खुँटी जिले की मुंडा जनजाति के लोग नौकरी के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं। सरकार द्वारा कई योजनाएँ संचालित हैं जो जनजातीय विकास हेतु कार्य कर रही हैं जिसका लाभ मुंडा जनजाति के लोगों को भी मिल रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो मुंडा जनजाति के महिला एवं पुरुष सरकारी एवं गैरसरकारी नौकरियों में अपना स्थान सुरक्षित करने हेतु तत्पर मिलते हैं। मुंडाओं के बीच शिक्षा के प्रति चेतना जगी है और नगर के आस-पास के लोग सरकारी और गैर व अर्द्ध सरकारी कार्यालयों में नौकरी करने लगे हैं।[5]

संदर्भ

1. डॉ॰ चतुर्भुज साहु, 2012 झारखंड की जनजातियाँ, पृ॰ 63
2. वही, पृ॰ 61
3. डॉ॰ रामकुमार तिवारी, झारखंड की रूपरेखा, पृ॰ 503
4. डॉ॰ चतुर्भुज साहु, 2012: झारखंड की जनजातियाँ, पृ॰ 62
5. वही, पृ॰ 62
6. वही, पृ॰ 62
7. डॉ॰ निरंजन कुमार, 2017 नृजाति विज्ञान, झारखंड झरोखा, राँची, पृ॰ 54
8. डॉ॰ रामकुमार तिवारी, झारखंड की रूपरेखा, पृ॰ 504

सल्तनतकालीन युद्धों में हस्तिसेना की भूमिका

डॉ॰ प्रभाकर सिंह
सहायक आचार्य व विभागाध्यक्ष, इतिहास
मुंशी सिंह महाविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चंपारण

सिंधु घाटी सभ्यता, दक्षिण मेसोपोटामिया, पूर्वी एशिया प्रायद्वीप एवं चीन की सभ्यताओं में हाथियों को मानव द्वारा कार्य में लेने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।[1] भारतीय इतिहास में पोरस से लेकर पृथ्वीराज तृतीय तक के युद्धों में घोड़ों की अपेक्षा हाथियों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। चौथी शताब्दी ई॰पू॰ से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक हाथियों को सैन्यसंगठन का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था। शासक और सेनापति आदि युद्ध में प्राय: हाथियों पर ही बैठते थे। जिससे वह काफी दूरी से भी अपने सैनिकों द्वारा देखे जा सकें। इसका कारण यह था कि उस समय हार-जीत का निर्णय सेनापति के जीवन और मृत्यु पर ही निर्भर करता था, यदि सेनापति मारा जाता था या दृष्टि से ओझल हो जाता था तो सेना हार स्वीकार कर युद्ध बंद कर देती थी और सैनिक थोड़े ही समय में भाग खड़े होते थे। हिंदुस्तान में सेनापतियों के हाथियों पर बैठने के इस रीति-रिवाज पर नादिरशाह ने बहुत आश्चर्य प्रकट किया था कि 'यह कौनसी अजीबो-गरीब रिवाज है जिसे हिंद शासकों ने अपनाया है कि लड़ाई के समय वे हाँथी पर चढ़ जाते हैं और सभी के लक्ष्य केंद्र बन जाते हैं।'[2] हाथी लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचाते थे। घायल हो जाने पर वे स्वभावत: अनियंत्रित हो जाते थे और अपनी पूरी गति से भाग खड़े होते थे।

पूर्व मध्यकाल में भी भारतीय शासक एवं सेनापति हाथियों पर सवार होकर सैन्य संचालन किया करते थे। भारतीय शासकों को इसका बहुत बड़ा दुष्परिणाम भुगतना पड़ता था। तुर्क आक्रमणकारी अपने सैनिकों को हाथियों के महावतों को निशाना बनाने का आदेश देते थे, फलस्वरूप महावतों की मृत्यु के पश्चात हाथी नियंत्रण के बाहर होकर अपनी ही सेना को रौंदने लगते थे। साथ ही मुस्लिम सैनिक हाथी पर बैठे शासक एवं हाथियों को भी निशाना बनाते थे। मुहम्मद बिन कासिम से संघर्ष में सिंध के शासक दाहिर महमूद[3] के साथ संघर्ष में शाही शासक आनंदपाल[4] एवं मुहम्मद गोरी के विरुद्ध जयचंद की पराजय[5] के पीछे इन शासकों का हाथी पर सवार होना ही था। पूर्व मध्यकाल के इन निर्णायक युद्धों से भारतीय इतिहास की दिशा और दशा दोनों बदल सकती थी।

मध्यकालीन युद्धों में हाथियों का प्रयोग सेना के सबसे आगे की पंक्ति में किया जाता था। किलों के दरवाजों को तोड़ने के लिए भी हाथियों का प्रयोग किया जाता था। इसी कारण से किलों के दरवाजे इस्पात की चादरों और कीलों से जड़े होते थे। इन कीलों से हाथियों को बचाने के लिए हाथियों के सिर और मस्तक लोहे के चादर से ढके जाते थे[6] किंतु सल्तनतकालीन स्रोतों में एक भी दृष्टांत प्राप्त नहीं होता है कि हाथियों ने किले के दरवाजे को तोड़ा हो। साइमन डिग्बी का मानना है कि हाथियों का प्रयोग युद्धों में भारी साजों-सामान जैसे अस्त्र-शस्त्र और राजशाही छावनियों को

 ISSN 0975-735X

ले जाने के लिए किया जाता था।[7] सल्तनतकालीन हाथियों के द्वारा युद्धों में जाने के लिए अनेक प्रमाण स्रोतों में मिलते हैं कि हाथी इस काल के युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका को निभाते थे व सल्तनतकालीन सैन्य व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अंग होते थे।

सुल्तान बलबन युद्ध में एक हाथी की सेना को 500 घुड़सवारों की सेना के बराबर मानता था।[8] मुहम्मद तुगलक के शासन काल में जब तगी ने विद्रोह कर शाही सेना पर आक्रमण किया तो शाही सेना ने हाथियों की सेना के द्वारा उस पर आक्रमण किया। तगी के सैनिक शाही मस्त हाथियों का मुकाबला न कर सके और भाग खड़े हुए।[9] समकालीन इतिहासकार अफीफ के अनुसार सुल्तान फीरोज शाह तुगलक ने बंगाल अभियान के समय कोसी नदी को पार करने के लिए हाथियों का प्रयोग किया। वह लिखता है–'बंगाल का शासक शम्सुद्दीन कोसी नदी के दूसरे तट पर असंख्य सेना लिए खड़ा था और फीरोज को नदी पार करना कठिन था। सुल्तान कोसी के ऊपर 100 कोस तक अग्रसर हुआ और चम्पारन के पास जहाँ से कोसी नदी पर्वत से निकलती है, और नदी छिछली है किंतु नदी उस स्थान पर बड़े वेग के साथ बहती है। 500 मन के पत्थर ठीकरों के समान बड़े वेग के साथ बहती चली जाती है। सुल्तान ने आदेश दिया कि जहाँ पानी छिछला हो ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर हाथी खड़े कर दिए जाएँ जिससे सेना वाले सुगमतापूर्वक नदी पार कर ले। ऊपर की ओर हाँथी इस कारण खड़े किए गए कि जल का वेग कम हो जाए। हाथियों को रस्सियाँ बाँध दी गईं। नीचे की ओर इस कारण हाथी खड़े किए कि जो कोई डूबने लगे वह रस्सी पकड़ लें। इस प्रकार सुल्तान फीरोजशाह तुगलक की विशाल सेना ने नदी पार की और बंगाल का शासक शम्सुद्दीन असंख्य सेना लेकर भाग खड़ा हुआ।[10]

यद्यपि सल्तनतकालीन भारतीय युद्धों में हाथियों का योगदान सैद्धांतिक रूप से महत्त्वपूर्ण था। हाथियों के व्यावहारिक एवं स्वाभाविक कार्यों के बारे में इतिहासकार ए॰एल॰ बाशम लिखते हैं कि 'मुस्लिम आक्रमणकारी भारतीय प्रशिक्षित सैन्य हाथियों को देखकर उन पर विश्वास करने लगे थे एवं व्यावहारिक रूप से युद्ध में हाथियों का प्रयोग अतिआवश्यक मानने लगे। सल्तनत काल के कुछ शासकों को छोड़कर सुल्तानों ने तुलनात्मक रूप से हाथियों पर अतिविश्वास किया व हाथियों का प्रयोग बृहद रूप से युद्धों में किया।'[11] दिल्ली सल्तनत के अभियानों में हाथी व घोडे मुख्य अंग होते थे। तुगलक वंश के पतन के साथ-साथ हाथियों की संख्या में भी कमी आने लगी। 1398 ई॰ के तैमूर के साथ युद्ध में पराजय का मुख्य कारण सल्तनत की सेना में तुलनात्मक रूप से हाथी एवं घोड़ों की संख्या का कम होना था।[12] प्रारंभिक अभियानों की तुलना में हाथी एवं घोड़ों के सैनिकों की कमी के कारण सल्तनत का आकार छोटा होता गया। लोदियों के शासनकाल में घोड़ों का विदेशी व्यापार बढ़ने एवं हाथियों को युद्ध के लिए प्रशिक्षित करने के कारण सल्तनत की शक्ति बढ़ी।

हाथियों के विशालकाय शरीर एवं उनके द्वारा युद्ध में उसी के अनुरूप कार्य का वर्णन सल्तनतकालीन लेखकों ने किया है। हाथियों के युद्ध के वर्णन के साथ-साथ उनके सौंदर्य का वर्णन भी लेखक करते हैं। अरबी लेखक अल उमरी विवरण देता है कि मुहम्मद तुगलक के पास 3 हजार सुसज्जित हाथी थे, जिन्हें युद्ध के समय सोने के काम की हुई लोहे की झूले पहनाई जाती थीं। शांति के दिनों में उन पर रेशमी किमख्वाब अथवा विभिन्न प्रकार के रेशमी वस्त्र, जिन पर बेलबूटे बने हुए होते हैं, हाथियों पर छत्र तथा हौदज होते हैं। बैठने के स्थान पर पतुर लगे होते हैं तथा उनमें लकड़ी की गुमटियाँ लगी होती हैं जो कीलों द्वारा जकड़ी होती हैं। हिंदुस्तानी लोग युद्ध

के समय अपने बैठने का स्थान इन्हीं में बनाते हैं। हाथी की शक्ति के अनुसार 6 से 10 मनुष्य तक बैठते हैं।'[13]

युद्ध क्षेत्र में हाथियों के कार्य के बारे में शिहाबुद्दीन अल उमरी लिखता है कि सुल्तान सेना के मध्य भाग में खड़ा होता है जो चारों ओर से इमाम[14] तथा आलिमों से घिरा होता है। धनुर्धारी लोग सामने तथा पीछे होते हैं। दाहिने तथा बाँए पार्श्व को दोनों ओर फैला दिया जाता है जिससे सेना के दोनों अंश मिल जाते हैं। सेना के सामने लोहे के साज से ढके हुए हौदे सहित हाथी जिसमें सैनिक छिपे होते हैं। हौदे के इन स्मंभों में बाण छोड़ने तथा ज्वलनशील पदार्थों से भरी हुई सामाग्री फेंकने के लिए छिद्र होते हैं। हाथियों के सामने पैदल सैनिक होते हैं जो हल्के कवच धारण किए हुए तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र लेकर चलते हैं। युद्ध के समय पैदल सैनिक हाथियों के लिए मार्ग बनाते हैं एवं तलवारों से शत्रु के घोड़ों की नसों को काटते जाते हैं। हौदों में बैठे सैनिक तीर एवं ज्वलनशील पदार्थ ऊपर से फेंकते हैं। घुड़सवार सेना जो सेना के दाँए व बाँए अंग में होते हैं वे दो तरफ से शत्रु को घेरते हैं और हाथियों के चारों ओर तथा उनके पीछे युद्ध करते हैं।[15]

शिहाबुद्दीन अल उमरी के कथनानुसार हाथियों की सेना सामने और सुल्तान अथवा सेनापति मध्य में होता था। इसका प्रमाण अलाउद्दीन खिलजी एवं मंगोलों के बीच 1299 ई० के कीली के[16] युद्ध से भी प्राप्त होता है। एसामी लिखता है कि दिल्ली की सेना के दाहिनी ओर नदी थी और बाँई ओर एक विशाल काँटो एवं झाड़ियों का जंगल, अलाउद्दीन ने बीच में मोर्चा सँभाला, दाँहिनी ओर उसने जफर खाँ को तैनात किया तथा बाँई ओर नुसरत खाँ को रखा और उसके पीछे उसकी कुमक के लिए उलुग खाँ था। अकत खाँ और उसके सैनिकों को आज्ञा दी गई की वे सुल्तान के आगे खड़े हो। शत्रु के भयानक आघात के विरुद्ध रोक के रूप में प्रत्येक भाग के सम्मुख 200 हाथियों की सेना रखी थी।[17]

भारतीय हाथियों द्वारा युद्ध के समय दूरी तय करने के बारे में इतिहासकार लिखते हैं कि युद्ध के समय वे तेजी से चलकर 15 मील एक घंटा में दूरी तय कर लेते थे।[18] तब शिहाबुद्दीन अल उमरी की यह अवधारणा कि पैदल सैनिक आगे-आगे चलकर हाथियों के लिए मार्ग बनाने एवं सुरक्षा करने का दायित्व निभाते थे मिथ्या सिद्ध हो जाता है। हाथी युद्ध के मैदान में किस प्रकार गति करते हुए शत्रुओं का विनाश करते थे। इसका वर्णन गाजी मलिक और नासिरूद्दीन खुसरो के भाई खानखाना के मध्य हुए युद्ध के प्रसंग में करता है–

हाथियों की पंक्तियाँ काली घटा के समान बढ़ीं
उनके आक्रमण से दिन में अँधेरा छा गया,
हौदे के नीचे उनके शरीर ऐसे थे कि मानो
पर्वत बादल के नीचे छिप गया हो
इन हाथियों पर धनुर्धारी चुटकियों में तीर दबाए बैठे थे

हाथियों के पीछे से सवारों की पंक्तियाँ चली आती थीं
और भूमि में मछलियों के समान तैरने लगते थे
सेना के बीच में भीगी धारा के समान खानेखाना
छत्र लगाए बैठा था।[19]

समकालीन इतिहासकार अमीर खुसरो दूसरे पक्ष का भी वर्णन करता है कि युद्ध में बिना

हाथियों का प्रयोग करते हुए उसने 1 हाथी की हत्या कर 12 हाथियों को पकड़ा एवं विजय प्राप्त की। हाथियों की पराजय का वर्णन खुसरो इस प्रकार करता है तुगलक के धनुर्धारियों ने हाथियों के कुछ कोचवानों को तीरों से घायल करके जमीन पर गिरा दिया और पैदल सैनिकों ने दाँतेदार हथियारों से हाथियों के पैरों पर चोट करने लगे, और बचे हुए कोचवान हाथियों को मोड़कर अपने सेना की तरफ भागने लगे।[20]

1398 ई॰ के युद्ध में तैमूर की सेना ने बड़ी संख्या में हाथियों को चोटिल किया व हत्या की थी।[21] हाथियों की सेना की बड़ी तैयारी एवं उनकी हत्या का वर्णन 1299 ई॰ के कीली युद्ध में भी मिलता है। एसामी के अनुसार सुल्तान ने प्रत्येक भाग के सम्मुख 200 हाथियों को रखा था[22] व जफर खाँ जो दाँए भाग का नेतृत्व कर रहा था उसी सेना के 30 हाथी मंगोलों के द्वारा मारे गए थे।[23] बरनी के द्वारा युद्ध की घटनाओं की व्याख्या से युद्ध में हाथियों के लाभ एवं हानि दोनों का पता चलता है। जफर खाँ जो दाँए भाग का सेनानायक था वह मंगोलों से युद्ध करता हुआ 18 कोस तक पीछा किया, सुल्तान एवं बाँए भाग के सैनिक उसकी सहायतार्थ न पहुँचे। मंगोलों ने जफर खाँ एवं उसके सैनिकों को घेरकर तीरों की वर्षा की और महावतों की हत्या कर दी व हाथियों को घायल कर दिया।[24] इतिहासकार साइमन डिग्बी के अनुसार इस युद्ध में जफर खाँ के साथ 6-7 हाथी ही जा सके बाकी कोचवान हाथियों को सुरक्षित वापस लौटा ले आए।[25] इस प्रकार की घटनाओं से मालूम होता है कि युद्ध में हाथी नियंत्रण के बाहर हो जाते थे वह शत्रुओं से घिर जाने पर एवं कोचवानों की हत्या हो जाने पर भागने लगते थे। साथ ही हौदों पर बैठे सैनिकों की सुरक्षा के लिए पूर्ण उपाय संभवत: नहीं होते थे।

लोदियों के शासन काल के युद्धों में हस्ति सेना के अत्यधिक प्रयोग किए जाने के प्रमाण प्राप्त होते हैं किंतु तुगलकों एवं खल्जियों के शासनकाल के प्रशिक्षित हाथियों की तरह उनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। हाथियों के ऊपर से चरख व अन्य आग्नेयास्त्रों के प्रयोग करने के सूत्र लोदियों के काल के युद्ध में नहीं मिलता है। पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी की सेना में 1000 हाथी थे।[26] इतिहासकार आर॰पी॰ त्रिपाठी इन हाथियों के बारे में लिखते हैं–इन हाथियों को आग्नेय अस्त्रों का सामना करने के लिए प्रशिक्षित नहीं किया गया था जिससे लाभ न होकर हानि अधिक हुई।[27]

संदर्भ

1. जगदीशनारायण सरकार, आर्ट ऑफ वार इन मेडिवल इंडिया, नई दिल्ली, 1984, पृ॰ 104
2. विलियन इर्विन, भारतीय मुगलों की सैन्य व्यवस्था, हिंदी अनु॰ रमेश तिवारी (इलाहाबाद, तिथि रहित), पृ॰ 164
3. चचनामा, इलियट व डाउसन भारत का इतिहास, भाग 1, हि॰ अनु॰ मथुरा लाल शर्मा (आगरा 1973) पृ॰ 122-23
4. इलियट, भारत का इतिहास, भाग 2, परिशिष्ट, पृ॰ 322
5. मिनहाज सिराज, तबकाते नासिरी, अं॰अनु॰ एच॰सी॰ रैवर्टी, भाग 1, (नई दिल्ली, 1970), पृ॰ 512
6. साइमन डिग्बी, वार हार्स एण्ड एलिफैंट इन द सल्तनत ऑफ देलही, (कराची 1971), पृ॰ 50-51
7. वही
8. बरनी तारीखे, फीरोजशाही, पृ॰ 53, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, आदि तुर्ककालीन भारत, (नई दिल्ली 2005) पृ॰ 161

9. तारीखे-फीरोजशाही (बरनी), पृ॰ 519, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, तुगलककालीन भारत, भाग 1, (नई दिल्ली 2008), पृ॰ 77, बरनी ने इस युद्ध का स्थान कड़ाबती दिया है जो गुजरात के पाटन के निकट कड़ी जगह है।
10. शम्स सिराज अफीफ, तारीखे फीरोजशाही, पृ॰ 111, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, तुगलककालीन भारत, भाग-2, (नई दिल्ली 2008) पृ॰ 69
11. ए॰एल॰ बाशम, द वंडर डैट वाज इंडिया, (लंदन, 1954), पृ॰ 129-30
12. द वंडर डैट वाज इंडिया, पृ॰ 129-30। 18 दिसंबर 1398 ई॰ में तैमूर एवं दिल्ली के शासक महमूद की सेना के बीच युद्ध हुआ था, जिसमें तैमूर विजयी रहा। शरफुद्दीन अली यजदी, जफरनामा, भाग 2, (कलकत्ता, 1885-88 ई॰), पृ॰ 98-110, तुगलककालीन भारत, भाग 2, पृ॰ 255-57, लेखक के अनुसार इस युद्ध के पूर्व तैमूर लंग की सेना ने हाथियों की सेना को नही देखा था। वे आश्चर्यचकित व भयभीत थे। तैमूर की सेना ने यह जनश्रुति सुन रखी थी कि 'उनके ऊपर बाण तथा तलवार का प्रभाव नहीं होता है, उनका बल इतना अधिक होता है कि उसका अनुमान नहीं किया जा सकता है। वे बड़े-बड़े वृक्षों को आक्रमण के समय जड़ से उखाड़कर फेंकते हैं और भव्य भवनों को संकेत में तहस-नहस कर डालते हैं, युद्ध के समय वे सवारों को घोड़ों सहित सूँड़ में लपेटकर हवा में उछाल देते हैं। यजदी लिखता है कि पर्वतरूपी हाथियों को विशेष रूप से तैयार किया जाता था और उनके दाँतों में विष से भरे हुए फालों से दृढ़ बनाया जाता था। हाथी की पीठ को पुश्तों के समान लकड़ियों से घेरकर मजबूत किया जाता था। प्रत्येक तख्ते पर कुछ बाण चलाने वाले तथा चरख चलाने वाले बैठे थे। तैमूर के सैनिक युद्ध के पूर्व हाथियों की सेना के बारे में सुनकर भयभीत थे। जब उसने आलिमो से जा उसके साथ रहते थे पूछा कि तुम्हारा स्थान कहाँ होगा तो उन्होंने उत्तर दिया कि सेवकों का स्थान जहाँ स्त्रियाँ होती हैं वहाँ होगा। इस युद्ध में तैमूर ने हाथियों की सेना से बचाव के लिए सेना की पंक्तियों के सामने से स्तंभों की पंक्ति द्वारा सुरक्षित किया एवं उनके समक्ष खाइयाँ खोदवाईं, खाइयों के सामने भैंसों के गर्दन तथा पाँव गाय की खाल से बँधवाया। लोहे के बहुत बड़े-बड़े काँटे तैयार करवाए और यह निश्चय हुआ कि पदाति उन्हें सुरक्षित रखे और जब हाथी आक्रमण करे तो व उनके हाथियों के सामने डाल दे।
13. शिहाबुद्दीन अल उमरी, मसालिकुल अबसार, फी ममालिकुल अमसार, अं॰ अनु॰ आई॰एच॰ सिद्दीकी व काजी मुहम्मद अहमद, शीर्षक, फोरटीन्थ सेंचुरी अरब एकाउंट आफ इंडिया अंडर मुहम्मद बिन तुगलक (अलीगढ़, 1971), पृ॰ 37
14. इमाम धार्मिक नेता था जो सुल्तान को नमाज पढ़ते समय सबसे आगे खड़ा होता है। आलिम का अर्थ होता है धार्मिक विद्वान।
15. मसालिकुल अबसार, फी ममालिकुल अमसार (सिद्दीकी अहमद), पृ॰ 53, युद्ध के क्षेत्र में हाथियों के हौदे से तीर के अलावा ज्वलनशील पदार्थ एवं चरख फेंकने का उल्लेख जफरनामा में तैमूर के भारत अभियान में भी मिलता है। सैयद अतहर अब्बास रिजवी ने चरख की व्याख्या पहिएदार मध्यकालीन मशीन से की है जिससे आग एवं पत्थर फेंके जाते थे। तुगलककालीन भारत, भाग 2, पृ॰ 255
16. कीली दिल्ली के उत्तर में छः मील दूरी पर था, जहाँ कुतलुग ख्वाजा 2 लाख सैनिकों को लिए अपना शिविर लगाया था।
17. एसामी, फुतुहुस्सलातीन, पृ॰ 258-59, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, खिलजीकालीन भारत, (नई दिल्ली, 2005), पृ॰ 199, हबीब व निजामी (सं॰), दिल्ली सुल्तनत, भाग 1, (नई दिल्ली, 1978),

पृ॰ 292
के॰एस॰ लाल के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी 12000 सैनिकों के साथ मध्य भाग का नेतृत्व कर रहा था। उसने शत्रु के भयानक आक्रमण को रोकने के लिए प्रत्येक भाग के सामने 22 हाथी रखे थे। के॰एस॰ लाल, खिलजी वंश का इतिहास, (आगरा, 1973), पृ॰ 133
फरिश्ता के अनुसार शाही सेना में 30 हजार घोड़े और और 2700 हाथी थे, किंतु यह संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि यदि इतनी विशाल सेना उसके पास तैयार रहती तो वह इस आक्रमण के लिए इतना चिंतित न होता। फरिश्ता, तारिखे फरिश्ता, हि॰अनु॰ नरेंद्रबहादुर श्रीवास्तव, भाग 1, (लखनऊ 2003), पृ॰ 222

18. वार हार्स एंड एलिफैंट इन द सल्तनत ऑफ देलही, पृ॰ 53
19. अमीर खुसरो, तुगलकनामा (हैदराबाद, 1933 ई॰), पृ॰ 92, खलजीकालीन भारत, पृ॰ 188, यह वर्णन सरसुती के युद्ध का है जिसमें दिल्ली के शासक नासिरुद्दीन खुसरो खाँ ने अपने भाई खानखाना को गयासुद्दीन तुगलुक के विरुद्ध भेजा था। तुगलकनामा, पृ॰ 80-82, खिलजीकालीन भारत, पृ॰ 187 आगा मेहदी हुसैन ने तबकाते नासिरी के आधार पर बताया है कि सरसुतीन न होकर सिरसा है। जो युद्ध तराइन के आस पास लड़ा गया। आगा मेहदी हुसैन, द राइज एंड फाल ऑफ मुहम्मद बिन तुगलक (दिल्ली, 1972), पृ॰ 38
20. अमीर खुसरो, तुगलकनामा, पृ॰ 98, उद्दृत, वार हार्स एंड एलिफैंट इन द सल्तनत ऑफ देलही, पृ॰ 53
21. शरफुद्दीन अली यजदी, जफरनामा, भाग 2, पृ॰ 107, तुगलककालीन भारत, भाग 2, पृ॰ 256। तैमूर की सेना ने हाथियों की पंक्ति पर आक्रमण किया और इन अजगरों के बीच में प्रविष्ट हो गए और उन महावतों की उन पर्वत की चोटियों से भूमि पर गिरा दिया और उन अजगर रूपी हाथियों को बाणों तथा तलवारों से आहत कर दिया और उन हाथियों में से कई को बंदी बनाकर तैमूर के समक्ष लाया था।
22. फुतुहुस्सलातीन, पृ॰ 260, खलजी कालीन भारत, पृ॰ 199
23. फुतुहुस्सलातीन, पृ॰ 267, खलजी कालीन भारत, पृ॰ 200
24. तारीखे-फीरोजशाही (बरनी), पृ॰ 260-61, खलजी कालीन भारत, पृ॰ 52-53
25. वार हार्स एंड एलिफैंट इन द सल्तनत ऑफ देलही, पृ॰ 54, डिग्बी ने तारीखे-फीरोजशाही के अन्य प्रतियों का उदारण दिया है।
26. बाबरनामा, सैयद अतहर अब्बास रिजवी, मुगलकालीन भारत-बाबर, (अलीगढ़, 1960), पृ॰ 154
27. आर॰पी॰ त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन, (इलाहाबाद, 2003), पृ॰ 27

खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के चर का प्रभाव : जोधपुर जिले का एक अध्ययन

प्रेमाराम सांखला, शोधार्थी (भूगोल)
राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य यूनिवर्सिटी अलवर
डॉ॰ अजय कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर
बानसूर पीजी कॉलेज, बानसूर, अलवर

बदलते मौसम के पैटर्न, तापमान, आर्द्रता के स्तर और CO2 के स्तर से यह सटीक आकलन करना असंभव हो जाता है कि जलवायु परिवर्तन खाद्य उत्पादन और खेती को कैसे प्रभावित करेगा। हालाँकि, पौधों, जानवरों, कीटनाशकों और संक्रमण सहित पारिस्थितिक तंत्र पर इसके कई प्रभाव होने की उम्मीद है। पौधों को विभिन्न तरीकों से बदलती जलवायु के लिए शारीरिक रूप से प्रतिक्रिया करनी चाहिए। यद्यपि अनुकूल परिणामों का अनुमान लगाया जाता है, यह अधिक संभव है कि परिवर्तित पर्यावरण के कारण प्रतिकूल प्रभाव हो सकते हैं, जैसे कि पैदावार को कम करने वाली बीमारियों और कीटों के प्रसार में वृद्धि। पौधे के प्रदर्शन पर शोध के अनुसार, बढ़ते CO2 स्तरों पर पौधे प्रकाश संश्लेषण में वृद्धि केवल सही तापमान और वर्षा की स्थिति में होने की संभावना है। हालाँकि, तापमान और वर्षा के पैटर्न को भविष्य की जलवायु परिस्थितियों में अप्रत्याशित तरीके से बदलने की उम्मीद है।

जलवायु परिवर्तन का चक्र–कृषि क्षेत्र विशेष रूप से प्रत्यक्ष पर्यावरणीय जोखिम से प्रभावित होता है क्योंकि पाकिस्तान जैसे विकासशील देशों में उनके सकल घरेलू उत्पाद का अधिकांश हिस्सा कृषि पर निर्भर है। इसलिए, कृषि उत्पादकता पर जलवायु परिवर्तन का प्रमुख प्रभाव पौधों के पैटर्न, तापमान, बाढ़, सूखे और पानी और भूमि की आपूर्ति पर हानिकारक प्रभावों में परिवर्तन के कारण होता है। विकासशील देशों (जैसे एशिया और अफ्रीका) में कृषि उत्पादकता पर जलवायु परिवर्तन के परिणामों का हाल के शोध में पूरी तरह से अध्ययन किया गया है। स्वच्छ पानी और भोजन तक पहुँच दोनों जलवायु परिवर्तन के प्रति बहुत संवेदनशील हैं। कुछ जलवायु मॉडलों ने संकेत दिया कि गर्मियों में बाढ़ के दौरान वर्षा बढ़ेगी और तीव्रता में गिरावट या तीव्रता में वृद्धि के परिणामस्वरूप सूखा हो सकता है। जलवायु परिवर्तन का कृषि उत्पादन पर प्रभाव पड़ने की उम्मीद है, जो हमारी खाद्य आपूर्ति की सुरक्षा के बारे में सवाल उठाता है। 'निशेचन प्रभाव' के कारण, ग्लोबल वार्मिंग से रिटर्न में वृद्धि होने की भविष्यवाणी की जाती है, लेकिन छोटे पैमाने पर किसानों पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए, ग्लोबल वार्मिंग ने भूमध्य रेखा के करीब देशों में उत्पादकता को कम कर दिया होगा। अफ्रीका गंभीर कठिनाइयों और बिगड़ती खाद्य कमी का सामना कर रहा है। बहुत से लोग खतरे में होंगे, और खाद्य असुरक्षा बढ़ेगी, कम आय वाले एशियाई या अफ्रीकी देशों में जहाँ जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादकता को प्रभावित करता है। कृषि का उत्पादन प्रभावित होगा।

 ISSN 0975-735X

कृषि संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव–खाद्य सुरक्षा दो तरीकों से कृषि से प्रभावित होती है–यह भोजन उत्पन्न करती है, और शायद अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह रोजगार के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के साथ वैश्विक कार्यबल का 36%प्रदान करता है। यह एशिया और प्रशांत के घनी आबादी वाले देशों में लगभग 40 से 50% के बीच है, जबकि उप-सहारा अफ्रीका में कामकाजी आबादी का 66% सब कुछ (आईएलओ 2007) के बावजूद बागवानी से रहता है। यदि कम आय वाले उभरते एशियाई और अफ्रीकी देशों में कृषि उत्पादकता जलवायु परिवर्तन से नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है, तो ग्रामीण गरीबों का एक बड़ा वर्ग जोखिम लेने और भूख के प्रति अधिक संवेदनशील होने के लिए मजबूर हो जाएगा। जबकि जलवायु परिवर्तन पर तर्क अक्सर तापमान-संचालित होता है, पानी यह तय करता है कि क्या एक संस्कृति या पर्यावरण (एक गाँव, शहर या क्षेत्र) पनपेगा। जलवायु परिवर्तन के परिणामों को कृषि में महसूस या देखा नहीं जा सकता है। भारत की 60% से अधिक आबादी नौकरी के रूप में कृषि पर निर्भर है। गंभीर चिंता है कि सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में खेती का योगदान 14% से कम हो गया है और 2000-2001 में 20% से अधिक की गिरावट जारी रहेगी। 1990 के दशक के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ी है। इसके बावजूद, मजबूत आर्थिक विकास और उच्च खाद्य माँगों के अपेक्षित स्तर के बावजूद, भोजन की माँग में वृद्धि नहीं हुई। हाल ही में एफओओ शोध (एफएओ, 2012) के अनुसार, विकासशील देशों में कुपोषित 827 मिलियन लोगों में से 238 मिलियन भारत में रहते हैं। 2009 में, 27.5% आबादी गरीबी स्तर से नीचे रहती थी। भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से खाद्य सुरक्षा के कई झटकों का अनुभव किया है क्योंकि उसने पहली बार कृषि की उपेक्षा करते हुए औद्योगीकरण पर जोर दिया था, 1960 के दशक के मध्य में लगातार दो सूखे पड़े थे, और अमेरिकी खाद्य सहायता पर बहुत अधिक निर्भर था।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव–जलवायु परिवर्तन कृषि और खाद्य उत्पादन को कैसे प्रभावित करेगा, इसका सटीक मूल्यांकन आवश्यक नहीं है। फिर भी, मौसमी पैटर्न और बाद के तापमान, आर्द्रता के स्तर और सीओ 2 स्तरों में भिन्नता भी आवासों पर विभिन्न प्रभावों के संदर्भ में होती है और इसके परिणामस्वरूप खेत जानवरों, पौधों, रोगजनकों और कीटों पर। जलवायु परिवर्तन के लिए पौधों का उत्तर विविध होने का अनुमान है। जबकि कुछ सकारात्मक परिणामों की भविष्यवाणी की जाती है, नई जलवायु परिस्थितियों पर अधिक संभावित नकारात्मक प्रभाव होते हैं जिनमें बढ़ती बीमारी और प्लेग का प्रसार, पैदावार कम करना शामिल है। फसल उत्पादन अध्ययनों के एक मेटा-विश्लेषण से पता चला है कि उच्च CO2 दरों पर पौधे प्रकाश संश्लेषण में संभावित वृद्धि केवल तभी संभव है जब

इष्टतम तापमान और अनुकूल आलूबुखारा पैटर्न के साथ जोड़ा जाए–जलवायु परिवर्तन कृषि और खाद्य उत्पादन को कैसे प्रभावित करेगा, इसका सटीक मूल्यांकन आवश्यक नहीं है। मौसमी पैटर्न में अंतर और तापमान, आर्द्रता और सीओ 2 स्तरों में आगामी परिवर्तनों का आवासों पर भी विविध प्रभाव पड़ता है, जो बदले में खेत के जानवरों, पौधों, संक्रमण और कीटों पर प्रभाव डालता है। यह उम्मीद की जाती है कि पौधे जलवायु परिवर्तन के लिए विभिन्न तरीकों से प्रतिक्रिया देंगे। जबकि कुछ लाभों का अनुमान लगाया जाता है, परिवर्तित जलवायु परिस्थितियों से जुड़ी अधिक संभावित कमियाँ भी हैं, जैसे कि बीमारी और प्लेग संचरण में वृद्धि और फसल में कमी। कृषि उपज अनुसंधान के मेटा-विश्लेषण के अनुसार, उच्च CO2 दरों पर पौधे प्रकाश संश्लेषण

में संभावित वृद्धि केवल तभी हो सकती है जब इष्टतम तापमान और लाभप्रद आलू बुखारा पैटर्न के साथ जोड़ा जाता है। भारत की जल प्रणाली हिमालयी धाराओं पर बहुत अधिक निर्भर है। हाल के पर्यावरणीय परिवर्तनों और मानवीय गतिविधियों के कारण, हिमालयी वाटरशेड की हाइड्रोलॉजिकल विशेषताओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। नतीजतन, अब वर्षा और सतह के पानी के अतिप्रवाह, लगातार हाइड्रोलॉजिकल आपदाओं और झील प्रदूषण में अधिक उतार-चढ़ाव है। कुछ क्षेत्र दूसरों की तुलना में जमे हुए द्रव्यमान के द्रवीकरण से प्रभावित होंगे, और विभिन्न तरीकों से। हिमालयी ठंडी पिघलने से तुरंत तापमान में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप बर्फ के बजाय अधिक वर्षा होती है। कम बर्फ और अधिक बारिश अस्थाई रूप से ताजे पानी की उपलब्धता में वृद्धि करती है, लेकिन वे अवधि के साथ पानी की पहुँच को कम करते हैं क्योंकि नमी कठोर संरचनाओं में संग्रहीत नहीं होती है।

वर्षा पैटर्न में व्यवधान—भारतीय बागवानी स्थापित वर्षा पैटर्न के विघटन से नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है क्योंकि कृषि ढाँचे ने ट्रिमिंग डिजाइन विकसित किए हैं जो स्थानीय जलवायु पर निर्भर करते हैं। जिलों के बीच वर्षा के पैटर्न बदल रहे हैं, गीले साल गीले हो रहे हैं और शुष्क वर्ष सूखे हो रहे हैं। अंतर-बारिश में गिरावट की स्थिरता में वृद्धि का भी उपज सुधार पर प्रभाव पड़ता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप महत्त्वपूर्ण वर्षा की घटनाओं की अधिक आवृत्ति, हवा के दिनों की समग्र संख्या में कमी, बारिश के बीच लंबे अंतराल के साथ-साथ वाष्पोत्सर्जन की दर में वृद्धि हो सकती है। यहनिर्मित ट्रिमिंग विचारों को परेशान करेगा। भारत के एक बड़े हिस्से में, तूफानी दिनों की कुल संख्या में गिरावट के साथ तीव्र वर्षा में वृद्धि हुई है। वार्षिक वर्षा में भिन्नता बढ़ रही है। विश्लेषण दर्शाता है कि औसत सतह के तापमान में वृद्धि न केवल बारिश के बाद के तूफान और सर्दियों के वातावरण को प्रभावित करेगी, बल्कि इसके परिणामस्वरूप 2050 तक गर्मियों की वर्षा में 70% की कमी होने की भी उम्मीद है। मौसमी परिवर्तन, जीवों का स्थानांतरण, और वनस्पति में परिवर्तन सभी इन बदलावों के कारण हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त, वे बीमारियों के विकास और प्रसार को प्रभावित कर रहे हैं, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है।

बाढ़—बाढ़ का बढ़ता जोखिम वर्षा पैटर्न में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होगा जो गंभीर मौसम की स्थिति की अधिक लगातार घटना का कारण बनता है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में असाधारण अवसर खेती को प्रभावित करेंगे जो अब बाढ़ और पारिस्थितिक खतरों के खिलाफ असहाय है, उदाहरण के लिए, शुष्क अवधि, बवंडर और तूफान। जबकि चावल की अधिकांश किस्में लगभग 6 दिनों तक जलमग्नता का सामना कर सकती हैं, इस अवधि के बाद, आमतौर पर 50% पौधे बुरी तरह से विफल हो जाएँगे, बांग्लादेश ने 1962 और 1988 में बाढ़ के कारण एक मिलियन टन चावल का लगभग एक बड़ा हिस्सा खो दिया, जो देश के खाद्यान्न के सामान्य वार्षिक आयात का लगभग 30% था। जब डूब 14 दिनों या उससे अधिक समय तक रहता है, तभी मृत्यु दर पूरी तरह से स्पष्ट हो जाएगी। चूंकि देश के बाढ़ प्रवण क्षेत्र का 33% ग्रामीण उपयोगों के लिए उपयोग किया जाता है, इसलिए भारतीय कृषि और निवास बाढ़ के खिलाफ विशेष रूप से असहाय हैं।

सूखे—बढ़े हुए तापमान ने केवल कुछ कमजोर अर्द्धशुष्क और शुष्क स्थानों में वर्षा में कमी का कारण बना है। बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 1900 और 2005 के बीच, दक्षिणी एशिया और पश्चिमी अफ्रीका में वर्षा में 7.5 प्रतिशत की कमी आई है। बढ़े हुए तापमान से जल चक्र

मजबूत होता है, जिसके परिणामस्वरूप जलवायु घटनाओं और लंबे समय तक चलने वाले शुष्क मौसमों में अधिक चरम भिन्नताएं होती हैं। इसके अतिरिक्त, सामान्य तापमान वृद्धि औसत से कम वर्षा वाले वर्षों के दौरान शुष्क मौसम की स्थिति को बदतर बना देगी। आंध्र प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात के साथ-साथ कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रों में अब समय-समय पर सूखे का सामना करना पड़ रहा है, कुछ स्थानों पर वर्तमान में पानी की कमी का सामना करना पड़ रहा है। शुष्क भूमि क्षेत्रों में, बहुत कम खेत रन लैंड बन सकते हैं, और कुछ रेंजलैंड और उपज भूमि फिर कभी भी भोजन और अनाज के उत्पादन के लिए व्यावहारिक नहीं हो सकती है।

मिट्टी–जबकि यह उम्मीद की जाती है कि वर्षा के उदाहरण पर्यावरण से प्रभावित होंगे परिवर्तन, मिट्टी के प्रकार भी दृढ़ता से प्रभावित होते हैं। यह इस तथ्य के कारण है कि तापमान और वर्षा में परिवर्तन पानी के रन-ऑफ और विघटन को प्रभावित करता है, जो मिट्टी, प्राकृतिक नाइट्रोजन और कार्बन सामग्री और जमीन में लवणता को प्रभावित करता है। इस प्रकार, इसका छोटे मिट्टी के जीवन रूपों की जैव विविधता पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मिट्टी की समृद्धि पर इन कारकों का प्रभाव उत्कृष्ट है। मिट्टी के तापमान में वृद्धि प्राकृतिक समस्या के क्षरण और अन्य मिट्टी के रूपों को तेज कर सकती है जो फलदायी को प्रभावित करते हैं। प्रारंभिक निष्कर्षों के अनुसार, एक अप्राकृतिक जलवायु परिवर्तन मिट्टी के टूटने को तेज करके मिट्टी बनाने वाले कार्बन की मात्रा को कम कर देगा। इसके अतिरिक्त, CO2 बढ़ने से शुद्ध मूल आयु के माध्यम से मिट्टी के सामान्य कार्बन पर समान प्रभाव पड़ सकता है। जैसा कि विशेषज्ञों ने दिखाया है, मध्यम और उच्च कार्बन मिट्टी की तुलना में कम कार्बन मिट्टी में तापमान में थोड़ी वृद्धि के परिणामस्वरूप कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में वृद्धि होती है। कम कार्बन मिट्टी को सैद्धांतिक रूप से इस आश्चर्य से ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ ढाल दिया गया है।

जैव विविधता–2007 में प्रकाशित चौथी आईपीसीसी रिपोर्ट ने भविष्यवाणी की कि सदी के अंत तक, अत्यधिक पर्यावरणीय परिवर्तन जैव विविधता के नुकसान का मुख्य कारण होगा। सभी ज्ञात पौधों और जानवरों की प्रजातियों का लगभग 20-30% उस समय समाप्त हो जाएगा, इस संभावना पर कि औसत वैश्विक तापमान 1.5-2.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाता है। भूमि क्षरण और रहने की जगह के दुख को वंशानुगत विघटन की तरह पर्यावरणीय परिवर्तन से बढ़ाया जाएगा, जो अब बागवानी ढाँचे के वैश्वीकरण के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में बढ़ रहा है। जीवित क्षेत्र विखंडन के परिणामस्वरूप सदी के मध्य तक अधिक प्रजातियाँ अपने कुछ आकार और भूवैज्ञानिक सीमा खो सकती हैं। खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) की रिपोर्ट है कि विभिन्न किस्मों की वैश्विक फसल का 75% अब बर्बाद हो गया है। यह विशेष रूप से खतरनाक है क्योंकि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव आनुवांशिक अच्छी भिन्नता के साथ-साथ अस्वाभाविक जैविक प्रणालियों और प्रशिक्षित फसलों के नुकसान से बढ़ रहा है। फसल पौधों की कुल वंशानुगत भिन्नता का केवल एक छोटा सा हिस्सा अब विश्वसनीय बैंकों में संग्रहीत किया जाता है। कम विरासत में मिली अच्छी भिन्नता, खासकर जब अपर्याप्त वित्तीय और मानव संसाधनों के साथ जोड़ा जाता है, तो पर्यावरणीय परिवर्तन को समायोजित करना कहीं अधिक कठिन हो जाएगा। जिस तरह से वातावरण को डिजाइन किया गया है, उसमें परिवर्तन भी घुसपैठ करने वाली विदेशी प्रजातियों के प्रसार को प्रोत्साहित करते हैं, जो दुनिया की जैव विविधता और जैविक प्रणालियों के लिए खतरों के मामले

में रहने की जगह के पुलवराइजेशन के बाद दूसरे स्थान पर हैं।

निष्कर्ष–2007 में प्रकाशित चौथी आईपीसीसी रिपोर्ट के अनुसार, अत्यधिक पर्यावरणीय परिवर्तन बीसवीं शताब्दी के अंत तक जैव विविधता के नुकसान का मुख्य कारण होगा। इस अप्रत्याशित घटना में कि औसत वैश्विक तापमान 1.5-2.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है, वर्तमान में मान्यता प्राप्त सभी पौधों और जानवरों की प्रजातियों का 20-30% समाप्त हो जाएगा। वंशानुगत विघटन के रूप में, जो अब दुनियाभर में बागवानी ढाँचे में उभरती स्थिरता के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में विस्तार कर रहा है, पर्यावरणीय परिवर्तन भूमि क्षरण और जीवित स्थान के दुख को बढ़ाएगा। सदी के मध्य तक, अतिरिक्त प्रजातियाँ आंशिक रूप से अपने आकार और भूवैज्ञानिक सीमा को खो सकती हैं क्योंकि रहने की जगह टूट जाती है। खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार, विभिन्न किस्मों की वैश्विक फसल का पचहत्तर प्रतिशत अब खो गया है। यह विशेष रूप से खतरनाक है क्योंकि विरासत में मिली अच्छी विविधता, साथ ही एटिपिकल जैविक प्रणालियों और प्रशिक्षित फसलों का नुकसान, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को बढ़ा रहा है। वर्तमान में, फसल पौधों की कुल वंशानुगत भिन्नता का केवल एक छोटा सा हिस्सा विश्वसनीय बैंकों में संग्रहीत किया जाता है। पर्यावरणीय परिवर्तन के लिए समायोजन कहीं अधिक कठिन होगा यदि कम वंशानुगत अच्छी परिवर्तनशीलता है, खासकर जब अपर्याप्त वित्तीय और मानव संसाधनों के साथ जोड़ा जाता है। वायुमंडल की संरचना में परिवर्तन भी घुसपैठ करने वाली विदेशी प्रजातियों के प्रसार को प्रोत्साहित करते हैं, जो दुनिया की जैविक प्रणालियों और जैव विविधता के लिए उनके खतरे के मामले में जीवित आवासों के पुलवराइजेशन के बाद दूसरे स्थान पर हैं। जब पर्यावरण-जलवायु क्षेत्रों को बदल दिया जाता है ताकि वे अपने विकास के लिए अनुकूल हों, तो मेडलिंगपरिया प्रजातियाँ नए क्षेत्रों को जीत सकती हैं। भविष्य में जैव विविधता की स्थिति विभिन्न स्थानों में प्रसिद्ध अछूत प्रजातियों की संख्या में लगातार वृद्धि को इंगित करती है।

संदर्भ

1. वी॰एस॰ सिंह, डी॰एन॰ पांडे, ए॰के॰ गुप्ता और ए॰के॰ रविंद्रनाथ, 2010, जलवायु परिवर्तन प्रभाव, शमन और अनुकूलन: राजस्थान, भारत में नीति विकल्प उत्पन्न करने के लिए विज्ञान राजस्थान प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (आरपीसीबी), जयपुर (राजस्थान)
2. स्टेशन: जयपुर (सांगानेर) जलवायु संबंधी तालिका 1981-2010 जलवायु संबंधी सामान्य 1981-2010। भारत मौसम विज्ञान विभाग। जनवरी 2015। पृ॰ 343-344
3. स्टेशन: बीकानेर (पी॰बी॰ओ॰) जलवायु संबंधी तालिका 1981-2010, (पीडीएफ), जलवायु संबंधी सामान्य 1981-2010। भारत मौसम विज्ञान विभाग। जनवरी 2015। पृ॰ 151-152
4. भारतीय स्टेशनों के लिए तापमान और वर्षा की चरम सीमा (2012 तक), (पीडीएफ), भारत मौसम विज्ञान विभाग, दिसंबर 2016, पी॰एम॰ 183
5. राजस्थान के विभिन्न जातीय समूहों से संबंधित विषयों में चौबिसा एसएल, चौबिसा एल, सोमपुरा के, चौबिसा डी॰ फ्लोरोसिस, जे॰ कम्यून 2007; 39 (3): 171-7
6. गिनी वर्म (ड्रैकुनकुलस मेडिनेंसिस) राजस्थान, भारत में: एक केस रिपोर्ट, जे पैरासिटडिस 2002; 26 (2): 105-6
7. आर॰ मोगरा, एस॰ शर्मा, ग्राम डेगाना (जिला) के परिवारों में फ्लोरोसिस की व्यापकता, नागौर, राजस्थान (भारत)। जे एनवायरन साइंस इंजीनियरिंग 2009; 51 (4): 273-6

परंपरागत जल-संरक्षण पद्धतियाँ एवं महिलाएंः उतराखंड के विशेष संदर्भ में

शैलजा, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
हे॰नं॰ब॰ गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड)
प्रो॰ हिमांशु बौड़ाई, प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
हे॰नं॰ब॰ गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड)

जल, जीवन के सभी रूपों के अस्तित्व तथा पर्यावरण के लिए अनिवार्य प्राकृतिक संसाधन है। यह जलीय चक्र के माध्यम से भूमि, सागर और वातावरण में निरंतर विद्यमान रहता है। हिमालय एशिया महाद्वीप में जलीय पारिस्थितिकी का सबसे बड़ा तथा विश्वसनीय स्रोत है।[1] भारत के 11 हिमालयी राज्यों में उत्तराखंड भी शामिल है। उत्तराखंड का भौगोलिक विस्तार उत्तर में महान हिमालय से लेकर शिवालिक श्रेणियों तथा दक्षिण में भाबर-तराई के मैदानों तक विस्तृत है।[2] उत्तराखंड में हिमनदों की संख्या 238 हैं जिनका क्षेत्रफल 735 किलोमीटर के दायरे में फैला हुआ हैं। उत्तराखंड हिमालय उत्तर भारत के दो प्रमुख नदी तंत्रों, गंगा तथा यमुना का उद्गम स्थल है।[3] राज्य का यह वैविध्यपूर्ण भौगोलिक विस्तार प्राकृतिक रूप से अनेक संभावनाओं तथा चुनौतियों को जन्म देता है। जिससे उत्तराखंड में विशेष प्रकार की पारिस्थितिकी उत्पन्न हो जाती है। इसमें पर्यावरण के साथ सामंजस्य तथा संघर्ष साथ-साथ चलते हैं। इस संघर्ष के केंद्र में प्राकृतिक संसाधनों के लिए जूझारूपन तथा उनके पुनर्जीवन की समूची प्रक्रिया है। प्रायः इसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में यह दृष्टिगोचर भी होता है। उत्तराखंड का हिमालयी क्षेत्र भारतीय प्राकृतिक विरासत का अभिन्न अंग है हिमालय में शंकुधारी वन तथा चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वन भारत की प्रमुख नदी प्रणाली के लिए वनस्पतीय आवरण प्रदान करते हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव जलस्रोतों के उदभव तथा संचालित होने पर पड़ता है।[4] वर्तमान में उत्तराखंड के पर्यावरणीय परिदृश्य में मानवीय हस्तक्षेप, वनोन्मूलन तथा जलवायु परिवर्तन से पारम्परिक जल संरक्षण पद्धतियाँ विलुप्त होती जा रही हैं, जिनका संरक्षण करना पर्यावरण तथा स्थानीय दृष्टि से अति आवश्यक है।

शोध उद्देश्य–उत्तराखंड की पारंपरिक जल संरक्षण पद्धितियों का अध्ययन करना। उत्तराखंड की पारंपरिक जलसंरक्षण पद्धतियों के संरक्षण में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि–भारत का हिमालयी राज्य उत्तराखंड मध्य हिमालय में अवस्थित है। जिसे प्रस्तावित कार्य के लिए अध्ययन क्षेत्र के रूप में लिया गया है। प्रस्तुत शोध में उत्तराखंड के जल संरक्षण की पारंपरिक पद्धतियों से संबंधित दस्तावेजों का अध्ययन किया है। जिसमें रवि चोपड़ा की रिपोर्ट Survival Lessons: Himalayan Jal Sanskriti महत्त्वपूर्ण है। महिलाओं के पारंपरिक जल संरक्षण पद्धितियों के संरक्षण में भूमिका तथा योगदान के अध्ययन के लिए विभिन्न

समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकों, रिपोर्ट (UNDP India, 2021) और जर्नल आदि का प्रयोग अध्ययन में किया गया है।

उत्तराखंड में जल संरक्षण की पारंपरिक पद्धतियाँ–उत्तराखंड हिमालय की गोद में स्थित प्राकृतिक संपदाओं से परिपूर्ण एक राज्य है। मध्य-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र, जिसमें उत्तराखंड शामिल है, भारत की जल संचयन परपंराओं से अलग नहीं है। इस हिमालयी क्षेत्र में त्रीव भौगोलिक एंव पारिस्थितिक विविधताओं ने नौला, चाल-खाल, धारा एवं गूल जैसी शानदार जल संचयन संरचनाओं को जन्म दिया है। इन सभी जल संरक्षण की पद्धतियों ने वर्षा जल को संरक्षित किया जो पहाड़ियों से नीचे बहकर और चट्टानों के माध्यम से रिसकर झरनों के रूप में उभरकर प्रकृति रूप में सम्मिलित हो जाता था।[5] ऐतिहासिक रूप से उत्तराखंड के हिमालयी क्षेत्रों की सांस्कृतिक परंपराओं में प्रकृति का सम्मान तथा पारिस्थितिक ज्ञान हमेशा से शामिल रहा है। यहाँ के वनों को भी धार्मिक संरक्षण प्राप्त था। 1960 से 1970 के दशक में वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की बहस शुरू हुई, जिसने विश्व के साथ ही भारत को भी प्रभावित किया। भारत में भी बड़े बांधों और वनों के विनाश को लोगों ने पर्यावरण से जोड़कर देखा और इन सब घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि उत्तराखंड के एक छोटे से अनजान गाँव रैणी में महिलाएँ वृक्षों की सुरक्षा के लिए वृक्षों से चिपक गईं। इस घटना ने रैणी गाँव को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिपको आंदोलन की जन्मस्थली के रूप में प्रसिद्धि दिलाई थी। पर्यावरण की वैश्विक बहस को यह आंदोलन विकसित कर धरातल पर ले आया तथा इस आंदोलन ने वनों पर बनने वाली प्रत्येक नीति तथा कानून को प्रभावित किया था।[6]

चाल-खाल–चाल-खाल विशेष तौर पर पर्वतीय क्षेत्रों में निश्चित ऊँचाई पर संचालित वर्षा जल संचयन संरचनाओं की श्रृंखला होती है।[7] इसमें प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों प्रकार से गड्ढों का निर्माण होता है।[8] प्राकृतिक तौर पर चाल आसन्न शिखरों के मध्य के क्षेत्र में अवस्थित होते हैं जिनका निर्माण अतीत में हिमनदों से बर्फ पिघलने के कारण हुआ है। शिखरों से बर्फ पिघलकर मध्य में जिस स्थान पर यह ठहरती थी वहाँ छोटी झीलों या तालाबों का निर्माण हुआ।[9] चाल के अतिरिक्त खाल का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि खाल हजारों घन मीटर जल का संग्रहण करती हैं जिसका उपयोग घरेलू कार्यों के उपयोग के लिए, कृषि तथा पशुओं की आवश्कताओं की पूर्ति के साथ साथ भूमिगत जल को बढ़ाने के लिए उपयोग में आता है।[10] चाल-खाल उत्तराखंड की पारंपरिक तकनीकों में एक है जिसका उपयोग धीरे धीरे कम होता गया है। जब उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में भूमिगत जल व पारंपरिक जल स्रोतों में जल की कमी महसूस हुई तदोपरांत कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं व भूमि विशेषज्ञों का ध्यान पुन: चाल-खाल पद्धतियों को पुर्नजीवित करने की ओर गया, इसमें मुख्य रूप से उफरौंखाल, पौड़ी गढ़वाल के सच्चिदानंद भारती का विशेष योगदान रहा है। सच्चिदानंद भारती के प्रयासों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 40 गाँवों ने महिला मंगल दल की सहायता से इन्होनें चाल-खाल पद्धति को अपनाकर तत्कालीन जल संकट को दूर किया था। यह कार्यक्रम तद्समय से वर्तमान तक उफरौंखाल के भूमिगत जल, वनों तथा वॉटरशेड के लिए वरदान साबित हुआ है।[11]

नौला–नौला विशेषकर मध्य हिमालयी क्षेत्र में पाए जाते हैं उत्तराखंड में गढ़वाल की तुलना में कुमाऊँ मंडल में सामान्य रूप से नौले अधिक पाए जाते हैं। नौला भूमिगत जल को तथा झरनों के जल को संग्रहित करने की एक पारंपरिक पद्धति है। नौला के जल को अधिकतर पेयजल के तौर पर प्रयोग किया जाता है, इनकी सरंचना एवं तकनीक बेहद संवेदनशील होती है। बिना समुचित

ISSN 0975-735X

ज्ञान के मानवीय दखल के कारण प्राय: इनकी जलधारण क्षमता तथा पारंपरिक संरचना पर बुरा प्रभाव पड़ता है।[12] नौले की संरचना एक प्रकार से छोटे बावड़ी की तरह होती है जहाँ जल धरती में रिसरिस कर पहुँचता है। नौले की बनावट तीन ओर से पत्थरों से बंद तथा एक ओर से खुली होती है तथा उसकी छत पहाड़ी शैली में पत्थरों द्वारा निर्मित होती है। अंदर जिस स्थान पर जल एकत्रित होता है वह एक सीढ़ीनुमा वेदी की तरह होता है जो ऊपर से चौड़ा और नीचे की तरफ शनै: शनै: संकरा होता जाता है। नौले की बनावट में इस बात को विशेषत: ध्यान रखा जाता है कि इसमें अतिरिक्त पानी जमा न हो सके। अत: इसमें जल निकासी के लिए नालियों का निर्माण भी किया जाता है।[13]

धारा/मंगरा—उत्तराखंड में पेय योग्य जल के सामान्य स्रोत धारा अथवा मंगरा हैं इसमें जल विभिन्न भूमिगत स्रोतों से रिसकर एक संकरे मुहाने से गिरता रहता है, इसका आकार एक सामान्य पाइप या किसी जानवर की मुखाकृति के रूप में होता है।[14] स्थानीय निवासी उस जल को इन कलाकृतियों के द्वारा धार का रूप प्रदान करते हैं जिससे कि जल के बर्तनों को सुविधापूर्वक भरा जा सके। धरातल से ऊँचाई के आधार पर प्राय: धारा के तीन प्रकार पाए जाते हैं—सिरपतिया धारा, मुणपतिया धारा, पतविनियाँ धारा[15] किंतु आज इन धाराओं की स्थिति जलवायु परिवर्तन एवं भूगर्भीय हलचलों जैसे भूकंप के कारण नकारात्मक प्रभाव झेल रहे हैं। उदाहरणस्वरूप टिहरी जनपद में गढ़कोट नामक स्थान पर प्राचीन धारा (अमनी का धारा) वर्ष 1991 में आए भीषण भूकम्प के बाद सूख गया था। वर्तमान में वनों के कटान तथा जल प्रतिधारण क्षमता में लगातार कमी धारों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रही है।[16]

गूल/कूल—मध्य हिमालय के ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ सीढ़ीदार कृषि 1000 वर्षों से या उससे अधिक समय से की जाती रही है।[17] कृषि कार्यों में सिंचाई के लिए प्राचीनकाल से ही वर्षा जल पर निर्भरता के अतिरिक्त उत्तराखंड में गूल का प्रयोग किया जाता है। गूल एक प्रकार के चैनल हैं जिनका निर्माण नदियों, नालों के जल को पहाड़ियों की ढलान के सटीक ज्ञान के माध्यम से कृषि भूमि तक पहुँचाया जाता है। यह पर्वतीय क्षेत्रों में जल संसाधन प्रबंधन का सबसे उत्तम उदाहरण है।[18] सिंचाई के अतिरिक्त गूल का प्रयोग पेयजल, घरेलू कार्यों, पशुपालन प्रयोजन तथा घराट (जल संचालित चक्की) के रूप में भी किया जाता है।[19] गूल को कई क्षेत्रों में विशेषत: कुमाऊँ मंडल में नदी नालों के जल को एकत्रित कर लघु बाँधों का स्वरूप प्रदान किया जाता है उसके पश्चात् सिंचाई चैनल बनाए जाते हैं। सिंचाई के उद्देश्य से बनाए गए लघु बाँधों को स्थानीय भाषा में बाण तथा कुमाऊँनी बोली में कुलयाण कहा जाता है जिसका तात्पर्य होता है गूल अथवा कूल से सिंचाई करना। गूल के चैनल में छोटे-छोटे शाखा चैनल होते हैं जिनका कार्य जल को दूर-दूर तक पहुँचाना होता है इन्हें हव्वार कहा जाता है। लघु बाँधों को इस तकनीक से निर्मित किया जाता है कि जल के प्रभाव को नियंत्रित किया जा सके तथा अतिरिक्त जल एकत्रित होने पर अतिरिक्त जल पुन: अपनी धारा में वापिस समाहित हो जाए।[20]

उत्तराखंड में जल संरक्षण की पारंपरिक पद्धतियों में महिलाओं की भूमिका—पर्वतीय क्षेत्र में घरेलू कार्य, कृषि व पशुपालन-संबंधी कार्यों का बोझ महिलाओं के ऊपर होते हैं। ऐतिहासिक एवं वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि पर्यावरण एवं जलवायु में परिवर्तन होने के कारण उत्तराखंड की महिलाएँ पर्यावरण के लिए सजग हो गई हैं। नौला, धारा चाल-खाल, गूल/कूल तथा अन्य पारंपरिक जल पद्धतियाँ पर्वतीय जन के जल के स्रोत हैं किंतु

धीरे-धीरे इन प्राकृतिक स्रोतों में जलवायु-परिवर्तन, भूगर्भीय घटनाओं तथा मानवीय हस्तक्षेप का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। इन पारंपरिक पद्धतियों को बचाने के लिए कुछ लोगों ने सराहनीय प्रयास किए हैं जिनमें महिलाओं की भूमिका अग्रणीय रही है। उत्तराखंड में महिलाओं ने हमेशा से आंदोलनों में पूर्ण भूमिका निभाई है पर्यावरण आंदोलन महिलाओं की भागीदारी के पर्याय बने चिपको और डुंगरी पैंतोली आंदोलन जैसे कई वन एवं पर्यावरण आंदोलन महिलाओं की भागीदारी से सफल हुए थे।[21] महिलाओं ने इन पर्यावरणीय आंदोलनों में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया क्योंकि महिलाएं जानती थी की जंगल जल के स्रोत हैं और अगर यह जंगल नहीं बचाए गए तो उनके ऊपर जल का एक बड़ा संकट विद्यमान हो जाएगा। यह जलसंकट केवल उनको प्रभावित ही नहीं करेगा, बल्कि उनकी भविष्य की पीढ़ियों को भी प्रभावित करेगा। जल संकट को पर्वतीय क्षेत्र की महिलाएँ भविष्य के गंभीर समस्या के तौर पर भाँपने लगी हैं।[22]

परंपरागत पद्धति में जल संरक्षण के लिए महिलाओं के प्रयास–उत्तराखंड में महिलायें जल संरक्षण में अहम भूमिका निभाती हैं। तमात ऐतिहासिक तथा समसामयिक घटनाक्रम इसकी पुष्टि करते रहे हैं। यहाँ के सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना ने इस दावे को और अधिक मजबूत किया है। यहाँ कुछ उदाहरणों के माध्यम से हम इस तथ्य को उजागर करने का प्रयास करते हैं।

सरतमा देवी द्वारा पारंपरिक पद्धति के प्रयोग से जल संरक्षण–उत्तराखंड जलसंपदा से परिपूर्ण राज्य रहा है किंतु वर्तमान में यहाँ के कई गाँव जल संकट से जूझ रहे हैं। जलसंकट को दूर करने के लिए राष्ट्रीय स्तर से लेकर स्थानीय स्तर तक भरसक प्रयास किए जा रहे हैं। ऐसा ही एक उदाहरण उत्तरकाशी का पटारा गाँव हैं। इस गाँव की महिला सरतमादेवी जिनकी आयु 55 वर्ष हैं इन्होनें जल संकट से जूझ रहे पटारा गाँव में जल संकट को दूर करने के लिए चाल-खाल निर्माण एवं पारंपरिक जल संरक्षण संर्वधन में विशेष योगदान दिया है।[23] चाल-खाल निर्माण से उनके पारंपरिक जल स्रोत रिचार्ज हो गए तथा उनके पशुधन के लिए जिस उपयोगी जल की आवश्यकता थी वह पूर्ण हो गई थी। सरतमादेवी के जल संरक्षण के प्रयासों के प्रतिफल में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की ओर से पूरे भारतवर्ष में जिन 41 महिलाओं को महिला जल चैंपियन चुना गया उनमें सरतमादेवी उत्तराखंड की एकमात्र महिला हैं।[24] उनका कहना है कि 'जल मेरे लिए तथा मेरे मवेशियों के लिए जीवन से कम नहीं है मेरे गाँव में लगातार जल आपूर्ति ने हमें अपने अपने जानवरों को ठीक से खिलाने की अनुमति दी है। जल-आपूर्ति ने मेरे और मेरे गाँव के लिए एक बेहतर जीवन प्रदान किया है।'[25]

लुठियाग गाँव की महिलाएँ तथा उनके द्वारा जल संरक्षण–रुद्रप्रयाग जनपद के जखोली विकासखंड में लुठियाग गाँव की महिलाओं द्वारा सामूहिक प्रयास कर चाल-खाल का निर्माण किया गया है, 1991 के भूकंप के पश्चात गाँव में अवस्थित मुख्य जलस्रोत नष्ट हो गया जिसके उपरांत गाँव में एक ही स्रोत बचा था। यह जलस्रोत सदानीरा न होकर केवल वर्षाकाल में ही उपयोग में आता था। जिससे उन्हें अन्य समय में अधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता था इन परेशानियों को खत्म करने के लिए 2014 में राज राजेश्वरी ग्राम कृषक समिति का गठन कर हर घर जलापूर्ति का संकल्प लिया। 2014 में 104 परिवारों की महिलाओं के साथ ग्रामीणों ने पेयजल स्रोत से सवा किलोमीटर ऊपर जंगल में खाल बनाने का कार्य शुरू किया था। 40 मीटर लंबी 18 मीटर चौड़ी खाल में वर्षा काल में जल एकत्रित होने से पूरे क्षेत्र में नमी का संचार हुआ

यह यहाँ के जलस्रोतों के लिए वरदान साबित हुआ जिन जलस्रोतों में जलस्तर कम था उनमें जल की वृद्धि हुई है तथा नमी वाले स्थानों पर नए जलस्रोत भी उभर कर आए हैं।[26]

पारंपरिक जल संरक्षण में बजीना गाँव की महिलाओं की भूमिका—वृक्षों के लगातार कटने से वनों की सघनता में कमी आई है जिसका सीधा प्रभाव जल की उपलब्धता पर पड़ता है। घटते वन पारिस्थितिकी तंत्र के कारण सतही बहाव में वृद्धि तथा जल पुनर्भरण में कमी उत्पन्न हो जाती है।[27] बजीना गाँव में भी वन कटान का दुष्प्रभाव जल के प्राकृतिक स्रोतों पर सीधे तौर पर पड़ा तथा जल-संबंधी अधिक कार्य वर्षाजल पर निर्भर हो गए थे। इन परिस्थितियों के संज्ञान होने पर TERI ने HOPE के सहयोग से एक संस्था के माध्यम से क्षेत्र की स्थिति का अध्ययन किया तथा यह ज्ञात हुआ कि महिलाओं को जल प्रबंधन के विषय में पारंपरिक पद्धतियों की महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त थी। इस जल संरक्षण कार्यक्रम में महिलाओं के ज्ञान का प्रयोग करते हुए संस्था द्वारा वर्षाकाल में वृक्षारोपण किया गया एवं 14 जल स्रोतों के शीर्ष भाग में तथा ऊपरी क्षेत्रों में जल पुनर्भरण तालाबों का निर्माण किया गया था। वृक्षारोपण एवं जल-संरक्षण गतिविधियों के तदोपरांत मानसून के पश्चात् गाँव के नौले रौले रिचार्ज हो गए हैं तथा जल की उपलब्धता भी तीन गुना बढ़ गई है।[28]

पारम्परिक जल संरक्षण की प्रक्रिया में माया वर्मा की भूमिका—'सामान्य तथ्य के रूप में सर्वविदित है कि नौला-धारों की आम उपयोगकर्ता महिलाएँ होती हैं। वर्तमान में नौलों-धारों के सूखने के कारण मुख्य जल-संबंधी समस्याओं के कारण सबसे अधिक महिलाएँ प्रभावित हो रही हैं। परिणामत: महिलाएँ ही इन जल स्रोतों के संरक्षण में अग्रणी भूमिका निभाती हैं।'[29] नौला-धारों के संरक्षण का एक और उदाहरण प्रमुखता से माया वर्मा के प्रयासों का दिया जाता है। 'अल्मोड़ा के चनोली गाँव में ग्रीष्म ऋतु में नौले-धारे सूख जाते थे। इसी गाँव में रहने वाली माया वर्मा ने इनके पुनर्जीवन का बीड़ा उठाया। अक्टूबर 2017 से माया वर्मा व उनके साथियों के प्रयासों से नौले पुनर्भरित होकर सदानीरा हो गए। माया वर्मा के इस जागरूक पहल में पंद्रह गाँव जुड़े तथा उन गाँवों की जल की समस्या को भी दूर किया गया था। माया वर्मा की इस पहल से आस-पास के अन्य क्षेत्रों में भी जल संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ी जिससे पूरे क्षेत्र में ही जल स्रोत पुनर्जीवत होने लगे हैं।[30]

निष्कर्ष—पारंपरिक जल संरक्षण के लिए सर्वप्रथम जल निकायों, संरचनाओं और प्रणालियों का अध्ययन व गणना करना आवश्यक है, ताकि यह ज्ञात किया जा सके की कौन सी जल पद्धतियाँ अभी भी काम कर रही हैं और कौन सी नहीं। तदुपरांत पारंपरिक जलसंचयन संरचनाएँ जो अभी भी उपयोग में हैं उन संरचनाओं को पुनर्निर्मित, पुनर्स्थापित और संरक्षित करने की आवश्यकता है। परंपराएँ समाज के साथ परिवर्तनशील होती हैं वह निरंतर स्वयं के साथ बदलाव करती रहती हैं परंपराएँ समाज के विकास उपयोगी कार्य करती हैं उनसे जुड़े ज्ञान को संरक्षित और निर्मित करने की आवश्यकता है। हिमालयी क्षेत्र में विभिन्न उपयोगी पारंपरिक जल संरक्षण पद्धतियाँ हैं व उन पद्धतियों को उन्नत करने की आवश्यकता है। जल संरक्षण पद्धतियों में कुछ पद्धतियों को बदलाव की आवश्कता नहीं होती है उन्हें वैसे ही उपयोग किया जा सकता है जैसे वह पारंपरिक रूप से उपयोग होती हैं जैसे वर्षाजल को एकत्रित करने और भूमिगत जल को बढ़ावा देने के लिए चाल-खाल का निर्माण होता है। पारंपरिक प्रबंधन प्रणालियों में प्रत्यक्ष भागेदारी को स्पष्ट करने की आवश्यकता है विशेष रूप से बदले हुए सामाजिक संदर्भ में। महिलाएँ हिमालयी क्षेत्र की रीढ़ मानी

जाती हैं और समस्त कार्यों के निर्वहन में महिलाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकांश घरेलू जल आपूर्ति संबंधित कार्य करती हैं। उन्हें सामाजिक रूप से कमजोर समुदायों के साथ-साथ जल संसाधनों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से शामिल होने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. Khadse, G. K., et al. Conservation, Development and Management of Water Resoureses: An Experience in Himalayan Region, India." International Journal of Water Resources and Arid Environments, vol. 1, no. 3, 2011, P. 193–99
2. (Sr. Editor), Sunil Kumar. उत्तराखंड का भूगोल व भौगोलिक संरचना, Studyfry." Studyfry, 27 Oct. 2016, www.studyfry.com/geography-of-uttarakhand-hindi. Accessed 29 Dec. 2022.
3. Acharya, Amitangshu. "Managing 'Water Traditions' in Uttarakhand, India: Lessons Learned and Steps Towards the Future." Water, Cultural Diversity, and Global Environmental Change: Emerging Trends, Sustainable Futures, edited by B.R. Johnston et al. Springer, 2011, P. 411–432. https://doi.org/10.1007/978-94-007-1774-9_29.
4. Rawat, Ajay, and Reetesh sah. "Traditional Knowledge of Water Management in Kumaon Himalaya." Indian Journal of Traditional Knowledge, vol. 8, no. 2, 2009, P. 249–54.
5. Chopra, Ravi. Survival Lessons: Himalayan Jal Sanskriti. People's Science Institute, 2003, P. 3-4.
6. Acharya, op. cit., P. 415.
7. Bhatt, Himanshu. "The Mountain Will Be Lifted from the Water Crisis." https://indiawaterportal.org., 12 May 2020, hindi.indiawaterportal.org/articles/pahaada-kao-jala-sankata-sae-ubhaaraengae-caala-khaala-aura-khantaiyaan. Accessed 14 Dec. 2022.
8. Prasad, Chandi, and Ramesh C. Sharma. "Water Resources and Their Traditional Management in Kedarnath Valley of Garhwal Himalaya, India." International Journal of Hydrology, vol. 3, no. 3, May 2019, P. 194–203. https://doi.org/10.15406/ijh.2019.03.00180.
9. Chopra, op. cit., pp. 5.
10. Prasad, op. cit., pp. 200
11. Lokgariwar, Chicu, and Sacchidanand Bharti. "A Village Creates Magic…and a River!" India Water Portal Hindi, 30 Apr. 2013 https://www.indiawaterportal.org/articles/village-creates-magicand-river. Accessed 21 Dec. 2022.
12. Chopra, op. cit., P. 3-4.
13. Tiwari, Chandrashekhar. "Uttarakhand's Tradition Is Dying With Nostrils." www.downtoearth.org.in, 4 Sept. 2019, www.downtoearth.org.in/hindistory/water/water-crisis/traditional-water-bodies-has-dried-in-uttarakhand-66534. Accessed 23. Dec. 2022.
14. Chopra, op. cit., P. 11.
15. Tiwari, op. cit.
16. Chopra, op. cit., P. 12.
17. Ibid., P. 13
18. Rawat, loc. Cit.
19. Prasad, op. cit., P. 202.
20. Rawat, loc. Cit.

21. Mago, Payal, and Isha Gunwal. "Role of Women in Environment Conservation." SSRN, Apr.2019, https://doi.org/10.2139/ssrn.3368066.
22. Panthri, Raksha. "Water Conservation: अब जल संकट को भांपने लगी हैं पहाड़ की देवियां, इस तरह कर रही हैं जल संरक्षण Dainik Jagran, 13 Apr. 2021, www.jagran.com/uttarakhand/uttarkashi-water-conservation-women-of-hilly-ares-saving-water-of-rain-by-makin-chal-khal-21554381.html. Accessed 25. Dec. 2022
23. Singh, Varsha. "As Mountain Springs Dry up, Uttarkashi Women Revive Traditional Chal-khals." 101 Reporters, 24 Apr. 2021, 101reporters.com/article/The_Promise_Of_Commons/As_mountain_springs_dry_up_Uttarkashi_women_revive_traditional_chalkhals. Accessed 27. Dec.2022
24. पटारा गाँव की सरतमा देवी बनी महिला जल चौंपियन, Dainik Jagran, 6 June 2021, www.jagran.com/uttarakhand/uttarkashi-sartama-devi-of-patara-village-became-the-womens-water-champion-21714358.html. Accessed 17. Dec.2022
25. Munjal, Vinni. Women Water Champions: A Compendium of 41 Women Stewards from the Grassroots. UNDP India, 2021. P. 142
26. "Water Conservation: 'यहाँ की महिलाओं ने जलस्रोत किए पुनर्जीवित, पीएम मोदी भी कर चुके हैं तारीफ, जानिए' Dainik Jagran, 13 Apr. 2021, www.jagran.com/uttarakhand/rudraprayag-woman-save-water-21556196.html. Accessed 25. Dec. 2022.
27. साहासुभद्रा, पर्यावरण संरक्षण में वृक्षों की भूमिका, International Journal of Applied Research, vol. 3, no. 7, 2017, P. 762–65.
28. LEISA India. "Communities Revive Traditional Water Springs - LEISA INDIA." LEISA INDIA, 18 May 2016, leisaindia.org/communities-revive-traditional-water-springs. Accessed 25. Dec. 2022.
29. Acharya, loc. Cit.
30. Zenger. News. "Women Revive Traditional Water Sources in Uttarakhand - the Tennessee Tribune." The Tennessee Tribune, 7 Nov. 2020, tntribune.com/women-revive-traditional-water-sources-in-uttarakhand. Accessed 28. Dec. 2022.

Mob. 8755071777, 9536430604
manori.shailja23@gmail.com

कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का अध्ययन (जबलपुर जिले के संदर्भ में)

शुभांगी मेहता, पूजा सिंह परिहार एवं जगतराज पाठक
अर्थशास्त्र विभाग, आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़

प्रस्तावना—आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र विज्ञान एवं तकनीकी से अछूता नहीं है। आर्थिक रूप से विज्ञान एवं तकनीकी का आशय कार्य की ऐसी प्रणाली से है जो उपलब्ध साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग करते हुये उत्पादन, रोजगार, राष्ट्रीय आय एवं देशवासियों के रहन–सहन के स्तर में तुलनात्मक रूप सें उन्नति करना है। तकनीकी परिवर्तन एक अति व्यापक धारणा है।

तकनीकी परिवर्तन मूलत: औद्योगिक क्षेत्र का कारण और परिणाम है। यदि तकनीकी परिवर्तनों के इतिहास का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट होगा कि इसका सुप्रारंभ औद्योगिक क्षेत्र में हुआ है। औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक विकास को शीघ्र गति प्रदान करने के लिए नवीन वैज्ञानिक आविष्कार, अनुसंधान, नवीन मशीन की खोज को प्रोत्साहन मिला है। उत्पादन के आकार तथा पैमाने में परिवर्तन लाने हेतु, छोटे पैमाने के स्थान पर बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारंभ करने और औद्योगिक वस्तु के उत्पादन और उत्पादकता में तीव्र वृद्धि लाने हेतु तकनीकी परिवर्तन के तहत् आधुनिक मशीन और नये उपकरणों के निर्माण और व्यापक उपयोग को प्रोत्साहन मिला है लेकिन तकनीकी परिवर्तन की विधा आज के युग में औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रह गई है। यह मनुष्य और समाज के आर्थिक क्रिया–कलापों और जीवन के सभी बिंदुओं को स्पर्श करती है।

वर्तमान में तकनीकी ने संसार के स्वरूप को ही नहीं बल्कि मानव जीवन में भी बदलाव किये है। इनमें कृषि के अन्र्तगत बागवानी एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर पूरा मानव जीवन निर्भर करता है और इसमें तकनीकी का अहम योगदान है। नई तकनीकों के चलते देश की कृषि ने नई राह पकड़ी है। देश की बागवानी तकनीकी, कृषि मशीनरी, खाद्य एवं उर्वरक, सिंचाई और बाजार व्यवस्था पर निर्भर करती है क्योंकि कृषक खेत तैयार करने से लेकर उत्पाद को बेचने तक तकनीकी का ही इस्तेमाल करता है। देश की जीडीपी में बागवानी क्षेत्र की 6 प्रतिशत से अधिक की हिस्सेदारी है। यदि कृषि तकनीकी के क्षेत्रों की बात करें तो देश में कृषि मशीनरी उद्योग की हिस्सेदारी लगभग 23 प्रतिशत है जिसमें हर साल वृद्धि हो रही है। कृषि में फसल सुरक्षा के लिए कृषि रसायनों के साथ–साथ बायो उत्पाद और जैविक उत्पादों का इस्तेमाल भी किसानों के बीच काफी बढ़ा है। कृषि सिंचाई तकनीकों में भी काफी बदलाव हुये है। इस समय में कृषक टपक सिंचाई और सूक्ष्म सिंचाई जैसी तकनीक को अपना रहे है। कृषि फसलों के बीज व्यापार में भी तकनीकी के चलते बदलाव आयें है। जो किसान पहले देशी किस्म के बीजों से कम पैदावार लेते थे आज वे किसान हाईब्रिड बीज से अधिक पैदावार ले रहे है। इसमें कोई संदेह नहीं है आधुनिक

तकनीकों के चलते कृषि क्षेत्र में बड़े बदलाव हुये है। इसका सीधा फायदा कृषि क्षेत्र से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को मिला है लेकिन अभी भी कृषि की नवीन तकनीकी से बहुत से किसान वंचित है।

2. **समस्या शीर्षक :** कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का अध्ययन (जबलपुर जिले के सन्दर्भ में)

3. **शोध की परिसीमन :** प्रस्तुत शोध अध्ययन मध्य प्रदेश राज्य के जिला जबलपुर की सात तहसीलों में से दो तहसील क्रमशः तहसील जबलपुर एवं तहसील सिहोरा द्वारा परिसीमित किया गया है।

4. **अध्ययन के उद्देश्य :** 1. तहसील जबलपुर में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करना। 2. तहसील सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करना।

4. **शोध परिकल्पना :** तहसील जबलपुर एवं तहसील सिहोरा में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में भौगोलिक एवं आर्थिक रूप से समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शोध अभिकल्प : शोध प्रारूप शोध की सम्पूर्ण रूपरेखा तैयार करने की एक विधि है, जिसमें शोध उद्देश्यों, प्रविधियों, प्रदत्त संकलन की विधियों, उनके विश्लेषण तथा सांख्यिकीय गणना की विधियों का प्रारूप तैयार किया जाता है।

3. **न्यादर्श :** प्रस्तुत शोध कार्य में तहसील जबलपुर एवं तहसील सिहोरा में प्रत्येक में से 30 ग्रामीण कृषकों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया है। इस प्रकार यह अध्ययन कुल 60 ग्रामीण कृषकों पर सम्पन्न किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य चयनित कृषकों के कृषि कार्य में नवीन तकनीकियों के प्रयोग, समस्याओं, उत्पादन तथा प्रभाव से संबंधित होगा। प्रस्तुत कार्य हेतु प्रदत्तों के संकलन के लिए उपकरण के रूप में स्वनिर्मित प्रश्नावली का निर्माण किया जायेगा।

4. **शोध उपकरण :** प्रस्तुत शोध कार्य चयनित कृषकों के कृषि कार्य में नवीन तकनीकियों के प्रयोग, समस्याओं, उत्पादन तथा प्रभाव से संबंधित है। जिसमें प्रदत्तों के संकलन के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

5. **सांख्यिकीय विधि :** प्रस्तुत शोध में सांख्यिकीय परीक्षण में मध्यमान, सह-संबंध, केन्द्रीय प्रवत्तियों एवं टी-परीक्षण को शामिल किया गया है।

सारणी क्रमांक - 1

तहसील जबलपुर एवं सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र०	विवरण	N	M	Sd	SEM	SED	t-value
1.	तहसील जबलपुर के ग्रामीण क्षेत्र के कृषक	30	9.93	3.13	0.57	0.662	10.3228
2.	तहसील सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र के कृषक	30	16.77	1.83	0.33		

Df = N1+N2-2=58

$p<.05$ सार्थकता स्तर पर सार्थक

10. **प्रदत्तों का विश्लेषण**–सारणी क्रमांक 1 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि तहसील जबलपुर एवं सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं के सांख्यिकीय विश्लेषण के अंतर्गत संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 9.93, माध्य विचलन 3.13 तथा माध्य मानक त्रुटि 0.57 है जबकि तहसील जबलपुर में कृषि कार्य हेतु नवीन

कृषि तकनीकी से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 16.77, माध्य विचलन 1.83 तथा माध्य मानक त्रुटि 0.33 है। विश्लेषण से ज्ञात होता है कि तहसील जबलपुर एवं सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं के सांख्यिकीय विश्लेषण में माध्य मानक विचलन 0.662 तथा टी–मूल्य 10.3228 पाया गया है जो $p<.05$ सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

11. **परिकल्पनाओं का परीक्षण**–सारणी क्रमांक 1 के विश्लेषण से ज्ञात होता कि तहसील जबलपुर एवं सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं के सांख्यिकीय विश्लेषण में तहसील जबलपुर के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का स्तर निम्न है जबकि तहसील सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का स्तर उच्च पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि तहसील जबलपुर एवं सिहोरा के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं में अंतर है अतएव पूर्व निर्मित परिकल्पना 'तहसील जबलपुर एवं तहसील सिहोरा में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में भौगोलिक एवं आर्थिक रूप से समस्याओं का सामना करना पड़ता है', को स्वीकार किया जाता है।

12. **परिणाम**–अध्ययन के प्रदत्तों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर पाया जाता है कि तहसील जबलपुर के ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों को बागवानी हेतु नवीन तकनीकी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का स्तर, जिला मुख्यालय के करीब होने तथा संसाधनों की उपलब्धता के कारण निम्न है। इस क्षेत्र के कृषक अपेक्षाकृत संपन्न भी हैं जो आर्थिक और सामाजिक आधार पर आने वाली समस्याओं को हल करने में सक्षम है, जबकि तहसील सिहोरा में जिला मुख्यालय से दूर तथा संसाधनों एवं आवागमन की कमी के कारण कृषक समय पर समस्याओं को हल करने में अक्षम है। यहाँ के कृषकों का आर्थिक तथा सामाजिक स्तर भी बेहतर नहीं है। इसलिए यहाँ बागवानी हेतु नवीन तकनीकों के प्रयोग में समस्याओं का स्तर उच्च है।

संदर्भ

1. अग्रवाल, भारतीय कृषि का अर्थ तंत्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर
2. भार्गव, प्रादेशिक अर्थव्यवस्था एवं कृषि, मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य अकादमी भोपाल, 2002
3. आनंदस्वरूप गर्ग, अर्थशास्त्र, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2002
4. डॉ॰ शिवभूषण गुप्त, कृषि अर्थशास्त्र, सहित्य भवन, आगरा, 2007
5. एम॰एल॰ झिंगन, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
6. शर्मा एवं सिंहल, विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, साहित्य भवन, आगरा प्रकाशन

राजस्थान में जनजातीय कला विकास एवं व्यावसायिकता का भौगोलिक अध्ययन

डॉ॰ गौरवकुमार जैन, सहा॰ आचार्य, भूगोल विभाग
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज॰)
डॉ॰ चन्दनमल शर्मा, सहा॰ आचार्य, भूगोल विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोडाभीम, करौली (राज॰)

अध्ययन क्षेत्र–भारत में लोकतांत्रिक सरकार के रूप में आदर्श बदलाव आने लगे हैं। देश के प्रधानमंत्री के 'रिफॉर्म, परफार्म, ट्रांसफॉर्म, (सुधार, प्रदर्शन, परिवर्तन) के सिद्धांत ने देश में अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को लाभ मिलना सुनिश्चित कर विकास के परिणाम में जन-हितैषी नीतियाँ एवं नई सोच को जन्म दिया है जिसमें जनजातीय समाज को विकसित करना, उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना, सांस्कृतिक विरासत एवं महत्त्वपूर्ण मसलों का समाधान करना एवं समाज की मुख्यधारा में जोड़ना, प्रमुख लक्ष्य है। इसकी महत्त्वपूर्ण रणनीति समग्र शिक्षा, छात्राओं को प्रोत्साहन, वामपंथी एवं उग्रवादी क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचा तैयार करना, प्रमुख लक्ष्य है। उन्हें ब्लॉक स्तर पर एकलव्य, मॉडल, आवासीय विद्यालय, पाँच छात्रवृत्ति, प्री और पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति, राष्ट्रीय फैलोशिप, टॉप क्लास स्कॉलरशिप, नेशनल ओवरसीज, स्कॉलरशिप, डिजिटल तकनीक, शोध एवं अन्य विकास योजनाओं के द्वारा उन्हें गाँव और शहर में जरूरी सुविधाएँ प्रदान कर आजीविका एवं आय में वृद्धि कर स्वास्थ्य और सांस्कृतिक परंपराओं में संरक्षण के दृष्टिकोण से स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर संचालित किया जा रहा है। राजस्थान में जनजाति कलाओं में उनके लोकगीत, लोकनृत्य एवं परंपराओं का अध्ययन कर उनके जीवन से जुड़े पहलुओं की जानकारी कर उनमें व्यावसायिकता की परंपरा एवं नवीन परिवर्तित परिदृश्य से सामंजस्य एवं प्रगति का समीचीन अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

राजस्थान, भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित सर्वाधिक भौगोलिक क्षेत्रफल वाला राज्य है। इसका विस्तार $23^{o}3'$ से $30^{o}12'$ उत्तरी अक्षांश एवं $69^{o}30'$ से $78^{o}17'$ पूर्वी देशांतर के मध्य विस्तृत है। राज्य का सबसे ऊँचा भाग गुरु शिखर एवं सांभर झील समुद्र तल से भी नीची है। राज्य का भू-आकृतिक भाग बहुत प्राचीन और लंबे समय तक अपरदन एवं निक्षेपण का परिणाम रहा है। राज्य को चार भौतिक प्रदेश में बाँटा जा सकता है–(1) पश्चिमी मरुप्रदेश, (2) अरावली प्रदेश, (3) पूर्वी मैदान एवं (4) दक्षिणी-पूर्वी हाड़ौती पठार आदि।

यहाँ अरावली पर्वत गोंडवानालैंड का जबकि थार मरुस्थल एवं पूर्वी मैदान टैथिस सागर के भाग है। राज्य के पश्चिमी भाग को सिंधु नदी तंत्र द्वारा एवं पूर्व विभाग को गंगा व यमुना नदी तंत्र द्वारा पाट कर उपजाऊ मैदान में परिवर्तित कर दिया है। राज्य में सर्वाधिक तापमान एवं न्यूनतम वर्षा यहाँ की विषम भौगोलिक परिस्थिति को और भी कठिन बना देती है। राजस्थान शुष्क राज्यों की श्रेणी में आता है। यहाँ का किसान वर्षा की एक-एक बूँद का नम आँखों से स्वागत करता है। राज्य

का विशाल पशुधन कृषकों की आय का प्रमुख साधन है। यहाँ आर्द्र पतझड़ वनस्पति से लेकर शुष्क जीरॉफाइट तक की वनस्पतियाँ देखने को मिलती हैं। राज्य में सदा वाहिनी नदियों का अभाव पाया जाता है। अत: सिंचाई के लिए वर्षा का अत्यधिक महत्त्व है। अरावली पर्वतमाला को खनिजों का अजायबघर कहते हैं। वहीं पश्चिमी रेत के धोरों में खनिज तेल एवं गैसों के भंडारों से राज्य की जीडीपी को बढ़ाने में मदद मिली है। यहाँ सर्दी, गर्मी एवं वर्षा तीनों ही मौसम अपनी प्रचंडता एवं अल्पता के लिए प्रसिद्ध है।

उद्देश्य :

- जनजातीय कला का समग्र अध्ययन करना।
- राजस्थान में जनजातीय व्यावसायिकता का अध्ययन करना।
- जनजाति कला एवं व्यावसायिकता में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव और सुझावों का अध्ययन करना।

विधि तंत्र–प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन को पूर्ण करने के लिए राजस्थान की जनजातीय कला एवं व्यावसायिकता के आँकड़ों को आधार बनाया गया है। अधिकांशत: द्वितीयक आँकड़ों को शोध-पत्र का आधार बनाया गया है। जो राजस्थान जिला-दर्शन, राजस्थान का भूगोल, जनजाति के विभिन्न योजनाओं एवं नेट आदि से प्राप्त आँकड़ों से लिए गए हैं। द्वितीयक आँकड़ों के माध्यम से शोध परिकल्पना को साबित करने का प्रयास किया गया है।

जनजाति–जनजाति अँग्रेजी के TRIBE शब्द का हिंदी रूपांतरण है। जनजाति भारत के आदिवासियों के लिए प्रयोग होने वाला एक वैधानिक शब्द है। भारत के संविधान में अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग हुआ है और इसके लिए विशेष प्रावधान लागू किए गए हैं। राजस्थान में जनजाति समुदाय के समग्र विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा 1975 में 'जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग' की स्थापना कर राजस्थान राज्य में सरकार द्वारा प्रकाशित सूची में 12 अनुसूचित जातियों को सम्मिलित कर लिया गया है।

राजस्थान की अनुसूचित जनजातियाँ–सहरिया, भील, पटोलिया, भील मीणा, मीणा, नायक, कोली/कोलचा, कोकना, काथोड़ी, डामोर, गरासिया, धानका जाति को सम्मिलित किया जाता है। इनमें भील, भील मीणा एवं गरासिया जनजाति का सामाजिक रीति-रिवाज जनसंख्या एवं अर्थव्यवस्था में प्रमुख योगदान है।

जनजातीय कला–जनजाति कला, जनजातीय कलाकारों की मौलिक अभिव्यक्ति है। जनजाति कला, कलाकारों के हृदय में उठने वाले सहज भाव है। इन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के निष्कर्ष के पश्चात व्यावहारिक दृष्टि से जनजातियाँ अपनी लोककलाओं को तथ्यों के माध्यम से लोकगीत, लोकनृत्य, संगीतकला, मौखिक साहित्य आदि के रूप में अभिव्यक्त करती हैं।

लोकगीत–किसी भी संस्कृति का दर्पण होता है। वह संस्कृति के अतीत से अंधकार में विलीन अनेक महत्त्वपूर्ण रहस्य को उद्घाटित करता है। जनजातीय लोकगीतों में इतिहास लेखन युग से पूर्व की घटनाओं की जानकारियाँ सहजता से उपलब्ध हो जाती है। लोकगीत सहज रूप से सशक्त भाव को प्रकट करते हैं। यह जनजातीय लोगों के कंठ में स्वर लहरी एवं पैरों में थिरकन स्वत: ही पैदा करने वाले होते हैं। लोकगीतों को वाद्ययंत्रों के आविष्कार से पूर्व भी लययुक्त पदों के रूप में गाया करते थे। वाद्ययंत्रों के आविष्कार के पश्चात लोकगीतों की सुंदरता में, मधुरता में

 ISSN 0975-735X

और भी उत्कृष्टता आई है। भीलो में ढोल-नगाड़े, झांझर, थाली, अलगोजा, बाँसुरी आदि मुख्य वाद्य यंत्र हैं।

यह साहित्य प्राय: मौखिक होता है और परंपरागत रूप से चला आ रहा है। लोक संगीत एक स्वत: स्फूर्त स्रोत है, जो उन लोगों के जीवन में उछाल उठाता है अथवा अभिव्यक्त होता है, जो सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र से परे आदिम अवस्था में रहते हैं। जनजातीय लोकगीतों की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि इनमें आनंद की अनुभूति होती है। निराशा शब्द को यह अपने करीब ही नहीं आने देते हैं। इनके गीतों में अमर प्रेम की भावना विभिन्न रूपों से उजागर होती है। इनमें प्राय: मिलन के गीतों की प्रधानता रहती है। यह गीत सोई हुई प्रेम भावना को जाग्रत कर वात्सल्य, वासना एवं अध्यात्म में लिप्त होने को प्रेरित करते हैं। लोकगीतों का जनजातियों में बहुत बड़ा स्थान रहता है। इन्हें त्योहारों पर, धार्मिक अवसरों पर, मेहमानों के स्वागत हेतु एवं मेलों में मनोरंजन हेतु गाए जाते हैं। भीलों में जागरण गीतों का विशेष महत्त्व है। इन्हें बच्चों के चूड़ाकरण के उपलक्ष्य में, भैरूनाथ के गुणों को खंजरी एवं इकतारे से गाते हैं। इन गीतों में कोमलता एवं गंभीरता स्पष्ट नजर आती है। ये लोग वहाँ के माहौल को देखकर वैसे ही गीत रचकर या वे लोग जैसा जीवन जीते हैं उसी से संबंधित गीत रचकर बिना आडंबर व रहस्य के साधारण शब्दों में गाते हैं। पूर्वी राजस्थान में मीणा जनजाति के लोग रसियाओं के माध्यम से नरसी का भात, राजा भर्तृहरी की कहानी आदि सुनाते हैं। होली के अवसर पर 'ढोला' गीत गाते हैं और नाचते भी हैं। आदिवासियों में आखातीज एवं होली का विशेष महत्त्व होता है। मीना-तीज, शीतलामाता, गणगौर, केलादेवी के मेले में (स्त्रियाँ और पुरुष) रातभर लांगुरिया गीत गाते और नाचते हैं जो इनकी समरसता, सहजता एवं भोलेपन को दर्शाता है।

लोकनृत्य–जनजातियों में लोकनृत्य इनकी मूलभावना व एकता को प्रदर्शित करता है। ये अधिकांशत: लोकनृत्य समूह में करते हैं। भील जनजाति में होली के समय जब जंगल में महुआ, पलास आदि के सुनहरे फूल नजर आते हैं। उस समय इनके द्वारा 10-15 दिन तक दिन-रात गौरी व गैर नृत्य किए जाते हैं। मीणा लोग पद एवं सुड्डा दंगलों के माध्यम से पौराणिक धार्मिक कथाएँ सुनाते और नाचते भी हैं। गरासिया लोग माँ लक्ष्मी को संबोधित करते हुए गरबा, बालर एवं गैर नृत्य बड़ी धूमधाम से करते हैं। इनकी स्त्रियाँ बालियों को सामने रखकर गोला बना लेती हैं। पुरुष उस गोले के बाहर रहकर गीत गाते हैं और स्त्रियाँ उन पर नाचती हैं। आदिवासियों में होली, गणगौर, आखातीज, श्रावण, श्राद्ध, नवरात्र, दीपावली आदि त्योहारों को बड़े प्रेम और सद्‌भाव के साथ मिलकर मनाया जाता हैं इनमें जीवंतता व आनंद का भरपूर समावेश होता है।

जनजातियों के प्रमुख लोकनृत्य–

भील जनजाति–हाथी मना नृत्य, द्विचकरी नृत्य, घूमर नृत्य, गवरी नृत्य, राई नृत्य, युद्ध नृत्य, गौर नृत्य, रमणी नृत्य आदि।

गरासिया–लूर नृत्य, गोल नृत्य, मादल नृत्य, वालर नृत्य, मोरिया नृत्य, रावण नृत्य, कूद नृत्य, दोह नृत्य आदि।

कालबेलिया–कालबेलिया नृत्य, इंडोणी नृत्य, पणिहारी नृत्य, शंकरिया नृत्य, बागड़ियो नृत्य, बिछोड़ो/बिथोड़ो नृत्य आदि।

सहरिया–झैला नृत्य, शिकारी नृत्य, इंद्रपरी नृत्य, लहँगा नृत्य आदि।

कथोड़ी–भावलिया नृत्य (नवरात्रि पर पुरुषों द्वारा) होली नृत्य, मावा नृत्य।

बंजारा–मछली नृत्य।

कंजर–धाकड़ नृत्य, चकरी नृत्य, लाडी नृत्य।

मीणा–रसिया नृत्य, मौजा नृत्य।

हस्तशिल्प–जनजातियों में हस्तशिल्प अपने हाथों द्वारा मेहनत कर परिवार व समाज के सदस्यों की मदद से परंपरागत तकनीकी, हस्तकौशल एवं प्रकृति से आवश्यक सामग्री प्राप्त कर अपनी कला को जीवंत रूप देते हैं। इनमें लकड़ी, हाथी दाँत, धातु एवं पत्थर आदि द्वारा निर्मित मूर्ति, चिकनी मिट्टी के खिलौने, भित्ति चित्र, भूमि चित्र, माँडने, वस्त्रों की छपाई, गोदने, बाल गूथने, मूर्तिकला व पशु-पक्षी और जानवरों के चित्र बनाना, लकड़ी, पत्थर एवं धातु के हथियार एवं औजार बनाना प्रमुख कार्य है। उदयपुर जिले में सहकारी विभाग में पंजीकृत राजस संघ संस्थान द्वारा आदिवासी महिलाओं को स्थाई रोजगार से जोड़ने के उद्देश्य से 1983 में हस्तशिल्प कलाओं में रेशम, कीट पालन, उपकरण निर्माण, बास के ट्रीगार्ड, रेशमी साड़ियाँ, रेशमी वस्त्र, मशरूम उत्पादन, वस्त्रों की सिलाई, कशीदाकारी आदि कार्यों द्वारा धन अर्जित कर अपना जीवनयापन कर रही हैं। इन महिलाओं को परंपरागत एवं तकनीकी प्रशिक्षण दिया गया है। इन्हें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा कार्यशालाओं का आयोजन कर मशरूम उगाना, सुखाना, अचार बनाना, सूप बनाना आदि का प्रशिक्षण देकर उन्हें हस्तशिल्प में पारंगत किया गया है। यहाँ के पुरुष भी लकड़ी की सीढ़ियाँ, छोटी-बड़ी टोकरियाँ, झाड़ू, लकड़ी के पिल्लर, छप्पर, लकड़ी के चकला-बेलन, तीर-कमान आदि बनाकर उसे सजाकर बाजार में बेचते हैं।

लोककला एवं हस्तशिल्प का व्यावसायीकरण–वर्तमान में जनजातियों की थाती 'लोककला', अब कबीले और गाँव तक सीमित न रहकर शहरों, होटलों, सरकारी व निजी संस्थाओं एवं व्यवसायियों तक अपनी पहुँच बना चुकी हैं। लोककलाएँ भूमि एवं भवनों के अलंकरण के साथ-साथ हमारे परिधानों व घरेलू सजावट के सामान के रूप में दिखाई देने लगी है। वर्तमान में यह पारंपरिक संस्कारों में पली-बढ़ी वास्तविक लोककला न होकर मिश्रित, आधुनिकता का घटिया मिश्रण है, जिसे चुनिंदा लोग व्यवसाय के लालच में आकर मूल रूप से भिन्न प्रचलित करने में लगे हैं।

जनजातीय कलाकार अपनी कला को जीवन में आनंद के लिए अपनाते थे, परंतु अब व्यावसायिक दृष्टि से इन कलाओं का आयोजन तोड़-मरोड़ कर प्रतीकात्मक रूप में दिखाया जाने लगा है। इन कलाकारों ने भी अपने भावात्मक तत्त्वों एवं परंपराओं को लालच में आकर त्याग सा दिया है। मात्र बाह्य माध्यम से मनोरंजन की प्रक्रिया दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। लोकनृत्य एवं लोकगीत आनंद की अभिव्यक्ति, जीवन के अनुष्ठान अब रूढ़िमात्र रह गए है। लोकजीवन में लोकनृत्य एवं लोकगीत विशेष त्यौहारों तक ही सीमित रह गए हैं और अब इनमें शिक्षा के प्रसार व संपन्नता की वृद्धि के साथ सामूहिकता, एकता व सामुदायिकता का अभाव नजर आने लगा है और पढ़े-लिखे लोग इस संस्कृति को पीछे छोड़कर नवीन तकनीकी के साथ बहुत आगे बढ़ चुके हैं। व्यावसायिकता के कारण या तो ये नृत्य यजमानों के यहाँ किए जाते हैं या कोई भी व्यक्ति पारिश्रमिक देकर उन्हें नचवा सकता है। इनके पीछे किसी भी प्रकार की सामाजिक परंपराएँ नहीं गुथी हुई हैं। जैसे भोपे के नृत्य, गैर नृत्य, डांडिया रास आदि इनमें बनावटीपन, श्रृंगार व सजावट की और अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इन लोकनृत्यों में व्यावसायिकता आने के कारण इन्हें सामाजिक सम्मान की भावना से भी नहीं देखा जाता है।

अब ये कलाकार अपनी कला को गाँव में रहने वाले अन्य लोग बढ़ई, मोची, लोहार, बनिए आदि की तरह अपनी कला बेचने का काम करने लगे हैं। सिनेमा जगत में भी इस जनजाति संस्कृति के नेतृत्व को अर्धनग्न परिधानों में दिखाया जाता है। सांस्कृतिक केंद्र और शिल्पग्राम जैसी संस्थाएँ जो औपचारिक संगठनों के तत्वाधान में चल रहे हैं। वह इस संस्कृति की कितनी रक्षा कर पाएँगे यह विचारणीय प्रश्न है।

जनजाति समाज का परिदृश्य अब तीन रूपों में दिखाई देने लगा है। विकसित अल्पविकसित व पिछड़ा वर्ग, राजस्थान की जनजातियों का राज्य सरकार की योजना एवं भारत सरकार द्वारा दिए गए आरक्षण के प्रावधानों से अनेक परिवार की लगातार दूसरी या तीसरी पीढ़ी उच्च सेवाओं में आ गई या राजनीति में आ गई जिसका चयन सामान्य वर्ग की सीटों पर, सरकारी नौकरी, प्रशासन व राजनीति में हो रहा है। वे गाँव से निकलकर शहरों में, सामान्य वर्ग के साथ बड़े-बड़े बँगले बनाकर रह रहे हैं। उनका पूरी तरह सामाजिकरण हो चुका है। वे विकसित श्रेणी में आ चुके हैं। अल्पविकसित लोग अपनी कला, हस्तशिल्प एवं परिश्रम के बल पर सर्व समाज में सम्मिलित होने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जबकि कुछ जनजातियां अभी भी पिछड़ी हुई स्थिति में हैं। जो रोटी, कपड़ा और मकान के लिए आज भी संघर्ष कर रही हैं। इन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए सरकार ने अनेक योजनाएँ, उनके उत्थान के लिए चला रखी है। जैसे ट्राईबल सब प्लान एरिया योजना, मांडा योजना, आई॰आर॰डी॰पी॰ योजना, बिखरी हुई जनजाति योजना, सहरिया विकास कार्यक्रम, रोजगार गारंटी कार्यक्रम, रुख भायला कार्यक्रम, एकलव्य योजना, विशेष क्षेत्र विकास कार्यक्रम, अनुसूचित जाति कल्याण कार्यक्रम, आपणी दुकान योजना, छात्रावास योजना, राजस्थान जनजाति वित्त एवं विकास सहकारी निगम द्वारा रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण द्वारा सर्वांगीण विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

निष्कर्ष–भारत, जनजाति आबादी के दृष्टिकोण से विविध, समृद्ध, सांस्कृतिक विरासत वाला देश है, क्योंकि यहाँ विश्व के लगभग 25% जनजातीय लोग निवास करते हैं, जो विश्व की जनजातीय आबादी का चौथाई भाग है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी में लगभग 8.6% जनसंख्या अनुसूचित जनजातियों की है। वहीं राजस्थान में अनुसूचित जनजाति, राज्य की कुल जनसंख्या का 12.6% है। 15 नवंबर को भारत सरकार ने जनजातीय गौरव दिवस मनाने का निर्णय लेकर जनजातीय विरासत, परंपरा, संस्कृति की वैश्विक मंच पर छवि को मजबूत की है। हाल ही में भारत की पहली आदिवासी महिला राष्ट्रपति द्रोपदी मुर्मू को भारत की प्रथम नागरिक सम्मान से नवाजा गया है।

राजस्थान में 12 मुख्य जनजातियाँ और कई उनकी उपजातियाँ हैं। प्रत्येक की अलग भाषा, अलग पहनावा, अलग-अलग खानपान व आदतें और अलग मान्यताएँ हैं, जो राजस्थान के अंदर भी अनेक राजस्थानी संस्कृतियों के दर्शन कराती हैं। वहीं दूसरा दुखद पहलू यह है कि ये जनजातियाँ धीरे-धीरे अपनी सांस्कृतिक विरासत खोती जा रही हैं। वर्तमान युवा पीढ़ी अक्सर शब्दों, लोक उत्सवों व गीतों का अर्थ नहीं जानती है, क्योंकि जनजातियों के पास कोई लिखित दस्तावेज नहीं है और मान्यताएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रसारित की गई हैं।

अब यह आशंका गहरी होने लगी है कि आने वाले कुछ वर्षों में शहरी प्रवास और कभी-कभी धर्म परिवर्तन उनकी विरासत को खो न दें। अत: जो जातियाँ स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात किए गए प्रयासों के बावजूद मुख्यधारा में आने से वंचित रह रही हैं। उनके लिए विशेष प्रावधान बनाकर

उन्हें मुख्यधारा में लाए जाने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे उनकी कला एवं व्यावसायिकता को बढ़ावा मिल सके। सरकार के प्रयास एवं शिक्षा के प्रयास से वर्तमान पीढ़ी पढ़-लिखकर रोजगार की ओर उन्मुख हो रही है। वे अपनी कला एवं व्यावसायिकता को भी सीमित क्षेत्र से बाजार तक लाने का सामर्थ्य उठाने लगे हैं। जिससे उन्हें अपनी कला को निखारने और अधिक आर्थिक लाभ अर्जन में सुगमता महसूस होने लगी है। वहीं शिक्षित व्यवसायी लगभग सभी व्यवसायों से जुड़कर अपने जीवन को मुख्यधारा से जोड़ने में सफलता हासिल कर रहे हैं। उनकी सहजता और सच्चाई सभी को प्रभावित किए बिना नहीं रहती है।

संदर्भ

1. अभय फ्लविन, देव, जी० एन० (2021): बिइंग आदिवासी, पेंग्विन पब्लिकेशन, ब्रिटिश पब्लिकेशन हाउस, ग्रेट ब्रिटेन
2. एम०सी० बेहरा, जनजाति अध्ययन का पुनरावलोकन: सौ वर्षों बाद एक झलक, रावत पब्लिकेशन जयपुर, 2018
3. रामकुमार गुर्जर, बी०सी० जाट, मानव भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2018
4. केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, अनुज्ञा बुक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
5. नरेंद्र, आदिवासी लोक समाज, कुछ अनुभव और कुछ अनुभुतियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022
6. ए०के० तिवारी, राजस्थान का प्रादेशिक भूगोल, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2008
7. विनायक तुमराम, आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म, सुधीर प्रकाशन, वर्धा (महाराष्ट्र), 2016
8. राजश्री त्रिवेदी और रूपाली बुर्के, कंटेंप्रेरी आदिवासी राइटिंग्स इन इंडिया सिफ्टिंग पैराडाइज, नोशन प्रेस डॉट कॉम, चेन्नई, 2018
9. एच०एस० शर्मा, एम०एल० शर्मा, राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2017

Gaurav Kumar Jain
3rd\F\16, Sector-2, University Staff Colony
JNVU Campus, Residency Road, Jodhpur (Raj.)
Mob. 8384935700
gauravkumarjain85@gmail.com

ISSN 0975-735X

आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

ओमप्रकाश यादव, वर्षा शर्मा एवं जगतराज पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग, आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड

1. **प्रस्तावना**—शिक्षा समाज का दर्पण है और मूल्य उसके प्रतिबिंब। समाज में प्रचलित मूल्य शिक्षा को आधार प्रदान करते हैं। यदि किसी राष्ट्र को पूरे विश्व में अपनी अच्छी पहचान बनानी हो तो उस राष्ट्र के उद्देश्य, आदर्श व मूल्यों का परिपूर्ण होना अत्यंत आवश्यक होता है। इसके लिए शिक्षा एक ऐसा प्रभावी माध्यम है जो एक राष्ट्र के उद्देश्य, आदर्श और मूल्यों को एक आईने की तरह दर्शाता है। शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक व छात्र दो प्रमुख घटक हैं जो समाज में हितकारी परिवर्तन ला सकते हैं। ये भारतीय शिक्षा व्यवस्था में नए विचार, नए दृष्टिकोण, नए मूल्यों को स्थापित कर देश के भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में मूल्यों के आधार पर यह निश्चित करता है कि उसे किस प्रकार से जीवन आगे बढ़ाना चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अपने अलग-अलग मूल्य होते हैं और वह उसी के अनुसार अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करता है।

मूल्य का विचार मानव को स्वत: उस जीवन दृष्टि की ओर ले जाता है जिसमें जीवन के महत्त्व पर विचार किया जाता है, इसमें व्यक्ति और समाज के लिए क्या कल्याणकारी है इसे पारिभाषित करना तथा उसके कार्य व्यवहारों के आधार पर मूल्य के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। प्रोफेसर अर्बन ने अपने पुस्तक 'फंडामेंटल ऑफ एथिक्स' में लिखा है कि मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे एवं व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो। वे कहते हैं केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्मा के विकास या आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाए। इस परिभाषा में मानव की जैविक से लेकर आध्यात्कि तक सभी आवश्यकताओं का समावेश हो जाता है जिनका मानव जीवन के लिए महत्त्व है एवं जिसे पाने के लिए व्यक्ति प्रयास करता है तथा बड़े-से-बड़े त्याग करने के लिए तैयार रहता है। इस प्रकार मूल्य वह सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता है और आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष करने, दु:ख सहने एवं मृत्यु को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है। मूल्य परिवर्तनशील समाज की वह धुरी है जिसके कारण समाज की वस्तुत: उपयोगिता अथवा कल्याणकारिता की भावना को गति मिलती है।

मूल्य ऐसी आचरण संहित या सद्‌गुण है जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। ये मानव मूल्य ओर व्यक्ति के अंत:करण द्वारा नियंत्रित होते हैं तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परंपरा द्वारा क्रमश: विकसित एवं परिपोषित होते हैं। मूल्य मनुष्य के अंतरण में जगती हुई एक ऐसी प्रेरणा है जो उसे एक विशिष्ट प्रकार से कर्म करने के लिए प्रेरित करती है और उसके आचरण को शासित भी करती है।

समय के साथ मूल्यों में परिवर्तन आ रहे हैं। उदाहरण के लिए यदि कलियुग के जीवन मूल्यों से हम प्राचीन युग (सतयुग, त्रेता अथवा द्वापर) के मूल्यों की तुलना करे तो काफी अंतर प्रतीत होगा। जो जीवन मूल्य अथवा मूल्य सतयुग में थे, वे त्रेता युग में नहीं थे और जो त्रेता युग में थे वे द्वापर में नहीं थे तथा जो द्वापर युग में थे वे कलियुग में पूर्णत: समाप्त हो चुके हैं। कलियुग में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में तनाव के कारण दिन-प्रतिदिन घुटन बढ़ती जा रही है। परिवार में छोटे बड़ों का आदर सम्मान समाप्त प्राय: हो गया है। सामाजिक जीवन में सहयोग समाप्त हो रहा है। सामाजिक नियम एवं व्यवस्थाओं का उल्लंघन करते हुए वर्तमान मनुष्य संकोच नहीं करता। प्रदर्शन, घेराव, तोड़-फोड़, हिंसात्मक विद्रोह एवं आतंक हमारे जीवन में प्रतिपल तनाव एवं भय पैदा कर रहा है। भ्रष्टाचार, काला बाजारी, रिश्वतखोरी, तस्करी, मिलावट, काला धन आदि से संबंधित गतिविधियाँ हमें दिन-प्रतिदिन व्याकुल करती हैं।

प्रत्येक पीढ़ी विरासत में प्राप्त मूल्यों को अपनाती है तथा उन्हें आत्मसात करती है। इन्हीं मूल्यों के द्वारा उसका विकास होता है। प्रत्येक समाज के अपने मूल्य, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परंपराएँ तथा आदर्श होते हैं। महत्त्व और मूल्य, किसी व्यक्ति के गुणों के मूल पहचानकर्ता में से एक हैं और यह जन्मजात नहीं हैं बल्कि प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किए गए हैं, हालाँकि जीवन के सभी चरणों में मूल्यों को पढ़ाया जा सकता है, बचपन में शिक्षा के महत्त्व को महत्त्व दिया जाता है क्योंकि व्यक्ति इसमें ही आकार लेता है। शैक्षिक संस्थानों में जारी रहने की तुलना में मूल्यों की शिक्षा सबसे पहले परिवार में शुरू होती है। स्कूलों में अभिभावकों को रोल मॉडल अर्थात् आदर्श और शिक्षा के रूप में लेते हुए मूल मूल्यों का अधिग्रहण किया जाता है। मजबूत लक्षणों के लिए पूरे जीवन में मूल्यों का सुसंगत होना आवश्यक है। विशेष रूप से विद्यालय और परिवार की निरंतरता जो बच्चों के व्यक्तित्व मूल्यों पर शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। यदि उन मूल्यों के बीच कोई सामंजस्य नहीं है जो छात्रों ने स्कूल और परिवार में सीखा या देखा है तो संघर्ष होना लाजमी है और इन सबके कारण व्यक्तित्व विकार होते हैं।

मूल्यपरक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बौद्धिकता के तीन आयामों-ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक आयामों के विकास से भी जुड़ा हुआ है। इसके द्वारा अधिगमकर्ता न केवल सही और अच्छे के बारे में जानता है बल्कि सही क्रियाएँ करने की दिशा में उपयुक्त भाव एवं वचनबद्धता का अनुभव करता है। यह मानवता से जुड़े ज्वलंत मुद्दों पर समालोचनात्मक चिंतन एवं स्वतंत्र निर्णय की योग्यता विकसित करने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार मूल्य शिक्षा उत्तम मूल्य एवं चरित्र का विकास करने का उद्देश्य लिए हुए नियोजित शैक्षिक क्रियाओं से युक्त कार्यक्रम है। हमारी प्रत्येक क्रिया और विचार हमारे मस्तिष्क पर एक छाप छोड़ते हैं और यह छाप अथवा भाव ही किसी दिए हुए समय अथवा परिस्थिति में हमारी प्रतिक्रियाएँ एवं व्यवहार निर्धारित करते हैं। इन व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं का मिला-जुला रूप हमारे चरित्र को निर्मित एवं निर्धारित करता है। इन व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं को परिमार्जित करते हुए चरित्र निर्माण प्रक्रिया को एक नई दिशा प्रदान करना ही मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

2. **समस्या शीर्षक**-आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन।

3. **अध्ययन का उद्देश्य**

* आवासीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन करना।

* गैर-आवासीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन करना।

4. **शोध परिकल्पना**

शून्य परिकल्पना–आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

वैकल्पिक परिकल्पना–आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर पाया जाएगा।

5. **शोध परिसीमा एवं न्यादर्श**

* प्रस्तुत अध्ययन केवल भोपाल जिले के विद्यार्थियों पर किया गया है।
* इस अध्ययन हेतु भोपाल के आवासीय एवं गैर आवासीय विद्यालय का चयन किया गया है।
* इस अध्ययन हेतु आवासीय विद्यालय से 50 विद्यार्थियों तथा गैर-आवासीय विद्यालय से 50 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

6. **शोध अभिकल्प**–शोध अभिकल्प प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोधकार्य को प्रारंभ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच-समझ के पश्चात तैयार किया जाता है। शोध की प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण कई बिंदुओं पर विचार करने के बाद किया जाता है जिसके अंतर्गत अध्ययन का प्रयोजन, संबंध, आँकड़ों के प्रकार की आवश्यकता, वांछित आँकड़ों का स्रोत, अध्ययन का क्षेत्र तथा समय, निर्धारित समय में अध्ययन पूर्ण करने के लिए संसाधनों की आवश्यकता, प्रतिदर्श की संख्या तथा चुनाव का आधार, आँकड़ा संकलन में प्रविधि का चुनाव, विश्लेषण की विधि तथा विश्लेषित आँकड़ों की व्याख्या की जाती है। शोध अभिकल्प से शोधकार्य को संपादित करने के लिए एक रूपरेखा तैयार हो जाती है। यह शोध प्रक्रिया को कुशल और आसान गति प्रदान करता है।

7. **शोध उपकरण**–प्रस्तुत शोध प्रपत्र में प्रदत्तों के संकलन हेतु डॉ० जी०पी० शोरी एवं आर०पी० वर्मा द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

8. **सांख्यिकीय विधि**–प्रस्तुत अध्ययन हेतु सांख्यिकीय गणना के अंतर्गत मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक-1

आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य मूल्यों के तुलनात्मक अध्ययन का सांख्यिकीय विश्लेषण

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी-सारणीमान	परिकलित टी-मान	सार्थकता 0.05 स्तर
धार्मिक मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12	1.62	1.97	.466	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	13	2.29			
सामाजिक मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.24	2.19	1.97	-.558	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.20	2.18			

प्रजातांत्रक मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.28	2.02	1.97	-.252	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.42	2.15			
सौंदर्यात्मक मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.31	2.07	1.97	.186	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.35	2.21			
आर्थिक मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.69	1.91	1.97	-1.055	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.22	2.51			
ज्ञानात्मक मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.00	1.69	1.97	-1.312	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.39	2.39			
सुखवादी मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.26	1.75	1.97	1.048	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.76	2.45			
शक्ति मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.42	1.78	1.97	.257	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.32	2.17			
परिवार मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	12.09	2.11	1.97	.576	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.82	2.03			
स्वास्थ्य मूल्य	आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.68	2.16	1.97	.771	असार्थक (NS)
	गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी	50	11.29	1.56			

9. **प्रदत्तों का विश्लेषण**–सारणी क्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के धार्मिक मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (.466<1.97) अत: असार्थक अंतर है। सामाजिक मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (-.558<1.97) अत: असार्थक अंतर है। प्रजातांत्रिक मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (-.252<1.97) अत: असार्थक अंतर है। सौंदर्यात्मक मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (.186<1.97) अत: असार्थक अंतर है। आर्थिक मूल्य का सारणी मान से परिकलितमान कम है (-1.055<1.97) अत: असार्थक अंतर है। ज्ञानात्मक मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (-1.312<1.97) अत: असार्थक अंतर है। सुखवादी मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (1.048<1.97) अत: असार्थक अंतर है। शक्ति मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (.257<1.97) अत: असार्थक अंतर है। परिवार मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (.576<1.97) अत: असार्थक अंतर है।

स्वास्थ्य मूल्य का सारणी मान से परिकलित मान कम है (.771<1.97) अतः असार्थक अंतर है।

10. **परिकल्पना का परीक्षण**—उपर्युक्त विश्लेषण से परिणाम स्पष्ट है कि आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयां में अध्ययनरत विद्यार्थियों के धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातांत्रिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, आर्थिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सुखवादी मूल्य, शक्ति मूल्य, परिवार मूल्य, स्वास्थ्य मूल्य में सार्थक अंतर नहीं है, अतएव पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है।

संदर्भ

1. ए॰एस॰ चौहान, एडवांस एजूकेशनल साइक्लोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006
2. ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, वाई एम॰वी॰ बुच, 1974
3. डॉ॰ अलक काजी, गौस एवं अन्य, कुंठा एवं अंतर्द्वंद्व, 2002
4. बी॰एन॰ शर्मा, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा
5. बरने तथा लेहनर, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1953, पृ॰ 102
6. बोरिंग, लैंग्फील्ड एवं वेल्ड, फाउंडेशन आफ साईकोलोजी, 1962
7. महेश भार्गव, आधुनिकतम मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन, एच॰पी॰ भार्गव बुक हाउस, आगरा 1999
8. फिशर, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1948 पृ॰ 508-511
9. गेट्स एवं अन्य, शैक्षिक मनोविज्ञान, मैकमिलन पब्लिकेशन, न्यूयार्क, 1995
10. गेट्स, जर्सफील्ड, 1955, एजुकेशनल साईकोलोजी, द मैकमिलन पब्लिकेशन, न्यूयार्क, 1995, शैक्षिक मनौविज्ञान, मैकमिलन पब्लिकेशन, न्यूयार्क, पृ॰ 615-16
11. स्वाती जैन, अधिगमकार्ता का विकास एवं शिक्षण प्रक्रिया, अर्णव प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ॰ 229
12. कौलमेन, उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, एटलांटिक पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2004, पृ॰ 332-336
13. कुप्पास्वामी, एडवांसड एजुकेशनल साइकोलोजी, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1956, पृ॰ 382
14. कैरोल, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1969, पृ॰ 102
15. एस॰ के॰ मंगल, शिक्षा मनोविज्ञान PHI लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, एम-97, नई दिल्ली पृ॰ 575
16. एस॰एस॰ माथुर, शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1988
17. मन आदि, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1964, पृ॰ 506
18. 22
19. महेंद्र कुमार मिश्रा, समायोजन मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ॰ 43
20. अंजू मिश्रा, अधिगम कक्षा का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, 2007, पृ॰ 515

गढ़वाल हिमालय में विवाह संस्कार के वैदिक सूत्र

डॉ॰ डी॰एस॰ भंडारी

विषय विस्तार : वेद ऋचाओं से सिद्ध होता है कि विवाह संस्कार परंपरा बहुत प्राचीन है। ऋगवेद का दसवाँ मंडल विवाह-संबंधी अनेक विधानों पर प्रकाश डालता है। अर्थववेद के चौदहवें मंडल के में भी विवाह-संबंधी मान-मर्यादाओं का उल्लेख किया गया है। वेदों की इन्हीं ऋचाओं का विस्तार स्मृतियों और गृहसूत्रों में मिलती है। अर्थववेद में सूर्या के विवाह का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। 'सूर्या विवाह के पश्चात जब अपने पति के घर आई तब संकल्प ही उसका तकिया थाए उसकी प्रेम मई दृष्टि ही शरीर पर रचाया जाने वाला महावर था भूमि उसके कोश के तुल्य थे।'[1] रेभी नामक स्तावक ऋचा सूर्या की सखी बनी, नाराशांसी नामक ऋचाएँ न्योतनी अर्थात् स्वागत करने वाली दासी बनी सूर्या का वैवाहिक वस्त्र भी सुंदर था।[2]

वेद ऋचाओं के अर्थ लोकमान्यता के अनुसार भिन्न हो सकता है लेकिन इनका संबंध विवाह संस्कार से है इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है।[3] सूर्या के विवाह से संबंधित अनेक ऋचाओं में विवाह-संस्कार संबंधी कई ऐसे संदर्भ हैं जो तदनंतर स्मृतियों और गृहसूत्रों के माध्यम से लोकसाहित्य में प्रविष्ट हुए।

विवाह के उद्देश्य पर भी वेद ऋचाओं में प्रकाश डाला गया है। मनुष्य को भी परमेश्वर का अंश माना गया है। विवाह से संतति और आनंदोत्पत्ति के साथ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी विवाह से होती है।[4]

हिंदूधर्म संस्कृति में विवाह आवश्यक माना गया है। धार्मिक ग्रंथों में उल्लेख किया गया है कि देवताओं के विभिन्न यज्ञ करने के लिए पत्नी का होना आवश्यक है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि अविवाहित व्यक्ति का जीवन अपूर्ण है।[5] इसके साथ ही आपस्तंब धर्मसूत्र में पत्नी के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। विवाह संस्कार के समय कन्या जिन प्रतिज्ञाओं के साथ वर आत्म सर्मपण करती है इन मंत्रों का उच्चारण किया जाता है।

तीर्थ व्रतों घा पनयज्ञदानं मया सह त्वं यदि किंतु कुर्याः
वमाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी।
हव्य प्रदानैरमरान्पितृंश्च, कव्य प्रदानैर्यदि पूजयेथा।
वार्माङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं द्वितीयक।[6]

अर्थात् तीर्थ व्रतोद्यापन यज्ञ, दान, देवताओं का पूजन पितरों का पूजन कुटुंब की रक्षा एवं पालन पशुपालन आय व्यय आदि व्यवस्था जो कुछ तुम करोगे सबमें तुम्हारी सदा वामांगिनी रहूँगी। ऋग्वेद का यह मंत्र भी विवाह संस्कार के समय पढ़ा जाता है–

गृहणामि तै सौभगत्ताय हस्तं मया पत्मा जरदविष्टर्यथासंः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्महमं त्वादुर्ग हयव्याय देवा।[7]

अर्थात् हे वधू तेरा हाथ मैं सौभाग्य वृद्धि के लिए ग्रहण करता हूँ, जिससे तू मुझ पति के

 ISSN 0975-735X

साथ वृद्धावस्था तक पहुँचना। भग अर्यभा सविता और पुरंधि देवी ने तुझे मुझे गृहस्थधर्म का पालन करने के लिए प्रदान किया है।

गढ़वाल हिमालय की विवाह-परंपरा में वैदिक रीति का ही पूर्णत: पालन किया जाता है। विवाह के लिए सुपात्र कन्या या वर का चयन सुगम कार्य नहीं होता है। ऋग्वेद में ऐसी ऋचाएँ हैं जिनके उल्लेख मिलते हैं कि इस कार्य के लिए मित्रों का सहयोग लिया जाता है। देवताओं से भी प्रार्थना की जाती है कि इस कार्य में सहायता करें कन्या से विवाह करते समय धन सौंदर्य बुद्धि एवं कुल पर विचार करना चाहिए यदि चारों बातें न मिलें तो बुद्धि और कुल को महत्त्व देना चाहिए।[8] वर के संबंध में भी कहा गया है कि बुद्धिमान, सत्चरित्र, सुंदर और स्वस्थ वर को ही कन्या दी जानी चाहिए। गढ़वाल हिमालय की विवाह-पद्धति में कन्या का चयन अपने वर्ण मातृकुल में असपिंड तथा पितृकुल में असगोत्र से किया जाता है। हिंदूधर्म संस्कृति में भी सपिंड और सगोत्र विवाह पूर्ण रूप से वर्जित है। पिंड का अर्थ शरीर माना जाता है और सपिंड का अर्थ दोनों एक ही शरीर के अवयव। नाना नानी और दादा दादी की तीन पीढ़ियों तक साक्षात सपिंडता और बाद की चार पीढ़ी तक परंपरागत सपिंडता मानी जाती है।[10] याज्ञवल्क्य ने माता के कुल पाँचवीं पीढ़ी तक और पिता के कुल में सातवीं पीढ़ी तक सपिंडता की सीमा का निर्धारण किया है।

इस निषेध का यहाँ पूर्णतया पालन किया जाता है। पाँच पीढ़ियों की वर्जना का पालन करने के बाद यदि सपिंडीय विवाह किया जाता है तो उसे दूध फटना कहते हैं। विवाह संबंध दूध फांट पर ही किया जाता है। इसका अर्थ है कि जिससे विवाह संबंध हो रहा है यह सपिंडीय तो नहीं है और अगर है तो कितनी पीढ़ियों पुराना है।

सपिंडीय विवाह की जो वर्जना यहाँ मिलती है उसके सूत्र भी वैदिक धर्मग्रंथों में मिलते हैं। ऋगवेद और अथर्ववेद में यम यमी संवाद प्रस्तुत किया गया है। यम और यमी जो कि सूर्य की जुड़वाँ संतान है विवाह के संबंध में चर्चा करते हैं। यमी यम से विवाह का निवेदन करता है। यम कहता है कि हम सपिंडी है। यमी कहती है कि हे यम पिता की वंशवेल को मुझमें स्थापित कर।[11] यम कहता है कि वह निषिद्ध दांपत्य भाव वाली मित्रता नहीं चाहता तू सगोत्र और सहोदरा है। लोक में पत्नी तो भिन्न कुल वाली होती है। मरुद्गण हर कार्य को देखते हैं वे भी इस कार्य को स्वीकार नहीं करेंगे। यम कहता है कि यह काम हमारे पूर्वजों ने भी नहीं किया है। यह निंदित कार्य है और तेरा भाई यह निंदित कार्य नहीं करेगा।[12]

सगोत्रीय विवाह भी यहाँ वर्जित है। गोत्र शब्द का अर्थ एक ही पूर्वज के वंशज से लिया जाता है। यह परंपरा भी वैदिककाल से जुड़ी मानी जाती है। वैदिककाल में आठ विवाहित ऋषियों से ही वंश-परंपरा बढ़ी। विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य ऋषि गोत्र प्रवर्तक है।[13] इन वर्जनाओं का ध्यान रखते हुए दोनों जन्म कुंडलियों का मिलान कर अनुकूल प्रतिकूल ग्रहों एवं गुणों के आधार पर मिलान करने के उपरांत रिश्ता पक्का माना जाता है और सगाई की रस्म पूर्ण की जाती है उत्तराखंड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति में प्रो॰डी॰डी॰ शर्मा कहते हैं कि ज्योतिष शास्त्रानुसार विवाह के शुभ माने जाने वाले मासों में शुक्र तथा वृहस्पति के उदय में किसी उत्तम मुहूर्त में विवाह का लग्न निर्धारित किया जाता है।[14] किसी भी शुभ कार्य करने से पूर्ण देवताओं के आह्वान और आशीर्वाद की प्राप्ति भारतीय धर्म भावना की परंपरा मानी जाती है जिसका निर्वाह यहाँ भी किया जाता है विवाह के समय गाये जाने वाले मंगलाचरण में भूमिपाल, धरती माता, कूर्म देवता, पंच देवताओं से कार्य की निर्विघ्न संपन्न होने की कामना की

जाती है। अत्यधिक भावुकता के साथ कौवे और सुवा को शकुन बोलने के लिए आमंत्रित किया जाता है कौवे से कहा जाता है कि उसकी चोंच को सोने से मढ़ दिया जाएगा और सुवा के लिए सोने का पिंजरा बनाने का प्रलोभन दिया जाता है।

निमंत्रण के पश्चात विवाह-सामग्री एकत्र करने का कार्य आरंभ किया जाता है। विवाह की सामग्री एकत्र करने के लिए पुरोहित द्वारा तिथि का चयन किया जाता है। हल्दी हाथ के बाद मालूपात घर लानाए विवाह वेदी बनाने के बाद कन्या या वर का मंगलस्नान प्रमुख क्रियाओं में माना जाता है। वर या कन्या की माँ, बहिन, भाभी के साथ ही सभी सुहागनें दोनों हाथों में दूब के गुच्छे लेकर उन्हें स्नान-सामग्री में डुबोकर पाँच बार चरणों घुटनों कंधों और सिर से छुवाती हुई उनकी वंदना करती हैं हिंदीभाषी क्षेत्रों में दूब क्रिया को बान देना और गढ़वाली में बांद देना कहते हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि जब वर कन्या का स्नान संपन्न हो जाता है। तब इसके बाद उनकी आरती उतारी जाती है और उनके ऊपर राम सीता का या शिव-पार्वती का आरोपण किया जाता है। स्नान के बाद वस्त्रधारण की क्रिया संपन्न की जाती है। इस अवसर पर गढ़वाल में जो मंगलगीत गाए जाते हैं उनमें कन्या की ओर से आभूषणों की याचना की जाती है। यह परंपरा भी सभी कालों में समान रूप से दिखाई देती है। गढ़वाल की इस परंपरा के सूत्र भी वैदिककाल में मिलते हैं। ऋग्वेद में सूर्या को दिए गए उपहारों का उल्लेख किया गया है।[15] अर्थववेद में भी बृहस्पति द्वारा सूर्या की केश-सज्जा और उसके वस्त्राभरणों का सौंदर्य व्यक्त किया गया है।[16]

बारात आगमन पर कन्या के मातृगृह में भावात्मक हलचल दिखाई देती है। गढ़वाल में वर ही कन्या के मातृगृह में बारात लेकर आता है। संपूर्ण गढ़वाल में जौनपुर के एक छोटे से आबादी वाले क्षेत्र में अपवाद के स्वरूप ऐसी प्रथा है जहाँ कन्या बारातियों के साथ वर के घर जाती है। बारात के आगमन पर वर को शिव विष्णु राम की उपाधि दी जाती है। डॉ॰ गोविंद चातक कहते हैं कि वर के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा भाव सार्वभौमिक है किंतु ऐसे प्रदेश में जहाँ वर को देखे बिना ही विवाह संबंध स्थिर किए जाते हैं, वहाँ कन्या वर की पालकी अपने आँगन में उतरने के बाद ही वर को देख पाती है।[17]

सप्तपदी, स्तंभपूजा जुठो-पिठो गोत्रोच्चार कंकणबंधन प्राणिग्रहण कन्यादान के समय भी जो मांगलगीत गाए जाते हैं उनके सूत्र भी वैदिककाल से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। स्तंभपूजा के अवसर पर कन्या उनकी पूजा करने की प्रार्थना करती है। जुठो-पिठो में वर कन्या एक-दूसरे को अपना जूठा खिलाते हैं।

विवाहकर्मों का साक्षी अग्नि को माना जाता है। अग्निदेव का भी पुरोहित के साथ ही लोकभावनानुसार लोकगीतों में बहुत आदर के साथ आह्वान किया जाता है। विवाहित जीवन की सार्थकता नारी के लिए मातृत्व में मानी जाती है। यही कारण है कि विवाह भावना के साथ ही पुत्र प्राप्ति की भावना भी जुड़ी हुई है ऋग्वेद में इस प्रिंय प्रजया ते समृध्यतास्मिन गृहे गार्हपत्याय जागृहि में भी यही कामना व्यक्त की गई हैं।[18] अर्थववेद में भी यही भावना व्यक्त की गई है। कौशिक सूत्र, गोकिल गृहसूत्र आदि में भी इस प्रथा का वर्णन किया गया है। अग्नि में आहुति देने से पूर्व कन्या की गोद में बालक बैठा दिया जाता है। कन्या की गोद में बैठने के लिए ऐसे बालक का चयन किया जाता है जिसकी माता के सभी बालक जीवित हो बालक स्वस्थ और सुंदर हैं। यह निर्धारण शंखायन और आपस्तंव गृहसूत्रों में किया गया है। इसके साथ ही वधू से संतान प्राप्त करने की कामना व्यक्त की जाती है। विवाह का सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार सप्तपदी ही माना जाता है और

सप्तपदी के साथ ही विवाह संपन्न माना जाता है।

आपस्तंब, बौधयन, हिरण्यकेशी गृहसूत्रों में वर्णित सप्तपदी संस्कार में बहुत समानता दिखाई देती है। डॉ॰ गोविंद चातक कहते हैं कि गढ़वाली लोकगीतों में वर्णित सप्तपदी और हिंदी भाषी क्षेत्रों की सप्तपदी में जो समानता है वह इस बात का प्रमाण है कि विवाह की इस क्रिया का आधार कोई लौकिक विधि ही रही होगी जिसका प्रभाव क्षेत्र बड़ा व्यापक रहा होगा।[19] आज भी गढ़वाली, ब्रज, बुंदेली, अवधी लोकभाषाओं के सप्तपदी संबंधी लोकगीतों में अत्यधिक भाव समानता दिखाई देती है। सप्तपदी के उपरांत वर और कन्या पुरोहितों को दक्षिणा प्रदान करते हैं।

ऋग्वेद और अर्थववेद में सूर्या का शामुल्य अथवा वधू, विवाह वस्त्र ब्राह्मण को दक्षिणा में दिए जाने की बात कही गई है।[20] वेदों में वर्णित इसी परंपरा का निर्वाह कन्या के पुरोहित को झगुली-टोपली का दान देकर किया जाता है। कन्या की विदाई के अवसर पर अनेक भावपूर्ण मंगलगीत गाए जाते हैं। इस अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों में कन्या हृदय की करुणा भी व्यक्त होती है।

मानस जीवन में बेटी का पितृगृह से विवाह उपरांत विदा होना कारुणिक क्षण माना जाता है। एक ओर वह अपना सर्वस्व त्यागती है और दूसरी ओर उसे नया जीवन आरंभ करने की चुनौती समक्ष दिखाई देती है। करुणा और चुनौती के साथ उसके मन से उत्साह का भाव भी रहता है। वधू का गृहप्रवेश भी मांगल्यसूचक माना जाता है। ऋग्वेद में भी कहा जाता है कि गृभाभिज्ञ तेसौभगत्वाय दृस्तं मया।[21] वर और वधू को वेदों में भी शिवा और सुंकगली कहा गया है। गढ़वाल के मंगलगीतों में भी ऐश्वर्य की अधिष्ठानी लक्ष्मी का वधू पर आरोपण कर स्वागत किया जाता है।

निष्कर्ष—वर्तमान समय में यहाँ केवल ब्रह्मविवाह की पद्धति प्रचलित और सर्वमान्य दिखाई देती है लेकिन इसके अतिरिक्त भी विवाह की जो अन्य पद्धतियाँ यहाँ प्रचलित हैं, उनमें वैदिक रीति का निर्वाह किया जाता है। सभी विवाह-पद्धतियों में विवाह के लिए कन्या का चयन अपने वर्ण मातृकुल में असपिंड तथा पितृकुल में असगोत्र से किया जाता है वह आज भी दिखाई देती है। विवाह-संस्कार संपन्न करते समय जो धार्मिक क्रियाकर्म संपन्न किए जाते हैं वह शास्त्रानुकूल होते हैं। संपूर्ण गढ़वाल हिमालयी क्षेत्र में लड़का बारात लेकर कन्या के घर जाता है, बहुत कम आबादी वाला जौनपुर ही एक मात्र ऐसा क्षेत्र हैं जहाँ कन्या बारात लेकर अपने सगे संबंधियों के साथ में लड़के के घर जाती है। विवाह के मंगलगीतों में माँ-बाप का कन्या के प्रति वात्सल्य भाव भी व्यक्त होता है। मंगल स्नान, वस्त्राभरण बारात आगमन वैवाहिक कृत्यों के मुख्य आकर्षण होता है। वर के प्रति जिज्ञासा-भाव अत्यधिक देखा जाता है। वर पक्ष के लोग भी कन्या में रूप को देखने को उत्सुक देखे जाते हैं। कन्यादान और सप्तपदी विवाह के मुख्य संस्कार हैं। कन्यादान का उल्लेख कई धर्मग्रंथों में किया गया है। इस प्रकार संपूर्ण विवेचना के उपरांत यह कहा जा सकता है। कि गढ़वाल हिमालयी भू-भाग की जो विवाह-पद्धति है उसके संपूर्ण सूत्र वेद और पुराणों से जुड़े हुए हैं।

संदर्भ

1. अर्थववेद 14.1.6
2. ऋग्वेद 10.85
3. डॉ॰ जयनारायण कौशिक, लोकसाहित्य और संस्कार संस्कृति, प्रथम संस्करण, 2004 पृ॰ 51
4. डॉ॰ जयनारायण कौशिक, लोकसाहित्य और संस्कार संस्कृति, प्रथम संस्करण, 2004 पृ॰ 51
5. शतपथ ब्राह्मण, (5.2.1.10)

6. पारस्कर गृहसूत्र, 2.4.46
7. ऋग्वेद-(10.85.36)
8. भारद्वाज गृहय सूत्र (1.11)
9. आश्वलायन गृह्यसूत्र (1.5.1)
10. डॉ॰ जननारायण कौशिक, लोकसाहित्य और संस्कार संस्कार संस्कृति 2004 पृ॰ 55
11. अर्थववेद 18.1.1
12. अर्थववेद 18.1.9,13,14
13. बोधायन श्रोतसूत्र 7.4.61
14. प्रो॰ डी॰डी॰ शर्मा, उत्तराखंड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति, अंकित प्रकाशन 2013 पृ॰ 197
15. ऋग्वेद (10.85.6)
16. अर्थववेद (14-1.55)
17. डॉ॰ गोविंद चातक, गढ़वाली लोकगीत, तक्षशिला प्रकाशन, संस्करण, 2003
18. ऋग्वेद (1.85.27)
19. डॉ॰ गोविंद चातक गढ़वाली लोकगीत, तक्षशिला प्रकाशन 2003, पृ॰ 119
ऋग्वेद (10.85.29) अर्थववेद (14.7.29-30)
20. ऋग्वेद (10.85.29)

डॉ॰ डी॰एस॰ भंडारी
विभागाध्यक्ष हिंदी
बालगंगा महाविद्यालय सेन्दुल
केमर टिहरी गढ़वाल (उत्तराखंड)
मो॰ 99176 99690, 81265 43239
drbhandari1970@gmail.com

भारतीय समाज में स्त्रियों की परिवर्तित स्थिति का विवेचनात्मक अध्ययन

अविनाश वानखेड़े एवं अनिल मेश्राम
समाजशास्त्र विभाग, समाज विज्ञान संकाय
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़

1. **प्रस्तावना**–इक्कीसवीं सदी स्त्री सदी है, वर्ष 2001, महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया गया है। इसमें स्त्रियों की क्षमताओं और कौशल का विकास करके उन्हें अधिक सशक्त बनाने तथा समग्र समाज को स्त्रियों की स्थिति और भूमिका के संबंध में जागरूक बनाने के प्रयास किए गए है। महिला सशक्तिकरण हेतु वर्ष 2001 में प्रथम बार, 'राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति' बनाई गई, जिससे देश में स्त्रियों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में उत्थान और समुचित विकास की आधारभूत विशेषताएँ निर्धारित किया जाना संभव हो सका है। इसमें आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ समान आधार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का सैद्धांतिक तथा वस्तुत: उपभोग पर तथा इन क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी एवं निर्णय स्तर तक समान पहुँच पर बल दिया गया है। भारत में स्त्रियों की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही है। इसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी स्थिति में वैदिकयुग से आधुनिक समय तक अनेक उतार-चढ़ाव आए तथा उनके अधिकारों में तदनुरूप बदलाव भी होते रहे। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ रही तो ऋगवेद में उन्हें दास की सेना का अस्त्र कहा गया। संस्थानिक रूप से स्त्रियों की अवनति उत्तर वैदिक काल से शुरू हुई। उन पर अनेक प्रकार के निर्योग्यताओं का आरोपण कर दिया गया। उनके लिए निंदनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनकी स्वतंत्रता और उन्मुक्तता पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाए जाने लगे। मध्यकाल में इनकी स्थ्ज्ञिति और भी दयनीय हो गई। वर्तमान में स्त्रियों ने स्वयं अपनी मेहनत, योग्यता, अनुभव और आत्मविश्वास से अपने लिए नए रास्तों को खोज निकाला है, उसने यह साबित कर दिया है कि वही जननी है, और वही भाग्य विधाता। फिर भी स्त्रियों के सम्मुख मै कौन हूँ? का प्रश्न यक्ष प्रश्न की मानिंद खड़ा है।

2. **वैदिककाल में स्त्रियों की स्थिति**–प्राचीनकाल में लगभग 200 ई॰पू॰ तक स्त्रियों को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और उनकी शिक्षा का प्रबंध करना माता-पिता का परम कर्त्तव्य माना जाता था। बालिकाएँ 16 वर्ष तक की शिक्षा ग्रहण करती थी। अथर्ववेद में उल्लेखित है कि नारी विवाह के पश्चात तब ही सफल हो सकती है जबकि उसे ब्रह्मचर्य की अवस्था में भली-भाँति शिक्षित किया गया हो। इस समय की स्त्रियाँ कृषि कार्यो तथा युद्ध-संबंधी अस्त्रों के निर्माण का कार्य भी करती थी। वे अपने पतियों के साथ युद्ध में भाग लेती थी और धनु संचालन तथा अश्व संचालन में भी भाग लेती थी। इस समय स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने, शास्त्रार्थ करने, पुराणों का अध्ययन करने, धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों में भाग लेने, यज्ञादि कार्यों में भाग लेने की

स्वतंत्रता थी।

3. **उत्तर वैदिककाल एवं स्त्री स्थिति**–उत्तर वैदिककाल में स्त्रियों की स्थिति में ह्रास के चिह्न दृष्टिगत होते है। मनुस्मृति में मनु ने कुछ नियमों का वर्णन किया है, जिसके अनुसार स्त्रियों को वेदों के अध्ययन का अधिकार प्रदान नहीं किया गया और मंत्रोच्चारण की कसौटी पर उन्हें अयोग्य बना दिया गया। मनु के अनुसार, स्त्रियों को केवल घर के कार्य करने चाहिए तथा पति की सेवा करना ही उनका धर्म माना गया। इस समय में विवाह की आयु भी कम कर दी गई। उत्तर वैदिक काम में स्त्रियों को वेदों की शिक्षा की अपेक्षा संगीत, नृत्य, चित्रकला एवं अन्य ललित कलाओं को सीखने पर अधिक जोर दिया जाने लगा। वास्तव में देखा जाए तो इस काल में जो विचारधाराएँ थी, वे ही अपने बदले हुए स्वरूप में वर्तमान में भी कायम है। इस काल में बालिकाओं का विवाह कम आयु में हो जाता था, जिससे वे शिक्षा से वंचित रह जाती थीं। उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न नहीं हो पाती थी, इस तरह वे धन और सुरक्षा के लिए पुरुषों पर आश्रित रहती थी, यह स्थिति बीसवीं सदी तक बहुतायत में और कुछ हद तक इक्कीसवीं सदी में भी प्राप्त होती है। इसी कालांतर में जैन तथा बौद्ध धर्मों ने स्त्रियों की समानता पर बल दिया, उनकी शिक्षा का पूर्ण रूपेण समर्थन भी किया। इस समय के पूर्वाद्ध तक स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने के पूर्ण अधिकार मिल गए। जैन और बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि कुछ भिक्षुणियों ने साहित्य तथा शिक्षा के प्रसार में व्यापक योगदान दिया। इस प्रकार वैदिक काल में पूर्व भाग तक स्त्रियों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी, उत्तर वैदिककाल में स्त्रियों की स्थिति में तो गिरावट आई फिर भी उन्हें अभी भी सम्मान प्राप्त था।

4. **मुस्लिमकाल में स्त्रियों की स्थिति**–भारतीय इतिहास का मध्यकाल मुस्लिम आक्रांताओं और उनके शासन का काल रहा है। मुस्लिमकाल में स्त्रियाँ प्राय: ही उपेक्षित रहीं, इसका मुख्य कारण मुस्लिम परंपरा की पर्दा प्रथा को माना जा सकता है। इनके लिए शिक्षा की भी कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। निर्धन तथा निम्नवर्ग की स्त्रियाँ तो सामान्य या प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित रह जाती थीं। मुस्लिम काल में जनसामान्य में स्त्रियों के हित के बहुत कम कार्य देखे जाते हैं, इस समय तक स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। समाज में भारतीय स्त्रियों की स्थिति में और अधिक गिरावट आने लगी। जहाँ इस समय मुस्लिम फतेह ने पर्दाप्रथा को आगे लाया, वहीं राजस्थान के राजपूतों में जौहर ने जोर रखा। भारत के कुछ हिस्सों में देवदासियाँ अथवा मंदिर की महिलाओं को यौन शोषण का शिकार होना पड़ा। बहुविवाह अपने चरम पर पहुँच गया। इस प्रकार बाल-विवाह, बहुविवाह, विधवा एवं पुर्नविवाह निषेध, सती प्रथा आदि कुप्रथाओं ने सामान्य बालिकाओं और स्त्रियों की अस्मिता की रक्षा पर भी प्रश्न चिन्ह उठाने शुरू कर दिए। इस समय स्त्रियाँ अपने अधिकारों से पूर्णत: वंचित और उपेक्षित रहीं। मध्यकाल के अंतिम समय में स्त्रियों के हितों के लिए किए गए आंदोलनों से वर्षों के नारी स्थिति में आई गिरावट में रोक लगी। इस समय में स्त्री जागरूकता में वृद्धि हुई और नवीन नारी संगठनों का सूत्रपात हुआ।

5. **अँग्रेजी काल एवं स्त्रियों की स्थिति**–स्त्रियों के पुनरोत्थान का काल ब्रिटिशकाल से शुरू होता है। अँग्रेजी शासन की अवधि में भारतीय समाज की सामाजिक एवं आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन किए गए। जिसमें औद्योगिकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आंदोलन एवं महिला संगठनों का उदय एवं सामाजिक विधानों ने स्त्रियों की स्थिति में बहुत सीमा तक सुधार की

 ISSN 0975-735X

ठोस शुरुआत की। भारत के स्वंतत्रता-प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की दशा बहुत अधिक खराब नहीं तो बहुत अच्छी भी नहीं थी, इसका प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति बंधन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि था। 'मेंटसन' ने हिंदू संस्कृति में स्त्रियों की एकांतता तथा उनके निम्न स्तर के लिए पाँच कारकों को उत्तरदाई ठहराया है, ये पाँच कारक हिंदूधर्म, जाति-व्यवस्था, संयुक्त परिवार, इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद थे।

6. **स्वतंत्र भारत और स्त्री स्थिति**—स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय सरकार द्वारा स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया है। स्त्रियों को विकास की अखिल धारा में प्रवाहित करने, शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उनकी सोच में मूलभूत परिवर्तन लाने, आर्थिक गतिविधियों में उनकी अभिरुचि उत्पन्न कर उन्हें आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन की ओर अग्रसारित करने जेसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की प्रति पिछले कुछ समय में की गई है।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी के आते-आते स्त्रियों की स्थिति में अभूतपूर्व सुधार हुए हैं। इस समय स्त्रियों ने परंपरागत तौर पर स्थापित पारिवारिक और सामाजिक बाधाओं को लाँघकर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रशासनिक एवं खेलकूद आदि विविध क्षेत्रों में उपलब्धियों के नए आयाम तय किए। इस समय शैक्षणिक गतिशीलता से पारिवारिक जीवन में परिवर्तन हुआ है। वर्तमान स्त्री शिक्षा के आयामों ने स्त्रियों के लिए जीवन के वह सभी द्वार खोल दिए हैं जो कि आवश्यक रूप से सामाजिक हैं। शिक्षित महिलाओं को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर स्वयं को मुखरित करने में बहुत मदद मिली। संवैधानिक अधिकारों में विभिन्न कानूनों के द्वारा स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ। स्त्रियों की विवाह विच्छेद परिवार की सम्पत्ति में पुरुषों के समान दिए गए। दहेज पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया गया है तथा उन व्यक्तियों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की गई, जो दहेज जैसी कुरीतियों के पक्ष में है।

भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों के विघटन को भी स्त्रियों की स्थिति में सकारात्मक सुधार के कारक की भाँति देखा जाता है, संयुक्त परिवारों के विघटन होने से जैसे-जैसे एकांकी परिवार की संख्या बढ़ी, इनसें स्त्रियों को सम्मान मिलने लगा, इसके अलावा वातावरण के अधिक समताकारी होने से स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर भी मिलने लगे।

7. **उपसंहार**—स्त्रियों की स्थिति में सुधार ने देश के आर्थिक और सामाजिक सुधार के मापदंड को बदल दिया है। दूसरे विकासशील देशों की तुलना में हमारे देश में महिलाओं की स्थिति काफी बेहतर है, यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता है कि स्त्रियों के हालात भारतीय वर्तमान परिदृश्य में पूरी तरह बदल चुके हैं, लेकिन यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि पहले की तुलना में स्त्रियों की स्थिति में सुधार अवश्य हुआ है। आज के इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति पहले से अधिक सचेत हैं।

हालाँकि वर्तमान नीतियों-नियमों द्वारा स्त्रियों के उत्थान के लिए लिए अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं का संचालन तो किया जा रहा है लेकिन इन योजनाओं का क्रियान्वयन निचले स्तर तक

उचित तरीके से नहीं हो पा रहा है जिसके चलते वर्तमान समाज में स्त्रियों की दशा पहले से खराब होती जा रही है, जीवन से जुड़े सभी क्षेत्रों में पूर्व आधिपत्यधारी, स्त्रियों पर अत्याचार एवं शोषण कर रहे हैं। वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में बदलाव तो काफी आए हैं लेकिन फिर भी वह अनेक स्थानों पर पितृ सत्तात्मक रवैये का शिकार होते मिल ही जाती है। इसके साथ ही यह कहना तर्क संगत प्रतीत हो सकता है कि वर्तमान भारतीय समाज में, स्त्री को देह से अलग एक स्त्री के रूप में देखने की आदत तो भारतीय पुरुष समाज ने डालनी आरंभ कर दी है, परंतु स्त्री ने स्वयं स्त्री को वस्त्रों से निर्वस्न दिखाने की आदत अपनी परंपरा में ले आई है, जो उसके अस्तित्व को पुनः धूमिल करने के लिए काफी है।

संदर्भ

1. ए०एस० अल्टेकर, द पोजीशन ऑफ वुमेन इन हिंदु सिविलाईजेशन, मोतीलाल बनारसी लाल, वाराणसी, 1956
2. बालादेवी, भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की वैदिक तथा मध्य की स्थित की तुलनात्मक सामाजिक विवेचना, जर्नल ऑफ एडवांस एंड स्कोलेरली इन एलाईड एजूकेशन, मल्टीडिस्प्लिनेरी एकेडमिक रिसर्च, 2021
3. कमलेशकुमार गुप्ता, महिला सशक्तिकरण, बुक एन्क्लेव, जयपुर, 2012
4. नदीम हुसैन, समकालीन भारतीय समाज, भारत बुक सेंटर, लखनऊ
5. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2006
6. राजकुमार, नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2005
7. श्रीनिवास एम०एन० द चेंजिंग पोजिशन ऑफ इंडिया वूमेन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे,
8. जयप्रकाश व्यास, नारी शोषण, ज्ञानदीप प्रकाशन, जयपुर, 2003

avinashvankhede777@gmail.com

 ISSN 0975-735X

भोपाल जिले के प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में पढ़ रहे विद्यार्थियों की कला रुचि का अध्ययन

डॉ॰ मीनाक्षी चतुर्वेदी, सहायक प्राध्यापक
आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन, भोपाल (म॰प्र॰)
पुष्पा मिश्रा, शोधार्थी
आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन, भोपाल (म॰प्र॰)

प्रस्तावना—सभ्यता के शैशवकाल से ही मनुष्य ने चारों ओर से वातावरण से प्रभावित होकर दूसरे मनुष्यों को अपने सुख-दुख का सहभागी बनाने का प्रयत्न किया। अपनी अनुभूतियों, भावों, उल्लास, वेदना को दूसरों के समक्ष व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। अपने विचारों, कल्पनाओं, अनुभूतियों, संवेदनाओं और प्रभावों को एक शब्द में 'स्वयं' को व्यक्त करने हेतु मनुष्य ने किसी माध्यम का सदैव आश्रय लिया है। वाणी, हाथ, पैर अथवा शरीर उसकी अभिव्यक्ति के सहज माध्यम रहे हैं जो कालांतर में कविता, संगीत, अभिनय एवं नृत्य के रूप में परिलक्षित हुए। गेरू, खड़िया, पत्थर, मिट्टी अथवा काष्ठ ऐसे अनेक भौतिक उपकरण हैं जो चित्र, मूर्ति एवं वास्तु के माध्यम से कला को जीवंत रूप प्रदान करते हैं।

कला का महत्त्व—जीवन ऊर्जा का महासागर है। जब अंतर्चेतना जाग्रत होती है तो ऊर्जा जीवन को कला के रूप में उभारती है। कला जीवन को 'सत्यम, शिवम्, सुंदरम्' से समन्वित करती है। इसके द्वारा ही बुद्धि एवं आत्मा का सत्य स्वरूप झलकता है। कला उस क्षितिज की भाँति है जिसका कोई छोर नहीं है। इतनी विस्तृत और अनेक विधाओं को अपने में समेटे हुए है। यह मनुष्य के लिए अद्वितीय उपहार है जिसके द्वारा वह अपने भावों को सरलता से अभिव्यक्त कर सकता है।

विद्यालय की कला शिक्षा—कला स्वयं एक सृजनात्मक विषय है, जिसमें कल्पना जैसे माध्यमों के साथ-साथ अन्य माध्यमों और साधनों का उपयोग किया जाता है। इसमें प्रत्येक कार्य सृजनात्मक रूप से होता है। हृदय और मन के भाव, बुद्धि से मेल खाकर, हस्त-कौशल द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। छात्र सदैव अपनी कल्पनाओं के अनुरूप कुछ-न-कुछ सीखना एवं करना चाहते हैं। छात्र के शैशवकला के अंतिम पक्ष तथा बाल्यकाल के प्रारंभिक पक्ष में अन्वेषण की प्रवृत्ति पाई जाती है, जो भविष्य में विशेषज्ञता की प्रवृत्ति में रूपांतरित हो जाती है। विद्यालय में जो कला शिक्षण होता है उसके द्वारा बच्चे खुद को अभिव्यक्त करना सीखते हैं। उस अभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी अनूठी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को साकार रूप देते हैं। कला एक प्रकार से क्रिया है इसके द्वारा बच्चे प्रकृति से जुड़ते हैं। जैसे-चंद्रमा का घटना, बढ़ना, फूलों का खिलना, सूर्य का निकला, बदलों का बरसना, बिजली का चमकना, इंद्रधनुष का बनना आदि।

कला शिक्षा के प्रति रुचि : प्रकृति और विकास—अनेक बुद्धिजीवियों ने यह सुझाव दिया है कि रुचियाँ और विरुचियाँ पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रियाएँ हैं जो अंसतोषप्रद या संतोषप्रद अनुभवों के फलस्वरूप उत्पन्न आकर्षण या विकर्षण को परिलक्षित करती हैं। कोई भी अनुभव

किसी व्यक्ति के लिए संतोषप्रद है या असंतोषजनक, यह कुछ अंश में उनको सफलतापूर्वक ग्रहण कर सकने की क्षमता पर निर्भर करता है। रुचि को छात्रों के विकासात्मक निर्माण के क्रम में भी देखा गया है तथा इसका वर्णन उसकी संस्कृति के साथ समायोजन का एक अभिन्न स्वरूप माना गया है। इस कारण समायोजन के प्रयास में छात्र किसी व्यावसायिक समूह के साथ अपने को जोड़ लेते हैं जिसके फलस्वरूप कतिपय क्रियाओं और अनुभवों में उनकी रुचि उत्पन्न हो जाती है। इन रुचियों का विकास बाल्यावस्था से ही हो जाता है। बच्चे रुचियों को व्यक्त और चुनावों का संकेत प्रश्नों के माध्यम से करते हैं, जैसे कि बड़े होने पर वे क्या करना/बनाना पसंद करेंगे?

रुचियाँ जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के साथ बदलती रहती हैं हराकीविकस और हयूलमेन, (2010) ने 'रुचि का महत्त्व : रुचि को बढ़ावा देने वाले कार्य एवं उपलब्धि' नामक विषय पर अध्ययन किया। निष्कर्ष के लंबवत विश्लेषण की वैद्यता के साथ-साथ प्रयोग अनुसंधान से स्पष्ट हुआ कि रुचियों के व्यवहार के साथ हमेशा बदलते हुए नवीन अविष्कारों एवं तरीकों के अनुसार बदलते रहना चाहिए। अध्ययन से पता चला कि उपयोगिता मूल्य का रुचियों के विकास में ज्यादा योगदान है। अपनी पसंदीदा विषय में रुचि, बच्चे की प्रतिभा निखारने में बहुत सहयोग प्रदान करती है।

राव और कुमार (2014) एवं मालवा एट०एल० (2019) ने अपने निष्कर्ष में पाया कि बच्चे अपनी रुचि के अनुसार अपना विषय चुनते हैं जिससे उन्हें अपना भविष्य निर्माण करने में सहायता मिलती है। इस अवस्था में अभिभावकों का मार्गदर्शन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। छोटे बच्चों में कला की रुचि बहुत ज्यादा देखी गई है। छोटे बच्चों को अगर रंगीन क्रेयॉन दे दी जाए जिसको अभी लिखना पढ़ना भी न आता हो, वह भी दीवारों, कागजों एवं अन्य स्थानों पर अपनी कलात्मक सोच के अनुसार विभिन्न कलाकृति उकेर देते हैं। भँवरलाल एवं किरण (2018) ने अपने निष्कर्ष में पाया कि कला के क्षेत्र में 80% छात्रों की रुचि औसत स्तर की थी एवं 20% छात्रों की रुचि औसत से नीचे स्तर की थी।

मनीषा एवं भाम्ररी (2012) ने विद्यार्थियों के कला के प्रति अभिरुचि पर एवं मल्टीमिडिया के प्रयोग का अध्ययन किया। निष्कर्ष में छात्राओं की कला के प्रति अभिरुचि उच्च पाई गई। छात्राएँ कलात्मक कार्य करने में रुचि लेती हैं जो पेंटिंग, ड्राईंग, सिलाई-कढ़ाई एवं अन्य सजावट की सामग्री निर्माण एवं उनमें सौदर्यात्मक मूल्य पाए जाने की संभावना है। निष्कर्ष में यह भी ज्ञात हुआ है कि कला के प्रति अभिरुचि शासकीय एवं अशासकीय विद्यार्थियों के समूहों में समान थी। निष्कर्ष में कहा गया है कि शासकीय शालाओं के बच्चों की पाठ्यसहगामी क्रियाओं में सहभागिता रहती है जिसमें चार्ट, पोस्टर, पेंटिंग, ड्राईंग, कलात्मक पुस्तकें वाद-विवाद आदि क्रियाकलाप कराए जाते हैं। कला विषय के विद्यार्थियों की खेल एवं कला के प्रति रुचि उच्च पाई गई है।

हसनी और पोटविन (2015) ने निष्कर्ष निकाला है कि बच्चों को जिस विषय में रुचि अधिक होती है उस विषय के अंक भी ज्यादा आते हैं। रिइस (2012) कांग, शरमन और नौह, (2010) ने निष्कर्ष निकाला है कि कक्षा का वातावरण जितना अच्छा और सकारात्मक होगा बच्चे उतने ही अनुपात में कक्षा में पढ़ाए जानेवाले विषय में रुचि लेंगे। गाजी, रियासत, हुकुमदाद (2010) एवं अब्दुल, रहमान और मदुगु, (2014) एवं प्रजापति (2014) ने निष्कर्ष निकाला है कि अभिभावकों को अपने बच्चों की शिक्षा में भागीदारी बच्चों की शैक्षिक प्रदर्शन पर गहरा प्रभाव डालती है, यही निष्कर्ष ईचोने और सांग (2015) एवं सुरेश और जॉन (2018) ने अपने अध्ययन में प्राप्त किया कि अभिभावकों की सहभागिता बच्चों के विद्यालयीन शिक्षा में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती है। ओलू

सोला, एट०एल० (2015) ने निष्कर्ष निकाला है कि जिन बच्चों के अभिभावक पढ़ाई में रुचि देते हैं उन बच्चों का शैक्षिक प्रदर्शन भी उच्चकोटि का होता है। मीच्बु (2013) ने यह निष्कर्ष निकाला कि जिन बच्चों के पास शैक्षिक सामग्री नहीं उपलब्ध थी उनकी शिक्षा पर प्रभाव पड़ा। जंगसूकली और नताशा (2006) ने यह निष्कर्ष निकाला कि पारिवारिक वातावरण अत्यधिक प्रभाव डालता है। बच्चों की आकांक्षा एवं रुचियों पर अभिभावक का बहुत ज्यादा महत्त्व होता है। बच्चों की आकांक्षा और रुचियों को और आगे बढ़ाने में। उसैनी और अबुबकार (2015) एवं देव (2016) यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चों की रुचियों के निर्माण में स्कूल के वातावरण का सहयोग होता है घर और परिवार में माता-पिता का भी महत्त्व बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए उतना ही उपयोगी होता है।

अध्ययन के उद्देश्य–प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला रुचि का अध्ययन करना।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कलात्मक कला रुचि का अध्ययन करना।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेदात्मक कला रुचि का अध्ययन करना।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की विद्यालयीन कला रुचि का अध्ययन करना।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अभिभावक कला रुचि का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित परिकलपनाएँ निर्धारित की गई हैं–

* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कलात्मक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेदात्मक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की विद्यालयीन कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
* प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अभिभावक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन विधि–प्रस्तुत अध्ययन 'सर्वेक्षण विधि' को आधार मानकर मध्यप्रदेश राज्य के भोपाल जिले में किया गया है। अध्ययन में भोपाल जिले के प्राथमिक स्तर पर पढ़ रहे शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के कक्षा 4 तक में अध्ययनरत विद्यार्थियों पर किया गया है। 300 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया जिसमें 150 प्राथमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी हैं एवं 150 प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी सम्मिलित हैं।

प्रयुक्त उपकरण–प्रस्तुत अध्ययन में विद्यार्थियों की कला रुचि में अध्ययन हेतु स्व:निर्मित मानीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय–एकत्रित प्रदत्तों का विश्लेषण करने के लिए मध्यमान, प्रमाप विचलन तथा टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण एवं व्याख्या–तालिका संख्या-1

(1) प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला रुचि के प्राप्तांकों के मध्यमानों का विश्लेषण। (2) प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के कलारुचि के संपूर्ण योग के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अंतरों की सार्थकता की तुलना।

परिकल्पना क्रमांक 1–प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 1

प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के कला रुचि का टी-मान

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी सारणीमान	परिकलित टी-मान	सार्थकता
कला रुचि	प्राथमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	44.91	4.19	1.97	1.53	असार्थक
	प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	45.64	4.06			

तालिका-1 से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला में रुचि का मध्यमान क्रमश: 44.91 एवं 45.64 है। इस प्रकार अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों का मध्यमान शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। स्पष्ट है कि परिकलित टी-मान. 1.53 है। जबकि (df)= 298 के लिए 0.05 स्तर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1.97 है। इस प्रकार सारणीमान से परिकलित मान कम है अर्थात् (1.53<1.97)। अत: परिकल्पना 'प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।' स्वीकृत होती है। अत: कहा जा सकता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी समान रूप से कला में रुचि लेते हैं।

तालिका संख्या 2–प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के कलात्मक कला रुचि के संपूर्ण योग के प्राप्तांको के मध्यमानों के अंतरों के सार्थक की तुलना।

परिकल्पना क्रमांक 2.1–प्राथमिक स्तर के शासकीय और अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के कलात्मक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक-2

प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के कलात्मक कला रुचि का टी-मान

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी सारणीमान	परिकलित टी-मान	सार्थकता
कला-त्मक	प्राथमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	9.18	1.15	1.97	0.644	असार्थक
क्रिया रुचि	प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	9.10	1.17			

तालिका सं॰ 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के विद्याथियों के कलात्मक कला रुचि का मध्यमान क्रमश: 9.18 एवं 9. 10 है। इस प्रकार शासकीय विद्यालयों का मध्यमान अशासकीय विद्यालयों के विद्याथियों की अपेक्षा अधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि परिकलित टी मान 0.644 है। जबकि (df) = 298 के लिए 0.05 स्तर सार्थकता परिक्षण के लिए टी का सारणीमान 1.97 है इस प्रकार सारणीमान में परिकलित मान कम है अर्थात् (.644<1.97)। परिकल्पना 'प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्याथियों की कलात्मक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।' स्वीकृत होती है। अत: कहा जा सकता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी समान रूप से कलात्मक कला रुचि लेते हैं।

तालिका क्रमांक 3–प्राथमिक स्तर के विद्याथियों के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के संवेदात्मक कला रुचि के संपूर्ण योग के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अंतरों के सार्थक की तुलना।

परिकल्पना क्रमांक 3.1–प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के संवेदात्मक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक-3

प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के संवेदात्मक कला रुचि का टी-मान

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी सारणीमान	परिकलित टी-मान	सार्थकता
संवेदा-त्मक	प्राथमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	15.89	2.64	1.97	5.80	सार्थक
कला रुचि	प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	14.44	1.52			

तालिका सं॰ 3 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के संवेदात्मक कला में रुचि का मध्यमान क्रमश: 15.89 एवं 14.44 हैं। इस प्रकार शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों का मध्यमान अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि परिकलित टी मान 5.80 है। जबकि (df) = 298 के लिए .05 स्तर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1.97 है। इस प्रकार सारणीमान से परिकलित मान अधिक है अर्थात् (5.80>1.97)। अत: परिकल्पना 'प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेदात्मक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।' इसमें अस्वीकृति होती है। अत: कहा जा सकता है कि शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी की संवेदात्मक कला में रुचि अधिक है अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी की तुलना में अधिक है।

तालिका क्रमांक 4–प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयीन कला रुचि के संपूर्ण योग के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अंतरों की सार्थकता की तुलना।

परिकल्पना क्रमांक 4.1–प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयीन कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक-4

प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयीन कला रुचि का टी-मान

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी सारणीमान	परिकलित टी-मान	सार्थकता
विद्यालयीन कला में रुचि	प्राथमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	1.50	1.32	1.97	8.32	सार्थक
	प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	9.16	1.01			

तालिका सं॰ 4 से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यालयों के विद्यालयीन कला में रुचि का मध्यमान क्रमश: 8.02 एवं 9.16 है। इस प्रकार अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों को मध्यमान शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि परिकलित टी मान 8.32 है जबकि (df) = 298 के लिए 0. 5 स्तर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारिणीमान 1.97 है। इस प्रकार सारणीमान से परिकलित मान अधिक है अर्थात् (8.32 >1.97)। अत: परिकल्पना 'प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की विद्यालयीन कला में रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।' अस्वीकृत होती है। अत: कहा जा सकता है कि अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी की विद्यालयीन कला रुचि शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी की तुलना में अधिक है।

तालिका क्र॰ 5–प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के अभिभावक कला रुचि के संपूर्ण योग के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अंतरों की सार्थकता की तुलना।

परिकल्पना क्र॰ 5.1–प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के अभिभावक कला रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक-5

प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के अभिभावक कला रुचि का टी-मान

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी सारणीमान	परिकलित टी-मान	सार्थकता
अभिभावक कला में रुचि	प्राथमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	11.80	1.80	1.97	5.89	सार्थक
	प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी	150	12.94	1.51			

तालिका सं॰-5 से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के अभिभावक कला में रुचि का मध्यमान क्रमश: 11.80 एवं 12.94 है। इस प्रकार अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों का मध्यमान शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। स्पष्ट है कि परिकलित टी-मान 5.89 है जबकि (df)=298 के लिए .05 स्तर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1.97 है इस प्रकार सारिणीमान से परिकलित मान अधिक है। अर्थात् (5.89>1.97)। अत: परिकल्पना 'प्राथमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय

विद्यालयों के विद्यार्थियों की अभिभावक कला में रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।' अस्वीकृत होती है। अत: कहा जा सकता है कि अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थी के अभिभावक की कला रुचि शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक हैं।

निष्कर्ष–

1. प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत शासकीय अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कला रुचि समान पाई गई है।

2. प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत शासकीय अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कलात्मक कला रुचि समान पाई गई है।

3. प्राथमिक स्तर के शासकीय अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के संवेदात्मक कला रुचि अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाई गई है।

4. प्राथमिक स्तर के अशासकीय, विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयीन कला रुचि शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाई गई है।

5. प्राथमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अभिभावक कला रुचि शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाई गई है।

सुझाव–कला विचारों की वाहक ही नहीं नए विचारों की जननी भी होती है किंतु इसकी सार्थकता के लिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिक स्तर पर ही विद्यार्थियों की कला में रुचि एवं दक्षता के विकास की नींव रखी जाए। शोध के निष्कर्षों के आधार पर प्राथमिक स्तर पर कला को अधिक रुचिपूर्ण एवं उसमें दक्षता हेतु दक्षता निम्न उपाय करने होंगे–

1. शारीरिक एवं बौद्धिक विकास की अवस्था में बालक अनेक तनावपूर्ण स्थितियों का सामना करता है। स्वतंत्र प्रकाशन को प्रोत्साहित करके कलात्मक अनुभव उन संवेगात्मक तनावों और भय को दूर करता है किंतु उच्च स्तर के प्रशिक्षित कला विशेषज्ञ ही बालक के संवेगात्मक सामंजस्य, उसकी अनुभव की शक्ति और सौंदर्यानुभूति की चेतना को बढ़ा सकते हैं।

2. सही आकार, बनावट, दूरी, स्वच्छता से लिखने, मात्रा को सही स्थान पर लगाने का पर्याप्त अभ्यास कलात्मक क्रिया द्वारा कराया जा सकता है।

3. शासकीय विद्यालयों में समुचित व्यवस्था का अभाव बहुतायत से देखा गया है। अधिकतर शालाओं में विद्यार्थी टाटपट्टी पर बैठते हैं। जहाँ वे अपने पैरों पर अथवा जमीन पर रखकर लिखते हैं जिससे कलात्मक क्रिया प्रभावित होती है। अत: उनके लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. शासकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा के अभाव के रहते बड़े होने तक कला के गुणात्मक स्तर में कमी रहती है। अत: प्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा को बढ़ाया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. ओलूसोला, औ' ताओफेक एस और ओलूमाइंड ओ, (2015) 'ओयो मेट्रोपोलिस ओयोस्टेट के चयनित माध्यमिक विद्यालयों में कृषि विज्ञान में छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन के निर्धारित के रूप में माता-पिता और छात्रों की रुचि' प्रोग्रेसिक एजुकेशन एंड रिसर्च, 44, 11-20 http:..dxdoi.org/10.6007/JARPED (V4-14/1864
2. ईचौने, एम॰ मिदिकु, जे और सांग, ए (2015) 'केन्या में होमवर्क और प्राथमिक स्कूल शैक्षणिक प्रदर्शन माता-पिता की भागीदारी' जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड अभ्यास 6 (9), 46-53
3. सैनी एम॰आई और अबुबकर एन॰बी, (2015) 'कुआसा टेरेसानु में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के

शैक्षणिक प्रदर्शन पर माता-पिता के व्यवसाय का प्रभाव' शिक्षा और सामाजिक विज्ञान के बहुभावी अकादमिक जर्नल 3 (1) 112-120

4. कांग, एच, शरमन, एल॰सी॰, कांग, एस और नोह टी, (2010) 'वैचारिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों के रूप में संज्ञानात्मक संघर्ष और स्थितिजन्य रुचि' पर्यावरण और विज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 5(4) 383-405
5. गाजी सफदर और रियासत अली साकिब एस॰ हुकमदाद, (2010) 'अभिभावकों की भागीदारी बच्चों में शैक्षणिक प्रेरणा' एशियाई सामाजिक, 64
6. जंग-सूकली और नताशा के बोवेन, (2006) 'माता-पिता इनवॉल्वमेंट कल्चरल केपिटल, एंड द अचीवमेंट' गेप अमंग एलीमेंट्री स्कूल चिल्ड्रन अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च जर्नल टवसण् दवण् 43 (2) P.193.218
7. नागदा भँवरलाल और पाटिलो किरण, (2018) 'ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक आकांक्षा और व्यावसायिक रुचि का एक अध्ययन, प्रशांत विश्वविद्यालय http:.//hdl.handle.net.
8. नारंग और नारंग (2015) 'तहसील अबोहर के दसवी कला कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों का अध्ययन' शिक्षा और सूचना अध्ययन का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 5(1); 51.57
9. पी॰ए॰ अब्दुल, रहमान, एस॰एस॰ और मटुगु ए, (2014) 'केबी राज्य, नाइजीरिया के वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की गणित उपलब्धि पर माता-पिता की भागीदारी रुचि' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसमेट्स इन रिसर्च एंड टेक्नालॉजी 3 (2), 14-30
10. प्रजापति ए॰एन॰, (2014) 'माता-पिता की शिक्षा क्षेत्र और माता-पिता की भागीदारी का प्रभाव बच्चों की अध्ययन' की आदतों शैक्षणिक चिंता और शैक्षणिक उपलब्धि पर पीएच॰डी॰ थीसिस हेनचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पटना
11. मलावी एच॰, वलिग एम॰, लालनुन फेली डी॰ और लालचंदानी एस॰, (2019) 'मिजोरम के चंपाई जिले के माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के शैक्षकि हित' ओपन एक्सेस इंटरनेशनल जर्नल आफ साइंस इंजीनियरिंग, 4 (2), 19-22
12. मनीषा कौशलेश, और निशि भाम्ररी, (2012) 'छात्रों की रुचि समायोजन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव मल्टीमीडिया शैक्षिक दृष्टिकोण एवं अध्ययन पं॰ सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय बिलासपुर http://hdl.handle.net/10603/366091
13. मीच्बु एम॰जे, (2013) 'साउथ डिस्ट्रिक्ट के पब्लिक सेकेंडरी स्कूलों में छात्र के अकादमिक प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले सामाजिक आर्थिक कारक' मास्टर ऑफ एजुकेशनल इन करिकुलमस्टडीज नौरोबी विश्वविद्यालय
14. रैयस, एम॰आर, ब्रेकेट, एमए, नदियों 5बी, व्हाइट एम और सलौंवी पी, (2012) 'कक्षा भावनात्मक जलवायु छात्र सगाई और शैक्षणिक उपलब्धि' जर्नल आफ एजुकेशनल साइकोलॉजी डोई :1037/ए 0027268 https://ww.researchgate.net/publication/232502305 से पुन: प्राप्त कक्षा भावनात्मक जलवायु छात्र सगाई और शैक्षणिक उपलब्धि/लिंक/आफडी 510सी3इ
15. राव दिगुमरती भास्कर और कुमार मोटूरी रवि, (2014) 'भावी गणित शिक्षकों के गणित शिक्षण के प्रति अध्ययन प्रभावशीलता शिक्षण अभिरुचि और अभिवृत्ति का अध्ययन' आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय http://hdlhandble.net/10603/30779

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न : एक विश्लेषण

डॉ॰ अनामिका चौहान, असि॰ प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग
चमन लाल महाविद्यालय, लंढौरा (हरिद्वार)

यौन उत्पीड़न शब्द नया शब्द नहीं है, प्रतिदिन खबरों में किसी–न–किसी रूप में यौन उत्पीड़न शब्द को रोज सुनते या पढ़ते हैं। यह एक ऐसा व्यवहार होता है जोकि अनुचित रूप से किया जाए। यौन उत्पीड़न जब किसी महिला या लड़की के साथ किया जाए, तो इसे 'ईव टीजिंग' भी कहा जाता है। प्राय: देखा गया है कि एशिया महाद्वीप में महिलाएँ घर पर अधिक रहती हैं, वे घर से बाहर जाकर कार्य नहीं करना चाहती हैं या उनके परिवार के सदस्य ऐसा नहीं चाहते हैं, इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि कार्यस्थल पर महिलाएँ सुरक्षित नहीं हैं, उनको कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, अधिकांश मामलों में पुरुषों द्वारा महिलाओं को लक्ष्य बनाकर किया जाता है। यदि बात भारत देश की हो, तो भारत की वयस्क महिलाओं की जनसंख्या 14.58 करोड़ (2011 जनसंख्या के आधार) के साथ यौन उत्पीड़न जैसा व्यवहार किया गया है। जबकि मुख्य बात यह है कि इतने उत्पीड़न व्यवहार के बाद कितने व्यवहारों पर सवाल उठाया गया या पुलिस केस किया गया है। राष्ट्रीय अपराध अनुसंधान ब्यूरो के अनुसार वर्ष 2006 से 2012 के बीच आईपीसी की धारा 358 के अंतर्गत 283407 और धारा 509 के तहत 71843 और बलात्कार के 154251 प्रकरण दर्ज हुए हैं।

विचारणीय यह स्थिति है कि हमारा समाज महिलाओं के लिए एक असुरक्षित और अपमानजनक जीवन जीने का स्थान बना हुआ है, जिसे पुरुष शायद ही कभी समझ सके। क्योंकि हमारे समाज में सरकार भी तब जागती है, जब कोई निर्भया या भँवरी देवी अपनी जान से जाती हो। यौन शोषण या उत्पीड़न सदियों से हमारे समाज में फैला हुआ है। किसी के साथ दबाव या ईनाम का लालच देकर यौन गतिविधियाँ करना भी यौन शोषण ही कहलाता है।

यौन शोषण या उत्पीड़न–यौन शोषण किसी महिला या पुरुष दोनों के प्रति हो सकता है, लेकिन हमारा समाज पुरुष प्रधान होने के कारण अधिकतर यौन शोषण की शिकार केवल महिलाएँ अधिक हो रही हैं। समाज में अपनी और अपने परिवार की इज्जत की वजह से महिलाएँ अपने साथ हुए दुर्व्यवहार या यौन शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठाती हैं। शायद इसमें एक बड़ा कारण हमारा समाज ही है, क्योंकि हमारे समाज में महिलाओं को दोषी ठहराना बहुत आसान होता है। पीड़ित व्यक्ति द्वारा अपनी शिकायत दर्ज करने में हिचकिचाहट के कारण इस उत्पीड़न को प्रमाणित करना काफी मुश्किल हो जाता है।

कार्यस्थल पर यौन शोषण संबंधी व्यवहार–हमारे समाज में महिलाओं को घर से बाहर निकलने के लिए कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, यह कोई पुरुष या शायद ही समझ पाए। महिलाओं को सबसे पहले अपने अधिकारों के लिए अपने परिवार तथा अपनों से ही लड़ना पड़ता है। ऐसे में वह शिक्षित होकर घर से बाहर जाकर कार्य करती है, तो इस समाज में महिलाएँ

वहाँ पर भी सुरक्षित नहीं हैं, बल्कि उन्हें वहाँ भी प्रतिदिन ऐसे व्यवहारों का सामना करना पड़ता है, जो अवांछनीय होता है। कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न एक जटिल समस्या है, क्योंकि भारत में महिलाएँ अद्वितीय संख्या में श्रम कार्य कर रही हैं। कार्य करने का अधिकार के अंतर्गत उन्हें कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से मुक्त कार्य करने का अधिकार प्राप्त है। महिलाओं को कार्यस्थल पर अनचाहे यौन-टिप्पणी तथा अनचाहे स्पर्श से भी छुटकारे का अधिकार प्राप्त है।

महिलाओं के विरुद्ध यौन शोषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न व बलात्कार के आँकड़े दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। यह मात्र संयोग नहीं है कि जैसे-जैसे अश्लील यौन साहित्य, फिल्म, वीडियो आदि बढ़े हैं, वैसे-वैसे यौन अपराध भी बढ़ रहे हैं।

कार्यस्थल पर यौन शोषण गतिविधियों को रोकने के लिए इसके खिलाफ सरकार ने कानून बनाया है, जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को इस श्रेणी में रखा गया है, जो निम्नलिखित हैं–

* यौन गतिविधि में शामिल होने का आग्रह करना।
* अश्लील चित्रों व फिल्मों को दिखाना।
* यौन इच्छाओं को उजागर करने वाली शारीरिक, मौखिक व गैर मौखिक क्रियाएँ करना।
* किसी प्रकार का प्रमोशन या प्रलोभन देकर शारीरिक संबंध बनाना।
* इच्छा के खिलाफ छूना या छूने की कोशिश करना।
* अन्य कर्मी के साथ बातचीत के दौरान यौन टिप्पणी करना।

ऑस्ट्रेलिया में मानवाधिकार आयोग द्वारा किए गए एक राष्ट्रीय स्तर सर्वेक्षण के नतीजों से पता चलता है कि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न बहुत ही व्यापक रूप से फैला हुआ है। इस सर्वेक्षण के अनुसार पंद्रह वर्ष से अधिक आयु की लड़कियों में हर पाँच लड़कियों में से एक लड़की कार्यस्थल पर यौन शोषण से शिकार हुई है। साथ ही 40 वर्ष की महिलाओं के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार हो रहा था। यूरोपीय देशों में 40 प्रतिशत महिलाएँ कार्यस्थल पर अनचाहे यौन बरताव का अनुभव करती हैं। एशिया में, जापान, मलेशिया तथा दक्षिण कोरिया में यह प्रतिशत 30 से 40 प्रतिशत है, जबकि भारत में भी यह प्रतिशत 40 प्रतिशत तक रहा है। एक बड़ा कारण एशिया देशों में यह भी है कि यहाँ महिलाएँ स्वतंत्र रूप से अपने साथ हुए व्यवहार को नहीं बता पाती हैं।

यौन उत्पीड़न या शोषण का प्रभाव–किसी भी व्यक्ति के साथ यदि कोई यौन शोषण व्यवहार किया गया है, तो उसका प्रभाव उस व्यक्ति के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य रूप से पड़ता है, जो कि उसे पूरी तरह से बदल सकता है। पीड़ित महिला मनोवैज्ञानिक रूप से अपमानित महसूस करने लगती है, काम करने की प्रेरणा उसमें कम या खत्म हो जाती है, उस महिला का आत्मविश्वास भी कम हो जाता है, महिला तनाव में रहने लगती है। वह अपने आपको अकेला महसूस करने लगती है, दोस्तों आदि से भावनात्मक रूप से कट जाती है। कई बार देखा गया है कि तनाव के कारण मानसिक व शारीरिक रूप से भी महिलाएँ कमजोर हो जाती हैं। साथ ही कई बार वह गलत तरीकों को अपनाकर अपना भय दूर करने लगती है। कई बार महिलाएँ यौन शोषण के खिलाफ कुछ नहीं बोलती हैं, लेकिन वे अपनी नौकरी या वह स्थान छोड़ने को मजबूर हो जाती हैं।

यौन शोषण भेदभाव का एक गंभीर रूप है, उसे बर्दाश्त नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह

मानवता के लिए तथा कामकाजी महिलाओं की इज्जत के खिलाफ है। यौन उत्पीड़न के बाद उसके शिकार व्यक्ति पर बहुत बुरा नकारात्मक असर पड़ता है, उसे मानसिक पीड़ा, शारीरिक पीड़ा तथा व्यवसायिक घाटे झेलने पड़ते हैं।

यौन शोषण की वास्तविकता—प्राय: सभी क्षेत्रों की कंपनी व उद्योगों से यौन शोषण के सही आँकड़े प्राप्त करना कठिन है, लेकिन बीते कुछ वर्षों में भारत की शीर्ष कंपनियों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यौन शोषण की स्थिति को समझा जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में यौन शोषण के मामलों में बढ़ोतरी हुई है, जबकि महिलाएँ शोषण कर्ता के साथ खिलाफ पुलिस केस कम ही दर्ज कराती हैं। यौन शोषण होने पर पीड़ित महिला अपने आपको शक्तिहीन समझने लगती है, ऐसे में उनके पास केवल चुप रहने के अलावा कोई विकल्प ही नहीं बचता है और बहुत से ऐसे मामलों का सामने आना भी मुश्किल होता है।

यौन उत्पीड़न से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय विधायिका

अंतर्राष्ट्रीय विधायिका

1. महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा मिटाने हेतु यू॰एन॰ घोषणा-पत्र, 1993—इस घोषणा-पत्र का अनुच्छेद कहता है कि महिलाओं पर हिंसा का तात्पर्य ऐसी किसी भी लैंगिक हिंसा से है, जो महिलाओं को शारीरिक, लैंगिक, मनोवैज्ञानिक पीड़ा या खतरा पहुँचाए। कार्यस्थल व शैक्षणिक संस्थानों में धमकी देने और यौन उत्पीड़न को भी महिलाओं के खिलाफ होने वाले हिंसा का अंग बताया गया है। घोषणा पत्र के अनुसार इस प्रकार की हिंसा के अंतर्गत 'समुदाय के अंदर होने वाली, शारीरिक, लैंगिक और मनोवैज्ञानिक हिंसा आती है, जिसमें बलात्कार, यौन शोषण, धमकाना शामिल है—कार्यस्थल पर, शैक्षणिक संस्थानों में या अन्य स्थानों पर।

2. संयुक्त राष्ट्र के बीजिंग महिला सम्मेलन, 1995—इस सम्मेलन के अंतर्गत बीजिंग कार्यवाही मंच ने महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने और महिलाओं के खिलाफ यौन उत्पीड़न सहित सभी प्रकार की हिंसा को मिटाने का आह्वान किया।

राष्ट्रीय विधायिका—भारत में, विशाखा दिशा-निर्देश पहला कानूनी कदम है जिसके आधार पर कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने और इसके समाधान की दिशा में एक विस्तृत ढाँचे की रूपरेखा बनी। इससे इस बात को मान्यता मिली कि कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न उनके लैंगिक समानता के अधिकार, जीवन व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मूल अधिकार और कोई भी व्यवसाय चुनने के अधिकारों का उल्लंघन करता है।

1. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध व निवारण) अधिनियम 2013—भारत में 2012 में यौन उत्पीड़न और महिलाओं पर हिंसा की बढ़ती घटनाओं के चलते यह कानून बनाया गया। इस अधिनियम के अनुसार यौन उत्पीड़न महिलाओं के समानता के मूल अधिकार का उल्लंघन है।

निर्भया कांड ने पूरे देश की जनता को प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप 2013 में आपराधिक विधि में संशोधन किए गए, साथ ही दंड को अधिक सख्त बनाया गया। मामलों की गंभीरता को देखते हुए विधेयक पर राष्ट्रपति द्वारा 2018 में अनुमति प्रदान की गई।

इसके निम्नलिखित मुख्य प्रावधान हैं—

* इस अधिनियम में कार्यस्थल पर होने वाले यौन शोषण को परिभाषित किया गया है। साथ ही इन शिकायतों के लिए एक कमेटी बनाने का भी प्रावधान है।

* इस अधिनियम में पीड़ित महिला को परिभाषित करते हुए, उस महिला के बचाव में विस्तार से बताया गया है। साथ ही निजी, सार्वजनिक तथा घरेलू क्षेत्र में कार्यरत सभी उम्र की महिलाओं को इस अधिनियम के तहत सुरक्षा देने का प्रावधान है।

* इस अधिनियम में किसी को यौन गतिविधि के बदले व्यक्तिगत फायदा पहुँचना व यौन गतिविधि न करने पर किसी कर्मचारी के लिए असहज वातावरण बनाना को भी शामिल किया गया है।

* इसके अंतर्गत इसमें कार्यस्थल के लिए विशाखा नियमावली को तैयार किया गया है, जिसमें ऑफिस के माहौल व कर्मचारियों के बीच के संबंधों को बताया गया है। इसके अलावा इसमें सभी तरह के कार्यस्थल नर्सिंग होम, खेल संस्थान, शैक्षिक संस्थान व अन्य स्थानों के बारे मे बताया गया है।

* इस अधिनियम के अंतर्गत शिकायत की जाँच के लिए बनी कमेटी को अपनी जाँच 90 दिनों के अंदर पूरी करनी होती है। साथ ही इसकी रिपोर्ट संबंधित संस्थान के नियुक्तिकर्ता व जिला अधिकारी को इसकी रिपोर्ट सौंपनी होती है।

* इसके अंतर्गत संस्थान के मालिक या नियोक्ता के लिए भी इसमें दंड को निर्धारित किया गया है। इस अधिनियम को न मानने पर 50 हजार का जुर्माना तय किया गया है।

निष्कर्ष–यह सत्य है कि कार्यस्थल पर यौन शोषण को कम करने के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न नियम, अधिनियम बनाए गए हैं जो कि महिलाओं की सुरक्षा हेतु अति आवश्यक हैं, लेकिन दु:खद स्थिति यह है कि समाज में आज भी अधिकतर महिलाएँ अपने अधिकारों को या तो जानती नहीं हैं या जानते हुए भी वह उन्हें नहीं प्राप्त कर पाती हैं। पुरुष प्रधान समाज में अपने लिए आवाज उठाना आसान काम नहीं है, क्योंकि समाज में केवल महिलाओं के ऊपर दोषारोपणा किया जाना बहुत आसान है। अधिकतर देखा गया है यदि कोई महिला अपने अधिकारों के लिए लड़ती है या मुख्यत: यौन शोषण के खिलाफ आवाज भी उठाती है, तो उसके सहकर्मी उसका साथ देने के बजाय उसकी आवाज दबाना चाहते हैं। अत: कह सकते हैं विभिन्न कानून होने के बाद भी समाज से इस प्रकार की गंदगी तब तक दूर नहीं हो सकती है, जब तक कि समाज की मानसिकता नहीं बदलती है, लेकिन कानून का होना एक बहुत बड़ा सहारा है, उन महिलाओं महिलाओं के लिए जोकि अपने घर से निकलकर बाहर कार्य करने की हिम्मत रखती हैं।

संदर्भ

1. एडवांस एंड स्कोलरली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन
2. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम निषेध व निवारण) अधिनिय 2013, भारत, International Labour Organisation
3. डॉ॰ ममता, घरेलू हिंसा अधिकारों के प्रति जागरुकता, आहूजा प्रकाशन, दिल्ली, 2010
4. नेशनल पोर्टल ऑफ इंडिया, 2019
5. मोहिनी जैन, घरेलू हिंसा एवं महिला मानव अधिकार : गुना शहर की महिलाओं के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
6. लता, महिला मानवाधिकार एवं घरेलू हिंसा अधिनियम, एक इंद्रियानुभविक अध्ययन, 2005

महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका

डॉ॰ नीरजा सिंह
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखंड
डॉ॰ वीरेंद्र कुमार
कृषि एवं विकास अध्ययन विद्या शाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखंड

नाबार्ड द्वारा प्रचारित व प्रसारित स्वयं सहायता समूह बैंक सहबद्धता कार्यक्रम आज विश्व में ग्रामीण निर्धन, विशेषकर ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान हेतु सबसे बड़ा सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम बन चुका है। सरकारी विभागों, विकास/विस्तार एजेंसियों, स्वैच्छिक संस्थाओं की इस कार्यक्रम को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस कार्यक्रम के परिणामस्वरूप ग्रामीण निर्धनों में पहले बचत फिर ऋण की अवधारणा का संचार हुआ तथा उन्हें ऋण द्वारा रोजगारपरक व जीवकोपार्जन गतिविधियों को क्रियान्वित करने की प्रेरणा भी मिली। राष्ट्रीय बैंक का उद्देश्य इस कार्यक्रम के अंतर्गत समूह प्रणाली को न केवल निर्धनों तक पहुँचाना है अपितु ऐसे समूहों को बैंक से जोड़ना भी है ताकि उनकी अधिकतम आकस्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इसके साथ साथ इस कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं को मुख्य धारा से जोड़कर उन्हें जागरूक कर उनका आत्मविश्वास बढ़ाना है ताकि वे अपने अंदर के ज्ञान, कौशल, गुणों व हुनर को पहचान सकें तथा अपने सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए स्वयं पहल करें। इस प्रकार के प्रयासों में स्वयंसेवी संथाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय बैंक ने इस दिशा में 1992 में एक पायलट प्रोजेक्ट के रूप में शुरुआत की थी जिसने आजकल जनांदोलन का रूप ले लिया है और यह प्रणाली लगभग सभी बैंकों की आम गतिविधि बन चुकी है। अभी तक स्वयं सहायता समूह ज्यादातर दक्षिण भारत के प्रदेशों में ही सीमित रहे हैं। परंतु कुछ वर्षों से उत्तरी भारत के निर्धन ग्रामीण इस पद्धति को न केवल बड़ी तेजी से अपना रहे हैं बल्कि बैंक ऋण भी प्राप्त कर रहे हैं। इस कार्यक्रम की सफलता व इस कार्यक्रम के लाभार्थियों की पहलकदमियों को देखते हुए नाबार्ड द्वारा सूक्ष्म उद्यम विकास कार्यक्रम की योजना तैयार की गई है जिसमें परिपक्व समूहों के सदस्यों को प्रशिक्षण प्रदान करने का प्रावधान है ताकि वे आर्थिक स्तर स्वावलंबी हो सकें।

स्वयं सहायता समूह ऐसे ग्रामीण लोगों का एक समूह है, जिसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति लगभग एक जैसी होती है। यह लोग अपनी इच्छा से एक समूह में संगठित होकर नियमित रूप से 10 रुपए, 20 रुपए या इससे ज्यादा बचत करके जरूरत मंद सदस्यों को ऋण का लेन-देन करते हैं (बीमारी के इलाज, कृषि, शादी, व्यवसाय आदि के लिए)। हर सप्ताह या 15 दिन बाद या हर माह बैठक में बचत की राशि सदस्यों द्वारा जमा की जाती है तथा ऋण का लेन-देन किया जाता है।

स्वयं सहायता समूह में कम-से-कम 10 और अधिक-से-अधिक 20 सदस्य होते हैं। बचत समूह का गठन करने के लिए जरूरी है कि ऐसे इच्छुक कृषक या महिलाएँ जो समान विचार धारा

रखते हैं अपना बचत समूह गठित कर सकते हैं। गठित समूह को वह कोई भी नाम दे सकते हैं। (जैसे–सुरभि, अभियान) जिसके द्वारा समूह की पहचान हो सके। बचत समूह अपने गठित सदस्यों में से एक को अध्यक्ष और दूसरे को कोषाध्यक्ष चुनता है, जो बचत की लेन-देन और बैंक में समूह के नाम से खाता खोलता है और यही 2 सदस्य मिलकर बैंक से रुपया निकाल सकते हैं और जमा कर सकते हैं। अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष हर वर्ष बदलते रहते हैं। यदि समूह चाहे तो सचिव पद का चुनाव भी कर सकता है। समूह में बचत की धनराशि या समय निश्चित हो। सदस्य जब चाहे तब अपनी बचत नहीं कर सकते हैं, उन्हें हर माह में बचत करके बैठक के समय समूह में जमा करना है। समूह अपने सदस्यों को दी जाने वाली या ली जाने वाली ब्याज की दर स्वयं निश्चित करता है, जो 2-3 प्रतिशत हो सकती है। किसी-किसी मामले में जैसे–बीमारी आदि में ब्याज को माफ कर सकता है बशर्ते लिया गया धन निश्चित समय में लौटा दिया जाए।

जब समूह छः माह तक ठीक प्रकार से चलने लगता है तो वह किसी राष्ट्रीयकृत बैंक से ऋण लेने के अधिकारी हो जाता है। समूह अपनी जमा की गई धनराशि का 4 गुना तक धन बैंक से ऋण के रूप में प्राप्त कर सकता है। समूह में एस॰जी॰एस॰वाई॰ से प्राप्त धनराशि को समूह के सदस्यों की आर्थिक उन्नति के कार्यक्रमों में लगाकर आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है। समूह को जो ऋण बैंक से प्राप्त होता है, उस पर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष यानी 1 प्रतिशत प्रतिमाह का ब्याज देय होता है, जबकि समूह सदस्यों से 2 प्रतिशत का ब्याज लेता है। इस प्रकार समूह को 1 प्रतिशत की आमदनी प्रतिमाह हो जाती है। समूह के प्रत्येक सदस्य की अपनी एक पासबुक होती है जिसमें उनके द्वारा जमा की गई बचत, ब्याज और उधार लेने का ब्यौरा लिखा जाता है।

समूह प्रत्येक माह में अपनी मासिक बैठक करते रहते हैं और उसमें सदस्यों को उधार दिए गए धन और उसकी वापसी की समीक्षा होती रहती है। समूह अपने सदस्यों द्वारा जमा की गई, उधार ली गई धनराशि और ब्याज का हिसाब-किताब पासबुक के माध्यम से रखता है, जिसे मासिक बैठक में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे सभी सदस्यों को उनके द्वारा जमा की गई, उधार ली गई तथा ब्याज की लाभकारी होती रहे। समूह को समय से ऋण न लौटाने पर समूह दंड बैठक में निर्धारित कर सकता है। ग्रामीणों की लाइफ लाइन बने समूहों के सामने अनेक समस्याएँ होती हैं। उनके पास सिर्फ एकमात्र पूँजी श्रम होती है। इस श्रम का सही उपयोग करने और इस वर्ग को सुखद जीवन व्यतीत करने लायक साधन देने का काम राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक नाबार्ड ने स्वयं सहायता समूह को विचार देकर किया। इससे ग्रामीण और किसान लाभान्वित हो सकते हैं, लेकिन ज्यादातर मामलों में कथित एनजीओ ही इन समूहों के निर्माण की खानापूर्ति करते हैं।

क्या काम करता है समूह–स्वयं सहायता समूह ऐसे निर्धन ग्रामीणों का समूह है, जिनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति लगभग एक जैसी होती है। ये लोग अपनी इच्छा से एक समूह में संगठित होकर नियमित रूप से 10-20 या इससे अधिक रुपए की बचत करके जरूरतमंद सदस्यों को ऋण देते हैं। हर सप्ताह या 15 दिन में बचत की गई राशि सदस्यों द्वारा जमा की जाती है। इसी में से धन का बँटवारा होता है। नाबार्ड के सहयोग से खुलने वाले समूहों को बैंक भी उनको साख देखते हुए ऋण देता है। समूह में संगठित होकर अच्छे समाज के निर्माण की संभावना बनती है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करके लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है। विकास में महिलाओं की सहभागिता होती है। मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन, मछली पालन इत्यादि लेने के लिए, घोड़ा गाड़ी, खच्चर गाड़ी, बैलगाड़ी, ठेलियाँ इत्यादि, खरीदने के लिए। जमीन खरीदने, गिरवी जमीन

छुड़ाने, साहूकारी कर्ज वापस के लिए, खाद-बीज खरीदने के लिए, फल-सब्जी फसल उगाने के लिए, नर्सरी, फूलों की खेती के लिए, बकरी, भेड़पालन, गाय, भैंस, इत्यादि के लिए।

बैंकों को भी है समूह से लाभ–बैंकों को अधिक लोगों तक बिना किसी अतिरिक्त लागत के पहुँचाना संभव हो पाता है–

* सदस्यों की अल्प बचत से बड़ी रकम जमा हो जाती है।
* बैंक की छवि जनसामान्य में अच्छी होती है।
* बैंक सेवाओं से वंचित लोगों को बैंकों से जोड़ दिया जाता है।

समूह की संरचना–समूह नाम रखा जाता है।

* एक परिवार से एक से ज्यादा सदस्य न हों।
* समूह में 10–20 सदस्य होने चाहिए।
* समूह स्त्रियों के या पुरुषों के या मिश्रित दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
* किसी भी बैंक में खाता सदस्यों के नाम से नहीं समूह के नाम से खुलवाया जाता है।

पहल संस्था काठगोदाम द्वारा बनाए गए स्वयं सहायता समूह में बचत एवं इसकी दैनिक बचत प्रक्रिया–किसी व्यक्ति द्वारा फिजूल खर्चों में कटौती करके बचाया गया धन बचत कहलाता है। माना एक व्यक्ति की आय 1000 रुपया प्रतिमाह है। उसमें से आवश्यक खर्चों में से 800 रुपए खर्च हो जाते हैं और 200 रुपए बचते हैं ये 200 रुपए बचत नहीं, बल्कि बढ़त है। यदि वह 800 रुपए में से ही कुछ कटौती करके पैसा बचा लेता है तो वह वचाया गया धन बचत कहलाता है।

(क) बचत ऋण उपलब्ध कराने का ही एक माध्यम मात्र नहीं है बल्कि नियमित बचे-खुचे में से बचत करना एक अच्छी व्यावहारिक प्रक्रिया है, जिसे हर परिवार को अपनाना चाहिए।

(ख) बचत से संबंधित समूह को लाभ मिलता है तथा इसकी रचनाशक्ति में वृद्धि होकर समूह के संबंधित सदस्यों को शक्तिशाली बनाने में सक्रिय योगदान होता है।

(ग) महाजनों एवं अन्य प्रकार के कर्ज देने वाले स्रोतों के अत्याचार से समूह के सामूहिक बचत से स्वयं तो बचते ही हैं इसके साथ-साथ अन्य लोगों को भी मार्ग प्रदर्शक बन जाते हैं।

(घ) इस अनूठी प्रक्रिया में बचत करने वाले एवं ऋण देनेवाले व्यक्तियों में एक सीधा पारदर्शी संबंध होता है।

(ङ) अत: व्यक्ति के माध्यम से सामूहिक जमा राशि को अपनी स्वयं की पूँजी समझकर एक-दूसरे के बीच अपनी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए एक अंत: उद्यम व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत एक-दूसरे के बीच ऐसी संस्कृति जन्म लेती है जहाँ सदस्य पारस्परिक रूप से एक-दूसरे के सहारे इस बचत का अधिक-से-अधिक सदुपयोग करना चाहता है।

उपलब्ध साहित्य का पुनरावलोकन–वैसे तो गाँव घर में एक-दूसरे के बीच किसी खास सामाजिक कार्य प्रयोजन पर मदद लेने और देने की परंपरा सदियों से चली आ रही है परंतु इसका फैलाव विकास की प्रक्रिया में सुसंगठित होकर नहीं किया गया। जहाँ तक स्वयं सहायता समूह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का प्रश्न है। इसकी शुरुआत देश की प्रतिष्ठित स्वैच्छिक संस्था सेल्फ इंपल्वाइड वीमेन एसोशिएसन अहमदाबाद, मयराडा बंगलोर आदि द्वारा वैकल्पिक, ऋण प्रणाली की खोज तथा अनुसंधान के माध्यम से मुख्य रूप से शुरुआत की गई थी। मुख्य रूप से मयराडा, बैंगलोर के इतिहास को देखा जाए तो इस संस्था ने वर्ष 1968 से ही सामाजिक कार्य के प्रति अपनी भूमिका निभानी शुरू कर दी। शुरुआती दौर में मयराडा ने मुख्य रूप से चीन युद्ध के पश्चात तिब्बत

से आए तिब्बतियों को पुनर्स्थापित करने का कार्य शुरू किया। 1968 से 1979 तक केवल तिब्बती रिफ्यूजी को बसाना एवं उनकी सहायता पर विशेष बल दिया। इस दौरा 15000 लोगों को सुख सुविधाओं से लाभान्वित कराया। इसी के साथ दूसरे चरण में पहले चरण के 10 वर्षों के अनुभव के आधार पर 1978 से भारतीय गरीब समुदाय के साथ कार्य करना शुरू किया जिसके माध्यम से वर्ष 1974 तक कुल 8,50,000 लोगों को सुविधाएँ मुहैया कराई। इस प्रकार वर्ष 2000 तक 10,00,000 लोगों को सुविधाएँ देकर उनके जीवन स्तर को उठाने के कार्य का लक्ष्य बनाया गया। इस प्रकार लोगों को शिक्षा, सफाई, रोजगार, मकान एवं आयवृद्धि जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य करने में ज्यादा रुचि दर्शाई।

शिवरामन समिति (शिवरामन कमेटी) की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय कृषि और ग्रमीण विकास बैंक नाबार्ड अधिनियम 1981 को लागू करने के लिए संसद के एक अधिनियम के द्वारा 12 जुलाई 1982 को नाबार्ड की स्थापना की गई। इसने कृषि ऋण विभाग (एसीडी) एवं भारतीय रिजर्व बैंक के ग्रामीण योजना और ऋण प्रकोष्ठ तथा कृषि पुनर्वित्त और विकास निगम (एआरडीसी) को प्रतिस्थापित कर अपनी जगह बनाई यह ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण उपलब्ध कराने के लिए प्रमुख एजेंसियों में से एक है। कृषि, लघु उद्योग, कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग, हस्तशिल्प और अन्य ग्रामीण शिल्पों के उन्नयन और विकास के लिए ऋण प्रवाह सुविधाजनक बनाने के अधिदेश के साथ नाबार्ड 12 जुलाई 1982 की एक शीर्ष विकासात्मक बैंक के रूप में स्थापित किया गया था। उसे ग्रामीणों क्षेत्रों में अन्य संबंधित क्रियाकलापों को सहायता प्रदान करने, एकीकृत और सतत ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने और ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि सुनिश्चित करने का भी अधिदेश प्राप्त है। नाबार्ड का कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणदाता संस्थाओं को पुनर्वित उपलब्ध कराना। संस्थागत विकास करना या उसे बढ़ावा देना। ग्रमीण क्षेत्रों में विभिन्न विकासात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए जो संस्थान निवेश और उत्पादन ऋण उपलब्ध कराते हैं। उनके वित्तपोषण की एक शीर्ष एजेंसी के रूप में कार्य करती है।

उपर्युक्त कार्यक्रम में स्वयं सहायता समूह के परिप्रेक्ष्य में मुख्य रूप से मयराडा ने निम्न मुद्दों पर विशेष बल दिया। जैसे–

* सामुदायिक क्रियाशीलसमूह के माध्यम से ग्रामीण शाखा पद्धति।

* महिलाओं का संगठन बनाना जिससे स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा दिया जा सके।

अतः उपर्युक्त अनुभव के आधार पर निम्नलिखित संबंधित बातें सीखने की दृष्टि से उभरकर आईं–

(क) जन समुदाय जिसकी आय एवं अन्य सामाजिक पहलुओं में कमोवेश समानता थी। एक छोटे समूह के माध्यम अपनी-अपनी आवश्यकताओं, समस्याओं, भावनाओं, अपेक्षाओं आदि उम्मीदों को लेकर निरंतर प्रयास करते हैं। अतः इस मानवीय पारदर्शी पूँजी पर टिकाऊ एवं बहुआयामी प्रभाव डालने के लिए हम सभी का अपनी-अपनी प्रक्रिया में उनके उत्साह को निरंतर जाग्रत करना ऐक महत्त्वपूर्ण अंग होता है।

(ख) इन समस्तरीय समूहों के सदस्यगण अपने-अपने ज्ञान के प्रति जागरूक रहकर स्वयं के अंदर क्षमता को विकसित कर अपने व्यवहार में अमल करने प्रति उत्कंठित रहते हैं।

(ग) समस्तरीय समूह के सदस्य वही सीखने और अमल करने का प्रयास करते हैं जो उन्हें रुचिकर लगता है।

(घ) यह सदस्य समूह मुख्य रूप से अपने समूह के द्वारा स्वचालित होकर अग्रसर होने का प्रयास करते हैं।

(ङ) यह समस्तरीय समूह के सदस्यों के साथ-साथ दूसरों का भी विकास की रुझान में लाना चाहते हैं।

समस्या कथन–राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) एवं एनजीओ द्वारा देशभर में लघु वित्त सेवाओं के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह का निर्माण किया जाता है। मेरा यह शोध चुनने का कारण यह है कि हम यह जानना चाहते हैं कि स्वयं सहायता समूह की महिलाओं को वास्तविक रूप से आर्थिक, सामाजिक एवं आजीविका में सुधार निश्चित रूप से हो रहा है या नहीं हो रहा है। हल्द्वानी विकास खंड के अंतर्गत हल्द्वानी, काठगोदाम, दमुवाढुंगा में पहल संस्था द्वारा बनाए गए 500 स्वयं सहायता समूह से 10 स्वयं सहायता समूह की 100 महिलाओं का शोध के लिए चयन किया गया है। स्वयं सहायता समूह से लाभान्वित गरीब महिलाओं के आजीविका के सुधार के समाज कार्य का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य–

* उत्तरदाताओं की पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन।
* उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का पता लगाना।
* उत्तरदाताओं की समस्याओं का निरूपण करना।
* स्वयं सहायता समूह में बचत राशि के आवंटन की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करना।
* स्वयं सहायता समूह के द्वारा लोगों को मिल रहे लाभों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
* बैंक के साथ स्वयं सहायता समूह का संबंध एवं ऋण की आवश्यकता का अध्ययन।
* स्वयं सहायता समूह में लेखा-जोखा एवं इसकी व्यावहारिकता का अध्ययन।

उपकल्पनाएँ–

* स्वयं सहायता समूह के बारे में लोगों में जागरूकता कम है।
* स्वयं सहायता समूह धन आवंटन में पारदर्शिता नहीं अपनाता है।

शोध प्रचना–यह अध्ययन विवरणात्मक के साथ-साथ मूल्यांकनात्मक शोध प्रचना पर आधारित है। इस शोध में हल्द्वानी विकास खंड के अंर्तगत हल्द्वानी, काठगोदाम, कुसुमखेड़ा, दमुवाढूँगा में पहल संस्था द्वारा बनाए गए 500 स्वयं सहायता समूह में से 10 स्वयं सहायता समूह की 100 महिलाओं से तथ्य संकलित किए गए हैं। इस शोध में स्वयं सहायता समूह से लाभान्वित महिलाओं को वास्तव में लाभ मिल रहा है या नहीं मिल रहा है इसका मूल्यांकन किया गया है। आज सभी देश नियोजित परिवर्तन की दिशा में विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दे रहे हैं। लाखों, करोड़ों रुपए, अनेक विकास कार्यक्रमों में जैसे–गरीबी उन्मूलन, रोजगार योजनाओं, समन्वित ग्रामीण विकास आदि पर व्यय किए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों का वास्तव में लाभ मिल रहा है या नहीं मिल रहा है यह जानना ही मूल्यांनात्मक शोध का उद्देश्य है।

अध्ययन की समय सीमा को ध्यान में रखते हुऐ एवं अत्यधिक धन हानि से बचने के 100 स्वयं सहायता समूह से 5 स्वयं सहायता समूह की 50 महिलाओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है।

उत्तरदाताओं का आयु संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 39% 21-30 आयु वर्ग वाली महिलाएँ स्वयं सहायता समूह में हैं। इसके पश्चात 28%

31–40 आयु वर्ग वाली महिलाएँ स्वयं सहायता समूह में हैं तथा मध्य में 24% 41–50 आयुवर्ग वाली महिलाएँ स्वयं सहायता समूह में हैं। निम्न में 9 प्रतिशत 51–60 आयु वर्ग वाली महिलाएँ हैं।

उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्यों की संख्या से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 62% 3–5 परिवार वाले सदस्यों की है। मध्य में 24% 6–7 परिवार वाले सदस्यों की है तथा 04% 7–8 परिवार वाले सदस्यों की है। उसके बाद 09% 2–3 परिवार वाले सदस्यों की है। निम्न में 01% 9–14 परिवार वाले सदस्यों की है।

उत्तरदाताओं का साक्षर/निरक्षर संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर स्वयं सहायता समूह में साक्षर महिलाओं की संख्या सर्वाधिक 88% है तथा 12% निरक्षर महिलाएँ हैं।

उत्तरदाताओं के आय का स्रोत संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 37% गैर-सरकारी नौकरी वाले हैं। उसके पश्चात 26% मजदूरी वाले हैं तथा 24% व्यवसाय करने वाले हैं। अन्य नौकरी करने वाले 11% हैं तथा सरकारी नौकरी करने वाले 02% हैं।

उत्तरदाताओं का वार्षिक आय संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार सर्वाधिक 38% 97000–108000 वार्षिक आय है। मध्य में 28% 86000–96000 वार्षिक आय है तथा 13% 61000–72000 वार्षिक आय है। 08% 73000–85000 वार्षिक आय है तथा 07% 110000–150000 वार्षिक आय है।

उत्तरदाताओं के परिवार में धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार सर्वाधिक 75% 0–1 धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या है। मध्य में 24% 2–3 धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या है। निम्न में 01% 3–4 धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या है।

बी॰पी॰एल॰ आय सीमा के अंतर्गत आने वाले परिवारों से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों द्वारा ए॰पी॰एल॰ परिवार के सदस्यों की संख्या सर्वाधिक 70% है तथा बी॰पी॰एल॰ परिवार के सदस्यों की संख्या 29% है। निम्न में अंत्योदय के परिवार के सदस्यों की संख्या 01% है।

उत्तरदाताओं के समूह के बैंक का नाम से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों द्वारा स्वयं सहायता समूह में नैनीताल बैंक में खोले गए खाते सर्वाधिक 70% हैं। उसके पश्चात भारतीय स्टेट बैंक में 11% खाते खोले गए हैं।

उत्तरदाताओं की समूह में मासिक बचत संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 77% मासिक बचत रुपए 50 स्वयं सहायता समूह में करते हैं तथा निम्न में 23% मासिक बचत रुपए 100 स्वयं सहायता समूह में करते हैं।

उत्तरदाताओं के समूह द्वारा वर्तमान बैंक में बचत संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों द्वारा स्वयं सहायता समूह में वर्तमान में कुल बचत राशि वाले 1250–2000 सर्वाधिक 40% है। उसके पश्चात 400–600 कुल बचत राशि वाले 32% हैं तथा 750–950 कुल बचत राशि वाले 28% हैं।

उत्तरदाताओं को सरकारी संस्था/एनजीओ (संस्था) द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 85% समूह में पेपर बैग का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। मध्य में 10% समूह में सिलाई प्रशिक्षण प्राप्त किया है। निम्न में अन्य 05% प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

ISSN 0975-735X

उत्तरदाताओं का समूह से जुड़ने के उद्देश्य से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 95% समूह में बचत के उद्देश्य जुड़े हैं। स्वरोजगार के उद्देश्य से जुड़ने वाले 10% हैं तथा निम्न में 05% अन्य हैं।

उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त वित्तीय राशि का प्रयोग से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 75% महिलाओं ने व्यावसायिक कार्य में किया है तथा 25% घर के कार्य में किया गया हैं।

उत्तरदाताओं के स्वयं सहायता समूह के रजिस्टर में लेखन कार्य का महिलाओं में समझने वाली महिलाओं से संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 88% समूह के रजिस्टर में लेखन कार्य समझने वाली महिलाएँ हैं तथा 12% लेखन कार्य का नहीं समझने वाली महिलाएँ हैं।

उत्तरदाताओं की स्वयं सहायता समूह से आजीविका में सुधार का विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर प्रतिशत महिलाओं की आजीविका में सुधार है।

स्वयं सहायता समूह के बारे में लोगों को जागरूकता संबंधित विवरण–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 53% महिलाओं को जागरूकता है तथा 47% महिलाओं को जागरूकता कम है।

उत्तरदाताओं की समस्याओं का निरूपण–उत्तरदाताओं की समस्याओं को जानने के पश्चात यह तथ्य सामने आया कि परिवार में एकल कमाऊ सदस्य होने के कारण अपने बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीकी शिक्षा इत्यादि दिलाने में समर्थ नहीं है जिसके कारण उन्हें रोजगार-संबंधी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इस समस्या के समाधान या निरूपण के लिए स्वयं सहायता समूह की महिलाएँ जब भी आपसी लेन-देन करें तो उसका निर्णय सामूहिक रूप से लें। इसके अलावा स्वयं सहायता समूह में बचत तो करें ही साथ ही मीटिंग का समय का दायरा भी बढ़ाएँ। मीटिंग में व्यक्तिगत समस्याएँ, सामाजिक समस्याओं पर भी गंभीरता से विचार विमर्श करें तथा इसका समाधान खोजें। स्वयं सहायता समूह ने संस्था या विभाग द्वारा जो ट्रेनिंग प्राप्त किया है। उदाहरण के तौर पर पेपर बैग इस ट्रेनिंग का भविष्य में पूर्ण लाभ उठाए तथा सामूहिक तौर पर इस तरह की ट्रेनिंग को प्राप्त कर उससे भविष्य में लघु उद्यम लगाना चाहिए। जिसका लाभ निश्चित तौर पर उनके परिवार को मिलेगा।

उत्तरदाताओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि–प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध अध्ययन में स्वयं सहायता समूह से लाभन्वित गरीब महिलाओं की आजीविका के सुधार के परिप्रेक्ष्य में समाज कार्य के अध्ययन हेतु 100 उत्तरदाताओं का अभिमतों को लिया गया है। अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार प्राप्त जानकारी के आँकड़ों से निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं।

आयु–स्वयं सहायता समूह में सर्वाधिक 39% 21-30 आयु वर्ग वाली महिलाएँ स्वयं सहायता समूह में हैं। इसके पश्चात 28% 31-40 आयु वर्ग वाली महिलाएँ स्वयं सहायता समूह में हैं। मध्य में 23% 41-50 आयु वर्ग वाली महिलाएँ स्वयं सहायता समूह में हैं निम्न में 8% 51-60 आयु वर्ग वाली महिलाएँ हैं।

परिवार के सदस्य–स्वयं सहायता समूह में सर्वाधिक 62% 3-5 परिवार वाले सदस्यों की है। मध्य में 24% 6-7 परिवार वाले सदस्यों की है तथा 04% 7-8 परिवार वाले सदस्यों की है उसके बाद 09% 2-3 परिवार वाले सदस्यों की है। निम्न में 01% 9-14 परिवार वाले सदस्यों की है।

साक्षरता–स्वयं सहायता समूह में साक्षर/निरक्षर स्थिति में महिलाओं की संख्या सर्वाधिक 88% है तथा 12% निरक्षर महिलाएँ हैं।

आय का स्तर–स्वयं सहायता समूह में सर्वाधिक 37% प्राईवेट जॉब वाले हैं। उसके पश्चात 26% मजदूरी वाले हैं तथा 24% व्यवसाय करने वाले हैं। अन्य जॉब करने वाले 11% हैं तथा सरकारी नौकरी करने वाले 02% हैं।

वार्षिक आय–स्वयं सहायता समूह में सर्वाधिक 38% 97000-108000 वार्षिक आय है। मध्य में 28% 86000-96000 वार्षिक आय है तथा 13% 61000-72000 वार्षिक आय है तथा 08% 73000-85000 वार्षिक आय है तथा 07% 110000-150000 वार्षिक आय है।

सर्वाधिक धनोपार्जन करने वाले सदस्य–स्वयं सहायता समूह में सर्वाधिक 75% 0-1 धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या है। मध्य में 24% 2-3 धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या है। निम्न में 01% 3-4 धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या है।

कुल बचत राशि वाले उत्तरदाता–उत्तरदाताओं की स्वयं सहायता समूह में वर्तमान में कुल बचत राशि वाले 1250-2000 सर्वाधिक 40% है। उसके पश्चात 400-600 कुल बचत राशि वाले 32% हैं तथा 750-950 कुल बचत राशि वाले 28% हैं। उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक 95% समूह में बचत के उद्देश्य जुड़े हैं। स्वरोजगार के उद्देश्य से जुड़ने वाले 10 प्रतिशत हैं। उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर 100% महिलाओं का कहना है कि समूह धन आवंटन में पारदर्शिता अपनाता है।

आजीविका में सुधार–उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर सर्वाधिक शत-प्रतिशत महिलाओं की आजीविका में सुधार है।

उत्तरदाताओं की समस्याओं के सुझाव, संस्तुति एवं निष्कर्ष–राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) एवं एनजीओ (संस्थाओं) द्वारा चलाई जाने वाली लघु वित्त सेवाओं के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह की महिलाएँ शत-प्रतिशत लाभान्वित हो रही हैं एवं उनकी आजीविका में शत-प्रतिशत सुधार आया है तथा संस्था द्वारा इस स्वयं सहायता समूह का क्रियान्वयन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। स्वयं सहायता समूह के लघु शोध सर्वेक्षण में यह तथ्य प्रकाश में आया है कि महिलाएँ स्वयं सहायता समूह से शत-प्रतिशत लाभान्वित हुई हैं तथा स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद से महिलाओं की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार आया है जिससे उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा है।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक 1982, उत्तराखंड क्षेत्रीय कार्यालय, देहरादून
2. सुरभि सेवा समर्पण संस्थान रायबरेली 2005, साईंटिफिक सोशियल सर्वे रिसर्च
3. पहल संस्था काठगोदाम, हल्द्वानी 2009 मार्गदर्शिका
4. http://www. Nabard.org/

Dr. Neerja Singh
Uttarakhand Open University,
Teen Pani, Haldwani 263139
Mob. 9456140200
neerjasinghr@rediffmail.com

सशक्तिकरण एवं परिवार का बदलता स्वरूप : मुस्लिम महिलाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

नाजमी प्रवीण, शोधार्थी, समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

प्रस्तावना–समाजशास्त्री दृष्टि से महिला की स्थिति पर विचार करते समय हम यह देखने का प्रयास करते हैं कि परिवार में उसकी प्रास्थिति किस प्रकार की है। परिवार की शिक्षा, प्रगतिशीलता आदि की स्थिति क्या है, यदि सामाजिक-आर्थिक स्थिति अच्छी है तो निश्चित ही महिला की स्थिति अच्छी होगी। वह शिक्षित और कामकाजी होगी तो वह एक सशक्त महिला होगी। विभिन्न शोध अध्ययनों ने भी प्रमाणित किया है कि अगर महिला पढ़ी-लिखी और शिक्षित होती है और अपनी आर्थिक जरूरतों के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहती है तो वह एक अच्छी जिंदगी व्यतीत करती है, परिवार पर महिला का नियंत्रण होता है, वह परिवार से सम्बंधित बातों पर राय देने के साथ-साथ आवश्यकतानुसार निर्णय भी देती है। महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया का सकारात्मक असर परिवार के पुरुषों और बच्चों पर भी पड़ता है वह आर्थिक दबाव को कम करती हैं वहीं बच्चों का पालन-पोषण का स्तर उच्च रखती हैं। आर्थिक सुदृढ़ीकरण सशक्तिकरण की राह को प्रशस्त करती हैं। वह व्यक्ति की निर्णय क्षमता और आत्मबल को प्रभावित करती हैं, यदि महिलाएँ आर्थिक रूप से सशक्त होंगी, तो यकीनन उनकी परिवार और समाज में भूमिका बढ़ेगी। महिलाओं का घर से बाहर निकलकर काम करने की घटना अपने-आपमें कोई नई बात नहीं है क्योंकि गाँव में महिलाएँ हमेशा से ही जीविका के लिए पुरुषों के साथ खेतों में काम करती आ रही हैं। शहरों में भी लंबे अरसे से महिलाएँ फैक्ट्रियों और गृह निर्माण कार्यों में मजदूरी करती आ रही हैं। बहुत-सी औरतें सारी जिंदगी काम करती हैं, क्योंकि बहुत-से घरों का खर्च इन औरतों की कमाई के बिना चल नहीं सकता। लेकिन दुःख की बात यह है कि ज्यादातर औरतों का काम दिखाई ही नहीं देता क्योंकि न तो उनके परिवार के लोग उनके काम की कद्र करते हैं और न ही सरकार उनके कामकाज गिनती में लाती है। जैसे ज्यादातर महिलाएँ घर के लिए पानी, लकड़ी और चारा लाने का काम करती हैं, जिसके लिए उन्हें कभी-कभी कोसों दूर तक चलना पड़ता है। महिलाएँ खाना पाकाती हैं, सफाई करती हैं, बच्चों को पालती हैं, बड़े-बूढ़ों की सेवा करती हैं, परंतु ये सभी काम गिनती में नहीं लिए जाते। पुरुषों की प्रधानता का संबंध कई बातों से है, उनकी 'कमाऊ' होने की स्थिति भी इसमें शामिल है। उनके पैसे कमाने की ताकत उनके परिवार में उनकी इज्जत का कारण होती है। जबकि औरतें नहीं, अधिक समय तक रोजाना घर पर काम करती हैं, परंतु इस काम के बदले पैसे नहीं मिलते। इसलिए परिवार की खुशहाली में उनके हाथ बँटाने को कोई अहमियत नहीं दी जाती।

नारीवादी दार्शनिक सिमोन द बोउआर ने अपनी कृति द सेकेंड सेक्स में लिखा, 'औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है।' सिमोन का यह विचार भारतीय सामाजिक संरचना के संदर्भ में बहुत प्रासंगिक है। पैदा तो पुरुष भी होते हैं और महिला भी होती है, लेकिन दोनों की कुदरती पैदाइश

पालन-पोषण के दौर में विभिन्न रोल मॉडल्स की तरह अलग-अलग ढाँचे में विकसित होती जाती है। जन्म से ही शुरू के चंद वर्षों के बाद सबसे पहले हमारे पारिवारिक ढाँचे में स्त्री के स्त्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। उसका मानसिक विकास एक मनुष्य, एक व्यक्ति के रूप में रेखांकित नहीं होता, बल्कि एक सेक्स, एक लिंग यानी महज एक महिला के रूप में होता है। दूसरी तरफ, एक पुरुष का मानसिक विकास, उसकी पूरी परवरिश इस तरह की जाती है कि वह एक मनुष्य, एक व्यक्ति पहले होता है। एक लिंग तथा एक पुरुष बाद में महिला-पुरुष में भेद तभी से शुरू हो जाता है। भारत में मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता दर 51.9% है जो कि दूसरे धर्मों की तुलना में सबसे कम है। जोया हसन लिखती हैं कि 'मुस्लिम महिलाओं का पिछड़ जाना एवं शिक्षा प्राप्त न कर पाने का मुख्य कारण गरीबी है। असगर अली जैसे चिंतक लिखते हैं कि हमारे उलेमा हर नई चीज की अलोचना करते हैं और बाद में खुद के लाभ के लिए उसे स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन सही मायनों में इसका जिम्मेदार उलेमा या पुरुष प्रधान समाज ही नहीं बल्कि स्वयं महिलाएँ भी हैं जो सहन और एकजुटता नहीं दिखा पातीं। सर सैयद अहमद का मानना था कि मुसलमान के धार्मिक और सामाजिक जीवन में केवल आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को ग्रहण कर ही सुधार लाया जा सकता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देना जीवनभर उनका सर्वप्रथम काम रहा। मुस्लिम समाज के लिए पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अलीगढ़ में ऐंग्लो-ऑरियंटल कॉलेज के रूप में बदल दिया गया और बाद में वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से विकसित हुआ, इसके अतिरिक्त उन्होंने समाज में मुस्लिम महिलाओं का दर्जा ऊँचा उठाने के पक्ष में लिखा तथा पर्दा प्रथा एवं तीन तलाक की भी निंदा की।

तसलीमा नसरीन लिखती हैं, 'दूसरे समुदायों की तरह ही मुस्लिम समाज में भी वर्गभेद और लिंग भेद महिलाओं के पक्ष में नहीं गया। इस्लामी न्यायशास्त्र में विभिन्न विचार के संप्रदाय हैं और उनमें पाए जानेवाले भेद इस बात को साबित करने के लिए काफी हैं कि मुस्लिम निजी कानूनों को खुदा का फरमान नहीं माना जा सकता। विश्व में अन्य इस्लामिक देशों में विवाह और उत्तराधिकार से जुड़े कानूनों को सामाजिक दृष्टि से देखा और संशोधित किया जा चुका है।

मुस्लिम निजी कानून का तीन तलाक का विधान महिलाओं के पक्ष में नहीं जाता। भारत में तलाक-ए-बिद्अत (तीन तलाक) का सबसे प्रचलित रूप है। तीन तलाक की दहशत में मुस्लिम महिलाएँ डरी-सहमी रहती हैं और जुल्म बरदाश्त करती हैं। ऐसे समय में जब विश्व के अधिकांश मुस्लिम देश तलाक-ए-बिद्अत पर कानून बना चुके हैं, वहीं भारत ने भी मुस्लिम महिलाओं को सशक्त करने के उद्देश्य से तीन तलाक को असंवैधानिक एवं पक्षपातपूर्ण (समानता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने वाला घोषित किया है। साथ-ही-साथ इस कानून का उल्लंघन करने पर सजा का प्रावधान भी किया गया है। यह मुस्लिम महिलाओं के हक में एक ऐतिहासिक फैसला है। जो सदियों से इस कुप्रथा से पीड़ित थीं उनके लिए यह कानून समाज और परिवार में उनकी परिस्थिति को प्रशस्त करेगी। जिस समाज मे महिलाओं को शिक्षा से अलग रखा गया है, वहाँ प्रगति बहुत धीमी हुई, मुस्लिम महिलाओं के साथ भी यह हुआ ज्यादातर कुरान की तालीम लेकर घर में रह गईं लेकिन आज समय एवं परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। अब मुस्लिम परिवारों में भी शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है। माता-पिता लड़कियों के तालीम के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने लगे हैं, अब मुस्लिम मदरसों व स्कूलों और कॉलेजों में विज्ञान कंप्यूटर, प्रबंधन आदि की शिक्षा दी जा रही है। मुस्लिम परिवार की लड़कियाँ अँग्रेजी, माध्यम के स्कूलों

में पढ़ रही हैं साथ ही उच्च शिक्षा को प्राथमिकता दे रही हैं।

सशक्तिकरण की अवधारणा—वर्तमान समय में महिलाओं के ही सशक्तिकरण पर इतना जोर क्यों दिया जा रहा है जबकि ईश्वर ने मानवीय अस्तित्व के आधार पर महिला एवं पुरुष दोनों को समान शक्ति, समान प्रतिभा, समान अधिकार देकर इस जगत में भेजा, इन दोनों में कहीं विभेद नहीं किया केवल संतानोत्पत्ति को ध्यान में रखकर विभेद किया और सही मायनों में यह विभेद महिला को पुरुष से कहीं ज्यादा महान बना देता है जब वह माँ का दर्जा पाती है। मानवता का सम्मान करते हुए एवं सामाजिक संतुलन को बनाए रखने के लिए विकासशील से विकसित बनने के लिए आज हमें महिला सशक्तिकरण की बात सोचनी पड़ रही है। समाज में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता पितृसत्तामक सोच में बदलाव उत्पन्न कर रही है जिसका परिणाम महिलाओं के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा रहा है। महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाकर उन्हें शोषण से बचाती है, केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में महिलाओं की स्थिति पुरुषों के मुकाबले निम्न पाई जाती है। अत: महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता वर्तमान समय में, समाज देश एवं विश्व के लिए अतिआवश्यक बन चुकी है। सतत विकास लक्ष्य 2030 के लक्ष्य संख्या-5 में लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण पर जोर दिया गया है सभी प्रकार के भेदभाव, हिंसा और गलत प्रयासों को समाप्त कर महिलाओं की देखभाल और घरेलू काम को महत्त्व देकर लैंगिक समानता प्राप्त करना है यह महिलाओं के लिए राजनीतिक, आर्थिक और सार्वजनिक जीवन में निर्णय लेने के सभी स्तरों पर प्रभावी भागीदारी व समान अवसरों पर भी विचार करता है।

अर्थशास्त्री बीना अग्रवाल महिला सशक्तिकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित करती हैं, जिससे दुर्बल एवं उपेक्षित लोगों के समूहों की क्षमता बढ़े। जिससे महिलाएँ अपने-आपको निम्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति में डालने वाले मौजूदा शक्ति संबंधों को बदलकर अपने पक्ष में कर सकें। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिला को आत्मनिर्भर बनाना है। महिलाओं को समाज में समानता प्रदान करना है

डॉ॰ दिग्विजय सिंह के अनुसार—महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय सत्ता प्रतिष्ठानों में स्त्रियों की साझेदारी से है। निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण का अर्थ है—उनके द्वारा समाज की वर्तमान व्यवस्था और तौर-तरीकों को चुनौती में समान अवसर, राजनीतिक व आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा, प्रजनन का अधिकार आदि।

डॉ॰ अरुणकुमार सिंह के अनुसार—महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिला को शक्तिसंपन्न बनाना ताकि वह सहजता से अपने जीवन-यापन की व्यवस्था कर सके।

नैला कबीर के अनुसार—सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया की ओर इंगित करता है जिसमें अक्षम लोगों को सक्षम बनाया जाता है।

लीना मेंहदेले के अनुसार—सशक्तिकरण एक मानसिक अवस्था है जो कुछ विशेष आंतरिक कुशलताओं और सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर है। इनमें प्रमुख हैं—

1. निर्भयता, जिसके लिए समाज में कानून और सुरक्षा का होना।
2. रोजाना के नीरस, ऊबाऊ और कमर तोड़ कामों से मुक्ति।
3. आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं उत्पादन क्षमता।

4. निर्णय का अधिकार।

5. सत्ता एवं संपत्ति में पुरुषों के साथ बराबरी का हक।

6. ऐसी शिक्षा जो महिला को उपर्युक्त स्थितियों के लिए तैयार कर सके।

इस प्रकार महिला सशक्तिकरण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसके तहत शक्तिहीन लोगों को अपने जीवन की परिस्थितियों को नियंत्रित करने के बेहतर मौके मिल जाते हैं। इसका मतलब केवल संसाधनों पर बेहतर नियंत्रण नहीं है बल्कि इसका आत्मविश्वास में वृद्धि और पुरुषों के साथ बराबरी के आधार पर निर्णय करने की क्षमता से भी है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि पुरुष समाज महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव के बारे में जागरूक बनें।

साहित्य समीक्षा–कपाड़िया (1965) लिखते हैं कि इस्लाम ने बहुविवाह को सीमित करके और एक विवाह का समर्थन करके, कन्या भ्रूण हत्या की निंदा करके, विरासत में हिस्सा देकर, मेहर को महिलाओं को एक अनिवार्य उपहार घोषित करके महिलाओं की स्थिति में सुधार किया। तलाकशुदा महिलाओं और उनके बच्चों के लिए रखरखाव (इद्दत अवधि के लिए) प्रदान करने जैसे महिलाओं के पक्ष में विवाह और तलाक का कानून दिए।

सैयद मेहँदी हुसैन (1994) ने अपने अध्ययन 'मुस्लिम वूमेन एंड हायर एजुकेशन: ए केस स्टडी ऑफ हैदराबाद' में कहा है कि शिक्षा और सामाजिक-आर्थिक स्थिति का आपस में गहरा संबंध है। उनका अध्ययन स्थापित करता है कि परिवार में यदि माता-पिता विशेष रूप से पिता शिक्षित हैं, तो इस बात की पूरी संभावना है कि बच्चे भी शिक्षित होंगे।

वी॰एन॰ सिंह और जनमेजय सिंह (2012)–इन्होंने मुस्लिम समाज में महिला से संबंधित अपने अध्ययन में बताया है कि पिछले दो दशकों से मुस्लिम महिलाओं में परिवर्तन देखे जा रहे हैं। शिक्षा के विस्तार के साथ उच्च शिक्षा के सैंकड़ों आयामों ने उनकी सोच व मानसिकता को बदला है। महिलाएँ रूढ़ियों से ऊपर उठ रही हैं। शिक्षित मुस्लिम परिवारों में पर्दा प्रथा धीरे-धीरे घटती जा रही है, जिसका कारण लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर उच्च पद ग्रहण कर रही हैं। शिक्षित और प्रगतिशील समाज के लिए जरूरी है कि पति-पत्नी दोनों काम करें। परिवार की आय में वृद्धि न केवल उनकी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाती है, बल्कि नारी में आत्मविश्वास उत्पन्न कर उसे स्वावलंबी और शक्तिशाली बनाती है।

इंजीनियर असगर अली (1992)–ने इस्लाम में मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों के प्रति अपना पक्ष रखा है, मुस्लिम महिलाओं के विभिन्न अधिकारों जैसे लैंगिक समानता, तलाक का अधिकार, संपत्ति में अधिकार के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, कुरान में महिला एवं पुरुष दोनों में न कोई निम्न है न कोई श्रेष्ठ, कुरान महिलाओं को भी पुरुष के समान अधिकार देती है। महिलाओं का शोषण समाज द्वारा निर्मित है कुरान में इसका कोई वर्णन नहीं, लेखक ने शरीयत कानून की अपरिवर्तनीयता पर भी अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि शरीया कानून कुरान का अभिन्न अंग है लेकिन कुछ कट्टर पंथियों ने इसे अपरिवर्तनीय बना दिया है जिनसे महिलाओं के शोषण में वृद्धि हुई है।

मोतीलाल गुप्ता (2011)–इन्होंने मुस्लिम समुदायों की प्रथाओं एवं मूल्यों में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों का उल्लेख किया है। मुस्लिम समुदायों में इस्लामीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ आधुनिकीकरण तथ पश्चिमीकरण की प्रक्रियाएँ भी चल रही हैं, जिनका कारण विस्तृत सामाजिक शक्तियाँ हैं, मुस्लिम प्रथाएँ और रीति-रिवाज इस्लामीकरण के परिवर्तनकारी प्रभावों के

उपरांत भी अपने अस्तित्व को सफलतापूर्वक बनाए रख सकती हैं और अब भी वे अपने पुराने या मामूली परिवर्तन स्वरूप में अपनी निरंतरता को बनाए हुए है।

कमला गुप्ता, (2012)—इसमें मुस्लिम महिलाओं के स्थिति का समाजशात्रीय दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया गया है। इसी संदर्भ में लेखिका ने आधुनिक मुस्लिम समाज में महिलाओं के वैवाहिक, पारिवारिक एवं संपत्ति संबंधी अधिकारों के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष का अंतर स्पष्ट किया है। मुस्लिम स्त्रियों के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है। कुरान में पुरुषों और स्त्रियों के समानता के आधार पर लड़कियों को सामाजिक और आर्थिक बोझ न समझकर उनके साथ लड़कों के समान व्यवहार करने की व्यवस्था है। इस प्रकार इस्लाम ने स्त्रियों को समाज में समानता का अधिकार दिया है ।

आशा कौशिक (2013)—अन्य धार्मिक समुदायों की महिलाओं की तरह, मुस्लिम महिलाएँ भी अपने मानव अधिकारों की मान्यता के लिए आगे बढ़ रही हैं। वे दो विरोधी प्रक्रियाओं इस्लामीकरण और वैश्वीकरण जैसी चुनौतियों का सामना कर रही हैं। इस्लामीकरण की प्रक्रिया महिलाओं को उनके घरों की चारदीवारी के भीतर उनकी भूमिकाओं को सीमित करके पीछे की ओर खींच रही है, तो दूसरी ओर वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं को व्यापक वैश्विक परिवेश से अवगत कराया है, जिससे उनकी अपेक्षाओं और भूमिका के प्रदर्शन का स्तर बढ़ गया है।

वहाब (2015)—महिला सशक्तिकरण को महिला जीवन के संदर्भ में, एक बदलाव माना जा सकता है, जो उसे गतिशीलता शिक्षा एवं जागरूकता जैसे बाहरी गुणों से अवगत कराती है और उसके निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाती है एवं आत्मविश्वास जैसे आंतरिक गुणों को बढ़ावा देती है। वैश्वीकारण के इस युग में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित सतत विकास लक्ष्यों में से एक है। महिला सशक्तिकरण के बिना प्रत्येक क्षेत्र जैसे—सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि सर्वांगीण विकास और स्थायी मानव विकास की अवधारणा के बारे में नहीं सोचा जा सकता क्योंकि महिलाएँ समाज के महत्त्वपूर्ण हिस्से का गठन करती हैं साथ ही कई भूमिका निभाती हैं।

रमा शर्मा और एम॰के॰ मिश्रा (2016)—प्रत्येक युग में नारी ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है वह अपने विशिष्ट गुणों के कारण आधुनिकीकरण के इस युग में हर क्षेत्र में कठोरतम सामाजिक प्रतिबंधों एवं विपरीत परिस्थितियों में भी अपना रास्ता खोज कर आगे बढ़ती जा रही है। आधुनिक युग में शिक्षित नारी की उपलब्धियाँ बढ़ती जा रही है एवं विभिन्न व्यवसायों जैसे सेना, पुलिस प्रशासन, रेल-सेवा, हवाई सेवा, परिवहन सेवा में नारी प्रवेश कर रही है। आज की शिक्षित महिला समर्थ होती जा रही है साथ ही आत्मनिर्भर भी।

कृष्णचंद्र चौधरी (2018)—सशक्त महिला और सशक्त समाज राष्ट्र के विकास में सहायक हैं। समाज में स्थापित महिलाओं के प्रति सोच में बदलाव से ही महिलाओं के प्रति समाज को संवेदनशील बनाया जा सकता है जिसमें महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया द्वारा महिलाएँ भौतिक, मानसिक बौद्धिक एवं वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण कर विकास कर सकती है। इस पुस्तक में लेखक ने विभिन्न कालखंडों में महिलाओं की स्तिथियों का गहन विश्लेषण किया है, समय के साथ होने वाले परिवर्तनों एवं सरकार द्वारा उनके लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों और योजनाओं की विस्तृत जानकारी का वर्णन किया गया है

सबीहा हुसैन (1998) ने 'रोजगार की ओर मुस्लिम महिलाओं का दृष्टिकोण दरभंगा टाउन

का एक केस स्टडी' शीर्षक से अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक बाधाओं के बाद भी तुलनात्मक रूप से कम संख्या में ही मुस्लिम महिलाएँ रोजगार के क्षेत्र में प्रवेश कर रहीं हैं, घर से बाहर काम करने वाली महिलाओं ने गैर-इस्लामी ढंग से किसी भी लाभकारी या सम्मानजनक नौकरी के विचार को नकार दिया। साथ ही उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि जब वे काम के लिए बाहर जाती हैं तो उन्हें ऐसी पोशाक नहीं पहननी चाहिए जो उनके आकर्षण को प्रकट करे। उनका मानना है कि वर्तमान सामाजिक-आर्थिक स्थिति में महिलाओं को अपने पति की आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से परिवार चलाने और बच्चों को बेहतर शिक्षा प्रदान करने में मदद करनी चाहिए और पुरुषों को दोनों कर्त्तव्यों को पूरा करने में महिलाओं का समर्थन करना चाहिए।

सशक्तिकरण एवं परिवार का बदलता स्वरूप–संपूर्ण महिला आबादी में मुस्लिम महिलाओं का दूसरा सबसे बड़ा समूह है। भारत में वे सबसे बड़े अल्पसंख्यक समूह हैं, जबकि पाकिस्तान और बांग्लादेश में वे बहुसंख्यक समुदाय से संबंधित हैं। अन्य धार्मिक समुदायों की महिलाओं की तरह मुस्लिम महिलाएँ भी अपने मानवाधिकारों की मान्यता के लिए आगे बढ़ रही हैं। वे दो विरोधाभासी प्रक्रियाओं–इस्लामीकरण और वैश्वीकरण से कई गुना चुनौतियों का सामना कर रही हैं। इस्लामीकरण की प्रक्रिया महिलाओं को उनके घरों की चारदीवारों के भीतर उनकी भूमिकाओं को सीमित करके पीछे की ओर खींच रही है। दूसरी ओर सशक्तिकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं को व्यापक वैश्विक वातावरण में उजागर किया है, जिससे उनकी अपेक्षाओं और भूमिका के प्रदर्शन का स्तर बढ़ गया है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया ने पितृसत्तात्मक मूल्यों में परिवर्तन को उत्पन्न किया है। परिवार के लगभग सभी सदस्यों को पारिवारिक मसलों पर विचार-विमर्श करने का लगभग समान हक प्राप्त हो चुका है। मुस्लिम महिलाएँ भी इन बदलावों का हिस्सा हैं, वे कुरान और हदीस की अपनी नई व्याख्या के साथ आगे आ रही हैं और रूढ़िवादियों को याद दिला रही हैं कि इस्लाम अपने मूल रूप में महिलाओं की मुक्ति और लैंगिक न्याय का धर्म था। सशक्तिकरण के कारण मुस्लिम महिलाएँ सरकार, प्रशासन और व्यवसाय में शीर्ष स्थान हासिल करने में सफल रही हैं। इस्लामीकरण के तथाकथित समर्थक अभी भी महिलाओं को समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था में प्रभावशाली पदों से दूर रखना चाहते हैं और सशक्तिकरण के सकारात्मक योगदान की निंदा करते हैं।

विश्लेषणात्मक निष्कर्ष–जागरूक मुस्लिम महिलाएँ आज बहुविवाह एवं तलाक को बुरा मान रही हैं, सशक्तिकरण की प्रक्रिया ने उनका दायरा परिवार में बढ़ाया है, एक सशक्त महिला का अपना नजरिया होता है और अपनी रुचि के अनुसार व्यवहार करती है। वे दिन-प्रतिदिन के जीवन में स्वायत्तता या स्वतंत्रता का आनंद लेती हैं क्योंकि वे समाज में मौजूदा पुरुष पदानुक्रम से मुक्त हैं चाहे वह पारंपरिक समाजों में रहती हों या आधुनिक औद्योगिक समाजों में, सशक्त महिलाएँ पुरुषों के बराबर की स्थिति में रहना चाहती हैं, बल्कि पुरुषों से श्रेष्ठ होना चाहती हैं और परिवार कल्याण की प्राप्ति के लिए हमेशा हर काम में सहयोग करती हैं। सशक्त महिलाएँ अपनी प्रतिभा का उपयोग अपने जीवन को साकार करने के लिए करती हैं। वे हमेशा परिवार, धर्म और काम के दबाव में भी सभी परिस्थितियों में अपनी ताकत बनाए रखती हैं और हमेशा अन्य महिलाओं के सशक्तिकरण में भी योगदान देती हैं। सशक्त महिलाएँ हमेशा पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामुदायिक स्तर की जिम्मेदारी सहित अपनी सभी जिम्मेदारियों को पूरा करती हैं और धार्मिक गतिविधियों में भी भाग लेती हैं। सशक्त महिलाएँ सभी सामाजिक समूहों और समाजों में पाई जाती हैं। उनकी

ISSN 0975-735X

सामूहिक क्रियाएँ शक्ति और मन की शक्ति उन्हें दृश्यमान बनाती है।

संदर्भ

1· Imtiaz A. , Modernization And Social change among Muslim in India, Manohar publications. New Delhi, 1983
2· A. Talat. Ara, Muslim women in changing perspective, commonwealth publishers New Delhi, 1992
3· Ali Asghar engineer, The right of women in Islam.C Hurst and company, 1992
4· Begum, D. S. A., & Mn, B., Empowerment of Muslim Women in Islam. IOSR Journal of Humanities and Social Science, 19(10), 27–29, 2014
5· Kabeer, Resource, Agency, Achievements: Reflection on the Measurement of women's Empowerment Development and Change,30((5), 1999, P.435-464.
6· Asha Kaushik, Development Globalization and women Rawat publication. Jaipur, 2013, P.166-170
7· Y. Singh, Essays on Modernization in India, Manohar Book Service. New Delhi, 1978
8· A. Meenu, WomenEmpowerment Today'svision for Tomorrow's Mission, Mahamaya publishing house, New Delhi, 2007
9· C.Archana, Muslim Women Form Tradition to Modernity. Commonwealth Publishers. New Delhi, 2004
10· S. Kumari, Dynamics of Women Empowerment. Alfa publication New Delhi, 2006
11· S. Seema Kanta, Muslim Women.Anmul publication New Delhi, 2006
12· Srinivas, M.N., Social Change in Modern India". Orient Longman. New Delhi, 1977
13· Wahab, A. Md., K, M., A sociological study on Empowerment of Muslim Women inDarin District of Assam. IOSR Journal of Humanities and Social Science, 20(10), 19-24., 2015
14· A. Shaukat, Muslim women emerging identity, Rawat publication Jaipur, 1997
15· H.Y. Siddiqui, Muslim Women in transition A social profile. Harman, 1987
16· Khan.M.W., Women between Islam and Western society Al-Ressala book the islamic centre new Delhi, 1995
17· S.N. Pathak, Empowerment of Muslim women. New Royal book Company Lucknow, 2009
18. वी०एन० सिंह एवं जनमेजय सिंह, नारीवादी, रावत पब्लिकेशन,जयपुर, 2012
19. जोया हसन, रितु मेनन, अन इक्वल सिटीजन: अ स्टडी ऑफ मुस्लिम वीमेन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस न्यू देहली, 2004
20. इम्तेयाज अहमद, कास्ट एंड स्ट्रेटिफिकेशन एमंग मुस्लिम इन इंडिया, आकाश बुक्स पब्लिशर्स, नई देहली, 1978
21. एस० श्रीवास्तव, मुस्लिम महिलाएँ एवं उनकी भूमिका नालेज बुक सिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2018
22. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2006
23. ज्ञानेंद्र रावत, औरत एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, विश्वभारती पब्लिकेशन, 2006
24. आशा कौशिक, नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइंटर पुब्लिशर्स, जयपुर, 2014

Baker Ganj Moharrampur
Near Anwar House
P-O Bankipur, Patna 800004
Mob. 9304430989, 8294214946

उज्ज्वला योजना से लाभान्वित ग्रामीण महिलाओं का सशक्तीकरण: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ॰ हरिओम त्रिपाठी, एसो॰ प्रोफेसर (समाजशास्त्र)
तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर
कादम्बिनी, शोध छात्रा (समाजशास्त्र)
तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर
संबद्ध–वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

मानव सभ्यता के विकास में महिलाएँ अपनी सार्थक भागीदारी को सुनिश्चित करती हैं तथा एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना में अहम भूमिका निभाती हैं। भारत गाँवों का देश माना जाता है जिसमें ग्रामीण महिलाएँ विकास के उस स्तर को प्राप्त नहीं कर सकीं जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं के द्वारा ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है ताकि वे भारत की संस्कृति एवं सभ्यता को परिलक्षित कर सकें तथा सामाजिक–आर्थिक विकास में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित कर सकें, यदि ग्रामीण महिलाओं का बहुमुखी विकास नहीं हुआ तो राष्ट्र विकास के दौर में पिछड़ जाएगा। भारत सरकार के वर्तमान यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को उज्ज्वला योजना के तहत गैस सिलेंडर उपलब्ध कराने की योजना को अमल में लाया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ को अपने स्वास्थ्य एवं पोषण को सुदृढ़ करने का अवसर मिल सके तथा उनके अंदर यह भावना आए कि उनको भी सामाजिक न्याय के दायरे में लाने के लिए सरकार के द्वारा सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास में एक सशक्त भूमिका निभा रहा है, यह योजना इस बात की सार्थकता को प्रदर्शित करता है कि सरकार ग्रामीण क्षेत्र की गरीब महिलाओं के प्रति कितनी संवेदनशील है तथा उनको एक अवसर के रूप में रसोई गैस (एलपीजी) को खाना पकाने के लिए उपलब्ध करा रही है। आज भारत सरकार की महत्त्वाकांक्षी योजना इस प्रकार एलपीजी सिलेंडरों के लिए बाजार और पूरे भारत में ईंधन वितरण केंद्र का एक नेटवर्क तैयार कराया जा रहा है जिसमें शहरी क्षेत्रों में पाइपलाइन के जरिए प्राकृतिक गैस प्रदान करने हेतु शहरी गैस वितरण नेटवर्क को और सशक्त बनाने तथा शहरी लोगों के एलपीजी कनेक्शन ग्रामीण क्षेत्रों में दिए जाएँगे इससे स्वस्थ तरीके से भोजन पकाने का बाजार बहुत बेहद स्तर पर होगा तथा इसका दोहन होगा और इससे आर्थिक लाभ उठाए जाने की प्रबल संभावना होगी। भारत में खाना पकाने के लिए ईंधन को सक्षम चुनाव तथा उससे संबंधित शोध एवं विकास के समन्वित प्रयासों से नेशनल मिशन ऑन क्लीन कुकिंग चलाने की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है जिसके माध्यम से सरकार का यह लक्ष्य है कि 2022 तक सभी को खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन मुहैया कराया जाए तथा इस लक्ष्य को पाने के लिए सरकारी स्तर पर हर संभव प्रयास किया जा रहा है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना भारत सरकार की एक सशक्त योजना साबित हो रही है जिसमें ग्रामीण

 ISSN 0975-735X

महिलाओं को वायु प्रदूषण द्वारा उनकी सेहत पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव से बचाने की तरफ गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के तहत कई लाख अतिरिक्त रोजगार सृजित किए जा सकते हैं तथा आने वाले वर्षों में भारतीय उद्योगों को करोड़ों रुपए के कारोबार के मौके मिल सकते हैं तथा इस योजना के द्वारा मेक इन इंडिया अभियान के तहत सिलेंडर गैस चूल्हे रेगुलेटर और गैस किट बनाने वाली सभी निर्माता कंपनियों को सरकार द्वारा एक अवसर उपलब्ध कराने की योजना है इस प्रकार उज्ज्वला योजना की सार्थकता ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के लिए एक सामाजिक न्याय दिलाने का प्रयास है।

प्रस्तावना–किसी भी समाज एवं राष्ट्र का विकास तभी सुनिश्चित हो सकता है जब उस समाज की ग्रामीण महिलाएँ समाज की मुख्यधारा में शामिल हों तथा उनका सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक प्रभाव परिलक्षित हो। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को उनकी क्षमता का एहसास कराया जाए तथा उन्हें इस कदर जागरूक बनाया जाए कि उनका भविष्य उज्ज्वल हो। इसके लिए उनको उचित मार्गदर्शन एवं उनके स्वास्थ्य एवं पोषण का समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। भारत को गाँव का देश माना जाता है, ग्रामीण भारत की जनसंख्या में बहुत बड़ी भागीदारी ग्रामीण महिलाओं की है। भारत में ग्रामीण महिलाओं की गरीबी उनको अधिक दुष्प्रभावी बनाती है तथा ग्रामीण महिलाओं की गरीबी आर्थिक आवश्यकता और उनकी स्वतंत्रता के साथ सीधे रूप से जुड़ी हुई हैं। आज हम भले ही 21वीं सदी में प्रवेश कर गए हैं लेकिन ग्रामीण भारत में महिला भागीदारी निर्णय लेने की क्षमता उनके आर्थिक संसाधन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, सुरक्षा सभी चीजों से आज ग्रामीण महिलाएँ वंचित हैं। जब तक ग्रामीण महिलाओं की विविध आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जाएगा तब तक उनके समावेशी और टिकाऊ विकास के लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता। आज बाजार आधारित अर्थ तंत्र एवं वैश्वीकरण के इस युग में आम लोगों की तुलना में ग्रामीण महिलाओं को मिलने वाली सुविधाएँ न्यूनतम स्तर की हैं। आज अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ असंगठित क्षेत्र, कृषि और लघु उद्योगों में कार्यरत हैं, इनमें अत्यधिक श्रम एवं न्यूनतम मजदूरी मिलती है। वैश्वीकरण के इस युग में डिजिटल टेक्नोलॉजी के आने के बाद ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को कौशल विकास के तहत प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। भारतीय ग्रामीण महिलाओं को स्किलिंग इंडिया कार्यक्रम में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है ताकि वे सकारात्मक सोच एवं सामाजिक न्याय में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि जब तक महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में नहीं जोड़ा जाएगा तब तक विश्व कल्याण की संकल्पना अधूरी रहेगी। भारतीय समाज के विकास में ग्रामीण महिलाएँ अपनी महती भूमिका को निभा रही हैं। आज ग्रामीण महिलाएँ घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर व्यावसायिक गतिविधियों में अपना योगदान दे रही हैं। आज भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में ग्रामीण महिलाएँ अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रही हैं। 70 से 80% कृषि कार्य ग्रामीण महिलाएँ कर रही हैं तथा भारत के कृषि श्रम में महिलाओं की भागीदारी 66% हो गई है। ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा देने के इरादे से केंद्र सरकार गरीब महिलाओं की रसोई को धुएँ से मुक्त तथा स्वास्थ्यवर्धक बनाने का प्रयास कर रही है, इसी क्रम में भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू की गई उज्ज्वला योजना भारत के गरीब परिवार की महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए एक सार्थक कदम माना जा रहा है। इस योजना से भारत के

गरीब परिवार की महिलाओं के चेहरे खिल गए तथा उनके अंदर खुशी का माहौल आ गया। उज्ज्वला योजना केंद्र सरकार द्वारा प्रत्यायोजित कार्यक्रम है जिसकी शुरुआत 1 मई 2016 को की गई। इस योजना के अंतर्गत गरीब महिलाओं को मुफ्त में एल॰पी॰जी॰ (लिक्विफाइड) पेट्रोलियम गैस) कनेक्शन देने का प्रावधान किया गया ताकि ग्रामीण परिवेश के गरीब महिलाओं को मिट्टी के चूल्हे से खाना बनाने में आजादी मिल जाए तथा वे अपना सशक्तिकरण कर सकें। एलपीजी कनेक्शन के द्वारा महिलाओं को खाना बनाने के लिए उपयुक्त माहौल मिल गया जिसके द्वारा उनके स्वास्थ्य स्तर में सुधार हुआ तथा रसोई में लगने वाले समय की बचत हुई। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के आरंभ होने के बाद नवंबर 2017 में देश के लगभग 712 जिलों में करीब 3.2 करोड़ महिलाओं को एलपीजी कनेक्शन दिया जा चुका है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना ग्रामीण परिवेश की गरीब महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए एक मील का पत्थर साबित हो रही है। इस योजना के द्वारा ग्रामीण परिवेश की महिलाएँ अपने समय की बचत करके अधिक आर्थिक उत्पादकता को बढ़ावा दे रही हैं तथा अपनी आजीविका को और बेहतरीन बना रही हैं। भारत में गरीबी ग्रामीण महिलाओं को अधिक संकुचित कर देती है। इसी कारण ग्रामीण परिवेश की महिलाएँ आर्थिक संसाधन तथा शिक्षा से वंचित हो जाती हैं। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को स्वास्थ्य, पोषण-संबंधी आवश्यकताओं, रोजगार के अवसरों के अभाव, पैतृक संपत्ति में मालिकाना हक न मिलने जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन सबके अतिरिक्त महिलाओं को घरेलू हिंसा का भी सामना करना पड़ता है। ग्रामीण महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक घरेलू कार्य तथा बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। वैश्वीकरण के इस युग में विश्व की 38% जनसंख्या भोजन पकाने के लिए आज भी पारंपरिक जैव ईंधन पर निर्भर है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में ग्रामीण महिलाएँ परिवार में केंद्रीय भूमिका को निभाती हैं। जैव ईंधन के अपूर्ण जलने के कारण वायु प्रदूषण का खतरा बढ़ जाता है, जिसके कारण घर के आसपास का वातावरण अशुद्ध हो जाता है। महिलाओं के स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन डब्ल्यूएचओ की एक रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं के अंदर एक घंटे में 400 सिगरेट जलाने के बराबर धुआँ अस्वस्थ ईंधन से जाता है। सतत विकास के लक्ष्य के अंतर्गत 2030 तक किफायती एवं टिकाऊ सतत और आधुनिक ईंधन प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं के लिए विश्वसनीय और आधुनिक ऊर्जा सुनिश्चित कराने का लक्ष्य रखा गया है। इस लक्ष्य को पाने के लिए दुनिया के सभी राष्ट्रों को पूरे मनोयोग से प्रयास करने की आवश्यकता है ताकि सभी के लिए ऊर्जा की जरूरत को पूरा किया जा सके। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना की उपलब्धि भारत में ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के लिए एक सार्थक कदम माना गया है जिसमें उपभोक्ता आसानी से लिक्विड पेट्रोलियम गैस को ले सके तथा इसमें सक्रिय सहभागिता हेतु मंत्रालय तथा तेल विपणन कंपनियाँ एक साथ मिलकर काम कर रही हैं। इस योजना में सर्वप्रथम इलेक्ट्रॉनिक बैंक खातों के साथ आधार कार्ड तथा मोबाइल फोन की कनेक्टिविटी को बढ़ाया गया ताकि इस योजना के द्वारा ग्राहकों को जो सब्सिडी की राशि मिलती है वह सीधे ग्राहकों के बैंक खातों में पहुँच जाए। इसके बाद ग्रामीण परिवार के जरूरतमंद लोगों के लिए सब्सिडी छोड़ने की अपील गिव इट अप के रूप में शुरू की गई जिसके तहत 13 करोड़ लोगों ने सब्सिडी की राशि को वापस कर दिया। पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय भारत सरकार के अनुसार उज्ज्वला योजना से एलपीजी की प्रत्यक्ष कीमत में गिरावट आई पहले एलपीजी

 ISSN 0975-735X

कनेक्शन के लिए 4500 से 5000 रुपए खर्च करने पड़ते थे लेकिन अब इसकी कीमतें घटाकर 3200 रुपए कर दी गई। भारत सरकार द्वारा चलाई गई प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के अंतर्गत आधी राशि उपभोक्ता को सरकार द्वारा एकबारगी अनुदान के रूप में प्रदान कर दी जाती है। हॉट प्लेट और पहली बार सिलेंडर भरवाने के लिए कुल 1600 ग्राहकों को भरने पड़ते थे लेकिन भारत सरकार की तेल विपणन कंपनियों ने इसमें मासिक किस्तों का भी प्रावधान करा दिया है, जिससे ग्रामीण परिवार को दिया गया सिलेंडर भरने में वसूल कर लिया जाता है। इस वसूल की गई राशि को बाद में सब्सिडी के तौर पर आगे चलाया जाता है और उपभोक्ता के खाते में यह रकम आ जाती है। राज्य सरकारें भी उज्जवला योजना के अंतर्गत चूल्हे एवं रेगुलेटर के लिए धन प्रदान कर रही हैं इस प्रकार प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना सहकारी संघवाद का एक विशिष्ट उदाहरण माना जाता है। जर्मनी की सरकार द्वारा ऊर्जा एवं पर्यावरण तथा जल परिषद की सहायता से एक शोध में यह पाया कि 58 लाख कनेक्शनों के साथ उत्तर प्रदेश को सबसे ज्यादा लाभ हुआ इसके पश्चात लगभग 40 लाख कनेक्शन के साथ पश्चिम बंगाल दूसरा लाभान्वित प्रदेश रहा, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना आरंभ किए जाने के बाद कई तरह के नकारात्मक संदेश भी सामने आए जैसे ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ एलपीजी उपभोक्ता जिनके पास धन की कमी होगी वह बार-बार गैस सिलेंडर को नहीं भरवा पाएँगे।

ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उज्ज्वला योजना के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा अन्य कई योजनाओं को संचालित किया जा रहा है। इसी क्रम में भारत की ग्रामीण महिलाओं के लिए महिला शक्ति केंद्र की स्थापना की गई है। महिला शक्ति केंद्र केबिनेट की एक नई योजना है जिसके द्वारा महिला शक्ति केंद्र राष्ट्रीय, राज्य, जिला तथा ब्लॉक स्तर पर महिलाओं के लिए सरकारी योजनाओं को समन्वयित करना शामिल है तथा ग्रामीण महिलाओं को अपनी पूर्ण क्षमता तक पहुँचने में एक सहायक केंद्र के रूप में कार्य करने की दिशा में प्रयास किया जा रहा है। इस योजना के तहत ग्रामीण महिलाओं तक पहुँचने के लिए 3 लाख छात्र स्वयंसेवकों को जुटाए जाने का प्रावधान किया है। यह छात्र सेवक स्वयंसेवक के रूप में निम्नलिखित अवसरों की सुविधा उपलब्ध कराते हैं जैसे कौशल विकास, रोजगार, डिजिटल इंडिया, डिजिटल साक्षरता एवं स्वास्थ्य तथा पोषण की सुरक्षा। ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए स्थापित की गई महिला शक्ति केंद्र में सर्वप्रथम 115 पिछड़े जिलों को शामिल किया गया और इसमें 920 महिला शक्ति केंद्र की स्थापना की गई तथा 640 जिलों में जिला स्तरीय महिला केंद्र स्थापित किए गए तथा यह केंद्र 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजना को भी आगे बढ़ाने की दिशा में कार्य कर रहा है ताकि यदि राष्ट्र की बेटियाँ पढ़ेंगीं, जागरूक होगीं तो एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण में अपनी सार्थक सहभागिता को सुनिश्चित करेंगीं जिससे संपूर्ण समाज, राष्ट्र एवं विश्व का विकास होगा। विगत तीन दशकों में भारत में तीव्र आर्थिक विकास के साथ प्रजनन दर में गिरावट आई। परंतु ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि के उपरांत भी कामकाजी महिलाओं का अनुपात देश में अब भी कम बना हुआ है। भारत में ग्रामीण एवं शहरी इलाकों में 25 से 60 वर्ष की उम्र की महिलाओं और पुरुषों की कार्यबलों में भागीदारी देखें तो अंतर स्पष्ट देखा जा सकता है। ग्रामीण और शहरी इलाकों में पुरुष एवं महिला की भागीदारी दर की तुलना में शहरी महिलाओं की भागीदारी ज्यादा है। महिला रोजगार की दर में सबसे बड़ी गिरावट ग्रामीण क्षेत्रों में आई है। मौजूदा शोध से इस बात का पता चलता है कि 25 से 60 वर्ष की आयु की ग्रामीण महिलाओं के समूह में गिरावट मुख्य रूप से उन लोगों में

हुई है जो अभी विवाहित हैं। कृषि क्षेत्र में महिला कार्यबल भागीदारी 1987 के 46% से गिरकर 2011 में 33% हो गई और 2017 में और कम होकर 23% हो गई तथा मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र में महिला कार्यबल की भागीदारी 3.5% से घटकर 2.5% हो गई निर्माण और सेवा क्षेत्र अपवाद स्वरूप आज भी है जिसमें 1.5% की वृद्धि हुई है। भारतीय कृषि कार्यों में श्रम का लैंगिक विभाजन है। महिला श्रम का उन कार्यों में उपयोग किए जाने की संभावना कम होती है जिसमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है और उन कार्यों में उपयोग की अधिक संभावना होती है। भारत 1.5 अरब की आबादी वाला देश अपनी आर्थिक और सामाजिक क्षमता को पूरी तरह से प्राप्त नहीं कर पा रहा है, यहाँ 40% कामकाजी महिलाओं की आबादी उत्पादक नौकरियों में नहीं है तथा महिलाओं की सीमित गतिशीलता उनकी घरेलू जिम्मेदारियों के कारण है। क्योंकि एक महिला प्रतिदिन कम-से-कम 7 घंटे घरेलू जिम्मेदारियों में अपना समय व्यतीत करती है जबकि पुरुष उन कार्यों पर मात्र 30 मिनट खर्च करता है। इस प्रकार सामाजिक मानदंडों में बदलाव धीमी गति से होता है लेकिन महिलाओं के लिए सुरक्षित एवं सुलभ परिवहन प्रदान करना श्रम बाजार में उन्हें प्रवेश करने के लिए प्रेरित कर सकता है। भारत में महिला रोजगार में सुधार का एक अन्य तरीका उन्हें एक ऐसा हुनर प्रदान कराना हो सकता है जो श्रम बाजार की माँग के अनुरूप हो। इस प्रकार भारत में महिला रोजगार दर में कमी और गिरावट न केवल घर के भीतर महिलाओं की क्षमता को कम करती है बल्कि देश की आय और सामाजिक विकास के लिए भी हानिकारक है। इस प्रकार भारत के सबसे सफल प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ग्रामीण महिलाओं के लिए एक ऐसा सार्थक प्रयास किया जिससे ग्रामीण महिलाएँ समाज की मुख्यधारा में शामिल हो सकें तथा अपना सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास सुनिश्चित कर सकें। इस प्रकार प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के विकास के लिए एक सशक्त अवसर के रूप में सामने आया है।

संदर्भ

1. कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास को समर्पित पत्रिका विशेषांक 2018, पृ॰ 24-26
2. दैनिक जागरण 12 अगस्त 2022, योजना अप्रैल 2019 विकास को समर्पित पत्रिका
3. भारत 2021
4. योजना सितंबर 2018
5. 7 अगस्त 2020 पेज 13
6. 23 अगस्त 2020 दैनिक जागरण पेज 9
7. भारत 2022

Mob. 8004827397
kadambinialeña09@gmail.com

यूनेस्को तथा यूनिसेफ के शैक्षिक एवं अन्य कार्यों का अध्ययन

प्रो॰ कल्पना सैंगर, प्रोफेसर
संजय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लालकोठी स्कीम, जयपुर
लक्ष्मी छीपा, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रस्तावना : वर्तमान अवधि में कोई भी अकेला देश अपनी सभी जरूरतों को स्वयं पूरा नहीं कर सकता, उसे इस हेतु अन्य राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता इसलिए प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का सहयोग करता है। भारतीय संस्कृति की तो यह विशेषता रही है 'वसुधैव कुटुंबकम्'। इसी मूलभूत चिंतनधारा को ध्यान में रखकर संपूर्ण संसार आज वैश्वीकरण अथवा भूमंडलीकरण को अपना रहा है। वैश्वीकरण को हम विश्वग्राम की संकल्पना, विश्व एकमतता अथवा सहमति, नए अंतर्संबंधों का विकास, आधुनिकीकरण के नए विस्तार आदि अनेक प्रक्रियाओं के रूप में देख सकते हैं। विश्व के एक होने की भावना के चलते आज प्रदूषण, आतंकवाद, महामारी, विश्व में शांति एवं सुरक्षा की समस्या, ग्लोबल वार्मिंग, अशिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि सबकी सांझी समस्याएँ समझी जाने लगी हैं तथा इन समस्याओं के समाधान परस्पर सहयोग द्वारा खोजने के प्रयास किए जाने लगे हैं। इस दिशा में अंतर्राष्ट्रीय संगठन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) दुनिया का सबसे बड़ा संगठन है इसकी 1945 को स्थापना हुई। वर्तमान में 193 राष्ट्र इसके सदस्य हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के परिवार में अनेक अभिकरण एवं संगठन है जो पूरे संसार में मानवता की भलाई, विकास, पोषण, शिक्षा आदि से संबंधित कार्य करते हैं, ताकि एक सुंदर विश्व का निर्माण हो सके। इन संगठनों में प्रमुख है–विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNFPA), विश्व पर्यावरण संगठन (WTO), रेडक्रॉस, खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO), अंतर्राष्ट्रीय मौसम विज्ञान संगठन (WMO) आदि।

इनमें यूनेस्को एवं यूनिसेफ ऐसे संगठन है जो कि दुनिया में शिक्षा के विकास, प्रसार तथा संवर्द्धन संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य–

* यूनेस्को के कार्यों का अध्ययन करना।
* यूनिसेफ के कार्यों का अध्ययन करना।

संबंधित साहित्य का अध्ययन–

जोनाधन, मधुलिका (11 दिसंबर 2016)[1] 'यूनेस्को के 70 साल : सभी बच्चों के लिए आशा की किरण' यूनिसेफ की स्थापना 11 दिसंबर 1946 को न्यूयॉर्क में हुई थी। यह एक ऐसे संगठन के रूप में पहचाना जाता है जो सभी बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए काम करता है। यूनिसेफ ने भारत में सन् 1946 से कार्य करना शुरू किया था। भारत में पेनिसिलिन प्लांट, डी॰डी॰टी॰ प्लांट के निर्माण और श्वेत क्रांति में यूनिसेफ ने सहयोग किया था। यूनिसेफ यह मानता है कि प्रत्येक बालक स्वास्थ्य, सुरक्षित बचपन के समान अधिकार के साथ पैदा होता है। इसका मिशन सभी बच्चों पर केंद्रित है, जिसमें बच्चों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ

शिक्षा, सामाजिक संरक्षण, सुरक्षित पेय एवं स्वच्छता आदि शामिल है।

भागिआ, एन०ए० (1979)[2] ने भारत में यूनेस्को क्लब के कार्यों का अध्ययन किया जिसके प्रमुख उद्देश्य थे, यूनेस्को क्लब का पारिस्थितिय संगठनात्मक व आर्थिक आयाम के आधार पर परीक्षण करना, यूनेस्को क्लबों की गतिविधियों को समन्वित करने के लिए शीर्ष स्तर पर व एक स्वयंसेवी एकल निकाय की स्थापना के लिए संभावनाएँ व्यक्त करना। शोधकर्त्री ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि अधिकांश यूनेस्को क्लब्स (39 में से 38) उन ग्रामीण क्षेत्रों में थे, जहाँ कि जनसंख्या 1 लाख से अधिक थी।

जोंस पी० (2006)[3] 'अनन्य जनादेश : यूनिसेफ और शैक्षिक विकास' संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ) ने शैक्षिक विकास को बढ़ावा देने वाली संयुक्त राष्ट्र एजेंसी के रूप में तेजी से प्रसिद्धि प्राप्त की है। विस्तृत विश्लेषण यूनिसेफ के संक्रमण को आपातकालीन वस्तुओं और सेवाओं के आपूर्तिकर्त्ता से मानवीय भूमिका के लिए प्रस्तुत किया जाता है, जिसने विकास, सहायता प्राप्त करने और बच्चों और महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए विविधीकरण किया है। यूनिसेफ द्वारा शिक्षा के विकास पर इनका क्या प्रभाव पड़ा है, इसकी जाँच की जाती है। कई संस्थागत शक्तियों के बावजूद, यह तर्क दिया जाता है कि यूनिसेफ शिक्षा में नीतिगत स्पष्टता बढ़ाने और आर्थिक परिचालन प्रभावशीलता के लिए शैक्षिक विकास में यूनिसेफ के योगदान की किसी भी समकालीन समझ के लिए केंद्रीय बने हुए हैं।

कुमार, मुकेश (2019)[4] ने 'यूनेस्को का गठन, उद्देश्य, कार्य एवं उपलब्धियाँ' विषय पर अध्ययन किया। उन्होंने अपने शोध अध्ययन में पाया कि यूनेस्को संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन का लघु रूप है। यह संयुक्त राष्ट्र का एक घटक निकाय है। इसका गठन 4 नवंबर 1946 को हुआ था। इसका उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से शांति और सुरक्षा की स्थापना करना।

डायर जी० (2014)[5] 'आपातकालीन प्रतिक्रिया में यूनिसेफ का समृद्ध इतिहास' जब संघर्ष मिटता है या प्राकृतिक विघटन होता है तो आपातकाल के लिए सेवाएँ प्रदान करना यूनिसेफ के लिए चुनौती है। यह नागरिकों विशेषकर महिलाओं या बच्चों की जरूरत है, जो बाढ़ की चपेट में आकर या बाढ़ की चपेट में आ गए। अधिकांशत: आपातकालीन मामलों में बुनियादी हस्तक्षेप लागू किए जाते हैं, जिसमें स्वास्थ्य (आपात स्थिति में यूनिसेफ की सबसे बड़ी गतिविधि) जल आपूर्ति और स्वच्छता, शिक्षा, पोषण, सामुदायिक विकास, महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य, बाल सैनिकों, भूमि, खान जागरूकता और बाल कैदियों के लिए विशिष्ट कार्यक्रम भी कई आपातकालीन स्थितियों में कार्यरत हैं।

शोध व्याख्या–राष्ट्रपति ट्रुमेन के शब्दों में–'संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर, जिस पर आपने भी हस्ताक्षर किए हैं, एक ऐसी शक्तिशाली नींव है, जिस पर सुंदर विश्व का निर्माण किया जा सकता है। इसके लिए इतिहास आपका सम्मान करेगा।' एक सुंदर विश्व का निर्माण करने के लिए विश्वभर में यूएनओ के अनेक संगठन कार्यरत हैं। इनमें यूनेस्को तथा यूनिसेफ सबसे प्रमुख संगठन हैं।

यूनेस्को का परिचय–यूनेस्को का पूरा नाम 'संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन' है। यूनेस्को की स्थापना 4 नवंबर 1948 को लंदन में हुए नवंबर 1945 के सम्मेलन द्वारा प्रस्तुत किए गए विधान के अनुसार की गई। शुरुआत में यूनेस्को के केवल 20 सदस्य थे लेकिन वर्तमान में इसके सदस्य राष्ट्रों की संख्या 195 तक पहुँच गई है।

मानव जाति का कल्याण एवं अंतर्राष्ट्रीय शांति स्थापित करने के लिए यूनेस्को का निर्माण हुआ है। यूनेस्को का मुख्यालय पेरिस (फ्रांस) में हैं। यह संस्था विभिन्न समुदायों में परस्पर ज्ञान एवं सद्‌भावना उत्पन्न करने में सहायता करती है। इसका उद्देश्य शांति एवं सुरक्षा के लिए योगदान करना है, जिसकी पूर्ति शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा होती है।

यूनेस्को द्वारा किए जाने वाले कार्यों को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

शिक्षा से संबंधित कार्य–शिक्षा इस संगठन के समस्त कार्यों के केंद्र पर स्थित है। इसने 'निशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा' के विकास हेतु उपाय प्रस्तुत किए है। यूनेस्को ने इतिहास, भूगोल एवं विदेशी भाषाओं की पढ़ाने की कला के शोधन हेतु अनेक प्रयास किए है ताकि अंतर्राष्ट्रीय सद्‌भावना को बढ़ावा मिल सके। यूनेस्को ने 'बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम' के विकास हेतु उपाय प्रस्तुत किए हैं। यूनेस्को ने इतिहास, भूगोल एवं विदेशी भाषाओं की पढ़ाने की कला के शोधन हेतु अनेक प्रयास किए हैं ताकि अंतर्राष्ट्रीय सद्‌भावना को बढ़ावा मिल सके। यूनेस्को ने 'बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम को बढ़ावा दिया है ताकि निर्धनता, अज्ञानता तथा अव्यवस्था की सीमा को त्यागकर सर्वसाधारण लोगों को भी साक्षर बनाया जा सके।

यह 'शिक्षण नहीं तो विकास नहीं' के सिद्धांत पर कार्य करता आ रहा है। हैतीयती में इसकी 'प्रारंभिक योजनाएँ' अत्यंत ही उल्लेखनीय रही हैं। यूनेस्को की सहायता से नई दिल्ली में स्थित केंद्रीय विश्वविद्यालय जामिया मिलिया में युवाओं को साक्षर बनाने से संबंधित शोध तथा मुद्रण किया गया।

संस्कृति संरक्षण संबंधी कार्य–यूनेस्को के सांस्कृतिक कार्यो में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है, विश्व की विरासतों का संरक्षण करना एवं संसार की विविधताओं का भली-भाँति रखरखाव करना। यूनेस्को ने इस हेतु 'वर्ल्ड हेरिटेज कमेटी' का गठन किया है। यह कमेटी विश्व की विरासतों का संरक्षण एवं संसार की विविधताओं का भली प्रकार से रखरखाव करती है। यूनेस्को की 'वर्ल्ड हेरिटेज कमेटी' विशेष स्थानों जैसे–पर्वत, वन क्षेत्र, झील मरूस्थल, भवन, स्मारक, शहर आदि का चयन कर उनकी देखभाल यूनेस्को के तत्वावधान में करती है।

सांस्कृतिक विरासतों को मूर्त एवं अमूर्त दो भागों में बाँटा गया है। अब तक (जुलाई 2021) पूरी दुनिया में लगभग 1154 स्थलों को विश्व विरासत स्थल घोषित किया जा चुका है। भारत में कुल 38 मूर्त विरासत धरोहर स्थल हैं जिनमें 30 सांस्कृतिक, 7 प्राकृतिक एवं 1 मिश्रित श्रेणी के हैं। अमूर्त सांस्कृतिक विरासतों की सूची में भारत की 13 विरासतें शामिल हैं जिनको यूनेस्को ने मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में मान्यता दी है। इसके अंतर्गत पारंपरिक शिल्प कौशल, प्रकृति एवं ब्रह्मांड के विषय के ज्ञान तथा अभिव्यक्ति आदि को शामिल किया गया है।

विज्ञान के विकास संबंधी कार्य–'विज्ञान का विकास करना' यूनेस्को के प्रमुख कार्यों में से एक हैं। इसके अंतर्गत सामाजिक विज्ञान एवं प्राकृतिक विज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है। शोध कार्यों की प्रगति में सहायता करना यूनेस्को का प्रमुख कार्य है। यूनेस्को विश्व के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संगोष्ठी तथा कार्यशाला आदि का आयोजन समय-समय पर करवाता रहता है।

यूनेस्को के विशेषज्ञता वाले कार्यक्षेत्र–यूनेस्को के विशेषज्ञता वाले कार्यक्षेत्रों को पाँच भागों में बाँटा गया है–(1) शिक्षा, (2) संप्रेषण एवं सूचना, (3) संस्कृति, (4) प्राकृतिक विज्ञान, (5) सामाजिक एवं मानव विज्ञान।

सामाजिक एवं मानव विज्ञान समझौते करना, लेखा सामग्री संबंधी कार्य, राष्ट्रीय आयोगों में

वृद्धि करना तथा सहयोग का विकास आदि कार्य किए जाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त भाषाओं का संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, शरणार्थियों का पुनर्वास, पत्रकारों की सुरक्षा आदि अनेक कार्य यूनेस्को द्वारा विश्वभर में किए जाते हैं।

यूनिसेफ का परिचय—यूनिसेफ का पूरा नाम 'संयुक्त राष्ट्र संघ बाल कोष' है। विश्व के उपेक्षित तथा वंचित बच्चों के जीवन को सुखी बनाने उनके अंधकार से भरे जीवन में प्रकाश की किरणें बिखेरने और उनके सामने उज्ज्वल भविष्य की तस्वीरें पेश करने के उद्देश्य से 11 दिसंबर 1946 को संयुक्त राष्ट्र बाल कोष की स्थापना की गई।

इसका मुख्यालय 'न्यूयॉर्क (अमेरिका) में स्थित है। वर्तमान में इसके निदेशक केथरिन रसैल हैं। प्रतिवर्ष 11 दिसंबर को 'यूनिसेफ दिवस' के रूप में मनाया जाता है। बालकों के कल्याण एवं विकास हेतु कार्य करने के लिए वर्ष 1965 में संयुक्त राष्ट्र बाल कोष को 'शांति का नोबल पुरस्कार' प्रदान किया गया। वर्ष 2006 में 'प्रिंस ऑफ अस्तुरियस अवार्ड' तथा वर्ष 1989 में 'इंदिरा गांधी शांति पुरस्कार' जैसे प्रतिष्ठित सम्मानों से नवाजा गया। जब संयुक्त राष्ट्र कोष की स्थापना की गई थी तब इसका मुख्य उद्देश्य द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रभावित हुए बालकों की सुरक्षा करना था परंतु वर्तमान में यूनिसेफ संपूर्ण विश्व के बच्चों के कल्याण के लिए कार्य करती है।

यूनिसेफ के कार्य—यूनिसेफ के प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं—बाल रक्षा, बाल अधिकार, स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, योजना और निगरानी, पानी, सेनिटेशन और हाइजीन, किशोर विकास और भागीदारी, सामाजिक नीति और समावेश, संचार और मानवीय, साझेदारी, लैंगिक समानता, मानव संसाधन तथा मूल्यांकन।

मौजूदा समय में यूनिसेफ बच्चों के जीवन, सुरक्षा और विकास के लिए पूरी दुनिया में काम करता है। इसका मुख्य उद्देश्य उन बच्चों की सहायता करना है जो सबसे अधिक गरीब, वंचित, उपेक्षित और पिछड़े हैं। विश्व के लगभग 150 से अधिक देशों के कार्यालय तथा मुख्यालय यूनिसेफ के नेटवर्क से जुड़े अन्य कार्यालयों तथा 34 राष्ट्रीय समितियाँ मेजबान सरकारों के साथ विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से यूनिसेफ के उद्देश्यों को पूरा करती हैं। इन कार्यक्रमों एवं योजनाओं में गर्भवती महिलाओं एवं प्रसूताओं के लाभ की परियोजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है।

बच्चों को गुणात्मक शिक्षा प्राप्त हो इसके लिए यूनिसेफ ऐसे पाठ्यक्रमों के निर्माण का प्रयास करता हैं जो बच्चों की अधिगम क्षमता पर आधारित हों तथा बाल केंद्रित हों। इसके द्वारा आयोजित कार्यक्रम स्कूल से बाहर के बच्चों को ट्रेक करने के लिए सिस्टम को मजबूत करने पर केंद्रित होते हैं। यूनिसेफ स्कूल छोड़ चुकी बालिकाओं को फिर से शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करता है।

यूनिसेफ प्रत्येक वर्ष विश्वभर में नवजात बच्चों के टीकाकरण के लिए सर्वाधिक टीके प्रदान करता है तथा यह कार्य विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग से करता है। वर्तमान में कोरोना महामारी से बचाव हेतु जागरूकता फैलाने संबंधी अनेक कार्य कर रहा है। यह लगभग 49 से अधिक देश में एचआईवी/एड्स से बचाव की लड़ाई में लगातार कार्यरत है। यूनिसेफ द्वारा विश्व के विभिन्न स्वास्थ्य सेवा संस्थानों के साथ मिलकर बच्चों को पानी, स्वच्छता, इंफेक्शन आदि के लिए कैंपेन चलाए जा रहे हैं।

यूनिसेफ के अनुसार प्रत्येक बालक सुरक्षित बचपन एवं स्वास्थ्य आदि के समान अधिकार के साथ पैदा होता है। गरीबी, भुखमरी तथा बीमारी विश्व के विकास में बाधा होने के साथ-साथ

बालकों के अधिकारों का भी हनन है। यूनिसेफ किशोरों को स्वास्थ्यप्रद भोजन और पेय पदार्थों को चुनने, एनीमिया की रोकथाम तथा उपचार को बढ़ावा देने में सहायता करने के लिए क्रियाकलापों का समर्थन देता है तथा आयरन, फोलिक एसिड, विटामिन ए, आयोडीन और खनिज की कमियों को रोकने के लिए भोजन के सुदृढ़ीकरण पर बल देता है।

यूनिसेफ के द्वारा बच्चों के पौष्टिक आहार की व्यवस्था तथा शुद्ध पीने का पानी की व्यवस्था से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। चूँकि कुपोषण की शिकार महिलाओं द्वारा कुपोषित बच्चों को जन्म देने की संभावना होती है, यूनिसेफ द्वारा महिलाओं को बेहतर स्वास्थ्य सुविधा एवं गुणवत्तापूर्ण देखभाल तथा सेवाएँ प्राप्त हुई हैं।

बच्चों के अधिकार यूनिसेफ के कार्यों को एक ऐसी दिशा प्रदान करते हैं जो एक ऐसे संसार का निर्माण करते हैं जिसमें सभी बालक एवं बालिकाओं के पास समान अधिकार हैं।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवेचना से निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

* यूनेस्को तथा यूनिसेफ अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा शिक्षा, पोषण, अनुसंधान के गुणात्मक विकास के लिए उच्च श्रेणी के प्रयास किए जा रहे हैं।
* यह शोध अध्ययन यूनेस्को के शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक कार्य तथा यूनिसेफ के विभिन्न कार्य जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, बाल रक्षा आदि के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करेगा।
* इसके माध्यम से लोगों में यूनेस्को तथा यूनिसेफ के कार्यों के प्रति जागरूकता बढ़ेगी तथा उनमें एक अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास होगा।
* बालकों में अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना, शांति, मानव मात्र के लिए प्रेम व समानता की भावना का विकास होगा।

संदर्भ

1. https://www.prabhatkhabar.com
2. थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एज्युकेशन, 1978-1988, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, एनसीईआरटी, पृ॰ 72
3. पी॰ जोस, (2006) अनन्य जानदेश : यूनिसेफ और शिक्षा विकास, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजकेशनल डवलपमेंट वाल्यूम 26 (6), पृ॰ 591-604
4. मुकेश कुमार, (2018), यूनेस्को का गठन, उद्देश्य, कार्य एवं उपलब्धियाँ' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिपलिनरी एज्यूकेशन एंड रिसर्च, वाल्यूम 4 (5), पृ॰ 93-94
5. डायर जी (2014), आपातकालीन प्रतिक्रिया में यूनिसेफ का समृद्ध इतिहास, विश्व स्वास्थ्य सांख्यिकी त्रैमासिक।

Laxmi Chhipa
Plot No.97, Jhulelal Nagar,
Muhana Mod, Sanganer,
Jaipur 302029 Rajasthan
Mob. 9828372738
chhipalaxmi7@gmail.com

लैंगिक विभेदिता के आधार पर जिला बड़वानी में निवासित अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

कुन्दन गाठे एवं अनिल मेश्राम
समाजशास्त्र विभाग, समाज विज्ञान संकाय
आई. ई. एस. विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़ (म०प्र०)

1. **प्रस्तावना**–भारतवर्ष अनेक जातियों-जनजातियों, धर्म-पंथों तथा संस्कृति-संप्रदायों का भंडार है। जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था का प्राण-तत्त्व है। भारतीय समाज में विभिन्न जनजातियों का पाया जाना हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। आधुनिक युग की खोज उपभोगवाद पर आधारित है किंतु आदिम इतिहास के संदर्भ में आदिम जनजातीय का अध्ययन करना भी आधुनिक समाज की आवश्यकता है। ये आदिम आदिवासी जनजाति जंगलों में निवास करती है, जंगल ही इनका जीवन है तथा आधुनिकता की चकाचौंध से कोसों दूर है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि ये जनजाति अपने जंगली वातावरण में ही मदमस्त जीवनयापन करने के लिए बनी है।

पराधीनता के समय में जब अँग्रेजों ने इनके निवास स्थलों पर अतिक्रमण किया तो ये सीधे-सादे आदिवासियों ने अँग्रेजी सत्ता के विरुद्ध अपने परंपरागत हथियारों (तीर-धनुष, भाले) से लड़ाई लड़ी। 'बिरसा मुंडा' आदिवासी समुदाय ने आजादी की लड़ाई में नेतृत्व किया और अपनी साहसिक प्रवृत्ति का परिचय दिया। ये आदिवासी और जनजातियाँ जंगलों, नदी, नालों और जंगली जानवरों के बीच सदियों से सहचर करते आ रहे हैं। यदि कोई इनके क्षेत्रों में अतिक्रमण करें तो ये सीधे-सादे आदिवासी भी उग्र हो उठते हैं। ये आदिवासी समुदाय जो सदियों से जंगलों में रहते आ रहे हैं। इन जनजातियों में सामाजिक-आर्थिक विकास की कोई खास होड़ भी नहीं है, इसी कारण इस समुदाय में सदियों बाद भी विकासात्मक परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। ये जनजाति अपने परिवार, समाज में ही खुश या सुखी-संपन्न है। ऐसा लगता है कि ये दूसरे समुदाय या समाज के लोगों से मिलना ही नहीं चाहते हैं और कोई समाजशास्त्री इसके बारे में अध्ययन करना चाहता है, तो ये अपने इतिहास के बारे में जानते ही नहीं हैं या अपने बारे में कुछ बताना ही नहीं चाहते हैं। वर्तमान में ये जनजाति अत्यंत पिछड़ी, गरीब, अभावग्रस्त और मुख्य धारा से विमुख है। भारतीय समाज में किसानों, दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों और जनजातियों का एक ऐसा विशाल समूह हमेशा से विद्यमान रहा है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीति और सरकारी योजनाओं से हमेशा से ही वंचित और विकास से विमुख रहा है। सरकार ने पहले तो इन वंचित समूहों के विकास हेतु कोई खास योजना ही नहीं बनाई और यदि वर्तमान में इन समूहों को मुख्य धारा से जोड़ने की योजना बनाई भी गई तो सरकारी योजनाओं का समुचित लाभ ये समूह नहीं उठा पा रहे हैं।

अधिकांश आदिवासी, संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। वे सामान्यतः

 ISSN 0975-735X

क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव है तथा ऊपर की थोड़ी ही पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमशः किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं में घुल-मिल जाता है। सीमित परिधि लता लघु जनसंख्या के कारण इन संस्कृतियों के रूप में स्थिर रहती है, किसी एक काल में होने वाले सांस्कृतिक परिवर्तन अपने प्रभाव एवं व्यापकता में अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। परंपरा केंद्रित आदिवासी संस्कृतियाँ इसी कारण अपने अनेक पक्षों में रूढ़िवादी सी दिखाई पड़ती है। भारत के आदिवासियों का इतिहास आर्यों के आगमन से पूर्व का है। कई युगों तक इस उपमहाद्वीप के पहाड़ी भू-भागों में उनका आधिपत्य था। परंतु समय के साथ पढ़े-लिखे लोगों ने, उन लोगों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया जिनकी परंपराएँ मौखिक संस्कृति पर आधारित थीं। उनपनिवेशी अवधि के दौरान आदिवासियों को जनजातियों का नया नाम दिया गया और स्वाधीनता पश्चात भारत में उन्हें अनुसूचित जनजातियों के रूप में जाना गया।

वर्ष 1951 में भारत की जनगणना के अनुसार आदिवासियों की संख्या 9,91,11,498 थी, जो वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 124,326,240 हो गई है। यह देश की जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है अभी के अनुसार 10 प्रतिशत है जो कि लगभग 18 करोड़ जनसंख्या है। प्रजातीय दृष्टि से इन समूहों में नीग्रिटो, प्रोटो आस्ट्रेलायड और मंगोलायड तत्व मुख्यत: पाए जाते हैं, यद्यपि कतिपय नृतत्ववेत्ताओं ने नीग्रिटो तत्त्व के संबंध में शंकाएँ उपस्थित की हैं। भाषा की दृष्टि से इन्हें आस्ट्रों-एशियाई, द्रविड़ और तिब्बती-चीनी-परिवारों की भाषाएँ बोलने वाले समूहों में विभाजित किया जा सकता है। भौगोलिक दृष्टि से आदवासी भारत का विभाजन चार प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है—उत्तरपूर्वीय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र। प्राचीनकाल से ही आदिवासियों ने भारतीय परंपरा के विकास में अपनी मूल परंपराओं और आदिवासी संस्कृति से महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी का परिणाम है कि आज भी उनके रीति-रिवाज और विश्वास भारत के सम्प्रदाय और धर्मों में विविध रूपों में देखे जाते हैं, तथापि यह निश्चित है कि वे बहुत पहले ही भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की प्रमुख धारा में मिल गए थे। आदिवासियों की सांस्कृतिक भिन्नता को बनाए रखने में कई प्रयत्नों का योग रहा है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनमें से अनेक में प्रबल 'जनजाति-भावना' है। सामाजिक-सांस्कृतिक-धरातल पर उनकी संस्कृतियों के गठन में केंद्रीय महत्त्व है।

वर्तमान में भारत में जनजातीय समूहों की कुल संख्या 700 से अधिक है, जिनमें प्रमुखत: कोल, भील, गोंड, कोरकू, संभाल, मुंडा, भिलावा, उराँव आदि हैं। इनमें भील एक बड़ी जनजाति के रूप में उभरी है। भील मध्य प्रदेश की दूसरी बड़ी जनजाति है, ये भिलाला तथा भील गरासिया भी कहलाते हैं। मध्य प्रदेश में ये मुख्यत: खरगौन, धार, बड़वानी, झाबुआ और रतलाम जिलों में निवासित जनजाति है। वर्तमान में भील जनजाति के अंतर्गत भिलाला और बरेला जाति धार, बड़वानी, खरगौन, खंडवा और अलीराजपुर जिलों में निवास करती है। ये मुख्य रूप से निमाड़ी भाषा का प्रयोग करते हैं जो दक्षिणी राजस्थानी और मारवाड़ी भाषा का मिला-जुला रूप है। इनका रहन-सहन अपने इलाकों में रहने वाले अन्य लोगों की तरह ही सा मान्य है। मालवा और निमाड़ अंचल के विभिन्न नगरों में संलग्न भील पुरुषों एवं महिलाओं को बड़ी संख्या में देखा जा सकता है। हालाँकि भीलों के जीवनयापन का प्रमुख स्रोत कृषि है तथापि कृषि के अलावा अन्य रोजगारों में भी अब इनकी प्रविष्टि देखी जाने लगी है। वास्तव में भील मध्य प्रदेश ही नहीं वरन् भारत की एक बड़ी जनजाति है, जिनकी अपनी पृथक संस्कृति है। अपनी संस्कृति को साक्षात भोगते हुए, उसमें जीते हुए, पारस्परिक नियंत्रण के माध्यम से अपनी संस्कृति को संरक्षित रखे हैं तथा

पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका सफलतापूर्वक संचार कर रहे हैं। अफसोस की बात है कि गत कुछ समय में इन आदिवासियों के वैभव एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं में बदलाव आने लगा है। भील जनजाति में शिक्षा का स्तर न्यूनतम और बाह्य जीवन के कम संपर्क होने के कारण उनके सृजन में नवीनता तथा परिवर्तन तो अधिक दिखाई नहीं पड़ते हैं, लेकिन आजीविका और रोजगार के चलते ये भील अब बाहरी दुनिया से संपर्क करते नजर आने लगे हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मानवीय विकास का चक्र निरंतर चलता रहता है। समाज का कर्त्तव्य है कि समाज का प्रत्येक प्राणी सुखी-संपन्न जीवनयापन करे। इस हेतु सरकार ने विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन किया है। वर्तमान परिवेश में आदिवासी जनजाति समुदाय का विकास सरकार की प्रमुखता है। देश के संपूर्ण विकास में सभी समुदाय का सहयोग आवश्यक है, किसी एक समुदाय को छोड़कर देश का समग्र विकास नहीं किया जा सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व की अनेक मानव जातियों ने विकास का कदम एक साथ रखा जिसमें से कुछ मानव-जातियों ने अपना विकास परिष्कृत रूप से किया और आधुनिक प्रजातियों में आ गए। किंतु आधुनिकयुग में अनेक आदिम जाति विलुप्त हो गईं या विलुप्ति के कगार पर है, किंतु भारतीय आदिम जनजाति ने अपने आपको विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रखा है जो कि भारतीय जनजातियों की प्रमुख विशेषता है।

2. **अध्ययन का शीर्षक**–लैंगिक विभेदिता के आधार पर जिला बड़वानी में निवासित अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का तुलनात्मक अध्ययन।

3. **अध्ययन के उद्देश्य**–प्रस्तावित अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्यों का निर्धारिण किया गया है–

* जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का अध्ययन करना।
* जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति की महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का अध्ययन करना।

4. **अध्ययन की परिकल्पना**–जिला जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जा सकेगा।

5. **परिसीमा एवं न्यादर्श**

* प्रस्तुत शोध कार्य मध्य प्रदेश राज्य के जिला बड़वानी से परिसीमित किया गया है।
* प्रस्तुत शोध हेतु प्राथमिक संमकों के रूप में स्वनिर्मित प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों को आधारित आँकड़ों का रूप दिया गया है।

6. **शोध का क्षेत्र**–प्रस्तावित अध्ययन हेतु बड़वानी जिले को चयनित किया गया है। इस जिले की स्थापना 25 मई 1998 को हुई, पूर्व में यह जिला खरगौन (पश्चिम निमाड़) जिले का एक भाग था। यह जिला मध्य प्रदेश के दक्षिण पश्चिम में स्थित है, नर्मदा नदी इसकी उत्तरी सीमा निर्मित करती है तथा जिले में दक्षिण में सतपुड़ा एवं उत्तर में विंध्याचल पर्वत श्रेणिया विश्रृंखलित है। बड़वानी नाम की उत्पत्ति 'बड़' के वन से हुई है, जिनसे यह क्षेत्र पुराने समय में घिरा हुआ था। यहाँ निवासित भिलाला और बरेला जनजाति अपने आपकों स्वतंत्र जनजातीय समूह के रूप से स्वीकार करती है। भिलाला और बरेला समूह को भील जनजाति का उपसमूह माना जाता है।

7. **शोध पद्धति**–प्रस्तुत शोध समस्या के वर्तमान हेतु उन्मुख होने के कारण तथा शाधार्थी के द्वारा अध्ययन के संपादन को प्राकृतिक तथा स्वाभाविक स्थिति में किए जाने के कारण अध्ययन

के लिए शोध की सर्वे विधि का प्रयोग किया गया है। जिसमें शोध की समस्या के वर्तमान उन्मुख होने के बावजूद अतीत की घटनाओं पर विचार किया जाना होता है। न्यादर्शों से प्राप्त समंकों को प्राथमिक समंकों में तथा शोध के लिए द्वितीयक समंकों के रूप में जिला बड़वानी से संबंधित क्षेत्रीय, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अभिलेखों तथा प्रपत्रों को शामिल किया गया है।

8. **शोध हेतु न्यादर्श**–किसी भी शोध हेतु प्रदत्तों के एकत्रीकरण के न्यादर्शों का प्रतिचयन किया जाना आवश्यक होता है। प्रस्तुत शोध कार्य हेतु जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति 25 जनजातीय पुरुष एवं 25 जनजातीय महिलाओं को यादृच्छिक प्रतिचयन प्रविधि द्वारा न्यादर्श रूप में चयनित किया गया है।

9. **प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधि**–प्रस्तुत शोध हेतु परीक्षण विकसित करने एवं समंकों की व्याख्या करने के लिए उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करके समंकों का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार परिकल्पना का परीक्षण का परीक्षण कर निष्कर्ष को प्रतिपादित किया गया। प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियों के अन्तर्गत मध्यमान, माध्य विचलन, माध्य मानक विचलन, माध्य मानक त्रुटि एवं टी–परीक्षण को प्रयुक्त कर आवश्यकतानुसार दंड आरेख का निरूपण किया गया है।

सारणी क्रमांक-1

जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के तुलनात्मक अध्ययन का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र०	विवरण	N	M	Sd	SEM	SED	t-value
1.	जिला बड़वानी के जनजातीय पुरुष	25	15.84	1.60	0.32	0.455	0.2635
2.	जिला बड़वानी की जनजातीय महिलाएँ	25	15.72	1.62	0.35		

Df = N1+N2-2=48

p<.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

दंड आरेख - 1

जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के तुलनात्मक अध्ययन के सांख्यिकीय विश्लेषण का दंड आरेखीय निरूपण

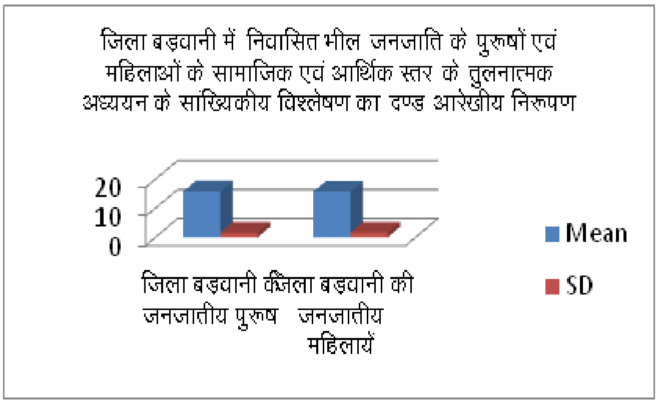

10. **प्रदत्तों का विश्लेषण**–सारणी क्रमांक 1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के तुलनात्मक अध्ययन के सांख्यिकीय विश्लेषण में भील जनजाति के पुरुषों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 15.84 तथा माध्य विचलन 1.60 पाया गया है, इसी तरह भील जनजाति की महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 15.72 तथा माध्य विचलन 1.62 पाया गया है। विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के सांख्यिकीय विश्लेषण में टी–परीक्षण मूल्य 0.2635 पाया गया है, जो $p<.05$ सार्थकता स्तर पर असार्थक है।

11. **परिकल्पना का परीक्षण**–सारणी क्रमांक 1 से प्राप्त होता कि जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के तुलनात्मक अध्ययन के सांख्यिकीय विश्लेषण में भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया है, अतएव पूर्व निर्मित परिकल्पना 'जिला बड़वानी में निवासित भील जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जा सकेगा' को स्वीकृत किया जाता है।

संदर्भ

1. अनमोल सिन्हा, आधुनिकता बनाम प्राचीनता : एक समीक्षात्मक अध्ययन, प्रकाशन शोध प्रपत्र, 2021
3. अनिता चौरासे, पाश्चात्य संस्कृति के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, एम॰फिल॰ जेजेटीयू, राजस्थान, 2005
5. अवधूत सिंह 2008, परंपरागत दृष्टिकोण के अंतर्गत भारतीय आध्यात्मिक दर्शन का विवेचनात्मक अध्ययन, एस॰आर॰जे॰ प्रकाशन, कोल्लम, 2008
7. राधा, भाषा और आधुनिक संस्कृति की आवश्यकताएँ, रामकृष्ण मिशन, प्रकाशन 2020
8. संदीप कुमार मेघवाल, आदिवासी कला एवं संस्कृति की समकालीन चुनौतियाँ, अपनी माटी, 2019

kundan.vmfi@redffimail.com

 ISSN 0975-735X

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त अधिगम सामग्री के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन

आवेश श्रीवास्तव, सब्बल पटेल एवं प्रियंका पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग, आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़, भोपाल

1. **प्रस्तावना**—शिक्षा ही जीवन है एवं जीवन ही शिक्षा है। शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। हम देखते हैं कि पर्यावरण की प्रत्येक वस्तु कुछ-न-कुछ सीख देती है। जब-जब विश्व स्तर पर किसी समस्या के समाधान की बात सोची गई, तब-तब एकमत होकर विचारकों ने उसे शिक्षा के माध्यम से पूरा करने का सुझाव दिया क्योंकि किसी भी परिवर्तन को शिक्षा के माध्यम से ही स्वीकार किया जाता है एवं कराया जाता है। आज संपूर्ण विश्व के समक्ष पर्यावरण असंतुलन की समस्या है, जिसका हल पर्यावरण शिक्षा से ही किए जाने हेतु सभी प्रयत्नशील है। आज विश्व की गंभीर समस्या पर्यावरण प्रदूषण जैसे—जल, वायु, भूमि, ध्वनि, ठोस अपशिष्ट, रेडियोधर्मी प्रदूषण, कीटनाशक दवाओं का प्रयोग इत्यादि और पर्यावरण संकट जैसे—बाढ़ का आना, भूकंप, भूचाल, आँधी, ज्वालामुखी विस्फोट, अधिक वर्षा, चक्रवात, टाइफून, परमाणु विस्फोट, जहरीली गैसों का कारखानों से रिसाव, अम्ल वर्षा और सबसे अधिक संकट तो ओजोन परत में छिद्र से उत्पन्न हो रहा है। विश्व के सभी राष्ट्र तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ इसकी गंभीरता का अनुभव कर रहे हैं तथा पर्यावरण प्रदूषण एवं संकट के नियंत्रण तथा संरक्षण के लिए प्रयत्नशील है।

आज जीवन के बदलते हुए क्रम में शिक्षा एक मानसिक प्रक्रिया मात्र नहीं रह गई है, बल्कि राष्ट्रीय विकास एवं पुनर्निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गई है। आज सभी विकसित एवं विकासशील राष्ट्र पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता को समान रूप से महत्त्व दे रहे हैं, क्योंकि विश्व के सभी देश आज किसी-न-किसी प्रकार के पर्यावरणीय संकट से ग्रस्त हैं, और वे भिन्न-भिन्न समस्याओं के बावजूद इस बात पर एक मत है कि जितनी तेजी से आज पर्यावरण की समस्याएँ उठी है, चाहे वह जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभाओं के कारण हो अथवा औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप हो या कोई अन्य कारण हो उसको सरकार या जनता अथवा दोनों ही सुधार कर पिछले रूप में नहीं ला सकती, मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का जिस दुर्दांत रूप में शोषण किया है, और उससे जो प्रकृति के संचित कोष रिक्त हो रहे हैं, उसे वापस पूरा नहीं किया जा सकता और यहाँ तक कि लोगों के अदूरदर्शिता पूर्ण कार्य-व्यवहार के कारण जो जल, वायु, भूमि या अन्य प्रदूषण हुआ है उसे बदला नहीं जा सकता, लेकिन पर्यावरण शिक्षा के द्वारा हम मनुष्य को जागरूक एवं पर्यावरण सुरक्षा हेतु उसे प्रेरित कर सकते हैं।

2. **पर्यावरण शिक्षा**—शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली विकास की प्रक्रिया है। शिक्षा के माध्यम से ही हम सभी मनुष्यों को यह समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि उनके कृत्यों से ही स्वर्ग नरक बन रहा है, विशाल प्राकृतिक निधियों वाली पृथ्वी बंजर हो रही है, भविष्य की बात छोड़े

वर्तमान पीढ़ी का जीवन जीना भी दूभर हो गया है। भारतीय संस्कृति साहित्य में पर्यावरण शिक्षा की जड़ें अधिक प्राचीन है। वैदिक युग में पशु-पक्षियों तथा पेड़ पौधों के महत्त्व का उल्लेख मिलता है। पुराणों एवं उपनिषदों में पृथ्वी को सुख-समृद्धि तथा विकास का स्रोत मानते थे तथा पर्यावरण की गुणवत्ता के लिए यज्ञ, हवन को महत्त्व दिया गया है। आज पर्यावरण प्रदूषण से परिस्थितिकी बिल्कुल विपरीत हो रही है, यहाँ तक कि प्राकृतिक वायु श्वाँस लेने योग्य नहीं हैं, पानी पीने योग्य नहीं है तथा भूमि कृषि करने योग्य नहीं रह गई हैं। इसलिए आज पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव व्यापक रूप में किया गया है।

पर्यावरण शिक्षा के इन सभी पक्षों को विद्यार्थियों तक पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से ही पहुँचाया जा सकता है। इसलिए शिक्षकों के हर स्तर के प्रशिक्षण में 'पर्यावरण शिक्षा' को विशेष स्थान दिया गया है और सभी प्रशिक्षण यहाँ विद्यालयों में विशेष प्रश्न-पत्र के रूप में मान्यता दी गई है, ताकि शिक्षक कक्षा में पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों को चरितार्थ कर सके। पर्यावरण शिक्षा जीवन के पारिस्थितिक रूप से स्थाई तरीकों को प्रोत्साहित करती है और भविष्य के प्रति सकारात्मक लेकिन यथार्थवादी दृष्टिकोण पैदा करने की कोशिश करती है। छात्रों को मूल्यांकन करने, निष्कर्ष निकालने और इसपर कार्य करने के लिए तैयार किया जाता है। वे प्रभावी होने के लिए अपने स्वयं के सहित, वैचारिक स्रोतों और दृष्टिकोणों की एक विस्तृत श्रृंखला से तथ्यों, अवधारणाओं और मूल्यों को आकर्षित करते हैं। पर्यावरण शिक्षा के लिए सीखने के अनुभवों की आवश्यकता होती है जो योजनाबद्ध, केंद्रित और संचयी होते हैं। पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से पूर्व-विद्यालय से 12 वर्ष तक के छात्र पर्यावरण की गतिविधि को समझना, पर्यावरण की देखभाल करना और आनंद लेना सीखेंगे, वह इस ग्रह पर जीवन की विविधता को बनाए रखने में मदद करेंगे।

एनसीईआरटी ने 1957 में पर्यावरण आधारित पाठ्य-सामग्री बनाने वाले स्कूल स्टेज के लिए पाठ्य पुस्तकों के बड़े पैमाने पर पाठयक्रम संशोधन का कार्यक्रम चलाया है। कक्षा प्रथम और द्वितीय के लिए प्राथमिक स्तर पर, प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण को समग्र रूप से शामिल किया गया था और इन छात्रों की सीमित भाषा दक्षता को देखते हुए पर्यावरण अध्ययन में एक शिक्षक मार्गदर्शिका विकसित की गई थी। मध्य चरण के लिए, पर्यावरण पर आधारित एक एकीकृत विज्ञान पाठ्यक्रम, और जीवित और बदलते पर्यावरण के लिए आवश्यक क्षमता को प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया गया है, जो मध्य चरण में विकसित सामाजिक और भौतिक पर्यावरण को समझने के लिए माध्यमिक चरण में अध्ययन के माध्यम से आगे प्रबलित किया गया है। भूगोल, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि जैसे विषय में, पर्यावरण शिक्षा से संबंधित कुछ इकाइयाँ जनसंख्या, भूमि संसाधन आदि हैं और जिनका उपयोग प्रकृति में खाद्य और पोषण, संरक्षण, प्रदूषण और स्वास्थ्य स्वच्छता के लिए किया जाता है। कई राज्यों ने इन पाठ्य-सामग्री को अपनाया है।

1986 में पाठ्यक्रम विकास में और बदलाव हुए। एनपीई के कार्यान्वयन को रेखांकित करने वाले राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेम वर्क ने पर्यावरण शिक्षा के कार्यान्वयन के लिए कई उपायों की सिफारिश की है। ये पाठ्यक्रम निर्माण और लेन-देन के दृष्टिकोण, शिक्षण अधिगम रणनीतियों, शिक्षकों के लिए शिक्षण सामग्री तैयार करने और शिक्षकों के उन्मुखीकरण से संबंधित हैं। स्कूलों में शैक्षिक कार्यक्रमों को स्थानीय पर्यावरण स्थितियों और चिंताओं के साथ पूरी तरह से हार्मोनल होने देने के लिए शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तत्वावधान में 1988 से देश में लागू किया गया। एक समान पारिस्थितिकी तंत्र और समान पर्यावरणीय चिंताओं वाले एक

कॉम्पैक्ट क्षेत्र को एक इकाई और एक परियोजना के रूप में लिया जाता है। 1990 तक देश के लिए एक सौ ऐसी परियोजनाओं की कल्पना की गई। राज्यों संघ शासित प्रदेशों और परियोजना कोशिकाओं के शिक्षा निदेशालय में विशेष सेल, परियोजना क्षेत्रों को योजनाओं के तहत प्रस्तावित गतिविधियों के समन्वय, निगरानी और निगरानी के लिए पर्याप्त कर्मचारियों के साथ स्थापित किया गया है। योजना के तहत परिकल्पित परियोजना गतिविधियाँ हैं, स्मारकों को गोद लेना, प्रकृति का अध्ययन, एक गाँव के गोद और वहाँ की पारिस्थितिक समस्याओं का अध्ययन करना। अपने सामाजिक और पारिस्थितिक पर्यावरण, इतिहास और संस्कृति और उनके अध्ययन के लिए एक नगरपालिका वार्ड या इलाका, पाठ्यक्रम कार्य, दुकानों के माध्यम से इसे स्थानीय विशिष्ट बनाने के लिए पाठ्यक्रम की समीक्षा, पाठ्य पुस्तकों की निर्देशात्मक सामग्री, स्लाइड, ऑडियो और वीडियो टेप की तैयारी, पर्यावरण संरक्षण की फिल्में, पेड़ों का रोपण, चिड़ियाघरों का दौरा व वन्य जीवन अभयारण्य ट्रेकिंग आदि को शामिल किया है। पर्यावरणीय क्षरण की माप आदि (एमएचआरडीएस, 1988)। यह योजना राज्य सरकार के विभागों जैसे कि वन और पर्यावरण विभाग, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य में गैर-सरकारी संगठनों के सहयोग से कार्यान्वित की जा रही है।

पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारत में कई गैर-सरकारी पर्यावरण समूह काम कर रहे हैं। भारत के पर्यावरण की स्थिति ज्ञात करने हेतु केंद्र विज्ञान और पर्यावरण, नई दिल्ली नियमित रूप से देश के पर्यावरण परिदृश्य की निगरानी और उसके प्रकाशन, के माध्यम से अपने शोध के निष्कर्षों को आम लोगों के बीच लाता है जो कि पर्यावरण षिक्षा के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। केरल शास्त्र साहित्य परिषद, तिरुवन्दम, 'इंडियन नेशनल ट्रस्ट फॉर आर्ट एंड कल्चरल हेरिटेज, नई दिल्ली', 'सोसाइटी फॉर क्लीन एनवायरनमेंट एंड सी, बड़ौदा' कुछ ऐसे ही संगठन हैं जो पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देते हैं। भारत में बाबा आमटे, सुंदरलाल बहुगुणा, मेघा पाटकर, अन्ना हजारे, राजेंद्र सिंह, अनिल अग्रवाल आदि जैसी प्रमुख हस्तियाँ हैं जिनका नाम पर्यावरण चेतना फैलाने के स्वर्ण अक्षरों से लिखा जाना चाहिए।

प्रभावी पर्यावरण शिक्षा की सबसे बुनियादी विशेषताओं में से एक यह है कि इसे उन कार्यों के लिए नेतृत्व करना चाहिए जिनके परिणामस्वरूप बेहतर पर्यावरणीय परिणाम प्राप्त होते हैं। बस यहाँ यह ध्यान रहे कि अक्रिय ज्ञान या अव्यावहारिक कौशल का संचय नहीं होना चाहिए। यह अंतत: वह आँगन है जिसके द्वारा पर्यावरण शिक्षा में प्रयासों की प्रभावशीलता को मापा जाता है। पर्यावरण के हित को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग व्यावहारिक तरीके हो सकते हैं जो कि परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं किंतु यहाँ यह महत्त्वपूर्ण है कि कौनसे तरीकों को छात्रों द्वारा अपनाया जाए जिससे कि वह इसे व्यावहारिक शिक्षण में उपयोग कर सके और आसान से पर्यावरण के हितों के उपकरणों को समझ सके।

3. **अध्ययन का शीर्षक**—विद्यार्थियों में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन।

4. **अध्ययन के उद्देश्य**

* कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्रों में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त अधिगम सामग्री के प्रभावों का अध्ययन करना।

* कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्राओं में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त अधिगम सामग्री के प्रभावों का अध्ययन करना।

5. **अध्ययन की परिकल्पना**—कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं में अधिगम सामग्री के प्रयोग से पर्यावरण की जागरूकता में अन्तर पाया जा सकता है।

6. **अध्ययन की परिसीमा**—प्रस्तुत अध्ययन भोपाल जिले की बैरसिया तहसील में संचालित माध्यमिक स्तर के विद्यालय की कक्षा 8वीं में अध्ययन 25 छात्र एवं 25 छात्राओं द्वारा परिसीमित किया गया है।

सारणी क्रमांक - 1

कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रभावों का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र॰	विवरण	N	M	Sd	SEM	SED	t-value
1.	अध्ययनरत छात्र	25	14.30	1.70	0.31	0.469	1.9203
2.	अध्ययनरत छात्राएँ	25	15.20	1.92	0.35		

Df=N1+N2-2=58

p<.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

दंड आरेख क्रमांक - 1

कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रभावों के सांख्यिकीय विश्लेषण का दंड आरेख

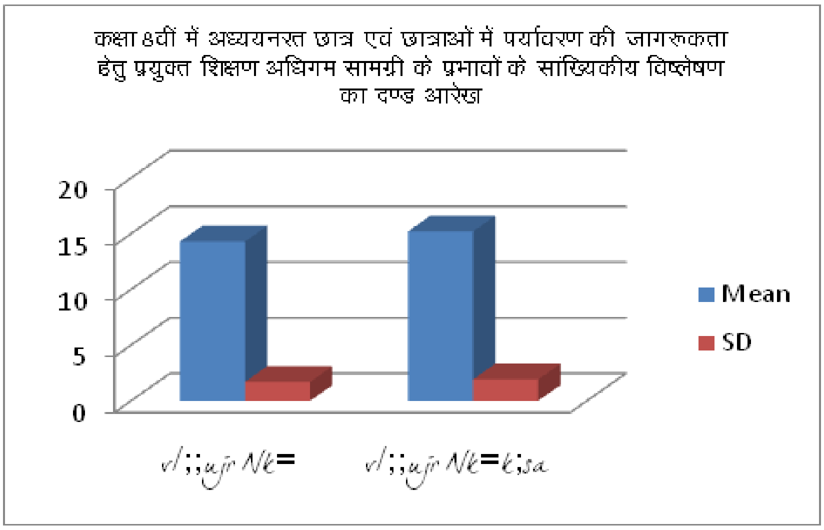

7. **प्रदत्तों का विश्लेषण**—सारणी क्रमांक-1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि जिला भोपाल की तहसील बैरसिया में संचालित माध्यमिक स्तर की कक्षा कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रभावों का सांख्यिकीय विश्लेषण के अंतर्गत अध्ययनरत छात्रों से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 14.30 तथा माध्य विचलन 1.70 है, इसी तरह अध्ययनरत छात्राओं के दृष्टिकोण से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान

 ISSN 0975-735X

15.20 तथा माध्य विचलन 1.92 पाया गया है। ज्ञात होता है कि जिला भोपाल की तहसील बैरसिया में संचालित माध्यमिक स्तर की कक्षा कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रभावों का सांख्यिकीय विश्लेषण में टी-परीक्षण मूल्य 1.9203 पाया गया है, जो $p<.05$ सार्थकता स्तर पर असार्थक है।

8. **परीक्षण एवं परिणाम**—सारणी के विश्लेषण से प्राप्त होता कि जिला भोपाल की तहसील बैरसिया में संचालित माध्यमिक स्तर की कक्षा कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में पर्यावरण की जागरूकता हेतु प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रभावों में समानता है। अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं द्वारा प्रयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयुक्तिकरण से विषय संबंधित अभिरुचि में वृद्धि और ज्ञान प्राप्ति हेतु जिज्ञासा समान रूप से दर्शाई गई। इसआधार पर पूर्व निर्मित परिकल्पना 'कक्षा 8वीं में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं में अधिगम सामग्री के प्रयोग से पर्यावरण की जागरूकता में अंतर पाया जा सकता है' को अस्वीकृत किया जाता है।

संदर्भ

1. रविंद्रनाथ मुखर्जी, सामाजिक शोध व सांख्यिकी, वर्ष 2000, पृ॰ 151
2. ए॰डी॰ रीड एंड पोंगराज, पब्लिक वेस्ट अवेयरनेस एंड ग्रीन कान्सोमेंसन, ए कंपेरीजन ऑफ फीम्स एंड फीम्स एंड ब्रिटिश प्रैक्टिस, द फिफ्थ वर्ल्ड कॉग्रेस इंटीग्रेटेड मैनेजमेंट, टोरंटो, जून (2000), पृ॰ 146
3. योगेंद्र एन॰ पांडेय, एजूकेशन इनवारमेंटल कांसेप्ट एंड इंपलीकेशन्स ऑफ इजूको इकोलोजी, वाल्यूम सं॰ 71, 1993, पृ॰ 37-40
4. बी॰ प्रहराज, सेवापूर्व तथा सेवारत माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों के लिए पर्यावरणीय ज्ञान, अभिवृत्ति तथा शिक्षा से संबंधित अवधारणा, 1991
5. एम॰के॰ राना और डी॰पी॰ सिंह, इनवारमेंटल कॉग्रेस बस्टर्न फार एजूकेशनल इंस्टीट्यूसन्स, कुरूक्षेत्र, जर्नल ऑन रूरल डिवलपमेंट, मिनिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1997, पृ॰ 110
6. एल॰ ओजी एवं मारेंटविक, समरी आफ रिसर्च इन इनवारमेंटल एजूकेशन इन एल॰ओ॰जी॰ (शिक्षा) मोनोग्रेफिक इन इनवारमेंटल एजूकेशन एंड इनवारमेंटल स्टडीज, कोलंबो ओहो स्टेट यूनिवर्सिटी, 1984
7. S.M. Saidi, Modem Teaching of Environmental Education, New Delhi: Anmol Publication Private Ltd, 2004
8. T. Sankar, Methods of Teaching Environmental Education, New Delhi: Crescent Publishing Corporation, 2008
9. T. Sankar, Principals of Environmental Education, New Delhi : Crescent Publishing Corporation, 2008
10. A. Selvam Parmer, Environmental Science Education, New Delhi: Sterling Publishers, 1996
11. P.C. Sharma, Environmental Education, New Delhi : Metropolitan Publishing Co. 1986
12. P.D. Sharma, Sociology and Environment, Meerat: Rastogi Publications, 1983
13. R.C. Sharma, R.C. and Merle, C. Jan. Source Book in Environmental Education for Secondary School Teachers, Bangkok: UNESCo~ Regional ffoice for Asia & the Pacific, 1990
14. आर॰ए॰ शर्मा, मानव मूल्य एवं शिक्षा, आर॰लाल बुक डिपो, मेरठ, 1995

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

रतनलाल सिंह, सब्बल पटेल एवं प्रियंका पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग, आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड़, भोपाल

1. **प्रस्तावना**—समावेशी शिक्षा, वह शिक्षा है, जिसमें एक सामान्य विद्यालय में बाधित तथा सामान्य बालक दोनों को एक साथ शिक्षा दी जाती है। विशिष्ट अर्थात् बाधित बच्चे सामान्य बच्चों की अपेक्षा धीरे सीखते हैं। इसके साथ ही ये बालक अपनी दिव्यांगता के चलते सामान्य बालकों के साथ समायोजित होने में भी कठिनाई महसूस करते हैं। समावेशी शिक्षा, शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूर्णत: या आंशिक ग्रसित बच्चों को सामान्य बालकों के साथ शिक्षा हेतु जोर देती है, यह विशिष्ट बालकों की शिक्षा हेतु अनुमोदन करती है। समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बाधित बच्चों में छिपी योग्यता को उजागर करना प्रमुख होता है। इसमें दिव्यांग एवं सामान्य बच्चों के लिए शिक्षा का प्रावधान एक समान होता है। यह शिक्षा बच्चों को शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं की पहचान कराती है। इसमें संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा सृजनात्मक विकास के समस्त अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। इस शिक्षा में विभिन्न प्रकार के बाधित बच्चों की शारीरिक एवं मानसिक अवस्था को स्वीकार कर उन्हें समुचित विकास के अवसर प्रदान किए जाते हैं। अपने मूल रूप में यह शिक्षा, शिक्षा के मौलिक अधिकार को सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक रूप में स्वीकृत करती है जिसमें धर्म, लिंग, जाति आदि के विभेद के बिना सह-संबंधित एवं समायोजित रूप में रहकर बालक को शिक्षा दिए जाने का प्रावधान है।

दिव्यांग तथा विशिष्ट बालकों के विशेष विद्यालयों की शुरुआत 18वीं शताब्दी के मध्य में हुई। सबसे पहले इस क्षेत्र में अमेरिका में वर्ष 1975 में अमेरिकन कॉंग्रेस ने अक्षम बच्चों की शिक्षा के लिए कानून बनाया, जिसका मुख्य उद्देश्य अक्षम बालकों को मुख्य धारा से जोड़ना था। भारत में समावेशी शिक्षा, अमेरिका के मुख्य धारा आंदोलन का ही परिणाम है, जिसमें विकलांगों को मुख्य धारा में लाया जाता है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा का इतिहास अब विशेष विद्यालय से एकीकृत शिक्षा होते हुए अब समावेशित शिक्षा तब आ पहुँचा है। शिक्षा में समावेशन से तात्पर्य है कि सभी बच्चों की शिक्षा एक साथ, एक ही विद्यालय में हो। समावेशित शिक्षा होने से सभी प्रकार के बच्चे अपने पास के स्कूल में जाकर विद्या ग्रहण सकने में समर्थ हुए हैं, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों जो पहले विशेष स्कूल के दूर होने अथवा समस्याओं के कारण शिक्षा पाने से वंचित रह जाते थे, वे अब समावेशी शिक्षा के आने से अपने पास के स्कूल में ही दूसरे बच्चों के साथ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। समावेशी शिक्षा का दूसरा महत्त्व यह है कि एक ही स्कूल में विशेष और सामान्य बच्चों के एक साथ अध्ययन करने से इन्हें बचपन से ही एक-दूसरे की क्षमताएँ एवं कमियों को जानने का मौका मिल जाता है और साथ ही सामान्य बच्चों में दिव्यांग

 ISSN 0975-735X

बच्चों के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा भी दूर होती है, वहीं विशेष अथवा दिव्यांग बच्चे, सामान्य बच्चों के व्यवहारों को भी सीख सकते हैं।

समावेशी शिक्षा का मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक बच्चे को समान अवसर, अधिकार एवं भागीदारी मिले, इसके साथ ही समावेशी शिक्षा के अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धातों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अतिरिक्त सहायता प्रदान करना, इनके प्रति उत्तरदायित्व एवं सहयोग में सभी कार्यकर्ताओं की साझेदारी सुनिश्चित करना, समुदाय की भागीदारी एवं सहायता सुनिश्चित करना, इन बच्चों के परिवार एवं सामाजिक वातावरण के बारे में जानकारी रखना, तथा प्रत्येक बच्चे को यह अवसर मिलना कि वह अर्थपूर्ण चुनौतियों का सामना करे, चयन करे व जिम्मेदारी ले, दूसरों के साथ सहभागिता के साथ अंतर्क्रिया करे एवं शैक्षिक प्रक्रिया की सभी विकासशील शैक्षिक एवं अशैक्षिक, आंतरिक एवं अंतर्वैक्तिक गतिविधियों में भाग लेने, को शामिल किया जा सकता है।

समावेशी शिक्षा में विशिष्ट आवश्कता वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ समायोजित होने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना होता है। बालकों को शिक्षित करने का तरीकों में ऐसे बालक अपने आपको रख पाने में असमर्थ होते है अथवा पिछड़ जाते हैं, जिसके कारण वह स्वयं को हीन भावना से ग्रसित करते हैं, वे सामान्य बालकों के साथ मिलकर रहने में संकोच करने लगते हैं। कई मामलों में विद्यालय पाठ्यक्रम और विद्यालय में संचालित पाठ्य सहगामी क्रियाएँ इन बच्चों के समायोजन में अवरोध पैदा करने लगती हैं और अध्ययन कार्य में भी पिछड़ने लगता है। इस स्थिति में कक्षा का शिक्षक ही उन्हें सामान्य बालकों से समायोजित करने में सहायक सिद्ध होता है अन्यथा विशिष्ट बालक लगातार ऐसी स्थिति का सामना करते हुए और अधिक कुसमायोजित होने लगते हैं। समावेशी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक की जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है क्योंकि इस व्यवस्था में वह केवल उसे अपने आपको केवल शिक्षण कार्य तक ही सीमित नहीं रखना होता है, अपितु विशिष्ट बालकों को कक्षा में उचित ढंग से समायोजन करने, उनके लिए विशिष्ट प्रकार की शैक्षिक सामग्री का निर्माण करने, उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहयोग एवं सहकार पूर्ण व्यवहार करने तथा बालक को मिलने वाली आर्थिक एवं संसाधित सुविधाओं को वितरित करने जैसे कार्य में भी सहभागिता रखनी होती है।

2. **समस्या शीर्षक**–समावेशी शिक्षा के अंतर्गत विशिष्ट बालकों एवं सामान्य बालकों में समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन।

3. **अध्ययन के उद्देश्य**

* समेकित विद्यालय में अध्ययनरत सामान्य बालकों में समायोजन का अध्ययन करना।
* समेकित विद्यालय में अध्ययनरत विशिष्ट बालकों में समायोजन का अध्ययन करना।

4. **शोध परिकल्पना**–समेकित विद्यालय में अध्ययनरत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन में सार्थक अंतर पाया जा सकता है।

5. **शोध परिसीमा**

* प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश राज्य के भोपाल जिले में संचालित समेकित विद्यालय में अध्ययनरत 20 सामान्य बालक तथा 20 विशिष्ट बालकों से परिसीमित किया गया है।

* प्रस्तुत अध्ययन में विशिष्ट बालकों के अंतर्गत आंशिक श्रवण बाधित विद्यार्थियों को लिया गया है।

6. **शोध प्रारूप**–शोध प्रारूप शोध की संपूर्ण रूपरेखा तैयार करने की एक विधि है,

जिसमें शोध उद्देश्यों, प्रविधियों, प्रदत्त संकलन की विधियों, उनके विश्लेषण तथा सांख्यिकीय गणना की विधियों का प्रारूप तैयार किया जाता है।

7. **शोध उपकरण**—प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्शों से प्रदत्तों का संकलन अवलोकन एवं स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा किया गया है। प्रश्नावली द्वारा न्यादर्शों से समस्याओं से संबंधित प्रदत्तों का एकत्रीकरण किया गया।

8. **सांख्यिकीय विधि**—प्रस्तुत शोध में परीक्षणों की सहायता से संग्रहित किए गए आँकड़ों से प्राप्त सूचनाओं का विवेचनात्मक अध्ययन करने से पहले इनको एक निश्चित रूप प्रदान किया जाना था इसलिए सांख्यिकीय परीक्षण में मध्यमान, सह-संबंध, केंद्रीय प्रवृत्तियों एवं टी-परीक्षण को शामिल किया गया है।

सारणी क्रमांक - 1

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

क्र॰	विवरण	N	M	Sd	SEM	SED	t-value	P-value
1.	अध्ययनरत सामान्य बालक	20	17.85	1.46	0.33	0.446	14.2413	< 0.0001
2.	अध्ययनरत विशिष्ट बालक	20	11.50	1.36	0.30			

Df = N1+N2-2=38

p <.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

दंड आरेख -1

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

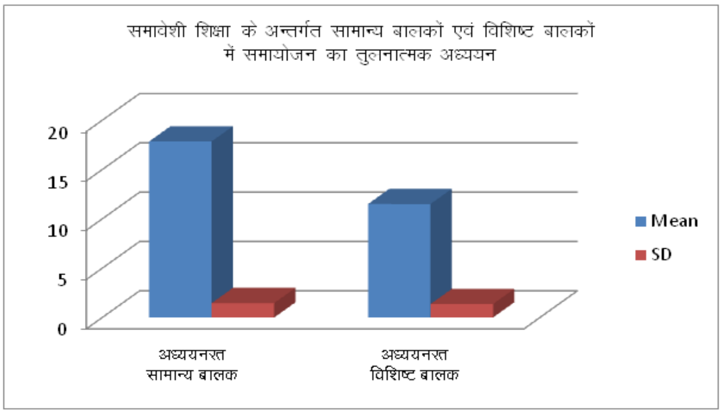

9. **प्रदत्तों का विश्लेषण**—सारणी सं॰ 1 के विश्लेषण से प्राप्त होता कि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन के तुलनात्मक अध्ययन में सामान्य बालकों से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 17.85 तथा माध्य विचलन 1.46 है जबकि विशिष्ट बालकों से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 11.50 तथा माध्य विचलन 1.36 पाया गया है। विश्लेषण से ज्ञात होता है कि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में

 ISSN 0975-735X

समायोजन के तुलनात्मक अध्ययन में टी–परीक्षण मूल्य 14.2413 तथा पी–मूल्य < 0.0001 पाया गया है जो कि $p<.05$ सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

10. **परिकल्पनाओं का परीक्षण**–सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता कि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन के तुलनात्मक अध्ययन में सामान्य बालकों में समायोजन उच्च पाया जाता है जबकि विशिष्ट बालक समायोजन की दृष्टि में निम्न पाए गए। इस प्रकार समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन में अन्तर पाया जाता है। इस आधार पर पूर्व निर्मित परिकल्पना–'समेकित विद्यालय में अध्ययनरत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन में सार्थक अंतर पाया जा सकता है' को स्वीकृत किया जाता है।

11. **शोध का परिणाम**–उपर्युक्त अध्ययन से प्राप्त होता है कि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों एवं विशिष्ट बालकों में समायोजन में अंतर पाया जाता है। सामान्य बालक अपने समूह के बालकों के साथ बेहतर समायोजित पाए गए है, तथा इसके साथ ही सामान्य बालक, विशिष्ट बालकों से भी समायोजित पाए गए, जबकि विशिष्ट बालक, अपने विशिष्ट समूह के बालकों के साथ तो समायोजित पाए गए लेकिन सामान्य बालकों के साथ समायोजन स्तर में निम्न तथा पिछड़े पाए गए।

संदर्भ

1. एस॰ भट्टाचार्य, फाउंडेशन ऑफ एजूकेशन एंड एजूकेशनल रिसर्च, बड़ौदा, 1968
2. एस॰एस॰ चौहान, एडवांस एजूकेशनल साइकोलॉजी, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस, 2004
3. ललिता कुमारी, के॰ए॰, शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, 2015
4. रवींद्रनाथ मुकर्जी, सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, किताब महल, इलाहाबाद, 2000
5. एस॰पी॰ सुखिया, विद्यालय प्रशासन एवं संगठन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1999
6. प्रतिभा उपाध्याय, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा पुस्तक भवन, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, 2000

ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्मसंकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन

ओमप्रकाश यादव, वर्षा शर्मा एवं जगतराज पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग, आई॰ई॰एस॰ कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
आई॰ई॰एस॰ विश्वविद्यालय भोपाल, रातीबड

1. **प्रस्तावना**–इस व्याप्त जगत में अनेक जीवों और अजीवों का अस्तित्व है। प्रत्येक जीव या अजीव अपने अस्तित्व को बनाए रखते हुए अपने विकास के चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर रहता है। विकास क्रम की प्रक्रिया प्रत्येक जीव या अजीव में अपनी-अपनी विशिष्टता के अनुरूप चलती रहती है। दृष्यमान जगत में व्याप्त जीव या अजीव में विकास के संदर्भ में मानव को सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम माना जाता है। इसका कारण यह माना जाता है कि मानव में चिंतन एवं विवेक नामक शक्तियाँ व्याप्त रहती हैं जो उन्हें औरों से श्रेष्ठ एवं बेहतर बनाती हैं। विकास की अविरल धारा में अन्यों के समान मानव भी निरंतर सतत रूप से गतिमान रहता है किंतु मानव विकास के सभी परिप्रेक्ष्यों का मूल्यांकन स्वयं या स्व या आत्मन को केंद्र बिंदु में रखते हुए करता है।

रोजर्स का मानना है कि आत्म संकल्पना कोई एक अलग सीमा या क्षेत्र नहीं है और न ही अलग से व्याप्त कोई विशिष्ट तत्त्व है अपितु आत्मन से आशय संपूर्ण प्राणी से होता है जिसका विकास शैशवावस्था से शुरू हो जाता है और जैसे-जैसे शिशु की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रूप प्राप्त करने लगता है, धीरे-धीरे बालक, मैं और मुझे की विशेषताओं से अभिभूत होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह धीरे-धीरे अपने आत्मन से अवगत होने लगता है जिसके कारण उसे अच्छे एवं बुरे कृत्यों का अभिज्ञान होने लगता है, उसे सुखद एवं दुखद अनुभूतियों के अंतर का प्रत्यक्षण होने लगता है एवं वह आत्म निर्धारित किसी कसौटी के आधार पर अपनी अनुभूतियों के औचित्य की तर्कसंगत परख करना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार आत्म संकल्पना इंद्रियों की ग्रहणशीलता का ही मूलता परिणाम होता है जिसके चलते बालक में इंद्रियों से होने वाले प्रत्यक्षीकरण से ही संज्ञान अपने रूप में परिपक्व एवं विकसित होता है।

आत्म संकल्पना के अंतर्गत स्व-अवधारणा एक मुख्य प्रत्यय होता है, स्व-अवधारणा उस प्रत्यय को कहा जाता है जिसमें मैं ऐसा हूँ, की समग्र धारणा निहित होती है। स्व-अवधारणा, विद्यार्थी के मन में अपने विश्वासों, धारणाओं, अनुभूतियों एवं प्रत्यक्षण आदि के आधार पर निर्मित होती है जिसके निर्माण में कई प्रकार के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अहम भूमिका का निर्वहन करते हैं, जैसे कुछ कारक परिवार, संस्कृति, विद्यालय, वातावरण और लिंग से संबंधित होते हैं। घर या परिवार किसी भी व्यक्ति की प्रथम पाठशाला होती है। परिवार की सभी भौतिक एवं अभौतिक विशेषताओं का बालक पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार विद्यालय में बालक सामुदायिक जीवन व्यतीत करता है, जहाँ वह अपने सहपाठियों, शिक्षकों, प्रशासकों और सलाहकारों के साथ आपसी अंत:क्रिया एवं वार्तालाभ करते हुए अधिगम एवं अनेक व्यवहारों को स्वयं में आत्मसात

 ISSN 0975-735X

करता है। विद्यालय वह स्थान होता है जहाँ पर किसी भी व्यक्ति को प्रथम बार एक निश्चित परिपाटी के अनुकूल औपचारिक धरातल पर विषयी ज्ञान के साथ सामाजिक नियमों, आजार एवं व्यवहार से परिचित कराया जाता है। यह वह स्थान है जहाँ एक बच्चा न केवल विषयी ज्ञान को अधिगमित करता है अपितु विभिन्न कार्यों, खेल, बाहरी गतिविधियों, अनुशासन आदि के अनुभवों से भी अधिगम करता है। बच्चे के व्यक्तित्व में शीलगुणों के विकास में विद्यालय के भौतिक एवं अभौतिक वातावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव रहता है और आगे चलकर उसके इन्हीं गुणों के रूप में उसकी पहचान निर्मित होती है।

परिवार और विद्यालय की ही भाँति विद्यार्थी के निवास का क्षेत्र भी उसकी आत्म संकल्पना को बहुत हद तक प्रभावित करता है। इसका कारण है कि परिवार और विद्यालय में व्यतीत समय के पश्चात शेष समय बालक अपने गृह निवास और क्षेत्र निवास में व्यतीत करता है, बालक की समस्त अनौपचारिक शिक्षा निवासित क्षेत्र के माध्यम से ही पूर्ण होती है। जहाँ वह विभिन्न क्रियाकलापों में प्रतिभागी बनते हुए अपने विकास की ओर अग्रसर रहता है। इस प्रकार क्षेत्र विशेष की संस्कृतियों, परंपराओं, रीतिरिवाजों, संस्कारों, नियमों एवं मानदंडों आदि का बालक पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

2. **शोध समस्या शीर्षक**–ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन।

3. **अध्ययन के उद्देश्य**

* ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का अध्ययन करना।
* शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का अध्ययन करना।

4. **शोध परिकल्पना**

(क) **शून्य परिकल्पना**–ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

(ख) **वैकल्पिक परिकल्पना**–ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना में कोई सार्थक अंतर पाया जाता है।

5. **शोध परिसीमाएँ**

* प्रस्तुत अध्ययन केवल भोपाल जिले के विद्यार्थियों पर किया गया है।
* इस अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के माध्यमिक शिक्षा मंडल से संबद्ध दो अलग-अलग विद्यालयों का चयन किया गया है।
* इस अध्ययन हेतु ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों का चयन किया गया।
* इस अध्ययन हेतु 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

6. **शोध अभिकल्प**–शोध अभिकल्प प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है जिसे वास्तविक शोधकार्य को प्रारंभ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच-समझ के पश्चात तैयार किया जाता है। शोध की प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण कई बिंदुओं पर विचार करने के बाद किया जाता है। जिसके अंतर्गत अध्ययन का प्रयोजन, संबंध, आँकड़ों के प्रकार की आवश्यकता, वांछित आँकड़ों का स्रोत, अध्ययन का क्षेत्र तथा समय, निर्धारित समय में अध्ययन पूर्ण करने के लिए संसाधनों की आवश्यकता, प्रतिदर्श की संख्या तथा चुनाव का आधार, आँकड़ा संकलन में प्रविधि का चुनाव, विश्लेषण की विधि तथा विश्लेषित आँकड़ों की व्याख्या की जाती है। शोध अभिकल्प

से शोध कार्य को संपादित करने के लिए एक रूपरेखा तैयार हो जाती है। यह शोध प्रक्रिया को कुशल और आसान गति प्रदान करती है।

7. **शोध न्यादर्श**—प्रस्तुत अध्ययन हेतु भोपाल जिले के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में संचालित विद्यालय में प्रत्येक क्षेत्र से 50 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन कुल 100 विद्यार्थियों पर संपन्न किया गया है।

8. **शोध उपकरण**—प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रदत्तों के संकलन हेतु आर॰के॰ सारस्वत निर्मित आत्म-अवधारणा प्रश्नावली (एससीक्यू) का प्रयोग किया गया है।

9. **प्रयुक्त सांख्यिकी विधि**—प्रस्तुत अध्ययन हेतु सांख्यिकीय गणना के अंतर्गत मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक-1

ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी-मान	परिकलित टी-मान	सार्थकता 0.05 स्तर
आत्म संकल्पना	ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थी	50	169.61	16.49	1.97	2.636	सार्थक (S) df=98
	शहरी विद्यालयों के विद्यार्थी	50	175.71	9.20			

दंड आरेख क्रमांक-1

ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का दंड आरेखीय निरूपण

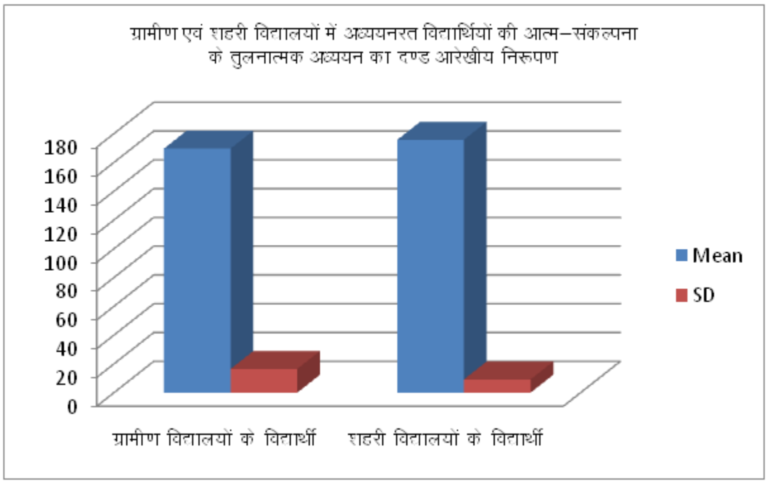

10. **प्रदत्तों का विश्लेषण एवं परिकल्पना परीक्षण :** सारणीक्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों एवं शहरी विद्यालयों के विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना

का मध्यमान क्रमशः 169.61 एवं 175.71 है। इस प्रकार ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का मध्यमान शहरी विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा कम है। परिकलित टी मान 2.636 है जबकि कत्रि98 के लिए 0.05 स्तर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1. 97 है। इस प्रकार सारणी मान से परिकलितमान कम है ;.2ण636ढ1ण97द्ध अतः असार्थक अन्तर है। अतः कह सकते है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियो की आत्म-संकल्पना में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार परिकल्पना शून्य परिकल्पना सत्य है एवं स्वीकृत होती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना असत्य एवं अस्वीकृत होती हैं।

11. **विवेचना :** उपर्युक्त सारणी के विवेचन से ज्ञात होता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना समान पायी गयी है। इन विद्यार्थियों पर क्षेत्र विशेष का कोई प्रभाव नहीं पाया गया है।

10. **प्रदत्तों का विश्लेषण एवं परिकल्पना परीक्षण**–सारणी क्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों एवं शहरी विद्यालयों के विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का मध्यमान क्रमशः 169.61 एवं 175.71 है। इस प्रकार ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना का मध्यमान शहरी विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा कम है। परिकलित टी मान 2.636 है जबकि df=98 के लिए 0.05 स्तर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1. 97 है। इस प्रकार सारणी मान से परिकलित मान कम है (-2.636<1.97) अतः असार्थक अंतर है। अतः कह सकते हैं कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना में सार्थक अंतर नहीं है। इस प्रकार परिकल्पना शून्य परिकल्पना सत्य है एवं स्वीकृत होती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना असत्य एवं अस्वीकृत होती है।

11. **विवेचना**–उपर्युक्त सारणी के विवेचन से ज्ञात होता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना समान पाई गई है। इन विद्यार्थियों पर क्षेत्र विशेष का कोई प्रभाव नहीं पाया गया है।

संदर्भ

1. एस॰ चामुंडेश्वरी, (2015) उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों की आत्म संकल्पना और अकादमिक उपलब्धि, जरनल ऑफ सोशियोलोजिकल रिसर्च, वॉल्युम 4, नंबर 2
2. टी॰ अरुणा भराती व श्रीदेवी पेट्टुगनी, (2013) किशोरों के आत्म-संकल्पना पर एक अध्ययन, https://www.researchgate.net/institution/Professor_Jayashankar_ Telangana_ State_ Agricultural_University
3. संगीता रथ व सुमित्रा नंदा, (2012) आत्म-अवधारणा: किशोरों पर एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन, इंटरनेशनल जरनल ऑफ मल्टीडीसीप्लीनरी रिसर्च, वॉल्यूम 2, इश्यु 5
4. पी॰ सडगविक, (2014) छात्रों की पठन एवं गणित के प्रतिस्व-अवधारणा और मूल्य, लघुशोध प्रबंध, फलोरिडास्टेट यूनिवर्सिटी लाईब्रेरीस इलेक्टोनिक थीसिस, डिसरटेशन द ग्रेजुएट स्कूल, 2014
5. एल॰ पुजार व वी॰ गावकर, (2000) उच्च और निम्नस्तर के समूहों के लिए किशोरों की आत्म-अवधारणा पर आयु और परिवार के प्रकार को जानने के लिए एक अध्ययन, इंडियन साईकोलोजिकल रिव्यु, 54 (1.2) च 24.26

घटते जलस्रोत (तालाब) एवं गिरते भूजल स्तर पर प्रदूषण का प्रभाव रायपुर नगर (छ०ग०) के संदर्भ में

डॉ० कल्पना लाम्बे
सहायक प्राध्यापक (भूगोल)
शासकीय दू.ब. महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर

प्रस्तावनाः छत्तीसगढ़ में जलसंग्रहण का मुख्य स्रोत तालाब हैं। ये प्राकृतिक व मानवकृत दोनों ही प्रकार के हैं। छत्तीसगढ़ तालाबों के लिए प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध रहा है। यहां का मैदानी भाग एवं मिट्टी तालाब निर्माण के लिए उत्तम है। छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर एवं मल्हार में सैकड़ों की संख्या में तालाबों के प्रमाण मिलते हैं। आज भी यहां तालाबों को देखा जा रहा है। धार्मिक एवं सामाजिक कारणों से प्रेरित होकर यहां के राजाओं एवं धनाढ्य वर्गों ने तालाब खुदवाये थे। तालाबों के निर्माण कार्य में बंजारा समाज एवं रमरमहिया समाज की मुख्य भूमिका रही है। यहां के प्रत्येक तालाब के पीछे उसकी गाथा जुड़ी है।

अध्ययन क्षेत्रः तालाबों के भौगोलिक अध्ययन के अनेक पहलू हैं। अध्ययन हेतु महानदी बेसिन में स्थित छत्तीसगढ़ राज्य की राजधानी रायपुर का चयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत तालाबों में जल संग्रहण एवं संरक्षण, प्राप्त सूचनाओं एवं तथ्यों पर आधारित लेख है वहीं पानी की गुणवत्ता एवं उपयोग, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र तथा बढ़ते जल-प्रदूषण का अध्ययन प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है। तालाबों के जल का परीक्षण कर, तथा स्थानीय लोगों से चर्चा कर प्रदूषण के स्त्रोतों को जानने का प्रयास किया गया है।

तालाबों का महत्वः तालाब निर्माण का मुख्य उद्देश्य जल संग्रहण होता है। छ.ग. में प्रवाहित होने वाली नदियाँ मौसमी है अतः वर्षा का जल अधिकाधिक मात्रा में संगृहीत हो सके, इसके लिए तालाबों तक पानी पहुँचाने की वास्तुकारों की प्राचीन युक्ति बहुत ही उत्तम रही है। प्रायः तालाबों का निर्माण अलग-अलग उपयोग के लिए होता था। तालाब के बाजू में बना 'पैठू', जिसमें तालाब के ऊपरी भाग का पानी जाता है, जानवरों के लिए बनता था।

नगर में तालाबों का अलग ही महत्व होता है। बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशक में रायपुर को तालाबों की नगरी कहा जाता था। बीसवीं सदी के मध्य तक यहां तालाबों की संख्या 200 के लगभग थी। तालाब एवं अमराइयों के कारण रायपुर नगर लोगों को अनायास ही आकर्षित करता था। यहां के लोग तालाबों का पानी पीते थे। तालाब के चारों ओर विकसित बस्ती के लिए ये तालाब तापस्थापी (Thermostat) का कार्य करते थे।

1950-60 के दशक में तीव्र औद्योगीकरण आर्थिक विकास एवं नगरीय सेवाओं में वृद्धि, रायपुर नगर में जनसंख्या वृद्धि का कारण रही है। उद्योगों का केन्द्रीकरण, तीव्रगामी परिवहन की सुविधा, व्यापारिक प्रतिष्ठानों के विकास एवं प्रशासनिक क्रियाकलापों के विस्तार से 1961 में रायपुर, प्रथम श्रेणी के नगर के रूप में अस्तित्व में आया। नगरीकरण के बढ़ते प्रभाव एवं जनसंख्या वृद्धि से नगर का क्षैतिजिक विस्तार हुआ। फलतः नगर की सीमावर्ती ग्रामीण बस्तियां, कृषिभूमि

 ISSN 0975-735X

एवं वनक्षेत्र अपने मूल अस्तित्व से नगर प्रभाव में विलीन हो गये।

नगरीकरण का प्रभाव: बढ़ते नगरीकरण से तालाब प्रदूषित होने लगे। तालाबों को पाटकर व्यापारिक परिसर निर्माण की होड़ सी लग गई। बड़े तालाब जैसे लेंडी तालाब (वर्तमान शास्त्री बाजार), रजबंधा तालाब (शहीद स्मारक व प्रेस कॉम्पलेक्स) जैसे अनेक तालाब पाट दिये गये। रायपुर विकास योजना के प्रारूप से प्राप्त जानकारी के अनुसार 2005 तक तालाब पाटने की योजना निरंतर बन रही थी। यह सिलसिला वर्तमान में भी जारी है। फलत: रायपुर नगर एवं आसपास के भूमिगत जल स्त्रोत गहरे होते गये।

हाल ही में नगर विकास के तहत रायपुर का सबसे पुराना एवं बड़ा, बूढ़ा तालाब (विवेकानंद सरोवर) सहित तेलीबांधा तालाब, कटोरातालाब जैसे अनेक तालाबों का बड़ा हिस्सा स्थानीय प्रशासन द्वारा सौंदर्यीकरण के नाम पर पाट दिया गया है।

पेयजल की कमी: महानदी मैदान में स्थित रायपुर नगर की बसाहट एवं विकास का मुख्य आधार जल की उपलब्धता है, किन्तु नगरीकरण के बढ़ते प्रभाव से सूखा एवं पेयजल की कमी की स्थिति रायपुर सहित संपूर्ण राज्य में फैल रही है। कारण स्पष्ट है कि तालाब छिनते (पाटते) चले जा रहे हैं तथा जल संचयन की परंपरागत तकनीक (तालाब) उपेक्षित हो रही है। 30 से 35 वर्ष पूर्व यहां वर्षा का औसत 1700 से 1800 से.मी. था, वही अब 1100 से 1200 से.मी. रह गया है। रायपुर, राजधानी बनने के बाद जनसंख्या भी तीव्र गति से बढ़ने लगी है। वर्षा की निरंतर घटती प्रवृत्ति, जलसंग्रहण की कमी तथा तालाब पाटने की दर, भूमिगत जल स्त्रोत के घटते स्तर का प्रमुख कारण रहा है । यहां प्राय: दिसंबर-जनवरी से ही पानी की बढ़ती किल्लत विकराल रूप धारण कर रही है। इन सबके बावजूद तालाबों की उपेक्षा कर उन्हें पाटते जाना, 'अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारना' है।

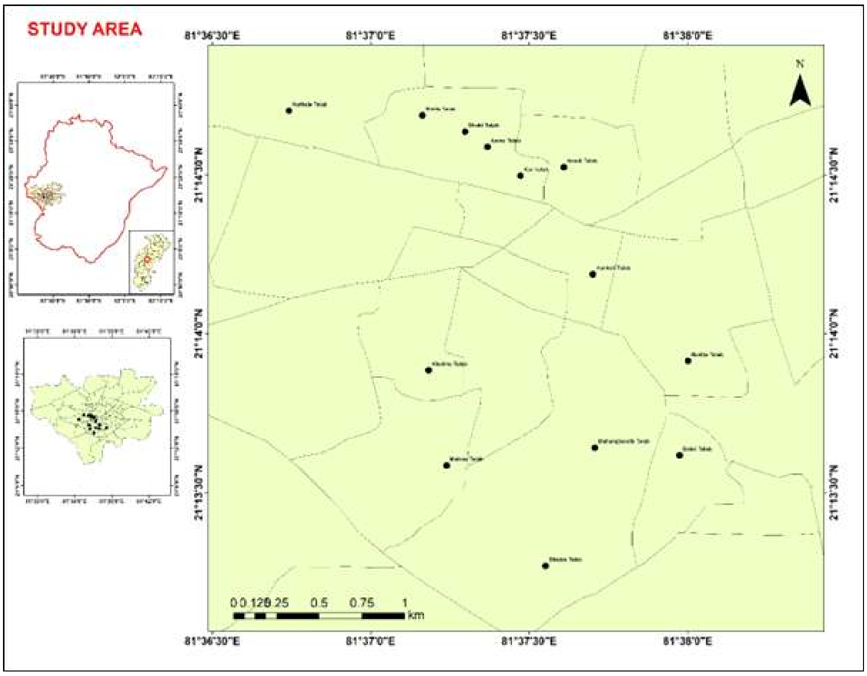

जल-प्रदूषणः रायपुर में तालाबों का पानी नहाने, कपड़ा व बर्तन धोने, पशुओं को नहलाने, तथा उद्योग इत्यादि कामों के लिए उपयोग में लाया जाता है। वाहनों से उत्सर्जित आयन, गंदा जल, मल-मूत्र, कचरा, कूड़ा आदि से तालाबों का पानी प्रदूषित हो रहा है। जल में कीचड़, सूक्ष्म कण, जीवांश, कीटाणु, रंग, गंध, स्वाद एवं ऊष्मीय गुणों में परिवर्तन भौतिक जल प्रदूषण का स्वरूप है वहीं रासायनिक जल प्रदूषण जल में मिलने वाले रासायनिक पदार्थों से होता है।

जल-प्रदूषण में भौतिक जैविक कारक जल में धूल, गंदगी, कीटाणु पैदा कर जल की गुणवत्ता को नष्ट करते हैं, तालाबों में यह घटना अधिक होती है, किन्तु जल को प्रदूषित करने में मानवीय कारक अधिक प्रभावशाली हैं।

जल की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए कई तरह के गुण मापे जाते हैं। इसमें तापमान, अम्लता, घुलित ठोस, मैलापन, घुलित ऑक्सीजन, कठोरता तथा निर्लंबित तलछट सम्मिलित है।

प्रस्तुत अध्ययन में रायपुर नगर के 16 तालाबों के जल का नमूना लेकर रासायनिक परीक्षण किया गया । परीक्षण से प्राप्त नतीजों का विश्लेषण इस प्रकार है–

Pond (mgèkl)	Temp	pH	Turbidity (NTU)	TDS (mg/l)	Total Hardness(mg/1)	DO	COD (mg/l)	BOD
Aama Talab	91.8	8.4	5.3	403	152	3.2	0.4	0.12
Kari talab	92.1	7.8	6.8	512	196	4.1	0.35	0.27
Dhobi Talab	92.1	8.2	12.3	445	154	5.2	0.56	0.26
Karbala Talab	91.1	8.6	5.6	668	144	3.7	0.96	0.31
Ghorai Talab	92.1	9.2	12.6	571	163	3.1	1.2	0.51
Shitla Talab	92.2	7.9	11.3	562	197	5.5	0.65	0.49
Khokho Talab	92	8.1	9.3	389	213	6.2	0.46	0.53
Danganiya Talab	91.7	8.6	8.5	498	205	7.1	1.8	0.36
Malsay Talab	92.2	8.3	6.9	652	167	5.8	0.86	0.86
Budha Talab	91.7	9.3	9.6	487	139	6.3	0.39	0.64
Maharajbandh Talab	92.4	8.1	11.2	699	154	5.7	1.2	0.35
Nariyya Talab	92	7.9	4.	568	162	4.5	1.6	0.49
Abri Talab	91.6	8.6	15.6	598	137	5.3	0.45	0.82
Bhaiya Talab	91.7	7.6	10.6	516	158	6.8	0.69	0.83
Kankali Talab	91	9.1	9.9	563	194	3.3	0.53	0.68
Handi Talab	91.6	9.2	8.3	461	186	3.9	1.23	0.55

जल का औसत तापमान 91.83 है।

pH (Potential of Hydrogen) यह जल में 'हाइड्रोजन-आयन एकाग्रता' को संदर्भित करता है। यह मान 0-14 के बीच होता है। 7 सर्वाधिक उत्तम होता है। 7 के नीचे pH का मान अम्लता के स्तर का निर्धारण करता है। 7 से 14 तक क्षारीय स्तर बतलाता है। यह तत्त्व त्वचा को नुकसान पहुँचाता है। 1 से 2 pH होने पर मानव शरीर में त्वचा की प्रकृति अम्लीय होती है तथा त्वचा पर नमी बनी रहती है। pH 8 से 11 होने पर सूखापन, बदबू, खुजली असहजता व अन्य गंभीर संक्रमण का खतरा होता है। अध्ययन क्षेत्रों में pH का औसत 8.43 है। सभी तालाबों में जल

की प्रकृति क्षारीय है।

NTU (Nephelometric turbidity unit) पानी में निलंबित ठोस कणों की उपस्थिति दर्शाता है। इन पदार्थों की सांद्रता जितनी अधिक होगी, पानी में उतना ही गंदापन या मैलापन होता है। WHO के अनुसार पीने के पानी का मैलापन 5 NTU से अधिक नहीं होना चाहिये। नरैय्या तालाब का NTU 4.5 है, आमातालाब एवं करबला तालाब का NTU 5.3 एवं 5.6 है। हाल ही में हुई सफाई के कारण यह कम है। तालाबों का औसत NTU 9.26 है।

इस प्रकार का पानी पेट के रोग, चर्म रोग आदि का कारण बनते हैं। हैजा, दस्त, बुखार, उल्टियां, पीलिया, टाइफाइड आदि रोग हो सकते हैं।

TDS (Total dissolved solids) WHO के अनुसार TDS की मात्रा 300 mg/l से कम होनी चाहिये। 900mg/l से अधिक TDS होने पर पानी पीने योग्य नहीं माना जाता। 300 से 600 उहध्स पानी पीने योग्य माना जाता है। 250mg/l से कम TDS होने पर पानी में मौजूद खनिज तत्त्व शरीर को नहीं मिल पाते जबकि 100mg/l होने होने पर वस्तु पानी में तेजी से घुलने लगती है। अध्ययन क्षेत्र में TDS की औसत मात्रा 537 है। करबला तालाब, मलसाय तालाब एवं महाराजबंद तालाब में TDS 600 से अधिक है।

DO (Dissolved Oxygen) पानी में मौजूद घुलित ऑक्सीजन, जो पानी की गुणवत्ता मापने के संकेतकों में से एक है। यह जल पारिस्थितिकी का एक अभिन्न अंग है। मछली तथा अन्य जलचर व जलीय वनस्पति का जीवन घुलित ऑक्सीजन की मात्रा पर निर्भर है। 6.5 से 8 mg/l DO का पानी पीने योग्य (स्वस्थ्य जल) होता है। सर्वेक्षित तालाबों का औसत DO4.98mg/l है। केवल भैया तालाब में DO का स्तर 6.8 पाया गया है। यहां जलीय वनस्पति का अवलोकन भी किया गया है। अन्य सभी तालाबों का DO मानक स्तर से कम है।

COD (Chemical Oxygen demand) रासायनिक ऑक्सीजन माँग जल में कार्बनिक व अकार्बनिक यौगिकों के ऑक्सीकरण के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्र होती है। इसका कार्य जल में उपलब्ध अमोनिया व नाइट्रेट का ऑक्सीकरण करना होता है। जल प्रदूषण के मापन का यह बेहतर विकल्प है। सतही जल पर 5-20 mg/l COD होना आवश्यक है। WHO के अनुसार इसका मानक 10 ppm है। सर्वेक्षित तालाबों का औसत COD 0.835 है, जो मानक से बहुत ही कम है।

BOD (Biochemical oxygen demand) यह भी जल प्रदूषण मापने का विकल्प है। उच्च जैव रासायन ऑक्सीजन की मांग जैव प्रदूषण का कारण होती है। BOD अधिक होने पर ऑक्सीजन की कमी होता है। अधिक BOD का जलीय पारिस्थितिकी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जलीय जीवन ऑक्सीजन रहित पानी में तनावग्रस्त होते हैं। उनका दम घुटने लगता है तथा मर जाते है। शुद्ध जल में BOD का मूल्य 5 ppm होता है। अधययन क्षेत्र में BOD का औसत आकलन 0.50mg/l किया गया है।

जलप्रदूषण का प्रभाव : स्वस्थ्य जीवन का आधाारी तत्व जल, जिसका प्रयोग सभी जीव अनेक रूपों में करते हैं। WHO के अनुसार 70: बीमारी प्रदूषित जल से होती है। हैजा, पीलिया, लकवा, अंधापन, हड्डी-जोड़ों के रोग, केंसर, कब्ज, कृमिरोग, खुजली, पथरी, आदि रोग मानव को प्रदूषित जल से होते हैं। पेड़-पौधे भी रोगग्रस्त होकर नष्ट होते हैं। फल-सब्जी आदि स्वादरहित हो जाती हैं। कभी-कभी जल के विषैले प्रभाव से मानव व पशु का जीवन खतरे में आ जाता है। जलीय जीव-जंतु ऑक्सीजन की कमी से मरने लगे हैं। दूषित जल की मछलियाँ खाने से मानव तथा

पशु-पक्षियों का स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है।

पारिस्थितिकी पर प्रभाव: सर्वेक्षित क्षेत्र के उपलब्ध आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि तालाबों में प्रदूषण की मात्रा बहुत अधिक है। निरंतर गिरते भूजल स्तर एवं प्रदूषण का प्रभाव तालाबों के पारिस्थितिकी तंत्र पर भी पड़ा है। प्राकृतिक आवास्य की गुणवत्ता घटने लगी है, तालाबों के प्राथमिक उत्पादक (फाइटोप्लेंक्टन) एवं उत्पादन प्रत्यक्ष प्रभावित हुए हैं। फलत: अनेक कोमल जीवों का अन्त हो रहा है। साथ ही तालाबों में होने वाले कमल एवं सिंघाड़ा उत्पादन भी प्रभावित हुआ है।

निष्कर्ष: नगरीय क्षेत्र में निरंतर बढ़ती जल की मांग एवं खपत के कारण भूमिगत जलस्रोत का दोहन बढ़ता चला जा रहा है। फलत: गहराई से जलप्राप्ति के प्रयास हो रहे हैं। 'पानी कहां से आयेगा' यह समस्या विकराल हो रही है। इसका समाधान एकाएक संभव नहीं है, किन्तु भविष्य के लिए कुछ कार्यक्रमों का निर्धारण कर समस्या समाधान के उपाय किये जाने से पारिस्थितिकी संतुलन को फिर से संजोया जा सकता है।

भविष्य के लिए कार्यक्रम (समस्या समाधान के उपाय)

(1) वर्षा का अधिकाधिक जल रोकने के लिए छोटे-छोटे तालाब व स्टापडेम खाली जगह में बनाये जाने चाहिये।

(2) तालाबों को न पाटकर उनकी सफाई की जानी चाहिये।

(3) शहर के आसपास एवं सड़कों के किनारे अथवा मध्य में (विभाजक में) वृक्षारोपण करना जल के पुर्नभरण के लिए सहायक होगा।

(4) वाटर हार्वेस्टिंग प्रक्रिया के नियम कड़ाई से लागू किये जाने चाहिये।

(5) नलकूप की खुदाई पर तत्काल रोक लगाना आवश्यक है।

(6) बहुमंजिली इमारतें तथा उद्योगों में उपयोग किये जाने वाले जल का उपचार कर उसका पुन: उपयोग किया जाना चाहिये, न कि फेंकना चाहिये।

(7) प्राकृतिक जैवनियंत्रकों जैसे कछुआ, मछली जैसे जीवों का संवर्धन, प्रदूषण कम करने में किया जाना चाहिए। तालाबों से मछली पकड़ने पर रोक लगाना आवश्यक है।

(8) तालाबों में कचरा फेंकने तथा मलमूत्र जैसे अपशिष्ट पदार्थों का तालाब के किनारे त्याग करने पर रोक लगाना आवश्यक है। जल-प्रदूषण पर कारगर उपाय तब तक संभव नहीं है, जब तक जनमानस जागरूक नहीं होगा।

(9) तालाबों की सुरक्षा हेतु नहाने, कपड़े/बर्तन साफ करने, गाड़ी धोने, पशुओं को नहलाने की अलग व्यवस्था होनी चाहिये।

संदर्भ

1. Environmental Engineering, N.N. Basak, McGraw Hill Education.
2. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, डॉ. बी.पी.राव, डॉ.वी.के. श्रीवास्तव, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
3. पर्यावरण ऊर्जा टाइम, एनवायरमेंट एनर्जी फाउंडेशन का प्रकाशन, समता कॉलोनी, रायपुर ।
4. रायपुर विकास प्राधिकरण, www.india.gov.in